ग्राम चेतना के विविध आयाम-
स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में

(RURAL LIFE IN HINDI NOVELS OF POST INDEPENDENCE PERIOD)

Thesis Submitted
to the Cochin University of Science and Technology
for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

के. लता
K. LATHA

Supervising Guide
Dr. S. SHAH JAHAN
READER, DEPARTMENT OF HINDI

Prof. & Head of the Dept.   Dr. N. RAMAN NAIR
Dept. of Hindi

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology

1988

CERTIFICATE

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by K. LATHA, under my supervision for Ph.D. degree and no part of this thesis has hitherto been submitted for a degree in any University.

Dr. S. SHAJAHAN
(Supervising teacher)

Department of Hindi,
Cochin University of
Science & Technology,
Cochin Pin 682022,
Date 20 July 1988.

ACKNOWLEDGEMENT

This work was carried out in the Department of Hindi, Cochin University of Science & Technology, Cochin-22 during the tenure of fellowship awarded to me by the Cochin University of Science & Technology. I sincerely express my gratitude to the Cochin University for this help and encouragement.

Cochin-22,
20 July 1988

K. LATHA

प्राक्कथन

प्राक्कथन

भारतीय सामाजिक व्यवस्था और जन जीवन की यह विडम्बना रही है कि आज़ादी के 40 वर्ष बाद भी भारत के गाँव विकास के वांछित परिणामों से प्रभावित नहीं हो पाये हैं । इस विरोधात्मक स्थिति की ओर समूचे भारतीय समाज के ध्यान आकर्षित करने केलिए हिन्दी के कुछ लेखकों ने आधुनिक भारतीय गाँवों को उसकी यथार्थता के साथ चित्रित करने का सफल प्रयत्न किया है ।

शहर और गाँव के बीच दिन-ब-दिन बढ़ती खाई के सन्दर्भ में ग्रामीण जीवन का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण बन जाता है । अपने भविष्य के बारे में सुनहरे सपनों को संजोनेवाले ग्रामीणों के जीवन को शासकों तथा राजनीतिक नेताओं ने मिलकर कितना नारकीय बनाया है, यह शब्दों के परे की बात है । ग्रामीण लोगों की कुण्ठा और संत्रास, शहरों का गाँवों पर विनाशकारी प्रभाव, गाँवों के सामाजिक मूल्यों की च्युति आदि कुछ ऐसे तथ्य हैं जिन्होंने लेखकों को अपनी ओर आकर्षित किया ।

इसलिए यह एक ऐसा विषय है जिसकी गहराई में समाज शास्त्रीय और सामाजिक तथ्यों का आपसी संघर्ष दिखाई पड़ता है । यह संघर्ष आदर्शात्मक स्थितियों को तोड़कर यथार्थ के धरातल पर सत्य के खोखले चेहरे को उभारने में सफल सिद्ध होता है । सामाजिक जीवन की स्थितियाँ राजनीतिक गतियों के साथ जुड़कर जीवन की मूलभूत प्रेरणा को ही आहत करती हुई दिखाई पड़ती हैं । इस विशेष सन्दर्भ में ग्राम चेतना के अध्ययन का अर्थ समाज में होनेवाले व्यापक परिणामों को सूचित करनेवाला सिद्ध होता है ।

यद्यपि इस शोध प्रबन्ध का शीर्षक "ग्राम चेतना के विविध आयाम-स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में" रखा गया है फिर भी मूल रूप में इस अध्ययन में सन् 1947 से 1975 के बीच रचित आँचलिक उपन्यासों को अध्ययन का केन्द्र बनाया है । उपर्युक्त विभाजन के कारण प्रमुख रूप में इसमें नागार्जुन और फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों के अतिरिक्त शिवप्रसाद सिंह और राही मासूम रज़ा के दो उपन्यासों को भी अध्ययन का विषय बनाया है ।

प्रथम अध्याय में स्वाधीनता पूर्व गाँव का स्वरूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । यह अध्ययन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है कि आज भी भारतीय जीवन के मूल में वही मान्यताएँ निहित हैं जो सैकड़ों वर्षों से भारतीय जीवन धारा को हरा-भरा करती हुई आगे बढ़ रही हैं । आज़ादी के बाद भारतीय गाँव ज़रूर परिवर्तनों का शिकार बन गया है । आज़ादी के पूर्व ही इस परिवर्तन की पृष्ठभूमि तैयार की गयी थी । जातिवाद, धार्मिक अन्धविश्वास, अशिक्षा और आर्थिक अभाव के कारण हर युग में भारतीय गाँव शोषण के शिकार बने हुए थे । अंग्रेज़ी शासन के अधीन सारी विपदाओं को सहने केलिए अभिशप्त भारत की मानसिकता का जागरण है स्वतन्त्रता संग्राम । वहाँ तक के भारतीय ग्रामीण जीवन को, उसकी मानसिकता को उभारने का प्रयास इसमें हुआ है ।

द्वितीय अध्याय में स्वाधीनता प्राप्ति और ग्राम जीवन पर उसके प्रभाव को खोजने का प्रयास किया गया है । स्वाधीनता प्राप्ति के साथ ही लोगों ने अपने मन में एक वर्गरहित, समानता से युक्त भविष्य की परिकल्पना की थी । भारत के संविधान में घोषित लक्ष्य ने भी इनकी आशाओं को पल्लवित करने का अवसर प्रदान किया । ग्रामीण भारत के विकास हेतु कई योजनाओं का आयोजन भी किया गया । लेकिन इन सबसे जो परिणाम निकला वह गाँवों केलिए विनाशकारी सिद्ध हुआ है । शहरी सभ्यता के प्रभाव स्वरूप आज गाँव, गाँव ही नहीं रह गये, न शहर । गाँव की इस दु:स्थिति के मूल में कार्यरत तथ्यों पर इस अध्याय में प्रकाश डाला गया है ।

तृतीय अध्याय में ग्राम्य जीवन के सन्दर्भ में औपन्यासिक लेखन पर प्रकाश डाला गया है । प्रेमचन्द से लेकर ग्राम चेतना से युक्त आँचलिक उपन्यास तक की यात्रा की झलकी इसमें प्रस्तुत की गयी है । ग्राम चेतना का स्वरूप, उसके विविध आयाम, ग्राम चेतना और आँचलिकता का सम्बन्ध आदि पर सामान्य रूप से प्रकाश डाला गया है । इस अध्याय में आँचलिक उपन्यास के स्वरूप, उसके विविध तथ्य, उसकी पृष्ठभूमि संबन्धी तर्क-वितर्क आदि भी प्रस्तुत किये गये हैं ।

चतुर्थ अध्याय में नागार्जुन की औपन्यासिक रचनाओं में उभरनेवाली ग्राम चेतना को देखने की कोशिश की गई है । उपन्यास के कथ्य, पात्र-चित्रण, ग्राम चेतना के विविध आयाम आदि पर इस अध्याय में विस्तार के साथ विचार किया गया है ।

पंचम अध्याय में फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों के आधार पर उभरती हुई ग्राम चेतना पर प्रकाश डाला गया है । "मैला आंचल", "परती परिकथा", "जुलूस", "दीर्घतपा" और "कितने चौराहे" के माध्यम से भारतीय गांवों की उभरती चेतना को उसके बदलते परिप्रेक्ष्य में खोजने का प्रयत्न किया गया है ।

षष्ठ अध्याय में शिव प्रसाद सिंह के "अलग अलग वैतरणी" तथा राही मासूम रज़ा के "आधा गांव" के माध्यम से भारतीय गांवों में आये परिवर्तनों के परिणामस्वरूप आहत ग्राम चेतना का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है

सप्तम अध्याय में उपर्युक्त रचनाओं के आधार पर एक तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक विवेचन है ।

प्रस्तुत शोध कार्य का प्रणयन कोचिन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग के रीडर आदरणीय डॉ॰ एस॰ शाँहजहाँ जी के दिशा-निर्देशन में संपन्न हुआ है । समय समय पर उनसे प्राप्त सहायता केलिए मैं उनकी सदा आभारी रहूँगी । विभागाध्यक्ष डॉ॰ एन॰रामन नायर जी का प्रोत्साहन भी मुझे मिलता रहा, उनके प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ । इस शोध प्रबन्ध की पूर्ति केलिए जिन साथियों से और गुरुजनों से मुझे प्रेरणा और सहायता मिली है उनकी भी मैं सदा आभारी रहूँगी ।

KLatha

के.लता

हिन्दी विभाग,
कोचिन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, कोचिन - 22,
ता॰ 20 जुलाई 1988

विषय प्रवेश

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय 1 - 11

स्वाधीनता पूर्व गाँव का स्वरूप

भूमिका - भारतीय गाँव और उसकी मानसिकता - जातिवाद - अशिक्षा - आर्थिक पिछड़ेपन की कहानी।

द्वितीय अध्याय 12 - 35

स्वाधीनता प्राप्ति और ग्राम जीवन पर उसका प्रभाव

देश का परिवेश - प्रगतिशील भावधाराएँ और उनका प्रभाव - वर्गहीन समाज का सपना - पंचवर्षीय योजनाएँ और गाँव के नवनिर्माण का प्रयास - गाँव की आर्थिक विपन्नता - राष्ट्रीय भ्रष्टाचार और ग्रामीण जीवन पर उसका प्रभाव - ग्रामीण जीवन में मूल्य च्युति - स्वप्न भंग और विघटन की प्रवृत्ति ।

पृष्ठ-संख्या

तृतीय अध्याय 36 - 80

औपन्यासिक लेखन : ग्राम्य जीवन के संदर्भ में

गाँव और प्रेमचन्द - आंचलिकता के प्राक्रूप का प्रारंभ - ग्राम चेतना का स्वरूप - ग्राम चेतना के विविध पक्ष - ग्राम चेतना का सामाजिक आयाम आर्थिक आयाम - राजनीतिक आयाम - धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयाम - ग्राम चेतना और आंचलिकता - आंचलिक उपन्यास - स्थानीय रंग और आंचलिकता - आंचलिक उपन्यास का स्वरूप - कथावस्तु - पात्र-निरूपण - कथोपकथन देशकाल - वातावरण - भाषा - शैली - उद्देश्य - आंचलिक उपन्यास का वर्गीकरण - नागरिक और ग्रामीण पृष्ठभूमि से संबंधित- जाति - जनजाति और संप्रदाय से संबंधित- पेशेवर समुदायों से संबन्धित - कथाक्षेत्र - ग्रामीण और शहरी अंचल ।

चतुर्थ अध्याय 81 - 278

नागार्जुन के उपन्यासों में ग्राम चेतना का स्वरूप

रतिनाथ की चाची - बलचनमा - नई पौध - बाबा बटेसरनाथ - वरूण के बेटे - दु:खमोचन - कुम्भीपाक - हीरक जयन्ती - उग्रतारा - इमरतिया ।

पृष्ठ-संख्या

पंचम अध्याय 279 - 337

फणीश्वरनाथ "रेणु" के उपन्यासों में ग्राम चेतना का स्वरूप

मैला आँचल - परती परिकथा - दीर्घतपा - जुलूस - कितने चौराहे ।

षष्ठ अध्याय 338 - 494

समकालीन रचनाओं में ग्राम चेतना

(शिवप्रसाद सिंह और राही मासूम रज़ा के विशेष संदर्भ में)

अलग अलग वैतरणी - आधा गाँव ।

सप्तम अध्याय 495 - 520

तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक विवेचन

ग्राम चेतना का बदलता स्वरूप और जन जीवन के विविध पक्ष - समस्याओं का उद्घाटन और उनका समाधान - यथार्थता और अतिरंजना - उपन्यासकारों की उपलब्धियाँ - शैल्पिक विशेषताएँ - लक्ष्यबोध की परिकल्पना - निष्कर्ष ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची 521 - 530

xxxxxxxxxx

प्रथम अध्याय

स्वाधीनता पूर्व गाँव का स्वरूप

प्रथम अध्याय

स्वाधीनता पूर्व गाँव का स्वरूप

भारतीय जन जीवन का स्वरूप एक सीमा तक ग्रामीण अन्तश्चेतना से अनुप्राणित है। भारतीय जीवन के विविध आयामों पर विचार करते समय यह विदित् होने लगता है कि आज भी हमारे जीवन के मूल में वही मान्यताएँ प्रवाहमान हैं जो सैकड़ों वर्षों से हमारी संस्कृति को पल्लवित करती रही हैं। इसी कारण से ग्राम्य जीवन के विविध पक्षों को समझे बिना यहाँ के जीवन के सही स्पन्दनों को आंका नहीं जा सकता। युगों से आनेवाली मान्यताएँ और सांस्कृतिक अन्तर्धाराएँ सभ्यता के कछारों को हरा-भरा करती हुई यहाँ के जीवन में हमेशा नई स्फूर्ति और नया उन्मेष भरती आयी हैं। लेकिन जहाँ गाँव का जीवन विकास की विविध सीमा रेखाओं से आगे बढ़ गया वहाँ गाँव का व्यक्ति कहाँ तक उस धारा में अपने को बहा पाया यह विचारणीय बात है।

स्वाधीनता प्राप्ति के पूर्व का भारतीय गाँव एक ऐसी पहेली हमारे सामने प्रस्तुत करता है जो बहुत ही संकीर्ण बनी हुई है। वैसे कृषि प्रधान देश होने के नाते भारत का आर्थिक ढाँचा अधिकतर धरती की उपज पर ही आधारित होता रहा है । यह उपज प्राकृतिक वरदानों से ही समय समय पर सिंचित होती रही है । जब बाढ़, अतिवर्षा और अतिताप की स्थिति आती है तब किसानों के पास हाहाकार के सिवा और कुछ नहीं बच जाता । इन्हीं कारणों से भारतीय गाँव एक ओर समृद्धि से अपने अंचल को भर लेते हैं तो दूसरी ओर प्राकृतिक विपत्ताओं से त्रस्त भी होते रहते हैं । इन्हीं परिस्थितियों में जीनेवाले ग्रामीणों पर ज़मीन्दार के शोषण का आघात भी अज्ञात रूप से आ सकता है । ऐसी परिस्थितियों में भारतीय किसान का जीवन सिर्फ उन गुलामों का जीवन बन जाता है, जिनके उपर सिर्फ आकाश की छत्त और पैरों के नीचे रेगिस्तान की मिट्टी मात्र रह जाती है । परंपरा से इस तरह शोषित, पीड़ित और प्रताड़ित किसान वर्ग के अभिशाप की कहानी इतनी लम्बी है कि उसकी भूमिका तक कोई लिख नहीं सकता । अंग्रेज़ों के आगमन के पूर्व भारतीय किसान राजा-महाराजाओं और ज़मीन्दारों के शोषण के शिकार बने रहे तो अंग्रेज़ों के आगमन के बाद उन्हें विदेशों की गुलामी स्वीकारनी पड़ी ।

अंग्रेज़ों ने भी भारतीय गाँवों को अनदेखा कर दिया था । अंग्रेज़ों केलिए ग्रामीण किसान वह जानवर था जो सिर्फ बैलों के साथ रह सकता है और ज़मीन्दारों के कुत्तों के साथ भौंक सकता है । उनकेलिए गाँव ज़मीन्दारों की ही जायदाद थी और गाँव से मतलब सिर्फ ज़मीन्दारों से होता था । इन्हीं कारणों से अंग्रेज़ों के शासन में भी भारतीय गाँवों का कोई अस्तित्व नहीं रहा । और न ही गाँव के विकास की ऐसी कोई

योजना बनायी गयी जिससे ग्रामवासियों का उद्धार हो सके। अंग्रेज़ी शासन में गाँव वह नरक था जहाँ अशिक्षित, पीड़ित, शोषित किसान रूपी जानवर अन्धविश्वासों, रूढ़ियों और धार्मिक शोषणों के बीच नियतिवाद को लेकर जीने केलिए मजबूर किया गया था। न वह अपने अधिकारों के बारे में जानता था, न ही उसे मालूम था कि जिस धरती पर वह हल चलाता है वह उसकी अपनी है। पिछले जन्म के पापों को धो डालने केलिए और मुक्ति की साँस लेने केलिए तड़पनेवाला भारतीय किसान उस सामन्तवादी सभ्यता का सबसे काला प्रतीक है जिसका अंत स्वाधीनता प्राप्ति के बाद ही हो सका था। इन्हीं कारणों से स्वाधीनता प्राप्ति के पूर्व के गाँव का जो स्वरूप है वह अमानवीय कारनामों के काले थपेड़ों से इतना कलुषित हो गया है कि उसके बारे में कुछ कहना भी अपराध सा लगता है।

भारतीय समाज को इस सुषुप्तावस्था से जागृत करने के महान् कार्य की अग्रदूत बनी काँग्रेस पार्टी। महात्मा गाँधी को अगुए के रूप में स्वीकार करके समाज-सुधार की प्रवृत्तियाँ चालू रही थीं। ज़मीन्दार-किसान संघर्ष की शुरुआत साम्यवादी और समाजवादी हवा के साथ होने लगी। लेकिन जातिवाद के छोटे दायरे में सिकुड़ी पंगु नैतिकता, मृत आध्यात्मिकता और अंधविश्वास की सुदृढ़ ज़ंजीरों में बंधे हुए गाँव नई रोशनी, नेतृत्व, आन्दोलन, संघर्ष और उथल-पुथल में बहुत पिछड़ गए। आन्तरिक रूप से टूटे ये गाँव बिखर भी गये थे। भारतीय गाँवों में आमूल परिवर्तन इसलिए असंभव रहा कि उनकी आजीविका कृषि पर आधारित थी और कृषि के सन्दर्भ में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो पाया था। परम्परागत खेती की स्थिति इस सीमा तक असाध्य हो गयी कि गाँव छोड़कर शहर जाने की प्रवृत्ति ग्रामीणों में उभरकर आ गयी।

गाँववालों को दी गयी शिक्षा जो उन्हें मात्र नौकर खोजी बनाने केलिए पर्याप्त थी, ने भी शहरोन्मुखता को बढ़ा दिया । संयुक्त परिवारों के टूटन ने खेतों को और भी छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट दिया । बढ़ती आबादी और घटती पैदावार की विभीषिकाओं ने गरीबी के गड्ढे को और भी गहरा कर दिया । इस तरह पिछड़ेपन और अभाव के भंवर में पड़ी अवस्था में ही भारत को आज़ादी मिली थी ।

भारतीय गाँव और उसकी मानसिकता

परम्परागत रूप में भारतीय जन जीवन का आधार आध्यात्मिक दृष्टिकोण से अनुप्रेरित रहा है । भौतिक उन्नति की अपेक्षा आध्यात्मिक उन्नति को लक्ष्य करते हुए मुक्ति के पद की खोज करना भारतीय जीवन पद्धति का सबसे प्रमुख उद्देश्य माना जाता रहा है । इसी कारण पीढ़ी दर पीढ़ी यहाँ के लोग भौतिकता की उपेक्षा कर आध्यात्मिक पक्ष की सार्थकता को लक्ष्य करते आये हैं । वेद, पुराण और धार्मिक ग्रन्थों की रोशनी में भारतीय जनमानस ने पुनःर्जन्म की पोथियों को पढ़ाने की कोशिश की थी । इस कारण औसत भारतीय जन्म से ही धर्म भीरू एवं आध्यात्मिक मनोवृत्तिवाला बन जाता है । वास्तव में भौतिक क्षेत्र में हमारे पिछड़ेपन का कारण यही उपेक्षा की भावना रही है ।

धर्म का स्वरूप सदियों से आनेवाले विश्वासों के घेरे में बन्द होकर क्रमशः बदलता रहा है । आध्यात्मिक तत्वों की गहराई जहाँ धर्म को परखने की सहायक सीढ़ी बनती थी वहाँ धीरे धीरे रूढ़ियों ने अपना आधिपत्य जमा लिया था । गाँव में धर्म, पाखण्ड अथवा अन्धविश्वास बनकर शेष रह गया । उसका सांस्कृतिक आधार नष्ट-भ्रष्ट हो गया । उसका केन्द्र भ्रष्टाचार का अड्डा बन गया ।

अशिक्षित ग्रामीण धर्म को कुछ रीति-रिवाज़ों तक मात्र सीमित समझने लग गया था । वर्णाश्रम धर्म के नियमों ने उधर अशिक्षित ग्रामीणों के मन में यह बात पक्की कर डाली थी कि निचली जाति में जन्म लेने का प्रमुख कारण पिछले जन्म में किये गये पाप हैं । इस तरह धर्म ने जब जातिगत भेद-भावों को प्रश्रय दिया तब शोषण की सभी नीतियाँ वैध स्थापित होने लगी थी । विदेशी शासन के अन्दर रहकर भारतीय किसान ज़मीन्दारों का भी शिकार बन गया था । इस तरह सत्ता की स्वीकृति और अधिकारों के प्रति अनास्था दोनों ने किसानों के जीवन को नारकीय बना दिया था । और यह दर्द भरी कहानी भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में जीवन के सबसे कलंकपूर्ण सत्य को उद्घोषित करती हुई आज भी विद्यमान है ।

आज़ादी के पूर्व के भारतीय किसान की जिन्दगी सभी दृष्टियों से अभिशप्त लगती है । युगों से आनेवाली गुलामी, परम्परागत रूप में धरोहर के रूप में सुरक्षित रूढ़ियाँ, जन्म से रक्त में घुलमिल जानेवाले अन्धविश्वास इन सब ने मिलकर भारतीय किसान के मानस मण्डल को एक श्मशान के समान बना दिया था । इस श्मशान में सभी अभिलाषाएँ जलायी गयी थीं और कहीं भी आशाओं का पल्लवन नहीं हो पा रहा था । दबी हुई आहें और कराहें कभी कभी भारतीय किसान के मन के ऊसर को सहलाती हुई गरम हवा के समान बह जाती थी और उसके थपेड़ों से नये पौधे भी कुम्हला कर गिर जाते थे । जब से आज़ादी का स्वप्न साकार होने लगा तब से नव जागरण की लहर समूचे समाज को एक नई आशा का संकेत देती हुई बहने लगी । अब रूढ़ी, अन्धविश्वास, अशिक्षा, धर्म भीरुता, कायरता और शोषण की परिस्थितियों में जीनेवाला गँवार किसान और अन्य ग्रामीण, जन जागरण के सन्देश की ओर आँख फाड़कर देखने लग गये थे ।

अपने अधिकार की नई व्याख्या सुनकर वे दंग रह गये थे। परन्तु उन अधिकारों की प्राप्ति को सत्य के रूप में परिणत करने की शक्ति न उनके हाथों में थी न उनके मन में ही। उन में से कई अब भी उन बातों को एक सुन्दर सपना मानने लगे थे।

आज़ादी के ठीक बाद का ग्राम्य जीवन एक तरह के असमंजस की स्थिति में पड़ा हुआ प्रतीत होता है। पुराने संस्कारों को त्यागना, रूढ़ियों को छोड़ना, देवताओं को भूलना, अन्धविश्वास को नकारना उनकेलिए असंभव सा लग रहा था। नगरवासी भारतीयों ने शिक्षा और नवचिन्तन के प्रभाव से धर्म के खोखलेपन को जान लिया। और यदि किसी अंश में रूढ़ी या परम्परा उधर शेष रही तो भी उससे उसका सम्बन्ध नहीं रह गया। शिक्षा के अभाव में गाँवों में अन्धविश्वास और परम्परा के रूप में धर्म ने ग्रामवासियों को प्रभावित किया। उधर स्वातन्त्र्योत्तर काल की नई सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थितियों ने परिवर्तनों को अस्वीकारते हुए जीने में जो असमर्थता है, उसी की ओर भी उसका ध्यान खींच लिया था। इस तरह भारतीय गाँव में बसे हुए आम लोगों की मानसिकता न तो पुराने घेरों में बन्द हो सकी न अत्यन्त आधुनिक परिस्थितियों से प्रभावित भी हो सकी। समझौते के अभाव में अविश्वास और अनास्था की स्थितियों के बीच से गुज़रने केलिए इस परिस्थिति ने ग्रामीण जनता को बाध्य कर दिया था। नयी पीढ़ी के युवा लोग पुराने को छोड़ना चाहते थे तो पुरानी पीढ़ी के लोग नये को स्वीकारना नहीं चाहते थे। इस तरह आज़ादी के बाद के दो-तीन दशकों में एक मानसिक घुटन और सांस्कृतिक शून्यता और धार्मिक अनास्था की स्थिति भारतीय गाँव में परिलक्षित होने लगती है।

जातिवाद

परंपरागत रूप में भारत धर्म एवं जाति की व्यवस्था को महत्व देता आया है । इसलिए यहाँ के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के सभी पहलुओं पर धर्म एवं जाति का प्रभाव अनादिकाल से ही दिखाई पड़ता है । आज़ादी के पूर्व के देश की स्थिति पर विचार करते समय यह बात स्पष्ट हो जाती है कि धार्मिक विश्वास और जातिगत विभाजन के आधार समूचे समाज को अपने चंगुल में फंसाये हुए थे । वर्ण-व्यवस्था, हिन्दू धर्म के जातीय विभाजन को अधिक बढ़ावा देती रही । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जैसा विभाजन आरंभिक काल में व्यक्तियों के पेशे पर आधारित था । फिर भी समय के प्रवाह में पड़कर उसने परम्परागत रूप धारण किया । इस तरह ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण बना तो शूद्र का पुत्र शूद्र । इस तरह समाज के कर्म भी इन जातिगत मान्यताओं के आधार पर तय किये जाने लगे । आज़ादी की प्राप्ति के पूर्व की स्थिति इस तरह की जातिगत विभाजन पर आधारित थी । इस कारण हिन्दू धर्म के अवलम्बियों के बीच भी एकता का अभाव रह गया था । इतना ही नहीं जातियों में उपजातियाँ आ गयी और कुल और बिरादरी के आधार पर जातीयता उद्घोषित की जाने लगी और विशाल जन समाज छोटी छोटी सीमाओं के अंतर्गत जातिगत नामों के खिताबों की छाया में विभाजित होने लगा ।

उच्च कुल के कहलानेवाले हमेशा शासन के चक्र को घुमाते रहे और शासन तंत्र क्षत्रिय और ब्राह्मण लोगों के बीच बंट गया था । क्षत्रियों के राज गुरुओं के रूप में ब्राह्मण नियुक्त किये जाने लगे और इस दृष्टि से धरती का स्वामित्व ब्राह्मण और क्षत्रिय के हाथों में सीमित रह गया ।

आगे चलकर ये ही लोग रईस और ज़मीन्दार कहलाने लगे और देश की भूमि का अधिकांश हिस्सा इन लोगों के अधिकार में आ गया । व्यापार मे जिन वैश्य का संबन्ध था और दास्य वृत्ति केलिए पहले ही अभिशप्त शूद्र इन रईसों के दास बनने लगे । इस तरह समाज के अधिकांश लोग दास्य वृत्ति करने केलिए मज़बूर किये गये और ये ही आगे चलकर मज़दूर और खेतिहर कहलाने लगे । इनका भूमि पर कोई अधिकार नहीं था, न ही ये कभी भूमि के स्वामी बन सकते थे । इस प्रकार जब राजसत्ता समाप्त हो गयी तब भी रईस और ज़मीन्दार सही सलामत रहे । अंग्रेज़ों ने इनकी सहायता की और वे स्वयं अपनी प्रभुता को कायम करने में सफल हुए । इस तरह आज़ादी के पूर्व की जातिगत स्थिति एवं खेतीबारी और ज़मीन्दारी की हालत यह सूचित करती हैं कि शोषण का परंपरागत हथौड़ा गरीब भूमिहीन किसानों पर या खेती करनेवाले मज़दूरों पर पड़ता ही रहा । अशिक्षा और अंधविश्वास ने उनको और भी अंधकार में धकेल दिया था । धर्म के ठेकेदार एवं ज़मीन के ठेकेदार जब एक ही जाति के व्यक्ति बने तो परलोक के साथ इन बेचारों का भौतिक लोभ भी शोषण का शिकार बन गया । आर्थिक पिछडेपन, गरीबी, बीमारी आदि से पीडित, हताश जीवन बितानेवाले इन लोगों के उत्थान के सपने आज़ादी से जुडे हुए थे ।

अशिक्षा

मनुष्य में चिन्तन-मनन करने की जो शक्ति जन्म से ही निहित रहती है उसका विकास और उसे सृष्टि के पथ पर ले जाने का कार्य शिक्षा से ही संभव होता है । शिक्षा ही वह एक मात्र साधन है जिसके ज़रिये व्यक्ति और राष्ट्र अपनी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नति पा सकते हैं । आज़ादी पूर्व गाँव को अज्ञान के अन्धकार में बन्द रहना पड़ा, इसका एक प्रमुख कारण है शिक्षा का अभाव ।

गाँवों में बसे हुए लोगों के जीवन को सुधारने केलिए जो शिक्षा अत्यन्त आवश्यक थी उसकी ओर ध्यान देने का वक्त न राजा-महाराजाओं के पास था न उनके बाद आये अंग्रेजों के पास । अंग्रेजों का एक मात्र लक्ष्य रहा अपने शासन कार्य में मदद करने लायक बाबू लोगों की सृष्टि । इसलिए वे भारतवासियों को उसी के अनुसार शिक्षा प्रदान करने लगे । शिक्षा के ज़रिये ज्ञान-विज्ञान का विकास करना और लोगों में नया जागरण लाना कभी भी वे नहीं चाहते थे । फलस्वरूप जीवन के विविध क्षेत्र अज्ञान एवं कूपमण्डूकता के दायरों में फंसकर गतिहीन रह गये थे और राष्ट्रीय विकास की धारा इस कारण अवरुद्ध सी हो गयी थी ।

एक सीमा तक भारतीय गाँव की दुर्गति का कारण शिक्षा का अभाव ही है । आज़ादी के बाद देश में जितनी प्रगति होनी थी वह इसलिए संभव नहीं हो पायी थी कि अशिक्षा से पीडित गाँव नई रोशनी को कभी भी अपने अंदर समा नहीं पाया था । इन्हीं कारणों से सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में भारतीय गाँव पूर्ण रूप से पिछडने लग गये थे । इसी पिछडेपन की कथा एक न एक रूप में देश के हर क्षेत्र को प्रभावित करती हुई प्रगति के पथ पर रोडे लगाती हुई आज भी विद्यमान है ।

आर्थिक पिछडेपन की कहानी

हर समाज का अस्तित्व उसकी आर्थिक स्थिति पर ही निर्भर है । अत: आर्थिक स्थिति के अध्ययन के बिना किसी भी समाज का अध्ययन अपूर्ण रहता है । भारतीय अर्थ व्यवस्था का आधार मूल रूप से गाँव ही रहा है

अंग्रेज़ों के आगमन से भारतीय ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था क्षीण होने लगी । अंग्रेज़ों ने कुटीर-उद्योगों को निर्मूल करके गाँव की अर्थ-व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । उन लोगों का उद्देश्य भारत को कृषि-प्रधान देश बनाकर रखना था, ताकि यहाँ के कच्चे माल का और जन शक्ति का उपयोग वे अपने देश की समृद्धि केलिए काम में ला सकें । परिणाम स्वरूप भारत के कारीगर और कलाकार अपनी रोजगारी खो बैठे और रोटी कमाने केलिए मज़दूरी करने केलिए मज़बूर हो गये । भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार दिये जाने पर किसान ज़मीन खरीदने और बेचने लगे । ऋण के बोझ से परेशान किसानों के हाथों से भूमि छीन ली गयी और ज़मीन्दारी सभ्यता रूढ़ मूल होती गयी । खेती के स्वामी किसान, मज़दूर बनते गये और अपनी रोजी रोटी केलिए शहर की शरण लेने लगे । यों ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का आधार क्षीण हो गया और रोटी कमाने केलिए गाँव के लोग शहरों की ओर जाने लगे ।

आर्थिक विकास का अगला दौर औद्योगीकरण से शुरू होता है। अंग्रेज़ों ने औद्योगीकरण की प्रक्रिया शुरू की थी । परिणामस्वरूप भारत में अनेक कारखाने खोले गये । भारत में प्राप्त सस्ती मज़दूरी और कच्चे माल ने भी औद्योगीकरण के विकास में अंग्रेज़ों को सहायता पहुँचाई । अधिक से अधिक मशीनीकरण के साथ ही साथ एक नये वर्ग का उदय हुआ वह है पूँजीपति वर्ग । देश के सारे उद्योग इनके हाथों में थे । विश्व महायुद्ध, अकाल आदि के कारण कृषि प्रधान देश भारत को अपनी रोटी केलिए दूसरे देशों के आश्रय में जाना पड़ा था । यों स्वाधीनता पूर्व भारतीय गाँव की आर्थिक स्थिति सभी दृष्टियों से अंग्रेज़ों के शोषण नीति की शिकार बनी हुई थी ।

इस तरह प्रस्तुत अध्ययन मे पता चलता है कि भारतीय गाँव का स्वरूप युगों से आनेवाली मान्यताओं और शोषण की परंपराओं के अनुसार परिवर्तित होता रहा है । यह परिवर्तन आज़ादी के पूर्व की पृष्ठभूमि में यह दिखलाता है कि सदियों के बीत जाने से ग्रामीण जीवन का स्वरूप अधिक बिगडता ही गया है । धार्मिक अन्धविश्वास, जातिगत मान्यताएँ, अशिक्षा और आर्थिक अव्यवस्था के कारण ग्रामीण जीवन किसी भी युग में सुरक्षित नहीं रहा । एक न एक दृष्टि से ग्रामीण जनता शोषण की शिकार बनती रही है । अंग्रेज़ों के आगमन के पूर्व जाति व्यवस्था से यह जनता पीडित थी और धार्मिक रूढ़ियों में फंसी हुई थी तो अंग्रेज़ों के आगमन से आर्थिक शोषण के नये प्रकार की शिकार बनती गयी। शिक्षा के अभाव और आत्मविश्वास की कमी के कारण संघर्ष के पथ को अपनाने में ग्रामीण जनता असमर्थ रही । इस तरह सभी दृष्टियों से पीडित, पराजित और मर्दित जनता के सामने मुक्ति का आन्दोलन शुरू हुआ था । यही स्वतंत्रता संग्राम था और यहाँ से ग्राम्य उद्धार का भी एक नया सिलसिला शुरू होता है । इस आन्दोलन का अच्छा परिणाम ग्राम्य जनता को मिला या नहीं यह विवादास्पद विषय है । फिर भी इसी छोटी सी झाँकी से भारतीय ग्राम्य जीवन का स्वरूप और उसकी मानसिकता का स्वरूप उभर कर आने लगता है । आगे के अध्ययन को सुगम बनाने केलिए यह भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण बन जाती है ।

****

द्वितीय अध्याय

स्वाधीनता प्राप्ति और ग्राम जीवन पर उसका प्रभाव

द्वितीय अध्याय

स्वाधीनता प्राप्ति और ग्राम जीवन पर उसका प्रभाव

भारतीय इतिहास में स्वतन्त्रता प्राप्ति का अपना विशेष महत्व है । भारतवासियों के लिए आज़ादी का दिन चिरकालीन सपने का साक्षात्कार बन कर आया था । सदियों से चली आ रही गुलामी से मुक्त भारतवासी एक नवीन युग का सपना संजोने लगे थे । एक आधुनिक युग की परिकल्पना का प्रारम्भ यहाँ से होने लगा था ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व की स्थितियाँ अत्यन्त विकट थीं । अन्धविश्वास और रूढ़ियों से ग्रस्त होने के नाते अनाचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने की हिम्मत भी ग्रामवासियों में नहीं थी । उस समय ज़मीन्दारी प्रथा इसलिए सुरक्षित रही कि खेतियों में रात-दिन मज़दूरी करनेवाले लोगों का यह विश्वास था कि ज़मीन्दार भूमि के स्वामी हैं उनसे ज़मीन छीनना पाप है । यह इसलिए था कि यहाँ सामन्तवाद अपनी जड़ें पूर्ण रूप से

जमा चुका था । विद्वानों के मतानुसार मुगलों के आगमन के पहले ही सामन्तवादी सभ्यता यहाँ प्रचलित थी[1] । 1936 में कांग्रेस द्वारा शासन किये गये प्रान्तों में ज़मीन्दारी शोषण के विरुद्ध अनेक कानून पास किये गये थे । लेकिन इसका आशाजनक परिणाम नहीं निकला ।

इन्हीं परिस्थितियों में ही भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त हुई थी । धरती खेतिहर की होगी, मज़दूर किसान बन जाएगा ये सब आज़ादी से जुड़े हुए सपने थे ।

देश का परिवेश

संविधान में यह घोषित किया गया है कि भारत में धर्म निरपेक्षता को ही महत्व दिया जाएगा । यद्यपि मुसलमानों केलिए पाकिस्तान और हिन्दुओं केलिए हिन्दुस्तान के रूप में देश का बँटवारा किया गया तथापि हिन्दुओं के साथ ईसाई, मुसलमान और अन्य कई धर्म के लोग एक जुट होकर भारत में जीने लगे । लोगों के मन में यही आशा रही थी कि धर्म निरपेक्ष होने के कारण अब से सभी लोग एकता के साथ जीते रहेंगे । लेकिन उसका व्यावहारिक पक्ष इतना कटु बन गया कि साम्प्रदायिकता तो बनी ही रही । जातीयता ने भी अपना फण ऊपर उठा दिया । धर्म के क्षेत्र में साम्प्रदायिकता और जातिवाद दो ऐसे शाप हैं जिन्होंने समूचे भारतीय जन जीवन को विषाक्त बना दिया । इस जातीयता और साम्प्रदायिकता का प्रभाव शहर और गाँवों में दिखाई देने लगा है ।

---

1. Fuedalism they write, was already an established institution, and its advent in India cannot be identified with arrival of the Mughals.
   A.E. Punit - Social Systems in Rural India, p.13

आज़ादी के बाद की भारत की आर्थिक स्थिति पूर्णतया अस्त-व्यस्त थी । गरीबी और अविकास की स्थिति ने देश के आर्थिक पक्ष को बहुत ही क्षीण बना दिया था । रोटी की समस्या का हल ही आम जनता केलिए सबसे प्रमुख बात रही । रोजगारी का अभाव, उद्योगों की कमी, कुटीर उद्योगों का नाश, बढ़ती आबादी, अशिक्षा, तकनीकी जानकारी की समस्या आदि ने स्वाधीन भारत के आर्थिक पक्ष को अत्यन्त दुर्बल बना दिया । अंग्रेज़ों के शोषण से मुक्त भारत अपने विकास यात्रा की नई मंज़िल तय कर रहा था । योजनाएँ आयोजित करने हेतु विदेशों से सहायता स्वीकार की जाने लगी और आहिस्ता-आहिस्ता देश आगे की ओर बढ़ने लगा । इस अवसर पर विश्व भर के देशों की तुलना में यहाँ के औसत आदमी की आमदनी बहुत ही कम थी । अर्थात् आज़ादी के समय देश गरीबी के गर्त में था । लगता है कि भारतीय आर्थिक स्थिति की विकास यात्रा इस शून्य बिन्दु से शुरू होती है ।

आरम्भिक काल में नई योजनाओं और कार्यक्रमों के अभाव में खेती के क्षेत्र में प्रत्याशित उन्नति नहीं हो पाई । परम्परागत कृषि के तरीके, सिंचाई की कमी, यान्त्रिक उपकरणों का विरोध, उर्वरकों का अभाव आदि ने भी विकास के पद पर रोड़े लगा दिये । इन सभी के ऊपर जिस पूंजी की आवश्यकता थी वह इने-गिने लोगों के हाथों में सुरक्षित रही । इस प्रकार उत्पादन की कमी से आर्थिक स्थिति विकल बनी रही और परिणाम स्वरूप असन्तोष भी ।

देश के बँटवारे के फलस्वरूप हुए साम्प्रदायिक दंगों, मारकाट, बलात्कार, हत्या आदि की स्थिति ने जनमानस को आतंकित कर दिया था ।

शरणार्थियों एवं आलम्बहीन व्यक्तियों की समस्या देश के सामने अपना भयंकर स्वरूप फैलाकर खड़ी रही ।

देश भर में व्याप्त आर्थिक एवं सामाजिक विपन्नता ने पारिवारिक संबन्धों को भी शिथिल बना दिया । संयुक्त परिवार के सपने अब भंग हो गये । संयुक्त परिवार के टुकडे होने के साथ ही खेतों का भी बंटवारा होना स्वाभाविक परिणाम था । ग्रामीण लोगों के मन में यह विचार उदय होने लगा कि खेती करने से भी बेहत्तर पेशा मज़दूरी है और उसकी खोज में शहर की ओर जाने की इच्छा उनके मन में जन्म लेने लगी । इस तरह परंपरागत किसान "मज़दूर" का स्वरूप धारण करने लगे और मज़दूरी की तलाश में शहरों की गन्दी गलियों में पनाह लेने केलिए विवश हुए ।

आज़ादी के साथ ही यांत्रिक सभ्यता का विकास भी होने लगा, जिससे गाँधीजी के रामराज का सपना भी बिखेरने लगा । यांत्रिक सभ्यता से लाभ उन लोगों को मिलने लगा जो पहले ही धनिक थे । साथ ही समाज के लोग तीन वर्गों में विभक्त होने लगे - उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्न वर्ग । स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही मार्क्सवाद को अधिक प्रश्रय मिलने लगा । नई पीढ़ी के लोग मार्क्सवाद से प्रभावित होने लगे । मिल मालिक और मज़दूर, ज़मीन्दार और किसान के बीच के संघर्ष में नई पीढ़ी ने मज़दूर और किसान का पक्ष लेना उचित समझा । पुरानी और नई पीढ़ी के बीच की खाई बढ़ने लगी ।

गाँव जो सभ्यता और संस्कृति का केन्द्र माना जाता था, अब नई पीढ़ी के मनमुटाव के साथ पथ-भ्रष्ट होने लगा । इन परिस्थितियों को और भी मैला बनाने का कार्य राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने किया

आज़ादी के प्रभात में ही राजनीतिक भ्रष्टाचार गाँव को ग्रसने लगा था ।

आज़ादी की प्राप्ति के तुरन्त बाद की उपर्युक्त परिस्थितियों पर विचार करने से यह व्यक्त होने लगता है कि शहरों की तरह भारतीय गाँव एवं अंचल विवशता, निराशा एवं कुण्ठा से प्रभावित होते आये हैं ।

प्रगतिशील भावधाराएँ और उनका प्रभाव

स्वाधीनता संग्राम के दौरान भारत में प्रमुख रूप से दो भावधाराएँ समानान्तर रूप से बहती रहीं । वे थीं गाँधीवाद और साम्यवाद की धाराएँ । लगभग पचीस साल तक भारत की राजनीति पर गाँधीजी का गहरा प्रभाव रहा । उनका प्रभाव भारत पर इस तरह छाया रहा कि केवल राजनीति ही नहीं अर्थशास्त्र, शिक्षा, धर्म आदि के क्षेत्रों में भी उनके मत को महत्व मिलने लगा ।

राजनीतिक क्षेत्र में गाँधीजी का मत "गाँधीवाद" कहलाने लगा । सद्भाव एवं शान्ति के पैगम्बर गाँधीजी ने मार्क्सवाद के वर्ग-संघर्ष और हिंसात्मक भावधारा की तुलना में अहिंसा और शान्ति के उच्च आदर्शों को जनता के सम्मुख रखा । सद्भाव के बिना स्थापित स्वर्ग पर भी शांति नहीं होगी । इसलिए उन्होंने धर्म पर आधारित सामाजिक व्यवस्था "रामराज" की कल्पना की, जहाँ सब लोग सुख-सुविधा से रहें । "रामराज" की कल्पना पूर्ण रूप से भारतीय जातीय संस्कारों पर आधारित थी । कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी के अनुसार "उन्होंने सत्य और अहिंसा पर आधारित नई विश्व-व्यवस्था अर्थात् रामराज की जो कल्पना की,

उसके कारण ही वह जनता के हृदय पर शासन करते थे ।[1]"

साम्यवाद के वर्ग संघर्ष का विरोध करनेवाले गाँधीजी ने वर्ग सहयोग पर ज़ोर दिया । इसी आधार पर उन्होंने "ट्रस्टीशिप सिद्धान्त" पर विशेष ध्यान दिया । श्रमिकों को उच्च वेतन मिलता रहें और उद्योगपति राष्ट्र की ओर से नियुक्त ट्रस्टी बने रहे यही गाँधीजी का विचार था । "सामाजिक न्याय की स्थापना में गाँधीजी का यह क्रान्तिकारी योगदान है[2] ।"

इसके समानान्तर चलनेवाली दूसरी भावधारा मार्क्सवाद की रही । पूँजीवाद के प्रतिक्रिया स्वरूप कार्लमार्क्स की विचारधारा में उदित भावधारा है साम्यवाद । इसके अनुसार संसार में केवल दो ही वर्ग है शोषक और शोषित । मार्क्स ने वर्गहीन समाज की परिकल्पना की थी जिसके समर्थन में उन्होंने द्वन्द्वात्मक बौद्धिकवाद के सिद्धान्तों का आविष्कार किया था । मार्क्स का यह विचार था कि वर्गहीन समाज की स्थापना केलिए शोषकों और पूँजीपतियों के विरुद्ध सशक्त संघर्ष आवश्यक है ।

दोनों भावधाराओं का लक्ष्य समाजवादी व्यवस्था कायम करना है और इसी हेतु दोनों के कई तत्व समान है । ज़मीन्दारी प्रथा के प्रति विरोध दोनों भावधाराओं में है और उत्पादन के साधनों पर व्यक्ति का नहीं, समाज के अधिकार को स्थापित करने के लक्ष्य का दोनों समर्थन करते हैं ।

रूसी विप्लव की सफलता ने भारत में साम्यवादी विचारों को एक सीमा तक स्वीकार्य बनाया और यहाँ के साम्यवादी यह सोचते रहे कि रूसी विद्रोह हमारे लिये भी मार्ग दर्शन बन सकता है ।

---

1. कन्हैयालाल मणिकलाल मुन्शी - गाँधी व्यक्तित्व,विचार और प्रभाव, पृ.488

2. वही - पृ.256

परन्तु यहाँ की राजनीतिक परिस्थिति साम्यवाद के प्रचलन केलिए अनुकूल नहीं थी । और इसी वजह से रूस और चीन के समान साम्यवाद की स्थापना की संभावनाएँ भारत में प्रोत्साहनजनित नहीं थीं । फिर भी शोषकों के विरुद्ध आन्दोलन से प्रभावित किसान-मज़दूर लाल झण्डे के नीचे पंक्ति बाँधने लगे । गाँवों में पूँजीवाद को समाप्त करने केलिए युवा पीढ़ी के लोग कटिबद्ध रहे । इस परिस्थिति में आहिस्ता-आहिस्ता गाँधीवाद से लोग विमुख हो गये । क्योंकि मार्क्सवादी सक्रिय रवैये पर बल देते थे और उनका कार्य-कलाप युवा वर्ग केलिए नया जोश फैलानेवाला था ।

औद्योगीकरण के साथ ही मिल मालिक और मज़दूरों के बीच का संघर्ष भी शुरू हुआ । साम्यवाद ने लोगों के सामने एक ऐसी दुनिया की रूपरेखा रखी जहाँ समानता और सुख चैन का जीवन मिलेगा । इस दुनिया के साक्षात्कार के विरुद्ध जो दो शक्तियाँ खड़ी थीं - मिल मालिक और ज़मीन्दार, उसको समाप्त करने का दृढ़ संकल्प साम्यवादियों ने लिया था ।

आज़ादी की लड़ाई के वक्त रूस अँग्रेज़ों के पक्ष में था और इसी कारण भारत में साम्यवाद के प्रति आकर्षण कुछ कम होने लगा था । दूसरे विश्व-महायुद्ध में भारतवासियों के विरुद्ध रूस ने जो रवैया अपनाया था, उससे भी साम्यवाद का प्रभाव कम होने लगा । चीन और रूस के आपसी मतभेद का परिणाम यह निकला कि मार्क्सवाद ही दो भागों में विभक्त हो गया । इन्हीं कारणों ने भारत में साम्यवादी विचारधारा की उन्नति में रोडे लगा दिये ।

फिर भी किसान और मज़दूरों के बीच एक वैचारिक एवं प्रगतिवादी चिन्तन के रूप में मार्क्सवाद को प्रश्रय मिलने लगा । प्रगतिवाद और परिवर्तनों को स्वीकारनेवाली युवा पीढ़ी को मार्क्सवाद ने प्रभावित किया । युवा पीढ़ी के मन में इस तरह जन्म लेनेवाली प्रगतिवादी विचारधारा ने देश के विकास में और वर्गगत संघर्ष में एक नई भूमिका अदा की ।

समानान्तर रूप से प्रवाहमान होनेवाली गांधीवादी चेतना समन्वयवादी दृष्टि को अपनाती हुई अपने उद्देश्यों के प्रति अग्रसर हो रही थी । गांधीवादी चेतना भारतीय परिवेश केलिए अधिक उपयुक्त सिद्ध हुई थी । क्योंकि यह इस धरती की उपज थी जब कि साम्यवादी विचारधारा आयातीत है । वस्तुत: उन दोनों विचारधाराओं ने भारतीय जनमानस को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में प्रभावित किया था । जिसके परिणाम आज भी दिखाई पड़ते हैं ।

वर्गहीन समाज का सपना

अंग्रेज़ों के अत्याचारी शासन से जब भारत आज़ाद हो गया तब जनता के मन में सुनहले सपनों का उदय होना स्वाभाविक था । नेताओं के द्वारा जो संविधान तैयार किया गया वह भी सपनों का पोषक ही सिद्ध हुआ था । क्योंकि उसमें उतनी बड़ी-बडी बातें लिखी गयी थीं, जिन पर विश्वास किये बिना जीना भी मुश्किल था । उन सपनों को सत्य मानकर जीनेवाली जनता को अनुभव की यथार्थता की कटुता का बोध काफी बाद में ही होने लगा था ।

जनतन्त्र की महत्वपूर्ण इकाई व्यक्ति को आज़ादी के बाद अपनी सत्ता की महत्ता का बोध होने लगा । इस बोध के साथ ही अपने देश भारत के प्रति कर्तव्य की भावना और राष्ट्र सेवा की भावना भी दृढ़ होने लगी ।

संविधान के रूप में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से संबन्धित मान्यताएँ, नियम एवं अधिकार का चयन किया गया । "वस्तुत: संविधान के रूप में भारतीय समाज को एक विस्तृत मूल्य विधान ही प्राप्त हुआ है । यद्यपि संविधान की धाराओं को मूल्यों की संज्ञा नहीं दी जा सकती, तथापि यह सच है कि ये धाराएँ नियमों के रूप में जिसकी पृष्ठभूमि में जन-जीवन के साथ इतनी घुल-मिल गयी हैं कि प्रकारांतर से सामाजिक जीवन में इन्होंने मूल्यों का स्थान ग्रहण कर लिया है[1] ।"

संविधान की स्वीकृति के साथ ही परंपरा से विचलित अनेक नवीन मूल्यों को वैधानिक स्वीकृति भी मिली है । संविधान के आगे सभी के समान अधिकार होंगे । भारत, किसी एक जाति या वर्ग विशेष के कल्याण केलिए नहीं, बल्कि समस्त भारतवासियों केलिए है । संविधान में एक कल्याणकारी राष्ट्र या "वेलफेयर स्टेट"[2] की परिकल्पना की गयी थी और यह राष्ट्र लोक सत्ता की प्रभुता के आधार पर ही बना रह सकता है । "लोक सत्ता के विभिन्न पहलू होते हैं । यह राजनीतिक व्यवस्था है, यह एक आर्थिक रास्ता है, यह जीवन की एक नैतिक प्रणाली है[3] ।"

---

1. डॉ. हेमन्द्र कुमार पानेरी - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण, पृ. 125

2. Constitution of India, p.1

3. डॉ. सर्वेपल्लि राधाकृष्णन - भारतीय संस्कृति कुछ विचार, पृ. 89

आज़ादी के शिल्पियों ने वास्तव में हमारे संविधान को इस तरह से रूपायित किया था जिससे एक वर्गहीन समाज की परिकल्पना साकार हो सकें। अधिकारों की समानता, वैधानिक दृष्टि से समानता प्रदान करना आदि ऐसे कदम हैं जो इस ओर बढ़ने का संकेत करते हैं। इन्हीं लक्ष्यों को कार्यान्वित करने केलिए पंचवर्षीय योजनाओं का चयन किया गया था। और आम जनता के जीवन स्तर को ऊपर उठाने का प्रयास किया गया था। ग्राम्य जीवन को एक नई मुख मुद्रा प्रदान करने केलिए राष्ट्र शिल्पियों ने स्वतन्त्रता के प्रभात में काफी प्रयास किये थे।

जहाँ राजनीतिक व्यवस्था का सवाल उठता है, वहाँ वयस्क मताधिकार एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध होता है जिससे सामान्य व्यक्ति को भी एक नई प्रतिष्ठा प्राप्त होने लगती है। भारत के प्रत्येक व्यक्ति को, जो एक विशेष आयु का हो, उसकी जाति, शैक्षणिक योग्यताएँ, सुविधा और सम्पत्ति आदि पर ध्यान दिये बिना अपने शासक को चुनने का अधिकार देना इसका उद्देश्य है।

"संवैधानिक समानता की घोषणा के फलस्वरूप जाति और धर्म के नाम पर जितने भी परंपरागत मूल्य थे सभी टूटने लगे। अस्पृश्यता, जो एक अभिशाप के रूप में भारतीय समाज में कायम थी, संविधान में इसका पूर्ण रूप से निषेध किया गया। इसके अलावा संविधान के तृतीय अध्याय में शिक्षा, सम्पत्ति, वैधानिक समानता आदि मौलिक अधिकार भी दिये गये हैं।"[1]

सामान्य मानव के जीवन-मान को उठाने हेतु पंच वर्षीय योजनाएँ, समाज-विकास कार्यक्रम, पंचायतराज आदि के द्वारा प्रयत्न ज़ारी रहा

---

1. देखिए Constitution of India, p.4

जब तक हमारे देश में ऐसे लोग हैं जो दिन भर एक बार भी भरपेट भोजन प्राप्त करने केलिए तरसते हैं जिनके सिर केलिए कोई छत्र या छाया नहीं है तब तक देश का विकास अवरुद्ध रहेगा । संविधान में एक नवीन भारत की स्थापना की घोषणा की थी ।

वस्तुत: भारतीय संविधान के द्वारा निर्धारित लक्ष्य बहुत ही महान रहे । इन लक्ष्यों का विधान करनेवाले भी आदर्शपूर्ण परिकल्पनाओं से जुड़े हुए व्यक्ति रहे । लेकिनजब यथार्थ के धरातल पर स्थितियाँ उतरी तब उनसे उत्पन्न होनेवाले परिणाम प्रश्नवाचक बनने लगे ।

पंचवर्षीय योजनाएँ और गाँव के नवनिर्माण का प्रयास

देश विभाजन और दूसरे महायुद्ध के फलस्वरूप भारत खाद्यान्नों तथा कच्चे माल के अभाव से बुरी तरह ग्रस्त रहा । देश के किसान लोग ऋण के बोझ से लदे थे । शरणार्थियों का पुन:र्वास देश के सामने बड़ी समस्या होकर खड़ा रहा था । दुनिया भर में ऐसा कोई दूसरा देश नहीं था जहाँ आर्थिक विषमताएँ इतनी अधिक थी और सुविधाएँ इतनी कम थी ।

उपर्युक्त दशा में देश में आर्थिक समानता प्राप्त करने हेतु राष्ट्रीय सम्पत्ति, अपनी कृषि सम्बन्धी उपज और औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने की ज़रूरत पड़ी । पंचवर्षीय योजनाएँ इसी उद्देश्य की पूर्ति केलिए आयोजित की गयी थी ।

प्रथम पंचवर्षीय योजना, जो 1951 में आयोजित की गयी थी, के लक्ष्य थे - द्वितीय महायुद्ध और देश विभाजन के फलस्वरूप हुई आर्थिक असंतुलित अवस्था में सुधार, खाद्यान्न की अधिक पैदावार और औद्योगिक क्षेत्र में उन्नति, यातायात, सिंचाई आदि केलिए नवीन योजनाएँ, विकास योजनाओं की सफलता हेतु सशक्त शासन प्रणाली आदि ।

दूसरी योजना अधिक से अधिक भारी उद्योगों पर बल देनेवाली थी । "कृषि और सिंचाई पर बल देनेवाली प्रथम योजना की तुलना में दूसरी योजना औद्योगीकरण और परिवहन पर बल देनेवाली योजना रही[1] ।"

तृतीय योजना के लक्ष्य थे - राष्ट्रीय आय में प्रतिवर्ष 5% की वृद्धि करना एवं पूंजी नियोजन का ऐसा स्वरूप निर्मित करना कि वृद्धि का यह क्रम आगामी योजनाओं में चलता रहे । खाद्यान्नों में देश स्वावलम्बी हो जायें एवं कृषि की उपज इतनी बढ़े कि जिससे उद्योग एवं निर्यात दोनों की आवश्यकताएँ पूरी हो । इस्पात, रासायनिक उद्योग एवं बिजली के आधारभूत उद्योगों का विस्तार हो तथा यंत्र-सामग्री बनाने की क्षमता इतनी बढ़ जायें कि दस वर्ष के भीतर औद्योगीकरण की समस्त आवश्यकतायें पूरी होने लगें । देश की जनशक्ति का यथा संभव पूरा उपयोग किया जाय एवं रोजगार के अवसर में पर्याप्त वृद्धि हो । अवसर की समानता उत्तरोत्तर बढ़े, आय एवं सम्पत्ति में विषमता घटे तथा आर्थिक क्षमता का वितरण और अधिक समुचित हो ।

---

1. The 2nd plan was an 'industries and transport plan' in contrast to the first which was essentially an agriculture and irrigation plan.
   M.L. Jhinghan - The Economics of Development and Planning, - p.507

चतुर्थ योजना में आर्थिक उन्नति के साथ सामाजिक क्षेत्र में संतुलन लाने पर ज़ोर दिया गया था । इस योजना में समाज में आर्थिक रूप से दुर्बल साधारण मनुष्य का उद्धार ही लक्ष्य रहा ।

यों बीस वर्षों की योजना के फलस्वरूप कृषि, सिंचाई, यातायात, औद्योगीकरण, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के क्षेत्रों में प्रगति तो अवश्य हुई है । वस्तुत: इन समस्त योजनाओं का लक्ष्य ग्रामीण भारत के विकास को ध्यान में रखकर रूपायित किया गया था । इसी के परिणाम स्वरूप गाँवों में काफी उन्नति हासिल की थी और अपने पिछड़ेपन को दूर करने का प्रयास भी किया गया था । यद्यपि कुछ एक कार्यक्रम सफल नहीं हो पाये तथापि ग्रामीण जीवन को सुधारने में इन योजनाओं का योगदान सराहनीय बन जाता है ।

ऊपर वर्णित बीस वर्षों के दरम्यान में योजनाओं के द्वारा देश में जो परिवर्तन आये उनकी समीक्षा करते समय ग्रामीण जीवन और नगरों के जीवन में आनेवाले परिवर्तन हमारी समीक्षा का विषय बन जाता है ।

स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त देश के राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक पहलुओं में काफी परिवर्तन दृष्टिगत होने लगे । विभिन्न योजनाओं के आधार पर भारत को आर्थिक रूप से सम्पन्न करने की कोशिश जारी रही । उन प्रयासों के माध्यमों से भारत व्यावसायिक एवं वाणिज्य व्यापारों के क्षेत्र में प्रगति के पड़ाव पार करने लगा ।

व्यावसायिक प्रगति के साथ यांत्रिक सभ्यता को जन्म देने लगे । आत्मनिर्भरता को प्राप्त करने के लक्ष्य से स्थापित कारखानों से उत्पादन की क्षमता तो बढ़ती गयी लेकिन परंपरागत मूल्यों की कटौती होती गई । वास्तव में आधुनिकीकरण ने देश के पुराने चेहरे को बदल दिया, परन्तु उसके साथ उसने यांत्रिक सभ्यता के विषैले स्वरूप को खड़ा कर दिया । देश को मूल्यच्युति की ओर बढ़ाने को बाध्य कर दिया । सांस्कृतिक पतन की कहानी कहनेवाली यह मूल्यच्युति वास्तव में आधुनिकीकरण की सबसे दु:खद एवं निराशाजनक परिणामों की घोषणा करती है ।

गाँव भी इन्हीं परिवर्तनों से अछूते नहीं रहे । मूल्यच्युति, भ्रष्ट आचरण और नैतिक विघटन कुछ ऐसी उपजें थीं जिनको पंचवर्षीय योजनाओं ने समसामयिक जीवन के साथ जोड़ दिया था । ग्राम चेतना का स्वरूप इन्हीं दूषित प्रभावों के फलस्वरूप जितना विषैला हो गया था उसकी कथा कहे बिना कोई भी कहानीकार अपने दायित्व को नहीं निभा सकता था । सर्जना के क्षेत्र में दिखाई पड़नेवाली विकृतियाँ औपन्यासिक लेखन के क्षेत्र में ऐसी कुरूपात्मक तस्वीरों को उभारने लगी जो ऊपर से भ्रामक लगती है लेकिन अन्दर से यथार्थ ।

गाँवों की आर्थिक विपन्नता

यातायात और संचार माध्यमों की बढ़ती सुविधा ने नगर और गाँव के बीच के संबन्धों को अधिक घनिष्ठ बना दिया ।

बढ़ती आबादी, बेरोजगारी, शिक्षा में वृद्धि आदि कारणों ने नगर के प्रति ग्रामीणों के मन के घृणा भाव को दूर कर दिया ।

अधिक से अधिक ग्रामीण लोग अब नगर के मोह पाश में बन्दी बनने लगे । सत्यं और सुन्दरम का जीता जागता प्रमाण गाँव, नगर के दुष्प्रभावों से अपने को सुरक्षित नहीं रख सका । यह एक ज्वलन्त सत्य है कि औद्योगीकरण ने जो प्रभाव ग्रामीण समाज पर डाला है वह अशिव और अशुभ ही सिद्ध हुआ है ।

औद्योगीकरण का जो प्रभाव ग्रामीण आर्थिक स्थिति पर पड़ा है वह अत्यन्त बुरा ही निकला है । कुटीर उद्योगों का नाश औद्योगीकरण का सबसे प्रमुख दुष्परिणाम है । प्रतिदिन पनपनेवाले बड़े-बड़े कारखानों में अधिक से अधिक वस्तुओं का निर्माण होने लगा जो ग्रामीण जनता द्वारा उत्पादित वस्तुओं से सस्ते भी थे । इन बडे बडे कारखानों के क्लार्क , टंकक, चपरासी आदि के पद ग्रामीण भारत के लोगों केलिए सर्वथा प्राप्त रहे । शहर के इन पदों से आकृष्ट ग्रामीण जनता हमेशा कुटीर उद्योगों और कृषि से विमुखता प्रकट करने लगी । परिणाम यह निकला कि कुटीर उद्योग नाशोन्मुख हो गया । पहले खाद्यान्न केलिए नगर गाँव पर आश्रित थे लेकिन मशीनीकरण और ग्रामीणों के कृषि की ओर की विमुखता के कारण गाँव अपने खाद्यान्नों केलिए नगर पर आश्रित होने लगे ।

राजनीतिक भ्रष्टाचार और ग्रामीण जीवन पर उसका प्रभाव

भारत को परतन्त्रता के जंजीरों से मुक्त करने हेतु यहाँ के सभी राजनीतिक दलों के लोग कृत संकल्प थे । अपनी आपसी विरोध को भूल कर ये एक झंडे के नीचे पंक्ति बाँधने लगे थे । स्वाधीन भारत में उस राष्ट्रीय एकता का नितांत अभाव ही दृष्टिगत होता है । इसका प्रमुख कारण यह है कि हर राजनीतिक दल के अपने अपने विचार हैं, नीतियाँ हैं और

राष्ट्रनिर्माण की अलग-अलग योजनाएँ है । इसके अतिरिक्त प्रत्येक पार्टी के भीतर भी आपसी फूट दिखाई पड़ती है ।

भारत की सबसे प्रमुख राजनीतिक पार्टी है कांग्रेस । आज़ादी के बाद भारत के शासन यंत्र के प्रमुख नियंत्रक कांग्रेस नेता ही रहे । स्वाधीनता संग्राम के दौरान "सादा जीवन" बितानेवाले कांग्रेस नेताओं के जीवन में आज़ादी के बाद परिवर्तन आने लगा । भारतीय संविधान का लक्ष्य जो कि समाजवादी समाज-व्यवस्था स्थापित करने का है, के प्रति इस दल के नेताओं का आन्तरिक मत-वैभिन्य रहा । आर्थिक समानता लाने लायक कोई प्रयास उन लोगों द्वारा नहीं किया गया । ये अधिक से अधिक मशीनीकरण के पीछे पागल रहे जिससे बेरोज़गारी बढ़ी, कुटीर उद्योगों का नाश होने लगा और लोगों के मन में अशांति भी ।

कांग्रेस के बाद भारत की दूसरी प्रमुख पार्टी है कम्यूनिस्ट । जिन्होंने हमेशा समाज के शोषित वर्ग की भलाई पर ज़ोर दिया है । देश के अधिकांश शोषित वर्ग कम्यूनिस्ट पार्टी को अपनी पार्टी मानने लगे थे । लेकिन भारत पर चीन का हमला, रूस और चीन के बीच की वैचारिक भिन्नता आदि का प्रभाव भारतवासियों पर भी पड़ा । और समाजवादी समाज-व्यवस्था की स्थापना केलिए लोगों के मन में एक दृढ़ संकल्प और एकता उत्पन्न करने में कम्यूनिस्ट पार्टी भी असमर्थ रही ।

राजनीतिक मत वैभिन्य के बीच उलझी हुई भारतीय जनता राष्ट्र के भविष्य के बारे में चिन्तित रह गयी ।

आज़ादी के बाद हुई मूल्य-च्युति का सबसे बड़ा शिकार बन गया राजनीतिक क्षेत्र । राजनीतिक नेताओं का सबसे बड़ा हथियार बना

भ्रष्टाचार । जन सेवा का स्थान स्वार्थ भावना ने ले लिया । "अयोग्य और चरित्र शून्य चुनाव जीतकर मन्त्रिमण्डल में स्थान पाने अथवा महत्वपूर्ण स्थानों पर जमने लगे थे[1] ।" दलों के बीच की फूट, दल-बदल की नीति, किसान-मज़दूर संघर्ष आदि का परिणाम यह निकला कि राजनीतिक नेताओं के पास राष्ट्र-निर्माण केलिए कोई वक्त नहीं रह गया । एक के बाद एक एक होकर आनेवाले मंत्रियों को देखकर लोग समझने लगे कि "कुर्सियाँ वही हैं, सिर्फ, टोपियाँ बदल रही हैं[2] ।" देश-भक्ति और विश्व-शांति की महत्ता पर ज़ोरदार भाषण देने में समर्थ इन नेताओं की कथनी और करनी में आकाश-पाताल का फर्क है । चुनाव के दिनों में ज्यादा हँसने में होशियार ये लोग उसके बाद स्वार्थता के केंचुल में सिकुड़ने लगते हैं ।

"फैवस्टार" होटलों में बैठकर अकाल और अतिवर्षा पर चर्चा करना मात्र ही भारतवासियों के प्रति उनकी जिम्मेदारी रही है । देश की वर्तमान स्थिति पर मगरमच्छ की तरह आँसू बहानेवाले जननेताओं के मन में ईमानदारी का कण भी नहीं होता ।

आज राजनीति एक व्यवसाय, एक धंधा बन गयी है । आज लोकतन्त्र के तन्त्र सत्ताधारी दल के साथ दिये हुए उच्च वर्ग के हाथों में सुरक्षित है । इन लोगों के इशारे पर नाचनेवाले कठपुतले बन गये हैं आज के नेता लोग ।

राष्ट्रीय उन्नति का पथ राजनीतिज्ञों के भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता आदि के कारण अन्धकारपूर्ण बन गया है । उपर्युक्त नेताओं की देखा-देखी में साधारण नागरिकों का पथ भ्रष्ट हो जाना स्वाभाविक बात मात्र थी ।

---

1. डॉ॰ गोपाल राय - अज्ञेय और उनके उपन्यास, पृ॰31

2. धूमिल - संसद से सड़क तक - पटकथा, पृ॰137

ग्रामीण जीवन में मूल्यच्युति

आधुनिकता के साथ ही नगर और गाँव के बीच का संबंध अधिक सुदृढ़ होने लगा । गाँव का शिक्षित और अशिक्षित युवा लोग नौकरी की खोज में नगर की ओर जाने लगे ।

नगर के भ्रष्टाचार से प्रभावित ग्रामीण समाज का हर पहलू सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यच्युति के शिकार बनने लगे । औद्योगीकरण ने जो प्रभाव ग्रामीण समाज पर डाला है वह विनाशकारी ही सिद्ध हुआ है । गाँव की भलाई केलिए जीनेवाले लोग अब अपने लिए जीने लगे । बाहर से गाँव को समृद्ध करने के प्रयास ने गाँव के आन्तरिक रूप को कंगाल बना दिया ।

शहर के प्रभाव ने ग्रामीण जीवन में मूल्य-शोषण का विधान किया । मूल्य-च्युति के विषाक्त प्रभाव से सारा गाँव अपनी परंपरागत मान्यताओं को खो बैठा । इस मूल्य शोषण का एक आर्थिक पक्ष भी है जो किसान के जीवन से नहीं, परन्तु शहर में जाकर क्लर्क या चपरासी बननेवाले "किसान" के जीवन से जुड़ता है । शहर की सुख-सुविधाओं को अपने जीवन में प्राप्त करने की लालसा ने गाँव के क्लर्क नामा किसान को भ्रष्ट आचरण केलिए प्रोत्साहन दिया । आर्थिक कठिनाईयों के कारण संयुक्त परिवार को तोड़कर वह व्यक्ति केन्द्रित परिवार की कल्पना करने लगा । यहाँ से माँ-बाप और भाई-बहन आदि से संबन्ध तोडने केलिए वह बाध्य होने लगा ।

संयुक्त परिवार का टूट जाना, रिश्ते-नातों की समाप्ति और अमीरों की सी ज़िन्दगी जीने की अभिलाषा, स्वर्ग-नरक की चिन्ताओं से मुक्ति, भगवान के अस्तित्व पर अविश्वास आदि ने गाँव के "शहरी बाबू" को किसी भी मार्ग से धन कमाने के रास्ते खोज निकालने को विवश कर दिया । परंपरागत मूल्यों की लाशों पर से होकर वह एक "नई" सामाजिक अस्तित्व की खोज में निकल पडा, जिसका परिणाम झूठ, धोके-बाजी, बेईमानी, धांधली, विश्वासघात, नैतिक भ्रष्टता और व्यभिचार जैसे "मूल्यों" को अपनाने केलिए उसे प्रेरणा देता रहा ।

भारतीय संस्कृति के प्रमुख तथ्य पर्व और त्योहारों का रंग प्रोत्साहन के अभाव में फीका पड़ने लगा । परम्परागत कला नामशेष बनने लगी । उसके स्थान पर आधुनिक कला अपना स्थान जमा भी नहीं कर सकी । "परम्परा और आधुनिकता के दो ध्रुवान्तों के बीच आज का ग्राम जीवन अटका परम अनिश्चय की स्थिति में है । यह अपने पुरानेपन के मुग्ध व्यामोह को विस्मृत करने में हिचक रहा है और नवीन वैज्ञानिक नवोत्थान की प्रगतिशील शक्तियों को भी वह अत्यन्त प्रत्यक्ष होने के कारण अस्वीकार नहीं कर पाता है ।" यों गाँव आज गाँव ही नहीं रह गया है न शहर ।

राष्ट्रपिता महात्मजी गाँव की ओर लौटने की सलाह देते थे । लेकिन स्वाधीन भारत में शहर की ओर भागने की प्रेरणा ही मिलती है । गाँव से भागी नई पीढ़ी को शहर अपने में समेट नहीं पाता । पुराने खंडहरों के समान जीवित पुरानी पीढ़ी धीरे-धीरे मिट्टी में मिलती जा रही है । और नयी पीढ़ी चाहकर भी पुरानी पीढ़ी से अपना संबन्ध जोड नहीं पाती ।

---

1. विवेकी राय - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन, - पृ. 112

ग्राम चेतना के विकास की कहानी और उसकी पतनोन्मुखता की कहानी कहनेवाले उपन्यासकार गाँव के इस मूल्यशोषण को अनदेखा नहीं कर सके । यह एक ऐसा तथ्य है जो उनकी रचनात्मक प्रक्रिया की गहराई में विद्यमान है ।

स्वप्न भंग और विघटन की प्रवृत्ति

जिन सुनहरे स्वप्नों के साक्षात्कार की प्रतीक्षा में भारत-वासियों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के सुदिन को मनाया था, वह प्रतीक्षा निराशा और विषाद के अन्धकार में लुप्त होने लगी । आज़ादी के तुरन्त बाद ही स्वप्न भंग की शुरुआत होने लगी । इसके साथ ही भारतवासियों के मन में निराशा भी छा गयी ।

भारत ने अपने स्वप्न में स्थित सुखी और सम्पन्न समाजवादी समाज व्यवस्था को अपना लक्ष्य घोषित किया । उस समाज में न जाति-पाँति होगी और न किसी के प्रति भेद-भाव बढ़ता जाएगा वहाँ नौकरी के समान अधिकार प्राप्त होंगी और आर्थिक विषमताएँ समाप्त की जाएँगी । सम्पत्ति और गरीबी के बीच के अंतर को कम करना और सामान्य मानव के जीवन - मान को उठाना हमारा प्रधान लक्ष्य रहा । इसको सत्य में परिणत करने केलिए अनेक योजनाओं का आविष्कार भी किया गया । पूँजीपतियों के शोषण से किसानों की मुक्ति केलिए अनेक कानून बनाये गये । इन सबके बावजूद भी निराशा की स्थिति व्याप्त होने लगी । क्योंकि इन योजनाओं का फल भारत की आम जनता तक पहुँचाने में सरकार असमर्थ ही रही ।

स्वाधीनता के बाद भारत में एक उल्टा चक्र फिरा । परतंत्र भारत के सारे पूर्ण और नीतियाँ अब बलटने लगी । उन्नति केलिए खोजे गये रास्ते अपने देश के अनुरूप न होकर पाश्चात्यीकरण के अनुरूप रहे । परिणाम स्वरूप लोगों की आर्थिक स्थिति में उन्नति की जगह अवनति ही हुई । अनिवार्य वस्तुओं की कीमतें दिन-प्रतिदिन बढ़ती गयी । बढ़ती कीमत और घटती पैदावार के बीच दबी आम जनता की हालत दु:खद बनती गयी । योजनाओं की गति मन्द हो जाने के कारण प्रत्याशित लक्ष्य पूर्ति असंभव सी होने लगी । आबादी की बढ़ती संख्या के अनुसार नौकरी की सुविधाएँ न बढ़ी और बेरोजगार लोगों की संख्या बढ़ने लगी ।

जिस ढंग से औद्योगीकरण की नीति अपनायी गयी थी उससे भी स्वप्न-भंग की स्थिति उत्पन्न हुई । मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को ही भारत ने आर्थिक समानता लाने का रास्ता माना था । लेकिन भारत में औद्योगीकरण पर अधिक ध्यान दिया गया । ग्रामीण लोग अधिकांशत: कुटीर उद्योगों पर आश्रित थे । उन लोगों की आशा यह थी कि कुटीर उद्योगों पर सरकार का ध्यान अधिक रहेगा और जिसके ज़रिये वे आर्थिक समानता प्राप्त कर सकेंगे । हुआ यह है कि उद्योगीकरण के साथ ही बड़े बड़े कारखानों का निर्माण होने लगा जिसके सामने कुटीर उद्योग क्षीण होने लगे । मशीनीकरण के साथ ही बेकारी की समस्या अपना कराल रूप धारण करके जनता के सामने खड़ी रही । बेकारी की समस्या को हल करने केलिए किये जानेवाले प्रयास सन्तोषजनक परिणाम नहीं दे पाये ।

एक ओर आम जनता की आर्थिक स्थिति दुर्बल होती गयी तो दूसरी ओर बड़े उद्योग पतियों और बड़े व्यापारियों के एक नये वर्ग का जन्म हुआ । आर्थिक समानता लाने केलिए आयोजित योजनाओं के परिणाम स्वरूप "....... गरीबी के स्थान पर गरीब हट रहे हैं ।

गरीबी, बेरोजगारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, काला-बाज़ार, तस्कर व्यापार आदि दिन-रात चौगुने बढ़ रहे हैं। शहीदों का स्थान शोहदों ने ले लिया है ।[1]"

स्वाधीनता पूर्व राजनीतिक नेताओं पर जनता का जो विश्वास था वह अब अविश्वास में बदलने लगा । नेताओं की स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार, कूप मण्डूकता आदि ने देश की गति में अवरोध उपस्थित किया । सरकारी अफसर जो वास्तव में जनता के नौकर हैं अब मालिक बन गये । फलस्वरूप देश का राजनीतिक चित्र ह्रासोन्मुखी होने लगा ।

एकता के लक्ष्य से की गयी भाषाई राज्यों की स्थापना भारतीय नेताओं की सबसे बड़ी मूर्खता निकली । विविध भाषा-भाषी लोगों के विकास और प्रांतीय विकास को लक्ष्य करके ही भाषाई राज्यों की स्थापना की गयी थी । इसका परिणाम ठीक विलोम ही निकला । आज़ादी के पूर्व लोगों में जो एकता कायम थी उसमें दरारें पड़ने लगी । एकत्व के स्थान पर अनेकत्व ने अपना स्थान ले लिया । प्रत्येक राज्य के निवासी अपनी संस्कृति को देशीय संस्कृति का एक अंग मात्र मानने केलिए तैयार नहीं हुए । वे अपनी संस्कृति को देशीय संस्कृति से पृथक और ऊपर समझने लगे और उसकी श्रेष्ठता को उद्घोषित करना उनका लक्ष्य बन गया ।

धीरे धीरे प्रांतीयता का विकास होता गया और राजनैतिक क्षेत्र में भी प्रांतीयता अपना रंग दिखाती गयी । इसके परिणाम स्वरूप प्रांतीयता और भाषा के आधार पर प्रादेशिक राजनीतिक दलों का विकास हुआ । विघटन की प्रवृत्तियों से जुड़ी हुई ऐसी राजनीतिक नीतियों से मद्रास प्रांत में 'द्राविड मुन्नेट्ट कष़कम' का विकास हुआ तो पंजाब में 'अकाली द

---

1. डॉ. पारुकान्त देसाई - साठोत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ.11

जैसे राजनीतिक दलों का विकास होने लगे । इन राजनीतिक दलों के नेताओं ने अपनी स्वार्थों की रक्षा केलिए देशहित को तिलांजलि दे दी और विघटनवाद को सामने रखा । प्रांतीय विकासों के धोके बहाने से वे स्वार्थ सिद्धि में तत्पर रह गये । वैसे प्रांतीय दलों के बीच का संघर्ष भी ज़ारी रहा । इन्हीं कुतन्त्रों के फलस्वरूप राष्ट्रीयता की जगह प्रांतीयता ने अपनी जडें जमा ली । प्रांतीय प्रेम ने राष्ट्रीय विकास के मार्ग को अवरुद्ध किया । "वर्ग हितों और व्यक्तिहितों की खींचतान पिछले दिनों इस सीमा तक बढ़ी है कि विचारों के संघर्ष और मत वैभिन्न्य के अतिरिक्त जातीय, प्रान्तीय और भाषाई स्वार्थों को लेकर उठी अनेक समस्याओं का राष्ट्र को इस हद तक सामना करना पड़ा है कि भावात्मक एकता के अभाव की समस्या को भी राष्ट्रीय स्तर की समस्या के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है[1] ।"

विघटन की प्रवृत्ति का और एक कारण रहा साम्प्रदायिकता । देश के बंटवारे के साथ ही हिन्दू और मुसलमानों के बीच के संघर्ष ने उग्र रूप धारण किया । इसी समय राष्ट्रीय स्वयं सेवक, जमाअत्ते इस्लामी जैसे धर्म के नाम पर पृथकता उत्पन्न करनेवाले दलों का विकास भी हुआ । राष्ट्रीय स्वयं सेवकों का लक्ष्य रहा हिन्दू राष्ट्र की स्थापना । इस लक्ष्य प्राप्ति के प्रयास ने राष्ट्रीय स्वयं सेवकों और मुसलमानों के बीच के सम्बन्धों में तनाव पैदा किया । धर्म के नाम पर अविश्वास और विघटन ने जन्म लिया जिसने राष्ट्रीय भावना को कलुषित कर दिया । उत्तर भारत में सिक्क, हिन्दु और मुसलमानों के बीच अनबनी दिखाई पड़ने लगी । यों साम्प्रदायिकता ने राष्ट्रहित के स्थान पर अब अपना

---

1. डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास (सन् 1947 - 1962), पृ.230

घर जमा लिया । राजनीतिक नेताओं ने अपने अस्तित्व को बनाये रखने केलिए राष्ट्रहित के विरुद्ध चलनेवाली शक्तियों का साथ दिया । अब वे जनता के नेता नहीं अपने ही कुर्सी के पूजारी बन गये हैं । इन सब के बीच नागरिकों का दम घुटने लगा ।

संविधान में जिस वर्गरहित समाज की कल्पना की गयी थी, वह संविधान के पन्नों तक ही सीमित रह गयी । यद्यपि राजनीतिक नेता छुआ छूत जैसी सामाजिक कुरीतियों की समाप्ति का डींग मारते हैं तथापि भारतीय गाँव की स्थिति वैसे की वैसी रही है। शिक्षा और नौकरी के क्षेत्र में अधिसूचित जाति और जन जाति केलिए अवसर आरक्षित किये गये हैं । परन्तु इसका लाभ उन लोगों को नहीं मिल पाया । साथ ही सरकार की आरक्षण नीति के विरुद्ध अन्य जातियों के मन में असन्तोष का भाव पैदा होने लगा । सामाजिक विकास कार्यक्रमों का उल्लंघन होता रहा और निम्न वर्ग के लोग हमेशा छुआछूत और शोषण के शिकार बनते रहे ।

इन्हीं परिस्थितियों में स्वप्नों का भंग स्वाभाविक है । क्योंकि संविधान ने जिस नागरिक की परिकल्पना की थी, उसकी क्षमता नहीं परखी गई । आज़ादी से नागरिकों को केवल राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई । सामाजिक एवं आर्थिक समानता कभी भी पूर्ण नहीं होनेवाले स्वप्न के रूप में रह गयी । इस तरह समूचे देश के जीवन की मुख्य-धारा को मट-मैली करनेवाली परिस्थितियाँ इस कदर अनियंत्रित होती गयी कि जनमानस ही अवसाद और कुण्ठा का शिकार बन गया । गाँव जो कि भारतीय जीवन की प्रमुख धारा से कटा नहीं है, हीन प्रभावों से मट-मैला हो गया । इन मैले अंचलों की कहानी ग्राम्य चेतना के उठती-गिरती लहरों के अवसाद पूर्ण संगीत को सुनाती है जो अपने में एक अलग संगीत बन जाती है ।

****

तृतीय अध्याय

औपन्यासिक लेखन ग्राम्य जीवन के सन्दर्भ में

तृतीय अध्याय

औपन्यासिक लेखन ग्राम्य जीवन के सन्दर्भ में

साहित्य सर्जना का सच्चा स्वरूप तभी उभरने लगता है जब वह धरती के रंग और ढंग से जुड़ने लगता है। जन-जीवन के सही स्पन्दनों का स्वर लहलहाते खेतों में और किसान की मेहनत से हरी-भरी बननेवाली धरती के उच्छवासों से सुनाई पड़ता है। अत: ग्राम्य जीवन के सही स्वरूप को आंके बिना भारतीय जनता की आशाओं और आकांक्षाओं का सही स्वर नहीं पहचाना जा सकता। हिन्दी के महान् उपन्यासकार प्रेमचन्द ने इस तथ्य को भली-भाँति समझ लिया था और ग्राम्य जीवन की अंतस्सलीला से अपनी रचना के सभी पहलुओं को सिंचित करने का प्रयास किया था। फसलों को उगाना मात्र ही नहीं, दम तोड़ मेहनत करना मात्र ही और उसके साथ जुड़ी हुई गरीबी और असहाय अवस्था का भी चित्रण इस बृहत् कथा का अंग बन जाता है। और इस कारण प्रेमचन्द की संवेदना व्यक्ति से समष्टि तक फैलने लगती है। सच्चे अर्थ में हिन्दी उपन्यास साहित्य में ग्राम्य जीवन के सभी पक्षों का चित्रण प्रेमचन्द से पूर्व कभी नहीं मिलता।

गाँव और प्रेमचन्द

प्रेमचन्द कालीन समाज की दो प्रमुख समस्याएँ थीं - राष्ट्र की परतन्त्रता और निम्न वर्ग, विशेषकर, किसानों की आर्थिक विपन्नता। इसी कारण उन्होंने शोषित समाज की दारुण दशा को स्वरबद्ध किया है। भारत में आर्थिक स्वराज्य लाने केलिए भारत की आर्थिक व्यवस्था का मूलाधार "किसान" की दुर्दशा का आँखों देखा वर्णन भी वे प्रस्तुत करते हैं।

उन्होंने जिस जीवन को भोगा है उसी को अपनी रचनाओं में वाणी दी है। और उनकी रचनाएँ उनके व्यावहारिक आदर्शों से प्रभावित रही हैं। "प्रेमचन्द जी के समय में केवल अपने तथा अपने समाज की दुर्बलताओं एवं दोषों को देखना ही इष्ट नहीं रहा, बल्कि उसके अन्दर सुधार की प्रेरणा थी[1]।" भारतवासियों से गाँधीजी का संदेश था कि गाँव की ज़िन्दगी को सुधारा जाय। क्योंकि भारत की आत्मा गाँवों में ही बसती है। वहाँ के लोग कठिनाईयों और असुविधाओं की ज़िन्दगी ही जी रहे हैं। इस संदेश से प्रभावित प्रेमचन्द, कृषक, कृषक जीवन एवं कृषक-संस्कृति के प्रति सघन संवेदन एवं सहानुभूति के साथ रचनारत रहे। "अपने साहित्य में उन्होंने भारतीय किसान की एक बोधगम्य पहचान कायम करने का प्रयास किया है। किसान की इस बोधगम्य पहचान को उपस्थित करने केलिए उसे उन्होंने उसके सामाजिक सन्दर्भ में उपस्थित किया है[2]।" तथापि ग्रामीण जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहलुओं की गहराई में जो सुदृढ़ सम्बन्ध है उसको प्रेमचन्द ने कहीं भी अनदेखा नहीं किया।

---

1. त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ.65
2. डॉ. रामबक्ष - प्रेमचन्द और भारतीय किसान, पृ.210

ग्रामीण जीवन को उसकी सारी कुरूपताओं के साथ चित्रित करने का प्रथम श्रेय प्रेमचन्द को है । उन्होंने अपनी उपन्यासों की पृष्ठभूमि के रूप में आज तक साहित्य जगत केलिए अज्ञात ग्रामांचलों को ही चुना है । वहाँ की भाषा, लोगों का रहन-सहन, उनकी अपनी समस्याएँ आदि का सहज और स्वाभाविक वर्णन किया है । यों सामान्य जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति ही प्रेमचन्द का लक्ष्य रहा । अपनी प्रारंभिक रचनाओं में उनकी दृष्टि सुधारवादी और आदर्शोन्मुख रही । गाँव की जो विभीषिकाएँ हैं उसकी ओर पाठकीय संवेदना को उजागर करना उनका ध्येय रहा । लेकिन गोदान में आकर वे समाज की परिवर्तित परिस्थितियों और समस्याओं को आत्मसात कर चुके हैं । उन्होंने जान लिया कि जर्जरित खण्डहरों के समान खडे पुराने मूल्यों का नाश युगीन आवश्यकता है । उन खण्डहरों की जगह सशक्त नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा होनी ही चाहिए । इसलिए होरी का टूटन और गोबर का निर्माण करने में वे खरे उतरे हैं ।

अपनी प्रथम उपन्यास सृष्टि "प्रेमाश्रम" में उन्होंने पहली बार ग्रामीण जीवन की समस्याओं को चित्रित किया है । प्रथम विश्वयुद्ध के बाद की इस रचना में ग्रामीण जनता के दुःख दर्द, ज़मीन्दारों और महाजनी सभ्यता के कारनामों, आदि का जितना हृदय स्पर्शी वर्णन है उतना प्रेमचन्द के पहले किसी उपन्यासकार द्वारा संभव नहीं हुआ है । "प्रेमाश्रम" का लखनपुर समस्त भारतीय गाँवों का प्रतीक है और उसकी करुण गाथा सिर्फ उनकी अपनी न होकर गाँव गाँव की गाथा ही बनती है । अपने गाँव के किसानों की स्थिति देखने केलिए आये मायाशंकर यह पाते है कि "चारों तरह तबाही छाई हुई थी । ऐसा बिरला ही कोई घर था जिसमें धातु के बर्तन दिखाई देते हो । कितने घरों में लोहे के तवे तक न थे । मिट्टी के बर्तनों को छोड्कर झोंपडे में और कुछ दिखाई न देता था ।"[1]

---

1. प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृ.433

प्रेमाश्रम में वे ग्रामीण जनता की समस्याओं का कारण भी प्रस्तुत करते हैं। प्रेमशंकर के ज़रिये वे अपने विचार यों व्यक्त करते हैं "उनकी दरिद्रता का उत्तर-दायित्व उन पर नहीं, बल्कि उन परिस्थितियों पर है जिनके अधीन उनका जीवन व्यतीत होता है और वे परिस्थितियाँ क्या हैं? आपस की फूट, स्वार्थपरता और एक ऐसी संस्था का विकास, जो उनके पाँव की बेड़ी बनी हुई है।[1]" यह संस्था है ज़मीन्दारी प्रथा की, जिसके कारण भारतीय किसान का जीवन सदा केलिए दुःख दर्द से भरी कहानी मात्र रह जाती है।

"रंग भूमि" में उन्होंने ग्रामीण संस्कृति की वेदना को वाणी दी है। कृषक सभ्यता और औद्योगीकरण के बीच के संघर्ष द्वारा उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि औद्योगीकरण के विषैले प्रभाव से गाँव उजडते जा रहे हैं और ग्रामीण सभ्यता और संस्कृति आहत होती जा रही है।

यद्यपि "कर्मभूमि" भी किसान की आर्थिक दुर्दशा का काव्य है तथापि बदलती परिस्थितियों का प्रभाव उनके पात्रों में स्पष्ट रूप से झलकता है। अभी तक आँसुओं की घूँट पीकर ज़मीन्दार की कारनामों को सहती आयी ग्रामीण जनता अब संगठित होने लगी है। शासन के आतंक और उसकी दमन नीति के आगे भी वे पराजय या कुंठा के आदी नहीं बनते हैं। इसका चित्रण प्रेमचन्द यों करते हैं — "अंधेरा हो गया था आतंक ने सारे गाँव को पिशाच की भाँति छाप लिया था। लोग शोक से मौन, और आतंक के भार से दबे, मरनेवालों की लाशें उठा रहे थे। किसी के मुँह से रोने की आवाज़ न निकलती थी। जख्म ताज़ा था, इसलिए टीस न थी। रोना पराजय का लक्षण है। इन प्राणियों को विजय का

---

1. प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृ.218

गर्व था । होकर अपनी दीनता प्रकट न करना चाहते थे । बच्चे भी जैसे रोने भूल गए थे[1] ।"

प्रेमचन्द का अन्तिम उपन्यास" गोदान" तो भारतीय ग्रामीण जीवन का "महाकाव्य" है । यद्यपि ग्रामीण और नगरीय जीवन की गाथा इस उपन्यास में समानान्तर रूप से आगे बढ़ती है तथापि उन्होंने अधिक ज़ोर ग्रामीण जीवन पर ही दिया है । "गोदान" का होरी सम्पूर्ण भारतीय किसान का प्रतिनिधि बन कर आता है । ज़मीन्दार से लेकर साहूकार, पण्डित आदि के बहुमुखी शोषण प्रक्रिया का बड़ा ही मार्मिक चित्रण "गोदान" में है ।

प्रेमचन्द ने "विस्तृत फलक पर किसान और मध्यवर्ग के जीवन पर बड़ी ईमानदारी से और तत्परतापूर्वक चित्रण किया है[2] ।" उन्होंने अपने उपन्यासों में यद्यपि शहरी जीवन को भी आवाज़ दी है तथापि ग्रामीण जीवन पर ही उनका अधिक ध्यान रहा । इसी कारण प्रेमचन्द के उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास मानने का सशक्त भ्रम मिलता है । वैसे उन्होंने ग्रामीण जन-जीवन में व्याप्त कुरूपताओं का वर्णन किया है और उसके साथ ही ग्रामीणों के रीति-रिवाज़ आदि का वर्णन भी है । कहीं कहीं स्वाभाविकता लाने हेतु ग्रामीण शब्दों का प्रयोग भी है । प्रेमचन्द के पात्र तो अंचल के हैं लेकिन कहीं भी उन्होंने अपने पात्रों को आंचलिक या स्थानीय रूप में उपस्थित नहीं किया है । ये पात्र क्षेत्रीय विशिष्टताओं से ऊपर उठकर देश की आंचलिक समग्रता का प्रतिनिधि बनकर आते हैं "ये पात्र अंचल विशेष के हैं अवश्य, किन्तु मात्र आंचलिकता इनकी नियति नहीं है । इनका परिवेश भारत का संपूर्ण अंचल हो सकता है, जहाँ निराला के "कुल्ली भाट", "बिल्लेसुर", चतुरी

1· प्रेमचन्द - कर्म भूमि, पृ·38

2· महेन्द्र चतुर्वेदी - हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण, पृ·49

चमार आदि संघर्ष करते हुए दिखायी पड़ते है।[1]" प्रेमचन्द समस्त भारत के थे और उनकी दृष्टि भारतीयत्व की रही। उनकी यह दृष्टि उन्हें किसी अंचल की चाहर दीवारों में बन्दी नहीं बना सकती थी। इसी कारण उनके उपन्यास देशकाल की सीमाओं को पार कर सार्वजनिक बन जाते हैं।

यद्यपि प्रेमचन्द की गणना आंचलिक उपन्यासकारों में नहीं करते "फिर भी कहना न होगा कि आंचलिक उपन्यास के, आगे आनेवाले अद्भुत विकास एवं विस्तार में तथा उसको साहित्यिक गरिमा प्रदान करने में, श्री प्रेमचंद ने अकेले ही जितना योग दिया है उतना किसी भी एक उपन्यासकार के बलबूते से बाहर था[2]।" ग्रामीण जीवन के सजीव चित्रण जो प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में उपस्थित कर सके उसका प्रमुख कारण उनके अपने जीवन की अनुभूतियाँ थीं। ग्रामीण परिस्थितियों में जीये प्रेमचन्द की दृष्टि नगर की सज-धज की ओर न जाकर गाँवों में शोषण की चक्की में पिसकर तडपनेवाली भारतीय आत्मा पर पडी। यों ग्रामीण भारत की यथार्थवादी भूमिका का जो निर्माण प्रेमचन्द ने किया, उससे उनके समकालीन रचनाकारों को ही नहीं आनेवाली पीढ़ी को भी एक बनी बनायी भूमिका प्राप्त हुई।

वास्तव में ग्राम्य जीवन की विविधताओं की ओर और उसकी समस्यागत पृष्ठभूमि में जन्म लेनेवाले मौन संघर्ष की ओर हिन्दी लेखकों का ध्यान सबसे पहले प्रेमचन्द ने ही आकर्षित किया था। वस्तुत: प्रेमचन्द के उपन्यास यद्यपि आंचलिक नहीं है फिर भी आंचलिक उपन्यास की सर्जना की पार्श्वभूमि को नियत करने में उनका योगदान सबसे श्रेष्ठ माना जाएगा।

---

1 डॉ॰ बेचन - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य, पृ॰19।

2॰ डॉ॰ इन्द्रिरा जोशी - हिन्दी आंचलिक उपन्यास उद्भव और विकास, पृ॰10

वास्तव में आंचलिक उपन्यासों की रचना की प्रक्रिया परोक्ष रूप में प्रेमचन्द की औपन्यासिक प्रतिभा की ही देन मानी जा सकती है । लेखकों का ध्यान गाँवों की ओर ले आना, शोषण, प्रताडन और उत्पीडन के जंजीरों में बंधी हुई मानवता के हाहाकार को स्वर देने का प्रयास यहीं से शुरू होता है ।

आंचलिकता के प्राक्रूप का प्रारम्भ

स्वाधीनता प्राप्ति के उपरांत भारतीय जीवन में भारी परिवर्तन आया । जीवन की विविधोन्मुखी समस्याएँ जटिल रूप में उपस्थित हुई । नागरिकों के रूप में हर व्यक्ति का दायित्व बढ़ा । उनके कार्यक्षेत्र में विकास और उनकी परिस्थितियों में बदलाव भी आ गया । तदनुसार लेखकों के दृष्टिकोण और विचार में भी बदलाव दृष्टिगत होने लगा ।

जनता के मन में एकता की भावना का विकास एवं जन जागृति और जन चेतना को राष्ट्र निर्माण के पथ पर मोड देने हेतु लेखकों का ध्यान सुदूर कोनों में बसे हुए गाँवों की ओर गया । भारतीय संस्कृति के प्रतीक के रूप में यहाँ के गाँव मौजूद हैं । भारतीय संस्कृति के प्रमुख तत्व धर्म के प्रति आस्था, जीवन के प्रति भाग्यवादी भावना, सेवा, त्याग, परोपकार-वृत्ति, सहिष्णुता, प्रेम भाव आदि का मौलिक रूप गाँव में देखा जा सकता है । गाँव रूपी इस सिक्के का दूसरा पहलू अभाव और विभिन्न विपताओं की कुरूपता लिये हुए है । इन कुरूपताओं से भारतीय गाँव को विमुक्त करना स्वाधीन भारत की सबसे बड़ी ज़रूरत थी ।

प्रेमचन्द के ठीक बाद कथा-साहित्य में ग्रामीण जीवन का रंग प्राय: लुप्त होने लगा । हिन्दी उपन्यास व्यक्तिवाद की ओर अधिक उन्मुख रहा । "व्यक्तिवादी उपन्यासों ने व्यक्ति और उसकी वैयक्तिक

मान्यताओं को महत्व देकर समाज जीवन के विस्तार में मूलतः व्यक्ति और उनके व्यक्तित्व को सर्वोपरि माना ।[1]" इसी व्यक्तिवादी उपन्यासों की प्रतिक्रिया स्वरूप ही हिन्दी उपन्यासकारों का ध्यान अभी तक अभावों मे ग्रस्त भारत के ग्रामीण अंचलों की ओर गया । श्री प्रकाश वाजपेयी आंचलिक उपन्यास की प्रेरणा के मूल में तीन सूत्र मानते हैं, ये हैं - "एक विशेष क्षेत्र का आलेखन,[2] व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया[3] और तीसरा सूत्र है यथार्थवादी अंकन[4] ।

प्रेमचन्दोत्तर काल में अज्ञेय जैसे उपन्यासकार व्यक्ति केन्द्रित उपन्यासों में रचना रत रहे । व्यक्तिवादी उपन्यासों में सामाजिक तत्व का सर्वथा अभाव रहता है । व्यक्ति के मानसिक द्वंद्वों के निरूपण का परिणाम अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का प्रयास कहा जा सकता है । इस संकीर्णता की प्रतिक्रिया स्वरूप व्यक्ति का स्थान लोक या समाज ने लिया । परिस्थितियों के बदलाव के साथ ही समाज भी बदलता है और युग कीमांग भी । अब युग की मांग व्यक्तिवाद के स्थान पर लोक जीवन के व्यापक चित्रण की रही ।

समाज और व्यक्ति का अटूट सम्बन्ध है । एक दूसरे के पूरक है । व्यक्ति के साथ ही साथ समाज की विविध पहलुओं का अपना महत्व है । लेकिन अभाव की चक्की में पिसनेवाले गांवों का सुधार व्यक्तिवादी उपन्यासकारों की वश की बात नहीं रही । इसलिए युग की मांग के अनुरूप व्यक्तिवाद की अपेक्षा आंचलिकता को प्रकट करनेवाले लोकवादी उपन्यास की रचना हुई । "अपनी निजी मान्यताओं और कुण्ठाओं से

---

1. डॉ. उषा डोगरा - हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में लोकतात्त्विक विमर्श, पृ.78
2. प्रकाश वाजपेयी - हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, पृ.143
3. वही
4. वही, पृ.144

ऊपर उठकर आंचलिक उपन्यासकार व्यापक स्तर पर सामाजिक मूल्यों एवं लोक जीवन से सांस्कृतिक पहलुओं का उद्घाटन करता है । यह लोक-जीवन एवं संस्कृति लेखकों एवं पाठकों की अनुभूति से दूर रही थी । उसे पहली बार साकार करने का प्रयत्न आंचलिक उपन्यास लेखकों ने सफलता से किया ।[1]"

स्वाधीनता प्राप्ति के साथ परिवर्तित परिस्थितियों में गांव में सुधार लाने के प्रयत्न जारी रहे । यह प्रयत्न अंचल के समग्र किन्तु विशिष्ट जन-जीवन को प्रस्तुत करनेवाले आंचलिक उपन्यासों में देखा जाता है । इस नई चेतना से अनुप्राणित हिन्दी साहित्यकार नगर जीवन के घुटन भरी जिन्दगी के चित्रण के विपरीत ग्राम्यांचल की सहजता और स्वाभाविकता का चित्रण करने लगे ।

ग्राम चेतना का स्वरूप

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारत में परिवर्तन का जो महान इतिहास शुरू होता है वह इतना गतिशील है कि प्राचीन मान्यताओं की पुर्नव्याख्या और सन्दर्भों के अनुकूल मूल्यों की प्रतिष्ठा उसके साथ प्रवाहित होनेवाली अन्तर्धारा में विलीन हो जाती है । आज़ादी के बाद भारतीय गांवों में जागरण की शंख ध्वनि बज उठी थी जिसकी सुरलहरी से प्रभावित होकर सुनहरे सपनों को संजोने में भारत का आम आदमी लगा हुआ था । गांव एक नई स्फूर्ति, उन्मेष और विकास की मंज़िल तय करने केलिए उतावला हो रहा था । ऐसी स्थिति में ग्राम्य जीवन के कई आयाम उभरने लगे जो प्राचीन ग्रामीण जीवन से नितांत भिन्न स्वरूप को अपने अंदर समेटे हुए थे ।

1. डॉ. ह.के. कडते - हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति, पृ.68

परिवर्तित परिस्थितियों में ग्राम जीवन का स्वरूप और उसकी अहमियत इतने व्यापक सन्दर्भों से जुडने लगी कि उन सबको व्यक्त करने केलिए नये शब्दों को ही रूपायित करना पड़ा । इस तरह आज़ादी के बाद के गाँव के समूचे जीवन के विविध पहलुओं को समसामयिक सन्दर्भों से जोड़कर आयामित करने केलिए प्रयुक्त शब्द के रूप में "ग्राम चेतना" शब्द उभर कर आने लगा ।

वैसे ग्रामचेतना शब्द दो शब्दों का समन्वित रूप है जो ग्राम की चेतना का परिचायक बनकर हमारे सामने प्रस्तुत होता है । चेतना का अर्थ है अस्मिता, सत्ता का बोध अथवा अस्तित्व का ज्ञान । व्यक्ति केलिए चेतना अस्तित्व का बोध कराने के साथ-साथ जागरण का संचालन करके प्रगति के पद पर कार्यशील होने की प्रेरणा देती है । जब ग्राम शब्द के साथ चेतना शब्द का प्रयोग होता है तब उसका अर्थ विशेष सन्दर्भ से जुड़कर एक सीमित भूखण्ड में जीनेवाले लोगों की क्रियाशीलता की नियामिक शक्ति के रूप में रूपायित होता है ।

चेतना के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि अनेक पक्ष स्वीकार किये जा सकते हैं । ग्रामीण जीवन के विविध पक्षों को उपर्युक्त आयामों में विभाजित करके आंशिक रूप में देखने के साथ साथ उनके समवेत चित्रण को एक साथ प्रस्तुत करना भी ग्राम चेतना से युक्त रचनात्मक प्रक्रिया का प्रमुख अंग बन जाता है । "विशेष समय-सन्दर्भ में लक्षित होनेवाली गाँव की समूची संवेदनात्मक और वैचारिक मानसिकता, सम्बन्ध और मूल्यबोध को ग्राम चेतना कहा जा सकता है[1] ।"

---

1 डॉ॰ ज्ञानचन्द गुप्त - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम-चेतना, - पृ॰17

स्वाधीनता पूर्व भारतीय ग्रामीणों के साथ कोई सामाजिक, राजनीतिक, या अन्य समस्याएँ व्यक्त रूप से नहीं थीं। ज़मीन्दारी सभ्यता के कारनामों की शिकार बनी जनता की प्रमुख समस्या थी रोटी की। उस समस्या के अंदर ही उनकी सारी समस्याएँ अर्थात् सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक समस्याएँ आ जाती थी। लेकिन स्वाधीन भारत में आधुनिक शिक्षा के विकास के साथ ग्रामीण जीवन में परिवर्तन आने लगा और आधुनिक काल में इन समस्याओं का रूप जटिल और संश्लिष्ट बन गया। परिणाम स्वरूप ग्राम-जीवन के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक धार्मिक एवं संस्कृतिक पक्षों में नवजागरण उत्पन्न हुआ। "स्वतंत्रता प्राप्त होने के पश्चात् भारतीय ग्रामों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। पुरानी मान्यताएँ टूटीं और नई मूल्य परम्परा विकसित हुई। शिक्षा के प्रसार, नगरीय सभ्यता से निकट सम्पर्क एवं राजनीतिक गतिविधियों के कारण ग्रामीणों के दृष्टिकोण में भी यथेष्ट परिवर्तन लक्षित हुआ। एक तरफ नये वैज्ञानिक उपकरण और जीवन के नये नये साधन गाँव में पहुँच रहे थे और दूसरी ओर गाँव अपनी उन्हीं पुरानी रूढ़ियों और परंपराओं के शिकंजे में बुरी तरह जकड़े हुए थे। नयेपन का एक और स्वाभाविक आकर्षण था, जिसमें परिवर्तनशीलता की अकुलाहट सन्निहित थी। दूसरी तरफ जड़ता और पुरातन के प्रति मोह था।"[1]

भारतीय गाँव जो कि भारतीय संस्कृति का जीता-जागता प्रमाण था स्वाधीनता के बाद पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण अपनी सांस्कृतिक परम्पराएँ खो बैठने लगा। प्राचीन मूल्यों के विघटन के साथ गाँव आधुनिकता की ओर आकृष्ट होने लगा। ग्रामीणों के मन में

---

1. डॉ. सुरेश सिन्हा - हिन्दी उपन्यास, पृ.98

विचारों का द्वन्द्व शुरू हुआ और आज का गाँव न तो सच्चे अर्थ में गाँव ही रह गया है और न शहर । फिर भी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना के परिवर्तन से ग्रामीण व्यक्तित्व ने एक नया रूप धारण किया । अब इनका मन प्राचीनता और नवीनता, आस्था और अनास्था, व्यष्टि और समष्टि आदि के बीच संघर्षरत है ।

यों गाँव का जीवन परिवर्तित परिस्थितियों से गुज़रने लगा जहाँ एक साथ अनेक समस्याएँ उठ खड़ी हुई जिसका समाधान केवल एक कोण से संभव नहीं होता । जीवन की त्रिविधात्मक समस्याओं से पीड़ित ग्रामीण जन मानस ने एक विशेष मानसिकता को जन्म दिया । इसी कारण ग्रामीण जीवन की समूची प्रतिक्रियाएँ इस विशेष मानसिकता के परिप्रेक्ष्य में समाहित हो गयी और नई चेतना का रूप धारण करने लगी । इस प्रकार स्वाधीन भारत के जनमानस ने ग्राम चेतना को जन्म दिया ।

ग्राम चेतना के विविध पक्ष

ग्राम चेतना का सम्यक् रूप ग्राम जीवन के विविध पहलुओं से अभिव्यंजित होने लगता है । भारतीय गाँव की यह खासियत है कि उसका एक राज्य दूसरे राज्य से और यहाँ तक कि एक गाँव दूसरे गाँव से प्राय: सभी दृष्टियों से भिन्न होता है । हर गाँव की अपनी रीति-नीतियाँ हैं, मान्यताएँ हैं और परम्पराएँ हैं जो दूसरे गाँव से उसे पृथक् कर देती है । इस पृथकता उस गाँव को अपना एक अलग अस्तित्व प्रदान कर देती है । यों भारत विविधताओं का एक संगम स्थान है । लेकिन इन विविधताओं के भारतीय ग्रामीण जीवन रूपी स्रोतास्विनी प्रवाहमान रहती है । इस ग्रामीण जीवन के सम्यक् पहचान केलिए उसके विविध आयामों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है । ये आयाम हैं - सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक ।

ग्रामचेतना का सामाजिक आयाम

ग्राम जीवन के अपनी मूल्यों, अभावों संगतियों-विसंगतियों आदि से उत्पन्न गतिशील मानसिकता है ग्राम चेतना का सामाजिक आयाम। स्वाधीन भारत के गाँव प्राचीनता और आधुनिकता के बीच जूझता रहता है। शहरी सभ्यता के प्रभाव स्वरूप जीवन मूल्यों और संबन्धों में एक तरह का बिखराव आ गया है। यह सर्वमान्य बात है कि स्वाधीनता पूर्व की अपेक्षा अब ग्रामीण आर्थिक स्थिति में उन्नति हुई है परन्तु गाँव की अपनी सहजता अब कृत्रिमता में बदल गयी है। गाँव का व्यक्ति अब आदर्श और यथार्थ के बीच पड़कर तड़पता रहता है। एक ओर आधुनिकता को अपनाने केलिए वह तरसता है तो दूसरी ओर जन्म से ही लहू में मिली हुई परम्परा उसे पीछे हटाती है। बौद्धिकता से प्रभावित नई पीढ़ी अधिक से अधिक शहरोन्मुख हो गयी है। फलस्वरूप संयुक्त परिवार टूटने लगे। आधुनिक सभ्यता ने गाँव की आत्मा को नष्ट भ्रष्ट कर दिया है।

डॉ॰ रामदरश मिश्र ने लिखा है "गाँवों का स्वरूप भी बहुत कुछ बदल गया है। वहाँ के भी जीवन-मानों में, शहरी जीवन-मानों का संक्रमण हो रहा है। परम्परा और प्रगति, अंधविश्वास और विज्ञान, स्वार्थलिप्सा और सरलता का संघर्ष गाँवों की जीवन स्थिति को नई भंगिमा प्रदान कर रहा है।"[1] यों टूटते-बिखरते गाँव की आत्मा को आँचलिक उपन्यासकारों ने सशक्त रूप से स्वरबद्ध किया है।

---

1. डॉ॰ रामदरश मिश्र - हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ॰14।

ग्राम चेतना का आर्थिक आयाम

ग्राम जीवन के आर्थिक व्यवस्था से सम्बन्धित समस्याओं और समाधानों के बीच क्रियाशील मानसिकता ग्राम चेतना का आर्थिक स्वरूप प्रस्तुत करती है ।

स्वाधीन भारत की आर्थिक क्षमता पराधीन भारत की तुलना में सौ गुना बढ़ी हुई है । इस समृद्धि में भी जन मानस असन्तोष का ही अनुभव कर रहा है । अँग्रेज़ी शासन से मुक्त भारतीय जनता ने आर्थिक समानता का सपना संजोया था । उसे तितर-बितर देखकर लोगों के मन में असन्तोष का उदय होना स्वाभाविक है । लोग अब समझ चुके हैं कि इस देश के स्वार्थी शासकों के कारण ही आर्थिक विषमता बढ़ती जा रही है ।

आज की सबसे बडी विडम्बना यह है कि अनेक वर्गों के बीच आर्थिक असमानता बढ़ती रही है । स्वाधीन भारत में हुई समृद्धि का लाभ केवल उन लोगों को ही मिला है जो पहले से ही धनवान थे । एक जून भर-पेट भोजन केलिए तरसनेवाला गाँव का व्यक्ति इस समृद्धि का दूसरा रूप हमारे सामने प्रस्तुत करता है । स्वाधीन भारत के बहुत से गाँव आज भी उसी आर्थिक अभावों को झेलकर जीते हैं क्योंकि आज तक वहाँ समृद्धि का नामो-निशान तक नहीं हुआ है ।

स्वाधीनता पूर्व भारतीय गाँव एक सीमा तक आत्मनिर्भर थे । यह आत्मनिर्भरता इस बात की सूचक थी कि पुराने ज़माने में गाँववालों की जो आवश्यकताएँ थीं वह बहुत ही सीमित थी और जीवन का स्तर भी उसी के अनुरूप निचली सीमाओं पर ही आधारित था । अशिक्षित जनता अपनी कमियों को परख भी नहीं पाये थे । लेकिन शिक्षा के प्रचार प्रसार से लोगों की परखने की शक्ति भी तीव्र बन गयी और वे अपनी कमियों से अवगत भी हो ग

पंच वर्षीय योजनाएँ, सामुदायिक विकास कार्यक्रम आदि के द्वारा इन कमियों को दूर करने का प्रयास ज़ारी रहा । इन सब के बावजूद भी आर्थिक विषमताएँ घटने के स्थान पर बढ़ती ही गयी ।

गाँव के बेकार लोग रोटी की समस्या के हल हेतु शहरोन्मुख बने हुए हैं । गाँव में ज़मीन्दारी सभ्यता विभिन्न रूपों में जीवित रहती है । वैज्ञानिकता के फलस्वरूप कुटीर उद्योगों के नाश ने भी जन-जीवन को मृतप्राय कर दिया है । इन टूटे हुए ग्रामीण जीवन ने आर्थिक चेतना को सबसे अधिक प्रभावित कर दिया है ।

ग्राम-चेतना का राजनीतिक आयाम

राजनीति से प्रेरित एवं परिचालित, परिवर्तित-अपरिवर्तित मानसिकता ग्राम चेतना का राजनीतिक पक्ष प्रस्तुत करता है । सहज और सरल ग्रामीणों के संबन्ध में लोगों के मन में यह धारणा थी कि राजनीति से इनका कोई सम्बन्ध ही नहीं होता । लेकिन यह धारणा आधारहीन ही सिद्ध हुई है । स्वाधीनता संग्राम के वक्त भारतीय ग्रामवासियों का महत्वपूर्ण योगदान अविस्मरणीय है । यों राजनीतिक चेतना बीज रूप में पहले ही भारत के गाँवों में विद्यमान थी ।

संविधान द्वारा नागरिकों को प्राप्त वयस्क मताधिकार, धर्म-निरपेक्ष समाज की स्थापना आदि से लोग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुए हैं । श्री·ए·आर· देसाई के अनुसार "वास्तव में ग्रामीण कृषकों के मध्य उत्पन्न राजनीतिक जागरूकता और उनके दिनों दिन बढ़ते हुए

राजनीतिक जीवन के महत्वपूर्ण पहलू हैं[1]।" प्रगतिवादी भावधारा से प्रभावित किसान-मजदूर संगठित होने लगे और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष भी करने लगे।

ग्राम चेतना का धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयाम

ग्राम जीवन की धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों, उत्सव-त्योहारों, परिवर्तित-अपरिवर्तित धर्म के आयामों की क्रियाशील मानसिकता ग्राम चेतना का धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप प्रस्तुत करता है। गांवों में धर्म एवं संस्कृति एक दूसरे से इतने जुड़े हुए हैं कि इसके बीच एक सीमा रेखा खींचना असंभव बात है। धर्म एवं संस्कृति का सच्चा रूप गांवों में ही दृष्टिगत होता है। पाश्चात्य सभ्यता के परिणाम स्वरूप शहर इन मूल्यों से काफी दूर ही रह गया है। इस तरह के प्रभाव से गांव भी अछूते नहीं रह गये। डॉ॰ सुरेश सिन्हा के अनुसार "आधुनिकता की विडम्बना यह है कि इसने हमें दोहरा व्यक्तित्व दे दिया है। घर पर हम घोर धार्मिक, परम्परावादी, नैतिकतावादी एवं रूढ़ होते हैं, पर घर से बाहर हम प्रगतिशील होने, नारी की स्वतन्त्रता का पक्षपाती होने और अछूतों के साथ समानता स्थापित करने की हवाई बातें करते हैं[2]।" गांवों की सहजता और सामूहिकता का स्थान अब कृत्रिमता और स्वार्थ ने ले लिया है। गांव का व्यक्ति भीड़ में अकेलापन का अनुभव करने लगा है।

---

1. In fact, the growth of political conciousness among peasent population and their increasing political activity are striking features of political life of man kind today. A.R. Desai - Rural Sociology in India P-46

२ डॉ॰ सुरेश सिन्हा हिन्दी उपन्यास पृ - १२८

आज धर्म राजनीति के चक्कर में फंसा हुआ है । मन्दिर और मठों तक इसका प्रभाव फैला हुआ है । शिक्षा के प्रचार-प्रसार के परिणाम स्वरूप ग्रामीण परिवेश में भी परिवर्तन दिखाई पड़ा । एक ओर पुरानी पीढ़ी के लोग प्राचीन रूढ़ियों को बनाये रखने केलिए प्रयत्नशील रहते हैं तो दूसरी ओर पढ़ी-लिखी नई पीढ़ी इसे व्यर्थ ही समझते हैं । यों गाँव का धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र पुरानी एवं नई पीढ़ी के लोगों के संघर्ष का स्थान बन गया है ।

इस तरह ग्राम चेतना के सही स्वरूप को आंकने केलिए उपर्युक्त सभी पक्षों पर प्रकाश डालना पड़ता है । आंचलिक उपन्यासों में ग्राम चेतना का जो स्वरूप उभरता है वह इन आयामों से जुड़ता हुआ एक सम्यक् बोध की सृष्टि करता है जिसको मूल्यांकित करना अपने में एक महान् कार्य बन जाता है । आंचलिकता की विविधात्मकता को उपर्युक्त पक्षों से जोड़ कर देखने पर पता चलता है कि ग्राम चेतना से उभरनेवाला सम्यक् बोध आज मूल्य च्युति, धार्मिक पाखण्ड, राजनैतिक शोषण, आर्थिक विषमता एवं सामाजिक विसंगतियों से इतना कलुषित हो गया है कि अंचलों की ग्रामचेतना "मैली" पड़ गयी है और इन मैले अंचलों की कथा ग्राम चेतना के सट मैलेपन की कथा बन जाती है ।

ग्राम-चेतना और आंचलिकता

आंचलिकता का संबन्ध किसी अंचल विशेष से होता है अथवा किसी जनपद या क्षेत्र विशेष से होता है । आंचलिक उपन्यासों में आंचलिकता लाने हेतु स्थानीय दृश्यों, प्रकृति, जलवायु, रहन-सहन की रीतियाँ, उत्सव, लोकगीत, भाषा व उच्चारण की विकृतियाँ और लोगों की सारी विशेषताएं

अपेक्षित है । इसमें अनेक कहानियाँ आरम्भ और अंतहीन लहरें जैसी एक दूसरे से जुड़ी रहती हैं । आंचलिक उपन्यासों में अंचल की ही प्रधानता रहती है और पात्र गौण ही रहता है । वहाँ व्यक्तित्व समूचे अंचल का होता है ।

आंचलिक उपन्यासकार किसी सीमित दायरे के अंदर घटित होनेवाले जीवन को बहुत नज़दीकी से देखता है और उसका जैसा का तैसा स्वरूप उपस्थित करता है । अत: यथार्थ को कभी कभी अतिरंजित भी बना देता है । और इस प्रकार के रेखांकन से वह जिस प्रभाव की सृष्टि करना चाहता है वह एक व्यापक संवेदना मात्र को ही जन्म दे सकती है खण्ड विशेष में आबद्ध जीवन की व्यापक संवेदना ही आंचलिकता का आधार होती है । यहाँ लेखकीय प्रतिबद्धता विभिन्न परिस्थितियों के बीच से डाँवाडोल होती दिखाई पड़ती है ।

जहाँ तक ग्राम चेतना का सवाल है जैसे कि नाम से सूचित होता है वह एक चेतनात्मक धारा को अंदर समाहित करके आगे बढ़ती है । यहाँ गाँव के बदलते परिदृश्यों के साथ-साथ जनमानस में उभरनेवाली प्रति-क्रियात्मक संवेदनाएँ अपने आप मुखरित होने लगती है । कभी-कभी ये प्रतिक्रियाएँ आर्थिक सन्दर्भों से जुड़ी हुई होती है, तो कहीं सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक मूल्यबोध से अपना संबन्ध जोड़ती है। ग्राम चेतना को सामने देखकर उससे संबन्धित रचनाओं को प्रस्तुत करनेवाले लेखक एक तरह से अधिक प्रतिबद्ध से लगते हैं । उनकी प्रतिबद्धता जनमानस में किसी चेतना को उभारने में सहायक होती है और इस दृष्टि से उनके कथानक भी गढ़े जाते है । इसलिए ग्राम चेतना से संबन्धित रचनाओं में जीवन के किसी एक पहलू की सम्यक् आलोचना मिलती है और समसामयिकता का

बोध उसकी गहराई में विलीन रहता है । प्राय: समसामयिकता ही एक सीमा तक इस चेतना को नया स्वरूप प्रदान करती है । इसलिए ग्राम चेतना के स्वरूप को भी परिवर्तन की लहरों से अछूता नहीं समझा जा सकता ।

इसका यह अर्थ नहीं है कि आंचलिक उपन्यास सिर्फ ग्राम्य परिवेश में ही लिखे जा सकते हैं और उनकी अन्तर्धारा ग्रामचेतना से ही प्रभावित रह सकती है । नगरों के अंचल, कस्बे, झुग्गी-झोंपड़ियों से भरे इलाके आदि आंचलिक उपन्यास के विषय बन सकते हैं । हिन्दी में ऐसे भी आंचलिक उपन्यास लिखे गये हैं जो वर्ग-विशेष या जाति-विशेष के जीवन को अपनी संपूर्णता के साथ प्रस्तुत करने में सफल निकले हैं । इस कारण ग्राम-चेतना के दायरे के बाहर खड़े होनेवाले उपन्यासों को आंचलिक उपन्यासों के अध्ययन की सीमा से बाहर करना उचित नहीं, यद्यपि, ऐसी रचनाओं की संख्या बहुत कम है । नागार्जुनकृत "वरुण के बेटे," "उग्रतारा," फणीश्वरनाथ रेणु कृत "कुम्भीपाक," "दीर्घतपा" आदि इसके उदाहरण हैं ।

वैसे ग्राम चेतना का स्वरूप इतना विशाल हो जाता है कि आंचलिकता के सभी तत्व इसमें समाहित हो जाते हैं । ग्राम्य जीवन का परिवेश और उससे संबन्धित समूची धारणाएँ और मान्यताएँ ग्राम्य चेतना के स्वरूप को इतना गहरा बना देती है कि आंचलिकता उसी गहराई में समाहित हो जाती है । इस कारण ग्राम चेतना के बदलते हुए स्वरूप को आंकने केलिए स्वातन्त्र्योत्तरकाल में लिखे गये आंचलिक उपन्यासों का अध्ययन बहुत ही आवश्यक बन जाता है । अब सवाल उठाया जा सकता है कि
की विशेषताओं के बाहर रहनेवाले रचनाओं को इस में क्या स्वीकारा जा सकता है ? ग्राम्यजीवन के किसी भी पहलू पर प्रकाश डालकर ग्राम्य जीवन की अंतश्चेतना को उभारनेवाली रचना इस अध्ययन की सीमा के अंदर आ सकती है ।

परन्तु गाँव के जीवन की विविधताओं को उभारकर एक सम्यक् बोध के अंदर इसका परीक्षण-निरीक्षण करनेवाली रचनाएँ बहुत कम ही प्राप्त होती है । ग्राम चेतना को उभारने की जितनी कोशिश आँचलिक उपन्यासकारों ने की है उतनी अन्यत्र नहीं दीखती । इस कारण प्रतिनिधि रचनाओं के रूप में उन आँचलिक उपन्यासों का अध्ययन किया गया है जिन में ग्राम्य परिवेश अपनी विडम्बनात्मक त्रुटियों के साथ उभरता है । इस कारण इस ग्रामीण चेतना के स्वरूप को आंकने केलिए नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह, राही मासूम रज़ा आदि उपन्यासकारों की आंचलिक रचनाओं पर भी ज्यादा ज़ोर दिया गया है ।

आँचलिक उपन्यास

हिन्दी उपन्यास साहित्य क्षितिज पर आँचलिक उपन्यास का उदय स्वातन्त्र्योत्तर काल में ही हुआ । "आँचलिकता" शब्द का प्रचलन हिन्दी साहित्य में फणीश्वरनाथ "रेणु" के "मैला आँचल" मे हुआ है । हिन्दी कथा साहित्य की एक समसामयिक धारा केलिए इस "शब्द" का प्रयोग होने लगा । "जैसे नई कविता ने सच्चाई से भोगे हुए, अनुभव की भट्टी में तपे हुए पलों को व्यंजित करने में ही कविता की सुन्दरता देखी, वैसे ही उपन्यासों के क्षेत्र में आँचलिक उपन्यासों ने अनुभवहीन सामान्य या विराट् के पीछे न दौड़कर अनुभव की सीमा में आनेवाले अंचल विशेष को उपन्यास का क्षेत्र बनाया ।"[1]

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र (उ.) हिन्दी के आँचलिक उपन्यास, पृ.७
डॉ ज्ञानचन्द गुप्त

सन् 1952 में जब फणीश्वरनाथ रेणु के "मैला आँचल" का प्रकाशन हुआ तब से वर्षों तक समीक्षकों और अध्येताओं के बीच आँचलिक उपन्यास पर्याप्त चर्चा का विषय हो गया । इस चर्चा-परिचर्चा के दौरान अंचल, आँचलिक और आँचलिकता स्थानीय रंग जैसे नये शब्दों का जन्म भी हुआ । इन पर प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक है ।

"अंचल" शब्द का अर्थ है वस्त्र का छोर, देश का प्रान्त-भाग, तट, किनारा आदि । हिन्दी साहित्य में अंचल का एक सीधा और स्पष्ट अर्थ है कोई जनपद या क्षेत्र विशेष । इस क्षेत्र विशेष भौगोलिक रूप से एक स्वतंत्र इकाई होता है । उसके जीवन की अपनी विशिष्टताएँ, रीति-रिवाज़, समस्याएँ और सांस्कृतिक परम्पराएँ और मान्यताएँ होती है जो उसे अन्य किसी इकाई से अलग एक अस्तित्व प्रदान करता है ।

"अंचल" शब्द की अर्थ-व्याप्ति को लेकर हिन्दी साहित्य जगत् में मत भेद रहे हैं । कुछ विद्वान "अंचल" शब्द को केवल ग्राम-जीवन को व्यक्त करनेवाले शब्द के रूप में स्वीकार करते हैं तो "दूसरा वर्ग उन लोगों का है जो इसमें गाँव के साथ शहर, शहर का एक मोहल्ला या "सबर्ब" और इन सबसे भी आगे सघन वनों की उपत्यकाओं में बसे जन-जीवन का भी समावेश करके चलता है[1] ।"

"अंचल" शब्द के साथ "इक्" प्रत्यय लगाने से "आँचलिक" विशेषण पद अस्तित्व में आया । जिसका हिन्दी उपन्यास में सबसे पहला परिचय फणीश्वर नाथ रेणु द्वारा ही संभव हुआ । आँचलिक शब्द का अर्थ है अंचल सम्बन्धी । फिर भी हिन्दी के आँचलिक उपन्यास के

---

1. डॉ. बंशीधर - हिन्दी के आँचलिक उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा, पृ. 16

सन्दर्भ में यह एक सीमित अर्थ को प्रकट करता है । इस सीमित अर्थ में वह उपन्यास के विषय, शैली एवं शिल्पगत विशेषताओं का द्योतक होता है ।

किसी भौगोलिक इकाई विशेष को उसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन को अपनी समग्रता के साथ प्रस्तुत करनेवाला उपन्यास आंचलिक उपन्यास कहा जाता है । शिवप्रसाद सिंह के अनुसार "क्षेत्र या अंचल उस भौगोलिक खण्ड को कहते हैं जो सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से सुगठित और विशिष्ट एक ऐसी इकाई हो जिसके निवासियों के रहन-सहन, प्रथाएँ, उत्सवादि, आदर्श और आस्थाएँ, मौलिक मान्यताएँ तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ परस्पर समान और दूसरे क्षेत्र के निवासियों से इतनी भिन्न हो कि इनके आधार पर यह क्षेत्र या अंचल विशेष इसी प्रकार के दूसरे क्षेत्रों से एकदम अलग प्रकट हो । इस प्रकार के अंचल या क्षेत्र के जीवन को अभिव्यक्त करनेवाली रचना को हम आंचलिक कह सकते हैं[1] ।" यों "अंचल" शब्द का अर्थ किसी जनपद या क्षेत्र विशेष है तो "आंचलिक" शब्द उस जनपद या क्षेत्र की विशेषताओं के समाहार का द्योतक होता है ।

आंचलिकता एक ऐसा शब्द है जो किसी अंचल विशेष के जीवन की समग्रता का बोध कराता है । इस समग्रता के बोध की गहराई में यथार्थ की लहर तो होती है, पर कहीं कहीं अतिरंजित रंगों का भी भरमार दिखाई पडता है । एक ही अंचल विशेष को ले कर लिखे जानेवाले उपन्यासों की आंचलिकता एक जैसी होने पर भी उनके बीच संपूर्ण तादात्म्य असंभव है । वह इसलिए है कि आंचलिकता लेखकीय संवेदना से जुडी हुई होती है । लेखकीय संवेदना, लेखक की प्रतिबद्धता और दृष्टि आंचलिकता को रूपायित करनेवाले कुछ ऐसे पक्ष हैं जो अंततोगत्वा लेखन के स्तर से जुड जाते हैं ।

---

1. शिवप्रसाद सिंह - आंचलिकता और आधुनिक परिवेश-कल्पना-मार्च, 1965

अत: आंचलिकता क्षेत्र विशेष के जीवन की सीमाओं और सम्भावनाओं को प्रस्तुत करने की एक दृष्टि भी बन जाती है । इस दृष्टि के अभाव में आंचलिकता का स्वर पूर्णतया मुखरित नहीं हो सकता । जितने भी आंचलिक उपन्यास लिखे गये हैं उनमें आनेवाली क्षेत्रीय परिस्थितियाँ और जीवन की विशिष्ट स्थितियाँ एक प्रकार से लेखकीय संवेदना की गतिशीलता का ही परिचायक है । याने लेखक की संवेदना की गद्यात्मकता क्षेत्रीय स्थितियों से जुड़कर जिस सम्यक् बोध की सृष्टि करती है और जिसकी छाया में सम्पूर्ण रचना सम्पन्न होती है उसको उस रचना की आंचलिकता कहना समीचीन होगा ।

स्थानीय रंग और आंचलिकता

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में यह भ्रांति पाई जाती है कि सम्पूर्ण ग्राम कथा-साहित्य को आंचलिकता के अन्दर स्थान दिया जाय । ग्राम कथा में केवल ग्राम जीवन की समस्याएँ व्यापक भावभूमि पर चित्रित की जाती है । वस्तुत: ये ही पात्र, जीवन और समस्याएँ न केवल भारतीय साहित्य में पायी जाती है बल्कि विश्व भर के साहित्य की ग्राम कथाओं में पायी जाती है । इसी कारण ग्राम कथा लेखन किसी आन्दोलन का स्वरूप धारण नहीं कर पाया । जबकि आंचलिकता एक आन्दोलन का रूप धारण करने में समर्थ ही निकली है ।

स्थानीय रंग और आंचलिकता में पर्याप्त अंतर है । स्थानीय रंग प्राय: सभी उपन्यासों में रंग भराने का काम करता है जबकि आंचलिक उपन्यास अंचल के समग्र जीवन का ही प्रस्तुतीकरण है । इन उपन्यासों के रचयिताओं का कार्य सजावट से आगे होकर उनके द्वारा आत्मसात किए हुए अंचल के कण-कण को स्वरबद्ध करने का होता है । डॉ॰शिवप्रसाद सिंह के

अनुसार "ग्राम जीवन सभी साहित्यों की परिचित वस्तु है, जबकि आंचलिकता एक खास प्रकार के विशिष्ट क्षेत्र के जीवन मे अपने को पूर्णत: सम्बद्ध कर देती है[1]।"

जहाँ तक स्थानीय रंग पर आधारित उपन्यासों का सवाल है हम यह कह सकते हैं कि उपन्यासकार उस विशेष स्थान की भौगोलिक स्थिति को व्यक्त करने के साथ साथ वहाँ के निवासियों के जीवन के किसी विशेष पक्ष पर ज़ोर देने की कोशिश करता है । इस कारण समूचे जीवन की सम्पूर्णता उसमें पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित नहीं हो जाती । फिर किसी स्थान विशेष के जीवन के किसी विशेष पहलू को प्रस्तुत करते समय उपन्यासकार को उस पहलू को उभारनेवाले विशेष पात्र की सर्जना करनी पड़ती है और इस कारण कभी कभी वे पात्र "टाइप" के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं । जब इस तरह की पात्र कल्पना के आधार पर कहानी कही जाती है तब स्थानीय रंग के होते हुए भी उपन्यासकार अपनी रचना को अन्य साधारण उपन्यासों की विशेषताओं से युक्त बनाने केलिए बाध्य रह जाता है । क्योंकि पात्र चित्रण के अभाव में किसी एक पहलू को उभारकर रखना असंभव बात है । प्रेमचन्द के गोदान में यही हुआ है कि इसमें स्थानीय रंग "सामान्य" है "विशिष्ट" नहीं[2]।" यहाँ किसी अंचल विशेष का वर्णन नहीं किया गया है यह उत्तर भारत का एक प्रतिनिधि गाँव है ।

जहाँ तक आंचलिक उपन्यासों का सवाल है हम यह कह सकते हैं कि उसका प्रतिपाद्य स्थानीय रंग से रंगी रहने पर भी समूचे जीवन बोध को लेकर उभरनेवाला होता है । खण्डित भू-भाग के जीवन की समग्रता का बोध कराना आंचलिक उपन्यासकार का लक्ष्य है । वहाँ किसी एक पहलू या किसी जीवन के विशेष पक्ष पर प्रकाश न डालकर समूचे अंचल के जीवन की सामान्य एवं विशेष स्थितियों को उभारकर रखना होता है । इस कारण आंचलिक उपन्यास का प्रधान पात्र वहाँ का जन समुदाय है ।

---

1. डॉ॰शिवप्रसादसिंह - आंचलिकता और आधुनिक परिवेश-कल्पना-मार्च-1965

जन समुदाय से जीवन की गाथा प्रस्तुत करते समय पात्रों का विशेष महत्व नहीं रह जाता । यद्यपि आंचलिकता के लक्षणों में स्थानीयता को महत्व दिया जाता है फिर भी केवल स्थानीय रंग को उभारने के एक मात्र गुण के कारण किसी भी रचना को आंचलिक नहीं कहा जा सकता । इस दृष्टि से आंचलिक उपन्यासों में अंचल विशेष के जन जीवन की खूबियों और विसंगतियों का पूरा प्रभावात्मक चित्रण होने लगता है ।

आंचलिक उपन्यास का स्वरूप

साहित्य की प्रत्येक विधा की अपनी एक विशिष्ट प्रक्रिया होती है जो उसे अन्य विधाओं से अपना एक अलग व्यक्तित्व प्रदान करती है । इस विशिष्ट प्रक्रिया के आधार पर ही उस लेखक की किसी रचना को उसके भेद-प्रभेद में विभक्त करते हैं । रचना-प्रक्रिया के विश्लेषण में उस कृति विशेष के प्रत्येक शारीरिक अवयवों की छान-बीन की जाती है । शास्त्रीय भाषा में ये अवयव ही उपन्यास के तत्व है । इन तत्वों की अपनी अपनी अलग विशेषता होते हुए भी इनके महत्व की सार्थकता इनके समष्टि रूप में है, जिससे रचना संसार की सृष्टि संभव होती है ।

परम्परागत रूप में उपन्यास के छ: तत्व माने जाते हैं - कथावस्तु, पात्र-निरूपण, कथोपकथन, देश काल- वातावरण, भाषा-शैली, और उद्देश्य । जहाँ तक आंचलिक उपन्यासों का संबन्ध है उपन्यास के उपर्युक्त तत्वों का चयन विशेष प्रकार से किया जाता है ।

कथावस्तु

आंचलिक उपन्यास और अन्य उपन्यासों के तत्वों में बाहरी रूप से समानता दृष्टिगत होने पर भी आन्तरिक रूप से आंचलिक उपन्यास की कथावस्तु में ऐसी कई विशेषताएं हैं जो उसे अन्य उपन्यासों से अलग करती है,

जैसे इसका कथा-क्षेत्र किसी एक क्षेत्र विशेष तक सीमित रहता है । इस अंचल विशेष को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत करते वक्त उस क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित हर एक छोटी लहर को भी आंचलिक कथाकार अनदेखा नहीं कर सकता । आंचलिक उपन्यासों का लक्ष्य निश्चित सीमा के जीवन की सम्पूर्ण चेतना का उद्घाटन होने के नाते उस अंचल विशेष के जनजीवन से संबन्धित क्रिया-कलाप, उसकी परम्परा, आचार-विचार आदि कथानक के प्रमुख अंग बन जाते हैं ।

आंचलिक उपन्यासकार अंचल विशेष के वातावरण में घटनेवाले दैनिक क्रिया कलापों का जीता-जागता चित्रण अंकित करता है । इसी वजह से वर्णनात्मकता की इन उपन्यासों में प्रमुखता होती है । जीवन वैविध्य के अति प्रसार के कारण कथा-सूत्र हमेशा क्षीण रहता है । एक केन्द्रीय कथा का अभाव आंचलिक उपन्यास की विशेषता है । लेखक की दृष्टि कथावस्तु पर न रहकर जीवन-वैविध्य प्रकट करनेवाले अनेक खण्ड चित्रों पर रहती है । लेकिन इन सब की गहराई में एक अन्तर्धारा प्रवाहमान रहती है जो उसे एक सूत्रता में बांध देती है । रेणु के उपन्यासों की कथावस्तु पर निर्मल वर्मा का यह कथन विशेष ध्यान देने योग्य है।
वे लिखते हैं "उन्होंने उपन्यास की "नैरेटिव" कथात्मक परंपरा को तोड़ा था, अलग अलग "एपीसोड" में बांटा था, जिन्हें जोडनेवाला कथा का सूत्र नहीं, परिवेश का एक ऐसा "लैण्डस्केप" था जो अपनी आत्यंतिक लय में उपन्यास को "रूप" और "फार्म" देता है । रेणु के यहां समय में बंधी घटनाएं नहीं, ऊबड-खाबड जिन्दगियों की यह लय, यह स्पन्दन उपन्यास के हिस्सों को एक दूसरे से जोडता है[1] ।"

---

1. निर्मल वर्मा - दिनमान, मार्च 1977

आंचलिक उपन्यासों में व्यष्टि की नहीं समष्टि की प्रधानता होती है । उसमें चित्रित हर एक पात्र एक वर्ग का बोध कराता है जो उस अंचल की खूबियों और बर्बादियों में भागीदार रहता है ।

कथावस्तु की और एक विशेषता यह है कि इन उपन्यासों में प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी शक्तियों के बीच संघर्ष बना रहता है । शिक्षा के प्रचार प्रसार और सामाजिक और राजनीतिक चेतना के फलस्वरूप कई एक ग्रामीण पात्र टूटी फूटी परंपरावादी संस्कारों को तोडने लगता है और शेष समूचे अंचलवासी उसी पुराने घेरे में अपने को बंद रख देते हैं । ऐसी स्थिति में दोनों वर्गों के बीच का संघर्ष अनिवार्य हो जाता है । यही संघर्ष अंचल के जीवन को आंदोलित हिल्लोलित कर देता है ।

यथार्थ के प्रति गहरी आस्था आंचलिक कथावस्तु की महत्वपूर्ण विशेषता है । आंचलिक उपन्यासकार अपनी जानी पहचानी दैनिक घटनाओं का चित्रण यों प्रस्तुत कर देता है कि जिससे यथार्थ का अत्यंत ही मोहक और व्यापक रूप सामने खडा होता है । इसी हेतु लोक संस्कृति के विविध उपादान जैसे - उत्सव-पर्व, लोक-कथाओं, लोक गीतों, संस्कारों और परम्परा का भी आश्रय लिया जाता है । आंचलिक उपन्यासों में कल्पना यथार्थ के साथ सहयोग देने का कार्य मात्र ही करती है ।

पात्र-निरूपण

आंचलिक उपन्यासों के पात्रों का अपना अलग वैशिष्ट्य है । इनकी दो प्रमुख विशेषताएँ है - ये पात्र सीमित अंचल विशेष में जीनेवाले होते हैं और इनकी संख्या बहुत अधिक होती है । आंचलिक जीवन को उसकी समग्रता के साथ उद्घाटित करने हेतु आंचलिक उपन्यासकार की दृष्टि

अंचल विशेष की सभी पहलुओं पर रहनी होती है । उसकी अपनी समस्याएँ, भौगोलिक परिवेश और सारी विशेषताएँ कथाकार का अभीष्ट होता है । परिणाम स्वरूप आंचलिक उपन्यासों में पात्रों की बहुत बड़ी भीड एकत्रित हो जाती है । इन्हीं पात्रों के क्रिया-कलापों एवं आचार-व्यवहार से उपन्यास को विशिष्ट भंगिमा प्रदान की जाती है ।

आंचलिक उपन्यास में पृष्ठभूमि के रूप में आनेवाला अंचल ही नायकत्व का रूप धारण करता है । इसमें आनेवाले मानवीय पात्र इस अंचल रूपी नायक को जीवन्तता प्रदान करने केलिए मात्र रह जाते हैं । आंचलिक उपन्यास का प्रत्येक पात्र अंचल में बसी हुई किसी न किसी जाति, वर्गसमुदाय अंचल की नियति को बनाने या बिगाडनेवाले जुट का प्रतिनिधित्व करता है । इसलिए उपन्यास में इसका अपना एक दायित्व होता है । ये सामान्य जीवन से चुने हुए ही होते हैं । आंचलिक उपन्यास में पात्रों का चुनाव बहुत बडी समस्या बन जाती है । क्योंकि "अंचल के जन-जीवन के विभिन्न पहलुओं का प्रतिनिधित्व करता हुआ यह पात्र उपन्यास का "अनुसन्धानिक माध्यम" होता है[1] ।"

युगीन भाव-बोध से प्रभावित पात्रों का चित्रण आंचलिक उपन्यासों की विशेषता है । ये पात्र अपने अंचल को प्रगतिपथ पर ले जाने की कोशिश करते हैं और ये पाठकों के विशेष ध्यान का केन्द्र भी बने रहते हैं ।

आंचलिक उपन्यासों में पात्र चित्रण की यह कमी रहती है कि पात्र कभी भी अपनी सम्पूर्णता को प्रकट नहीं कर पाता और चारित्रिक

---

1. डॉ. नगीना जैन - आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास, पृ.4।

विशेषताओं से युक्त होकर अन्य उपन्यासों के पात्रों की तरह समग्रता के बोध को लेकर हमारे सामने प्रस्तुत नहीं होता । इस कारण पात्र चित्रण की सीमाएँ विशेष प्रकार से उल्लेखनीय हो जाती है ।

संक्षेप में आंचलिक उपन्यास की कथावस्तु इस तरह रूपायित की जाती है कि अन्ततोगत्वा उपन्यास का नायकत्व पद अंचल विशेष को ही मिलने लगता है और वहाँ के परिवेश में प्रस्तुत किये जानेवाले पात्र सब अंचल रूपी महानायक के कार्यकलापों को कार्यान्वित करनेवाले साधन मात्र बन जाते हैं ।

कथोपकथन

आंचलिक उपन्यासों का लक्ष्य अंचल विशेष की समग्रता का चित्रण होने के नाते चित्रांकन शैली का उपयोग किया जाता है । इस कारण से आंचलिक उपन्यासों में संवाद की आवश्यकता कम दीखती है । लेकिन इसका अर्थ कभी भी यह नहीं है कि आंचलिक उपन्यासों में संवाद है ही नहीं या इसके अवसर ही नहीं है । नागार्जुन, रेणु और शिव प्रसाद सिंह के उपन्यासों में पर्याप्त मात्रा में संवाद का समावेश किया गया है ।

आंचलिक उपन्यास के अधिकांश पात्र अशिक्षित होते हैं इसलिए कथोपकथन स्वाभाविक और अनौपचारिक होते हैं । संवादों में अधिकतर यह देखा जाता है कि अंचल विशेष की भाषा शैली का पुट गहरी मात्रा में विद्यमान होता है । इस कारण आंचलिक पात्रों के संवादों में स्थानीय बोलियों के भाषागत प्रयोगों का बड़ी मात्रा में समावेश होने लगता है और ये बोलियाँ और ये प्रयोग कभी कभी उस अंचल विशेष में मात्र प्रचलित रहते हैं । इस कारण अंचल के बाहर का पाठक उन्हें समझने में कठिनाई का

अनुभव करता है । आंचलिक उपन्यासों की आस्वादन की क्षमता पर संवादों मे आनेवाले ये विशिष्ट भाषा प्रयोग अंकुश लगा देते हैं । साहित्यिक दृष्टि से यह आंचलिक उपन्यासों की कमी ही मानी जा सकती है ।

देशकाल - वातावरण

आंचलिक उपन्यास के सबसे महत्वपूर्ण तत्व के रूप में देशकाल और वातावरण का अलग स्थान है । इसमें मानवीय परिवेश से भी ज्यादा ज़ोर प्राकृतिक परिवेश पर दिया जाता है । अंचल विशेष के नदी, पर्वत, वन, पशु-पक्षी आदि उस प्रदेश विशेष की जनता पर प्रभाव छोडे बिना रह नहीं सकता । इसलिए हर व्यक्ति के सामाजिक, धार्मिक और नैतिक जीवन पर वातावरण का छाप स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है । उसके दैनिक जीवन से इस परिवेश का अभेद्य संबन्ध रहता है ।

आंचलिक उपन्यास में वातावरण केवल "कैन्वस" की पृष्ठभूमि नहीं निभाता । वह अपना स्वतंत्र और सहज अस्तित्व रखता है । इसी के कारण आंचलिक उपन्यास में अंचल का जीता-जागता व्यक्तित्व प्रस्फुटित होता है । कहीं कहीं आंचलिक उपन्यासों की कथा को गति प्रदान करने में भौगोलिक परिवेश सार्थक भूमिका अदा करता है । कई उपन्यासों में यह समस्याओं का केन्द्र बिन्दु और संघर्ष का कारण बन जाता है । इसलिए आंचलिक उपन्यासों में नदी-नाले, पहाड, झील, और यहाँ तक कि बंजर धरती भी इतनी महान् भूमिका अदा करती है कि उपन्यास इनके इर्द-गिर्द घूमने लगता है । आंचलिक उपन्यासों का परिवेश इस तरह प्राकृतिक उपादानों का परिवेश बन जाता है जो वहाँ के जन जीवन की नीति को बनाने या बिगाडने में परोक्ष रूप में अपना कर्तव्य निभाते हैं ।

मानवीय संवेदनाओं के साथ जुडनेवाला यह परिवेश और वातावरण आंचलिक उपन्यास को अन्य उपन्यासों से भिन्न परन्तु विशिष्ट स्थान केलिए योग्य बना देता है ।

भाषा-शैली

आंचलिक उपन्यास का लक्ष्य अंचल विशेष के जीवन की प्रतिछाया को हुबहू प्रस्तुत करना होता है । इस कारण अंचल की विशेषताओं को उभारनेवाले सभी तत्वों को जैसे के तैसे प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है । आचार-विचार एवं परिवेश की प्रमुखता आदि का जितना महत्वपूर्ण स्थान होता है उतना ही महत्वपूर्ण स्थान उस अंचल विशेष की भाषा या बोली का होता है । पात्रों की मनोवृत्तियों को प्रभावात्मक ढंग से प्रस्तुत करने में जहाँ एक ओर लेखक शारीरिक कार्यकलापों की सहायता लेता है तो दूसरी ओर संवाद की सहायता से समूची स्थिति को समझाने की कोशिश करता है । जब पात्रों के वार्तालाप प्रादेशिक सविशेषताओं से युक्त होने लगते हैं तब उसमें प्रदेश विशेष की बोलियों का समावेश हो जाना बिलकुल स्वाभाविक है । क्योंकि अंचल में रहनेवाले लोग शिक्षित हो या न हो वहाँ की प्रादेशिक वार्तालाप की शैली से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते । इस कारण आंचलिकता के बोध को समग्र बनाने केलिए उस अंचल विशेष की बोली, भाषागत प्रयोग, विशेष अर्थ से युक्त पद-प्रयोग आदि का प्रयोग लेखक को करना पडता है । इन्हीं कारणों से किसी भी आंचलिक उपन्यास का अभिव्यक्ति पक्ष, बोलीगत एवं प्रयोगगत विशेषताओं से युक्त हो जाता है । अभिव्यक्ति के इस माध्यम याने भाषा को विशेष प्रकार से ढालने के कारण आंचलिक उपन्यास का स्वरूप अन्य उपन्यासों से भिन्न रह जाता है ।

जन-जीवन के स्पन्दनों को सुनाते समय भाषा जन साधारण की बने बिना नहीं रह सकती । आंचलिक उपन्यास की भाषा साहित्यिक भाषा नहीं होती । क्योंकि शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से लिखे जानेवाले उपन्यास के पात्र लेखक के मानसपुत्र होते हैं । कल्पना के किसी अनदेखे जगत में जीनेवाले इन पात्रों की भाषा भी शुद्ध साहित्यिक बन जाती है । यहाँ पात्र कल्पित कला लोक की सीमाओं के अंदर लेखक के विचारों के अनुसार अपनी वर्गगत विशेषताओं को लेकर जीने केलिए बाध्य किये जाते हैं । इसलिए उनकी भाषा-शैली में अगर धरती की गन्ध न हो तो कोई बात नहीं परन्तु आंचलिक उपन्यासकार इस भाषागत प्रभुता को अपने ऊपर लाद कर नहीं चल सकता । इस कारण आंचलिक उपन्यास की भाषा और वार्तालाप में प्रयुक्त शब्द सुव्यवस्थित या परिमार्जित न हो कर अव्यवस्थित और प्रकृत रूप को लेकर सामने उभरते हैं । वैसे, भाषा का यह स्थानीय रंग और पात्रों का स्वाभाविक रंग दोनों एक साथ मिलते हैं तो आंचलिक स्वरूप और भी मुखरित बनता है । "मैला आंचल" की भाषा यद्यपि आंचलिक है फिर भी साधारण हिन्दी भाषा-भाषियों केलिए वह बोधगम्य बन जाती है उदाहरण केलिए रेणु के उपन्यास "परती परिकथा" में हम आंचलिक भाषा का वह स्वरूप देखते हैं जो इस रचना को अंचल विशेष में रहनेवाले लोगों केलिए मात्र सुबोधगम्य होता है और दूसरों केलिए क्लिष्ट साध्य । भाषा की अति आंचलिकता कभी-कभी इस तरह भाव संप्रेषणीयता में व्यवधान पैदा करती है और संवेदना के धरातल को कभी-कभी सीमित कर देती है । लेखकीय संवेदना भाषा की इस विशेष क्लिष्टता और दुरूहता के कारण अंचल के बाहर रहनेवाले व्यक्ति केलिए अंचल के जीवन के समान ही अपरिचित देख पडती है ।

अभिव्यक्ति की एक विशिष्ट-पद्धति ही शैली है । इसके बाह्य और आंतरिक दो रूप माने जाते हैं । बाह्य रूप का सम्बन्ध वस्तु-संगठन से है तो आंतरिक रूप का सम्बन्ध रचनाकार के रचना-व्यक्तित्व से

होता है । शैली के आंतरिक रूप पर ही रचना की विशिष्टता निर्भर रहती है । शैली के इस रूप के दो भेद हैं - यथार्थवादी शैली एवं भावात्मक शैली ।

आंचलिक उपन्यासों में शिल्प और शैली का सम्बन्ध है । हिन्दी के पाँच प्रमुख शिल्प-रूप हैं §1§ वर्णनात्मक §2§ विश्लेषणात्मक §3§ प्रतीकात्मक §4§ नाटकीय §5§ समन्वित । ये सभी शिल्प रूप आंचलिक उपन्यासों में पाये जाते हैं । आंचलिक उपन्यास में प्रयुक्त चार शैलियाँ हैं §1§ अन्य पुरुष शैली §2§ आत्म-कथात्मक शैली §3§ पात्र शैली §4§ डायरी शैली । इसके अतिरिक्त स्वप्न शैली xxxxxxxxxx और पत्रात्मक शैली xx xxxx का प्रयोग भी किया जाता है । शैली के आंतरिक रूप के दो भेद - यथार्थवादी और भावात्मक शैली रूपों का प्रयोग भी आंचलिक उपन्यासों में पाया जाता है ।

इन तत्वों के अतिरिक्त आंचलिक उपन्यासों की कुछ विशेष प्रवृत्तियाँ है । मार्क्सवादी और गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित आंचलिक उपन्यासकारों ने अपनी लेखनी द्वारा पाठकों के मन में नवनिर्माण की भावना उत्पन्न कराने का महत्वपूर्ण कार्य किया है । लोकाश्रम की भावना से युक्त इन उपन्यासों ने साहित्य क्षेत्र को एक नई दिशा और गतिशीलता प्रदान की ।

अब तक साहित्य जगत केलिए अज्ञात सुदूर ग्रामांचलों के सामूहिक चरित्र निरूपण इन उपन्यासों की और एक विशेषता है । सामूहिक चरित्र निरूपण द्वारा लोक संस्कृति के समग्र चित्रण आंचलिक उपन्यासों की अपनी खासियत है । लोक संस्कृति के अंतर्गत जन-जीवन से सम्बन्धित जितने आचार-विचार, विश्वास, प्रथा, परम्परा और धार्मिक अनुष्ठान हैं वे सभी आते हैं ।

इसलिए आंचलिक उपन्यासों में लोगों की रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, परम्पराओं, त्योहारों, मनोरंजन के साधनों आदि का चित्रांकन किया जाता है । इस सन्दर्भ में लोक गीतों का चित्रण विशेष ध्यान देने योग्य है । लोक गीतों के द्वारा उस क्षेत्र विशेष के लोगों की विशिष्ट मानसिकता और लोक जीवन का गहरा परिचय प्राप्त होता है ।

उद्देश्य

उद्देश्य ही उपन्यास का महत्वपूर्ण तत्व है जिससे कथाकार की सृष्टि के पीछे निहित प्रेरणा तत्व से पाठक परिचित होता है । इस तत्व का परिचय उपन्यास के पात्रों के क्रिया-कलाप, उसकी समस्याएँ आदि से होता है । उपन्यासकार अपने समाज के आचार-विचार, समस्याएँ और उसकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं का द्रष्टा और भोक्ता होता है और उसकी सर्जना की प्रेरणा का आधार उस सामाजिक जीवन के कुछ ऐसी घटनाएँ या अनुभव होंगे जिसने उसे भीतर से कहीं स्पर्श किया होगा । कलाकार अपनी पैनी दृष्टि से अपने द्वारा अनुभूत जीवन का विश्लेषण करता है । वह उस दृष्टि से भूत वर्तमान और भविष्य को एक सूत्र में पिरो देता है जिससे परिपक्व कृति की सृष्टि संभव होती है ।

आंचलिक उपन्यासकारों का उद्देश्य अन्य उपन्यासकारों से थोड़ा भिन्न होता है । आंचलिक उपन्यास भारत की आत्मा कहलानेवाले गाँवों की दयनीय स्थिति का दस्तावेज़ है जो स्वातंत्र्योत्तर काल का अभिशाप सा विद्यमान है । आज़ादी से पूर्व भारतीय ग्रामीणों ने सुख और चैन का जो सपना संजोया था वह मात्र सपना ही रह गया । प्रगति के पथ पर ले जाने के फलस्वरूप आज गाँव का अपना स्वरूप नष्ट-भ्रष्ट हो गया और उसके स्थान पर शहर का रूप धारण करना भी उसके परे की बात रही ।

अंधविश्वास, अज्ञान एवं शोषण का रंग-मंच बन गया है आज का गाँव । इसी माहौल पर आधारित है आंचलिक उपन्यासों की कथावस्तु । आज के राजनीतिक और सामाजिक नेताओं के घिनौने क्रिया-कलापों से व्यथित कथाकार के मन का स्फुरण ही आंचलिक उपन्यास है ।

आंचलिक उपन्यासकार का लक्ष्य किसी सीमित अंचल विशेष को उसकी अपनी समग्रता के साथ प्रस्तुत करना होता है । उस अंचल विशेष के जीवन को आत्मसात करनेवाला कथाकार ही आंचलिक उपन्यासों की रचना में यश का पात्र बनता है । अपनी कृतियों के द्वारा इन पिछड़े हुए ग्रामांचलों में उत्थान के प्रयत्नों को तीव्रतर बनाना उसका अभिप्रेत है ।

आंचलिक उपन्यासों के द्वारा ग्रामांचल के लघुमानव की प्रतिष्ठा भी संभव हुई है । पिछड़े हुए वर्ग और शोषित जातियों पर लिखे गये उपन्यास इसके उदाहरण हैं । इन उपन्यासों में उस वर्ग विशेष या जाति विशेष की पीडा को लेखक स्वरबद्ध करता है । इन उपन्यासों में जन जागरण के चित्रण द्वारा वे किसी न किसी "वाद" का समर्थन करते हुए दिखाई पडते हैं । नागार्जुन के उपन्यासों में "मार्क्सवाद" की प्रमुखता है तो रेणु लोकाश्रय की भावना से और प्रभावित है । जो कुछ भी हो अपनी रचनाओं के द्वारा उपेक्षित ग्रामांचलों के जीवन में नयी स्फूर्ति लाना ही आंचलिक उपन्यासकारों का लक्ष्य रहा ।

आंचलिक उपन्यास का वर्गीकरण

मिट्टी के गन्ध से महकनेवाले आंचलिक उपन्यासों ने पूर्ववर्ती कथा-साहित्य मे सर्वथा अपना एक अलग अस्तित्व बनाया रखा है ।

साहित्यकार ने जीवन की सच्चाई से सम्बद्ध रखते हुए लोकतत्त्वों को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति देने की कोशिश की है । इस नई विधा ने अनेक रचनाकारों को अपनी ओर आकृष्ट कर दिया और यह नई विधा "आंचलिकता" के नाम से मशहूर भी बन गई ।

ग्रामीण जीवन पर आधारित सभी आंचलिक उपन्यास एक-से नहीं है । इसका कारण यह है कि हर एक रचनाकार का रचना व्यक्तित्व दूसरे रचनाकार के रचना व्यक्तित्व से भिन्न होता है । यह भिन्नता रचना के सन्दर्भ में भी स्पष्ट दिखाई पड़ती है । इस कारण रचनाओं का वर्गीकरण एक कठिन कार्य सा लगता है । फिर भी कथ्य की दृष्टि से और विषय की परिवेश जन्य स्थितियों की दृष्टि से रचना के विविध आधार खोजे जा सकते हैं । और इसी के आधार पर वर्गीकरण भी किया जा सकता है ।

आंचलिक उपन्यास केलिए "अंचल" के समग्र चित्रण की प्रमुखता स्वीकार करते हुए भी कोई एक रचनाकार उसके वस्तु तत्व पर ज़ोर देता है तो कोई एक शिल्प तत्व पर । कोई केवल स्थानीय रंग भर देने में उत्सुक रहता है तो कोई भाषायी प्रयोग पर । कोई सामाजिक यथार्थ पर बल देता है तो कोई प्रगतिवाद पर । इसलिए सभी लोगों केलिए मान्य एक वर्गीकरण आंचलिक उपन्यासों केलिए आज भी उपलब्ध नहीं है ।

श्री प्रकाश वाजपेयी आंचलिक उपन्यासों को आंशिक आंचलिक उपन्यास और पूर्ण आंचलिक उपन्यास, दो वर्गों में बांट देते हैं । आंशिक उपन्यास वे उन उपन्यासों को कहते हैं जिस में स्थानीय रंग का प्रयोग मूल कथा को उद्दीप्त करने हेतु किया गया है । नागार्जुन,

फणीश्वरनाथ रेणु, भैरवप्रसाद गुप्त तथा राजेन्द्र अवस्थी की रचनाओं को वे पूर्ण आंचलिक उपन्यासों की श्रेणी में रखते हैं । लगता है कि यह विभाजन स्थानीय रंग और आंचलिकता की स्पष्ट भिन्नता समझने के पूर्व किया है ।

डॉ॰ लक्ष्मीकान्त सिन्हा रहस्यात्मक और चित्रात्मक यों आंचलिक उपन्यासों के दो भेद बताते हैं[1] । रहस्यात्मक आंचलिक उपन्यासों में मिट्टी, जलवायु और परम्परा से निर्मित वातावरण का चित्रण केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं होता वह प्रेरक तत्व के रूप में होता है । पात्रों के भाव, विचारधारा, रीति-रिवाज़ और परम्परा पर वातावरण का स्पष्ट प्रभाव होता है । चित्रात्मक आंचलिक उपन्यासों में स्थानीय चित्रण के विविध पहलुओं को उपस्थित किया जाता है । उस स्थान विशेष की जातियां, बोलियाँ उत्सव-त्योहार आदि का वर्णन किया जाता है । इस में उस अंचल विशेष की ही महत्ता रहती है । प्रायोगिक स्तर पर देखें तो हिन्दी आंचलिक उपन्यासों का यह वर्गीकरण ठीक नहीं लगता ।

डॉ॰ आदर्श सक्सेना का वर्गीकरण[2] उलझनपूर्ण लगता है । आंचलिक उपन्यासों को उन्होंने आंचलिक तथा अनांचलिक उपन्यासों के दो वर्गों में विभक्त कर दिया । फिर उन्होंने आंचलिक उपन्यास के दो वर्गों के रूप में अर्द्ध आंचलिक तथा विशुद्ध आंचलिक दो रूप बताये । विशुद्ध आंचलिक उपन्यास को भी उन्होंने दो वर्गों में बांट दिया - निर्विवाद आंचलिक उपन्यास तथा प्रभाव की दृष्टि से आंचलिक उपन्यास ।

डॉ॰ नगीना जैन आंचलिक उपन्यासों के मुख्यत: दो भेद मानती है §1§ सम्पूर्ण आंचलिक उपन्यास तथा अर्द्ध आंचलिक उपन्यास[3] ।

1· डॉ॰ लक्ष्मीकांत सिन्हा - हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास, पृ॰295-96
2· डॉ॰ आदर्श सक्सेना - हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि, पृ॰104-105
3· डॉ॰ नगीना जैन - आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास, पृ॰62

इसके अतिरिक्त वे और एक प्रकार भी मानती है आंचलिक संस्पर्शवाले उपन्यास। इस वर्गीकरण से अपनी असहमति प्रकट करते हुए डॉ॰ इन्दुप्रकाश पाण्डेय अपना मत यों प्रकट करते हैं - "वस्तुत: "शुद्ध" और "अर्द्ध" सापेक्ष शब्द है जिनका निश्चित रूप किसी उपन्यास में सिद्ध कर पाना यदि असंभव नहीं तो कठिन तो है ही। इस प्रकार के वर्गीकरण से भ्रम ही पैदा हुआ है ।[1]"

कथ्य या सामग्री के आधार पर डॉ॰ इन्दु प्रकाश पाण्डेय द्वारा किया गया वर्गीकरण सबसे उत्तम लगता है। उन्होंने आंचलिक उपन्यास के तीन प्रकार बताये हैं

1. किसी नगरीय या ग्रामीण पृष्ठभूमि से संबंधित।
2. किसी जाति, जन-जाति अथवा संप्रदाय से संबंधित।
3. पेशेवर समुदायों से संबंधित।

नागरिक और ग्रामीण पृष्ठभूमि से संबन्धित

यद्यपि फणीश्वरनाथ रेणु के "मैला आंचल" से पूर्व "आंचलिक उपन्यास" विशेषण हिन्दी साहित्य जगत केलिए अज्ञात था तथापि प्रेमचन्द और उनके समसामयिक लेखकों की रचनाओं में आंचलिकता के तत्व पाये जाते हैं।

ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यासों के साथ ही साथ नागरिक पृष्ठ भूमिवाले उपन्यासों को भी आंचलिक उपन्यास के अंदर रखे जा सकते हैं। लाहौर के जन जीवन को प्रस्तुत करनेवाला अश्क का उपन्यास "गिरती दीवारें", कानपुर के कारखानों में काम करनेवाले मज़दूरों के जीवन को उभारनेवाले भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यास "मशाल" आदि उपन्यासों के सिलसिले में नागार्जुन का उपन्यास "कुम्भीपाक" और फणीश्वरनाथ रेणु का "दीर्घतपा" भी आते हैं।

---

1. डॉ॰ इन्दुप्रकाश पाण्डेय - हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन-सत्य, पृ. 70

अपने अन्य उपन्यासों के ग्रामीण पृष्ठभूमि के अंकन से भिन्न होकर नागार्जुन "कुम्भीपाक" में पटना शहर के एक मकान में रहनेवाले किरायेदार का जीवन प्रस्तुत करते हैं ।

वैसे ही फणीश्वरनाथ रेणु "दीर्घतपा" में एक "वर्किंग विमेन्स होस्टल" को ही पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार करते हैं । यद्यपि इस उपन्यास को आंचलिक कहने में स्वयं लेखक दुविधा का अनुभव करते हैं फिर भी वे इसे आंचलिक ही स्वीकार करते हैं । "यह उपन्यास नहीं, आंचलिक नहीं, हाँ, आंचलिक ही किंतु अर्थात् यह उपन्यास, उपन्यास है[1] ।"

आंचलिक उपन्यासों के प्रथम प्रवर्तक के रूप में मशहूर नागार्जुन के "कुम्भीपाक" को छोड़कर शेष उपन्यासों का कथाक्षेत्र ग्राम जीवन से संबन्धित है । मिथिला के गाँवों के साथ घनिष्ठ संबंध रखनेवाले पात्रों के चयन से उन गाँवों के समवेत रूप को उभारने का लक्ष्य नागार्जुन का रहा । इन पात्रों के बीच अपनी प्रगतिवादी विचारधारा के संदेश वाहक को भी वे ढूँढ लेते हैं जिसके ज़रिये सामाजिक समस्याओं का समाधान भी वे प्रस्तुत करते हैं । "बलचनमा","नई पौध", "बाबा बटेसरनाथ", "उग्रतारा" आदि उपन्यासों में उनकी यह साम्यवादी दृष्टि स्पष्ट झलकती है । इसी कारण से नागार्जुन के उपन्यासों में आंचलिक तत्व पूर्ण रूप से उभरकर नहीं आते हैं ।

फणीश्वरनाथ रेणु सभी तरह के वादों के घेरे से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से रचनारत रहे । उनके उपन्यासों में स्वयं ग्रामीण अंचल नायक के रूप में चित्रित होते हैं । वे पात्रों का चित्रण यों करते हैं कि जिनके ज़रिये अंचल विशेष का पूर्ण स्वरूप पाठक के सामने प्रस्तुत हो जाएँ ।

---

1 फणीश्वरनाथ रेणु - दीर्घतपा भूमिका

शिवप्रसाद सिंह "अलग-अलग वैतरणी" में टूटते हुए गाँव का चित्रण प्रस्तुत करते हैं । "करैता गाँव" के ग्रामीणों का यह अभिशाप सा लगता है कि वे गाँव छोड़कर जीने की अभिलाषा से शहर की शरण में जाते हैं ।

यों नागरिक और ग्रामीण पृष्ठभूमि को लेकर सृजित रचनाएँ आँचलिक उपन्यास के प्रथम वर्गीकरण के मिसाल प्रस्तुत करते हैं ।

जाति, जन-जाति और संप्रदाय से संबन्धित

आँचलिक उपन्यास के इस वर्गीकरण के अंदर वे उपन्यास आ जाते हैं जो किसी जाति, जन-जाति या किसी धार्मिक संप्रदायवालों के जीवन को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत करते हैं। इन उपन्यासों में सीमित अंचल विशेष का कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता । जाति विशेष या समुदाय विशेष के लोगों को उनकी सामाजिक परंपराओं, आचार-विचारों, रीति-रिवाज़ों, विश्वास-अन्धविश्वासों को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत किया जाता है ।

उदयशंकर भट्ट ने "सागर, लहरें और मनुष्य" में बारसोवा की कोळी मछुआ जन-जाति के जीवन को ही अपना कथाक्षेत्र बनाया है ।

वैसे ही नागार्जुन कृत "वरुण के बेटे" में मछुआ जाति की सामाजिक और आर्थिक विषमताओं का सच्चा चित्रण प्रस्तुत किया है ।

पेशेवर समुदायों से संबन्धित

धर्म के ठेकेदार पंडितों, पुजारियों और महंतों पर लिखे गये उपन्यास आंचलिक उपन्यास के तीसरे वर्गीकरण के अंतर्गत आ जाते हैं।

नागार्जुन ने "इमरतिया" में धोकेबाज़ एवं व्यभिचारी महंत के जीवन का चित्रण किया है।

फणीश्वरनाथ रेणु ने "मैला आंचल" में महंत सेवादास और रामदास का चित्रण करके साधुओं और संतों के अनैतिक जीवन से लोगों को अवगत कराया है।

यों श्री इन्दुप्रकाश पाण्डेय द्वारा किया गया वर्गीकरण ही आंचलिक उपन्यासों के सन्दर्भ में समीचीन लगता है।

कथा क्षेत्र - ग्रामीण और शहरी अंचल

आंचलिक उपन्यास की परिभाषा और वर्गीकरण के बारे में जिस प्रकार विद्वानों के बीच मत भेद हैं, उसी प्रकार आंचलिक कथाक्षेत्र भी विवाद का विषय रहा है। विवाद इस विषय पर रहा कि क्या शहरी अंचल को आधार बनाकर लिखे गये उपन्यासों को आंचलिक उपन्यासों की कोटि में रखा जा सकता है कि नहीं? आंचलिक उपन्यास का नामकरण जो कि फणीश्वरनाथ रेणु के "मैला आंचल" से हुआ है उस आन्दोलन का संबन्ध ग्रामीण जीवन और ग्रामीण संस्कृति से रहा है। विवाद की शुरुआत तब हुई जब उदय शंकर भट्ट का "सागर लहरें और मनुष्य" प्रकाशित हुआ, जो बम्बई के एक उपनगर सबर्ब बरसोवा पर आधारित है। यह पूर्ण रूप से गाँव ही नहीं रहा न शहर। उसी तरह लखनऊ के एक मुहल्ले-चौक को कथा

क्षेत्र बनाकर अमृतलाल नागर का "बूंद और समुद्र" की रचना भी प्रकाशित की गयी । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इस तरह के उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास मानने का विरोध यों प्रकट किया कि "क्या आंचलिक उपन्यासों में अपरिचित देशों, जातियों और आदिम जीवन का ही चित्र अपेक्षित होता है ? या उसमें नागरिक जीवन के विशेष अंचल के चित्र भी रह सकते हैं ? नागरिक जीवन के चित्र तो क्रमागत सामाजिक उपन्यासों में रहते ही हैं, यदि आंचलिक उपन्यासों में वही वस्तु रखी जायगी तो इस नयी उपन्यास विधा की विशेषता क्या होगी ? प्रश्न विधा का ही नहीं, परम्परा का भी है[1] ।" उनके अनुसार सामाजिक उपन्यासों में नागरिक जीवन के चित्रण से ऊबाहट के कारण और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप ही आंचलिक उपन्यासों में ग्रामीण जीवन को प्रमुखता दी गयी थी । इसलिए नागरिक जीवन के चित्रणवाले उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता ।

इस विवाद को लेकर विद्वान लोग दो वर्गों में विभक्त हो गए । एक वर्ग केवल ग्रामीण अंचल पर आधारित उपन्यासों को ही आंचलिक उपन्यास के रूप में स्वीकार करते हैं और दूसरा वर्ग नागरिक जीवन पर आधारित उपन्यासों को भी इस कोटि में रखने में कोई आपत्ति नहीं मानते ।

डॉ॰ ज्ञान चंद गुप्त की राय में "आंचलिकता में नगर की खींच-तान व्यर्थ है । आंचलिक जीवन मुख्यत: ग्रामीण ही होता है और आंचलिक उपन्यास इस स्थानिक यथार्थ की सघनता एवं समग्रता के साथ अनुभव की प्रामाणिकता को लेकर प्रस्तुत हुए हैं[2] ।"

---

1. नन्ददुलारे वाजपेयी - हिन्दी आंचलिक उपन्यास (प्रकाश वाजपेयी की भूमिका
2. डॉ॰ ज्ञानचंद गुप्त - आंचलिक उपन्यास सम्वेदना और शिल्प, पृ॰13

डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह "अंचल" को ग्राम-जीवन तक सीमित रखने के पक्ष में हैं[1]।

डॉ॰ आदर्श सक्सेना के अनुसार "...... कहने को शहरी परिवेश को भले ही अंचल कह दिया जाए, परंतु उसमें वह पवित्रता, लालसा एवं प्रेम उपलब्ध नहीं होता जो वस्तुतः ग्राम्य अंचल की ही विशेषता है[2]।"

श्री राजेन्द्र अवस्थी और डॉ॰ कान्तिवर्मा जैसे विद्वान नागरिक जीवन पर आधारित उपन्यासों को भी आंचलिक उपन्यास मानते हैं। श्री राजेन्द्र अवस्थी के मतानुसार "अंचल एक देहात हो सकता है, एक भारी शहर भी, शहर का एक मोहल्ला भी और इन सबसे दूर सघन वनों की उपत्यकाएं भी[3]।" डॉ॰ कान्तिवर्मा की राय यह है कि "आंचलिक शब्द का तात्विक अर्थ यह नहीं है कि केवल ग्रामीण कथाएँ ही इसके क्षेत्र में आयें, बल्कि किसी छोटे शहर की विशेषता को उभारनेवाला साहित्य भी आंचलिकता की सीमा में आ जाता है[4]।"

वस्तुतः आंचलिकता कथा साहित्य की शिल्प-विधि एवं आवयविक संरचना से संबंध रखती है। आंचलिक कथाकार किसी स्थान की पृष्ठभूमि, वहाँ के लोगों की रीति-रिवाज़, भाषा और बोली को केवल स्थानीय-रंग के रूप में नहीं बल्कि उसकी गहराई में पैठ कर उससे आत्मसात करके उस स्थान को उसकी समग्रता से प्रस्तुत करते हैं। यों आंचलिकता ही वह तत्व है जो उपन्यास को आंचलिकता प्रदान करता है। स्थानीय रंग

1· डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह - आंचलिकता और आधुनिक परिवेश, कल्पना, मार्च 196
2· डॉ॰ आदर्श सक्सेना - हिन्दी आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि, पृ॰27-28
3· श्री॰ राजेन्द्र अवस्थी - सारिका, 1961
4· डॉ॰ कान्तिवर्मा - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ 184

और आंचलिकता का फर्क स्पष्ट होते ही आलोचकों के बीच का मत भेद भी समाप्त होने लगा है और यह विवाद अनावश्यक भी हो गया है । कथा क्षेत्र को लेकर कथाकार पर कोई नियंत्रण नहीं रखना चाहिए ।

आंचलिक उपन्यास केलिए ग्राम कथ्य की आवश्यकता कोई अनिवार्य शर्त नहीं है । अंचल ग्रामीण इलाके में हो सकता है, नगर के किसी भू-भाग से संबन्धित भी हो सकता है । सीमित परिवेश का सूक्ष्म चित्रण ही आंचलिकता के अंदर लिया जाता है । आंचलिक उपन्यासों के अंदर ग्रामीण परिवेश पर इसलिए ज़ोर दिया जाता है कि यह भाग बहुत दिनों से तिरस्कृत रहे हैं और उनकी शोचनीयता और जीवन की गन्दगी जन सामान्य की आंखों से ओझल रही । फिर रेणु जैसे लेखक इन अंचलों से इतने घुल-मिल गये थे कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण भी उनकेलिए संभव था । परिवेश विशेष में रहनेवाले लोगों की बोली, अंचल की आवश्यकताएँ, अंचल के जीवन की कटुता, राजनीतिक कुचक्र, जातिगत अलगाव, धर्मभीरु लोगों की मनोवृत्ति, निम्नवर्ग की नैतिक अराजकता आदि किसी भी कलाकार केलिए ऐसी सामग्री प्रस्तुत करती है जिससे दूर भागना असंभव है । इस कारण आंचलिक उपन्यासकारों में से अधिकांश लोगों ने शहरों से दूर बसनेवाले मटमैले, गन्दगी से भरपूर अशिक्षित लोगों की बस्तियों को ही अपने उपन्यासों का विषय बनाया ।

शहर की अंधेरी तंग गलियाँ, गन्दगी से भरपूर जिन्दगियाँ जहाँ बसती है ऐसी झुग्गी-झोंपडियाँ भी आंचलिक उपन्यास के विषय बन सकते हैं और शहर के परिवेश में लिखे गये उपन्यासों में आंचलिकता ढूँढी जा सकती है ।

इस तरह ग्राम्य जीवन के सन्दर्भ में लिखे गये उपन्यासों से यह स्पष्ट होने लगता है कि आंचलिक उपन्यास अधिकतर ग्राम्य क्षेत्रों को केन्द्र बनाकर ही लिखे गये थे । गाँव और वहाँ की अनदेखी जिन्दगी को ध्यान का विषय बनाना ही इन उपन्यासकारों का लक्ष्य रहा है । इस लक्ष्य की प्राप्ति में निर्विवाद रूप से वे सफल भी निकले । प्रतिबद्धता की लहर रचना के प्रत्येक क्षण को आत्मसात करती रही है और इस कारण जन-जीवन की समग्रता के साथ जन जागरण का सम्यक बोध भी आंचलिक उपन्यासों को विशिष्टता प्रदान करता है ।

चतुर्थ अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों में ग्राम चेतना का स्वरूप

चतुर्थ अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों में ग्राम चेतना का स्वरूप

मिट्टी के गन्ध से भरपूर रचना जब जीवन के विविध रंगों से लैस होकर सर्जनात्मक धरातल को नया उन्मेष प्रदान करने लगती है तो ऐसी रचना को नये नाम की ज़रूरत पड़ती है । मिट्टी के रंग-ढंग से जन-जीवन के सूक्ष्म स्पन्दनों से युक्त इस रचना को "आंचलिक" कहकर पुकारने के पहले ही इस क्षेत्र में नागार्जुन का पदार्पण हुआ था । नागार्जुन की "रतिनाथ की चाची" में सीमित क्षेत्र के अंदर घटित होनेवाली कथा और घटनाओं को सूक्ष्म भाव से, गहराई से और उसकी खूबियों और कमियों से भरपूर होकर देखने का प्रथम प्रयास दृष्टिगत होता है । इस कारण "रतिनाथ की चाची" उपन्यास आंचलिक उपन्यास की श्रेणी में प्रवेश पाने केलिए सभी दृष्टियों से योग्य है । यद्यपि आंचलिक उपन्यासों की चर्चा के

सन्दर्भ में "मैला आँचल" ही सब लोगों के ध्यान का विषय बना है, फिर भी यह बात भुलाई नहीं जा सकती कि आँचलिकता का प्रथम परिवेश "रतिनाथ की चाची" में ही प्रकट होता है । अतः नागार्जुन को आँचलिक उपन्यासों के प्रथम प्रवर्तक के रूप में मानना सभी दृष्टियों से तर्क संगत है ।

वैसे नागार्जुन ने अपनी रचनाओं में एक विशेष दृष्टि अपनाने की कोशिश की है । प्रगतिवादी विचारों से प्रभावित होने के कारण आँचलिक दायरों के अंदर जीनेवाले अनेक पात्रों में से कहीं न कहीं वे अपना इष्ट पात्र ढूँढ़ लेते हैं जो साम्यवादी विचार से प्रभावित दीखता है । साधारणतया आँचलिक उपन्यासों में इस तरह के किसी भी पात्र विशेष के प्रति उपन्यासकार का मोह नहीं होता । वस्तुतः नागार्जुन में अन्य आँचलिक उपन्यासकारों से भिन्नता रखनेवाली यह प्रवृत्ति लक्षित होती है जो उनकी आदर्श निष्ठा के प्रति दिखाई जानेवाली कमज़ोरी मानी जा सकती है । फिर भी इस तरह के पात्र का, किसी अंचल विशेष में जीना और साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होना महज एक काल्पनिक स्थिति नहीं है ।

नागार्जुन के प्रमुख आँचलिक उपन्यासों में "बलचनमा", "बाबा बटेसरनाथ" और "वरुण के बेटे" इसलिए विशेष महत्व रखते हैं कि उनमें आनेवाले पात्र और उनमें चित्रित परिस्थितियाँ मिथिला के अंचलों में व्याप्त जीवन की असन्तोषजनक स्थितियों को, रूढ़ी-कट्टरवादिता को, राजनीतिक धाँधली को और शोषक वर्ग की शोषण नीति को और बेकसूर किसान की, पीड़ित वर्ग की हताशा को बड़ी बारीकी से प्रस्तुत करने में सफल निकलते हैं ।

नागार्जुन की आंचलिक दृष्टि, रचना की विशिष्टता, शैल्पिक और भाषागत प्रयोग आदि पर विचार करते हुए उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा का मूल्यांकन इन्हीं रचनाओं के आधार पर करने का प्रयास किया जा रहा है । कथ्यात्मक स्थितियों के साथ तथ्यात्मक गतियों पर भी समानान्तर दृष्टि रखने की कोशिश की गयी है ।

रतिनाथ की चाची §1948§

"रतिनाथ की चाची" नागार्जुन का पहला उपन्यास है । उपन्यास की भूमिका में ही नागार्जुन अपनी कथा के बारे में कहने लगते हैं - "एक कुलीन, परन्तु दरिद्र विधवा ब्राह्मणी का यह परिचय ऐसा है कि आपकाहृदय नारी-जीवन के प्रति एकाएक श्रद्धालु और सहानुभूतिपूर्ण हो उठेगा ।

मिथिला की महिमा मंडित परम्परा और सुजला, सुफला, शस्यश्यामला भूमि की झाँकियाँ पाकर आप मुग्ध रह जायेंगे ।"[1]

उपन्यास का केन्द्र बिन्दु है रतिनाथ की चाची गौरी । रूढ़िग्रस्त, प्राचीनता का मोह लिये हुए गाँव की अभागिन विधवा गौरी का परिचय उपन्यास के प्रारंभ में ही दिया जाता है - बीच आँगन में टोला-पड़ोस की औरतें जमा थीं । सभी किसी न किसी बातचीत में मशगूल थीं । एक ही थी जो बेकार और चुप बैठी थी । चेहरे पर विषाद की काली छाया मंडरा रही थी । वह न तकली ही

----

1. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - भूमिका

कात रही थी, न गोद में उसके कोई बच्चा ही था । बाकी औरतें रह-रहकर उसकी ओर अजीब निगाहों से ताक रही थीं ।"[1]

बात यह है कि विधवा गौरी अपने विधुर देवर से गर्भवती बन जाती है । वह समाज में व्यंग्य का पात्र बन जाती है । व्यंग्य भरी सहानुभूति से दम्मो फूफी कहती है - "पाँच साल की बच्ची भी इतना बता देती है कि आँख मिचौनी के वक्त उसकी पीठ थपथपानेवाला आखिर कौन रहा होगा और एक हो तुम । ओह, कितनी भोली [2] ।" समाज द्वारा तिरस्कृत होने पर भी वह अपने देवर को कलंकित करना नहीं चाहती । वह कहती है - "मैं और कुछ नहीं जानती । वह भादों का महीना था । अमावस की रात थी । एक घनी और अंधेरी छाया मेरे बिस्तर की तरफ बढ़ आई । उसके बाद क्या हुआ, इस बात का होश अपने को नहीं रहा [3] ।" इन सारी विपदाओं में उसका एक मात्र सहारा रहा देवर जयनाथ का पुत्र रतिनाथ ।

गौरी आठ महीने का अपना गर्भ गिराने केलिए तरकुलवा में अपनी माँ के पास जाती है । गौरी का पुत्र उमानाथ अपनी माँ का तिरस्कार करता है । दम्मो फूफी के कारण उमानाथ की पत्नी कमल मुखी भी गौरी को नहीं मानती । अपने जीवन की अनेक दुःखदायक घटनाओं से उसकी जीने की इच्छा जाती रहती है । वह जानबूझकर मृत्यु को अपने गले लगाने को तैयार हो जाती है । इस कारण से मलेरिया रोग से ग्रस्त होने पर भी स्वास्थ्य की परवाह किये बिना वह धीरे धीरे मृत्यु के मुँह में अपने को सौंप देती है ।

---

1. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ.3
2. वही, पृ.7
3. वही, पृ.7

पात्र चित्रण

आंचलिक उपन्यास का प्रथम प्रयास "रतिनाथ की चाची" का कथाक्षेत्र मिथिला का शुभंकरपुर गाँव है । अन्य जीवित पात्रों में हर पात्र की अपनी अपनी चारित्रिक विशेषताएँ हैं और वे उपन्यास में अपना अलग स्थान भी रखते हैं ।

रतिनाथ की चाची - गौरी

उपन्यास का प्रमुख पात्र हैं रतिनाथ की चाची - गौरी । रूढ़िग्रस्त समाज के अत्याचारों मे त्रस्त और दमित विधवा होने के कारण गौरी ही उपन्यास का प्रमुख पात्र है ।

गौरी के सौन्दर्य का वर्णन लेखक बहुत आकर्षक ढंग से करते हैं[1] । सत्रह साल की आयु में एक कुलीन परिवार के दरिद्र, रोगी वैद्यनाथ से ब्याही गौरी का जीवन गाडी के दो बैल बराबर न होने से जिस तरह इधर-उधर करके आगे बढ़ती है उसी तरह बन जाता है । दो बच्चे-प्रतिभामा और उमानाथ के जन्म के बाद वैद्यनाथ की मृत्यु हो जाती है । प्रतिभामा को सात सौ नकद केलिए अधेड ब्राह्मण को बेच दिया जाता है । गौरी का पुत्र उमानाथ कलकत्ता में कोई नौकरी करता है । स्वाभिमान उसके रग-रग में भरा हुआ है इसलिए पति की मृत्यु के बाद मायके जाकर बसने के माँ के आग्रह को यह कह कर तिरस्कृत करती है कि "विवाहिता केलिए पितृकुल का अमृत भी पतिकुल के माँड या पीने के साधारण जल की तुलना में तुच्छ है[2] ।"

---

1. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ.21
2. वही, पृ.26

उपन्यास के प्रारंभ में गर्भवती गौरी से पाठक का परिचय कराया जाता है । अपने विधुर देवर द्वारा गर्भवती बनी गौरी पूरे समाज में व्यंग्य का पात्र बन जाती है । जिस समाज में विधवाओं को दु:शकुन माना जाता है और सारी सुख-सुविधाओं से वंचित किया जाता है, उस समाज में एक विधवा का गर्भवती बनना सोचने के परे की बात है । चार महीनों से जयनाथ लापता भी है । इन दिनों में उसका एक मात्र सहारा रहा जयनाथ का पुत्र रतिनाथ । जयनाथ के लापता होने से गौरी के आगे डूब मरने को छोडकर और कोई रास्ता नहीं रह जाता । ऐसी मानसिकता-वाली गौरी गर्भपात केलिए अपनी माँ के यहाँ जाती है ।

माँ के यहाँ भी व्यंग्य बाणों की तीव्र चोट उसे सहनी पड़ती है । सब कुछ जानकर भी अनजाने सी आयी भाभियों पर वह सोचती है - "ओ अभागी औरतों ! मुझे क्या हो गया है, यह तुम भली-भाँति जानती हो, तुम्हें रत्ती-रत्ती पता है कि इस तरह का चेहरा एक स्त्री का कब होता है । इस तरह की झेंप, इस तरह का संकोच किसी विधवा की मुखाकृति पर कब छाया रहता है, यह भी तुम भली-भाँति जानती हो । मेरी नियति के साथ क्यों मखौल करने आई हो ।"[1] उसकी मानसिक विषमता एवं असहाय अवस्था इससे स्पष्ट कर देती है ।

सारे जीवन में वह पुत्र के प्यार से वंचित रह जाती है । दुर्गापूजा के समय गाँव में आये उमानाथ से दम्मो फूफी माँ गौरी की कुख्याति के बारे में खुल्लम-खुल्ला कह देती है । पुत्र के हाथों से मार खाने पर भी वह यह सोचकर सब कुछ सह लेती है कि अपने पाप से मुक्त होने केलिए यह मार सहना ज़रूरी है । किसी तरह समझाने पर भी उमानाथ अपनी

---

1 नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ.37

माँ के कुकर्म को भूलता नहीं । चर्खा चलाकर आर्थिक समस्या का समाधान ढूँढने के साथ साथ मानसिक नियंत्रण का अभ्यास भी गौरी केलिए संभव था, उसका भी विरोध उमानाथ द्वारा किया जाता है । बहू के आनेकेबाद इस स्थिति में सुधार का सपना देखनेवाली गौरी का सपना बहू के आने के बाद तितर-बितर हो जाता है । पुत्र वधू कमलमुखी से दम्मो फूफी की काना-फूसी के कारण कमलमुखी चाची की बातों का उल्लंघन करने लगती है । यहाँ तक कि होली के दिन पाँच सेर पुआ-पकवान बनाने की चाची की इच्छा भी पूरी नहीं होती । अपनी बेटी प्रतिभाभा के स्नेह से भी गौरी वंचित रह जाती है ।

चाची संग्रहणी रोग से पीडित हो जाती है । उसकी सेवा शुश्रुषा केलिए कोई नहीं रह जाता । वह यह तिरस्कार सह नहीं सकती । वह मन ही मन सोचती है - "अलक्षित रूप में अपने को बीमार कर लेना, दवा-दारू नहीं करवाना और लगातार कुपथ्य और असंयम करते चले जाना.... इस तरह कोई मरता है तो घरवालों की बदनामी नहीं होती[1] ।" रतिनाथ उसे दवा तो ज़रूर देता है लेकिन डाक्टरी दवा नहीं लेकर मरने का यह अवसर अपने हाथों से जाने देना नहीं चाहती क्योंकि वह जीवन से ऊब उठी है । आषाढ़ कृष्ण पंचमी के दिन चाची की मृत्यु हो जाती है और उसकी अंतिम इच्छा के अनुसार रतिनाथ चाची के मुँह पर अग्नि स्पर्श कर देता है । अपने कारण न हुए पाप का फल जीवन भर भोगकर, शारीरिक और मानसिक रूप से मर कर जीनेवाली चाची की मृत्यु हर एक पाठक के मन में एक कसक पैदा करती है । "क्षोभ, घुटन, निराशा, दुःख, दीनता की व्यथित छाया में अपने जीवन का निर्वाह करती हुई चाची की मृत्यु का दृश्य वास्तव में हृदय विदारक है[2] ।"

---

1. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ.158
2. डॉ. उषा डोगरा - हिन्दी आंचलिक उपन्यासों का लोक तात्त्विक विमर्श, पृ.110

उपन्यास में सभी का ध्यान आकर्षित करनेवाली बात है रतिनाथ और चाची का प्यार । चाची के ऊसर जीवन का एक मात्र सहारा है रतिनाथ । समाज द्वारा तिरस्कृत चाची को यहाँ तक कि समय पर खाना खाने को भी मजबूर कर देता है । रतिनाथ से चाची गौरी के प्यार की गहराई इन शब्दों में स्पष्ट हो जाती है। चौदह वर्ष की आयु में रतिनाथ की शादी तय करने की बात पर वह कहती है - "इस तरह मैं तुम्हें रत्ती का गला काटने नहीं दूँगी । तुम्हारा वह खिलौना मात्र है, परन्तु मेरा ? मेरा वह कलेजा है । उसके साथ खिलवाड मत करो ।"[1] पुत्र के प्यार से वंचित गौरी के मन में रति की याद अमृत-धारा सी सांत्वना दिलवानेवाली बन जाती है । उदास चाची के कंधे या पीठ पर जब रतिनाथ हाथ रखता है तो "असमर्थता या अनाथ की उसकी भावना खटाई पडे दूध की तरह फट जाती । वह महसूस करती कि एक ऊर्जस्वी पुरुष का क्षमताशाली हाथ पीठ पर है, लडका है तो क्या हुआ, मर्द तो है ।"[2] बहू के आने के बाद चाची के घर में रतिनाथ केलिए कोई जगह नहीं रह जाता । गौरी के दुःखपूर्ण जीवन में पुत्र, साथी और सेवक के रूप में रतिनाथ कार्य करता है ।

अशिक्षित होने पर भी समसामयिक राजनीतिक हलचलों की जानकारी रखनेवाली है गौरी । ताराचरण से गौरी की घनिष्ठता से ही यह संभव हो पाता है । गाँव में "किसान कुटी" और किसान सभा केलिए भी वह चन्दा देती है । ताराचरण से वह यह भी जान लेती है - "गरीबों के स्वराज और धनिकों के स्वराज में आकाश पाताल का अन्तर है ।"[3]

---

1. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ.107
2. वही, पृ.131
3. वही, पृ.101

वैसे ही हिटलर द्वारा रूस पर हमला किये जाने पर गौरी की राय में जीत रूस की ही हो जाएगी । गाँव विकास तथा मलेरिया पीडित ग्रामीणों की सेवा में भी गौरी पूर्ण रूप से सहयोग देती है ।

यद्यपि गौरी का चरित्र चित्रण सहानुभूति की प्राप्ति के उद्देश्य से किया गया है, फिर भी उपन्यासकार की दृष्टि की असावधानी इस पात्र के व्यक्तित्व के विकास में पूर्णतया बाधा डालती है । आठ महीने तक गर्भ धारण किये रहना और उसके बाद गर्भपात करना ही इस पात्र का एक मात्र अपराध है । जिसके कलंक से वह हमेशा पीडित और त्रस्त रहती है । अगर विधवा के प्रति सहानुभूति दर्शाना मात्र उपन्यासकार का लक्ष्य होता तो इस तरह के अस्वाभाविक गर्भधारण, अवैद्य संबन्ध और गर्भपात की परिस्थितियों से मात्र की रक्षा की जा सकती थी । विषम परिस्थिति में अप्रत्याशित रूप से होनेवाली किसी घटना की शिकार बनकर वह दु:ख भोगने को बाध्य बन जाती तो उसकी चरित्र की विह्वलता और उसके प्रति हमारे मन में उठनेवाली सहानुभूति पराकाष्ठा को छू ली होती । लेकिन यहाँ ऐसा नहीं हुआ है । लगता है कि उपन्यासकार ने पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार एक विधवा को अवैद्य संबंध की शिकार बनाकर गर्भवती बनाकर आठ महीने तक उस गर्भ को जिन्दा रखकर अंत में शिशु हत्या कराकर स्वयं उस पात्र की हत्या कर डाली है । वैसे आठ महीने के समय तक के बाद गर्भपात कराने से कोई भी स्त्री शायद ही ज़िन्दा रह सकती है । वह भी कोई डाक्टर से नहीं एक गँवारू चमाइन से । वैद्य शास्त्र के नियमों का उल्लंघन कर गौरी के चरित्र को इस तरह प्रस्तुत करना शायद अनपढ़ और अशिक्षित व्यक्ति केलिए स्वाभाविक बन सकता है । अत: आलोचना की दृष्टि से गौरी का चरित्र अस्वाभाविक सा लगता है ।

दूसरी दृष्टि से देखें तो गौरी का चरित्र स्त्री-सहज और मातृ-सहज मान्यताओं के विरुद्ध खड़ा होता है । इतना बड़ा कलंक उठाने के बाद अपने युवा पुत्र के सामने माँ बनकर जीवित रहना किसी भी माँ केलिए असंभव बात लगती है । उसी गौरी को पुत्र के मार-पीट और कुत्सित वचनों का उपकरण बनाकर और बेटेकेपैरों पर माँ को गिराकर पता नहीं उपन्यासकार ने कौन सी "महान साधना" की है जो आलोचना की दृष्टि से गले उतर नहीं पाती । इन सभी बातों के जवाब में "माँ की महत्ता" का सहारा उपन्यासकार ले सकता है लेकिन याद रखना चाहिए कि अपमानित होकर, बेशरम हो कर अपनी अस्मत को बेचकर किसी माँ की ममता इस तरह उसे जीने केलिए बाध्य नहीं कर सकती । इसलिए रतिनाथ की चाची गौरी उपन्यासकार के अपक्व और विकल कल्पना की उपज सी लगती है ।

प्रगतिवादी विचारधारा से गौरी को प्रभावित दिखाकर उस चिन्तन के प्रचार का काम भी उपन्यासकार का लक्ष्य लगता है ।

गौरी की माँ

उपन्यास के स्त्री पात्रों में गौरी के बाद प्रमुख है गौरी की माँ । ग्रामीण वातावरण में जीनेवाली यह अशिक्षित औरत समयोचित संयम के साथ काम करने में निपुण है । मातृ सहज वात्सल्य और बेटी की दु:स्थिति से दु:खी, फिर भी आत्म संयम को न खोनेवाली स्त्री का रूप ही इस पात्र के द्वारा प्रस्तुत किया गया है ।

अपनी विधवा बेटी के बढ़े हुए पेट को देखकर वह दुविधा में पड जाती है "इसका क्या इलाज करूँगी ? और कब तक इस बात को

छिपा सकूँगी[1] ।" लेकिन उसी वक्त वह अपने को संभाल लेती है और गर्भ गिराने केलिए बुधना चमार की औरत से प्रबन्ध भी करती है । अपने दुःखी मन को वह यह सोचकर सांत्वना देती है कि "जिस समाज में हज़ारों की तादाद में जवान विधवाएँ रहेंगी, वहाँ यही सब तो होगा[2] ।"

स्त्री सुलभ मातृत्व की भावना से भरपूर है यह पात्र । इसी भावना के प्रभाव के परिणाम स्वरूप ही गौरी के पेट में स्थिर बच्चे के बारे में वह सोचने लगती है - "ओ अभागे, तुम्हारा क्या कसूर यही चमाइन तुम्हें गाँव के बाहर झुरमुट के अन्दर डाल आयेगी । फिर कुत्ते और सियार नोच-नोचकर तुम्हें खायेंगे जैसे और बच्चे अपनी माँ के पेट से समय पर बाहर आते हैं, तुम उस तरह समय पर गर्भ से बाहर नहीं निकल सकते । तुम्हारे जन्म से प्रसन्न हो, सोहर गाये, ऐसी एक भी औरत नहीं होगी मेरा बस चलता तो[3]

समाज हमेशा गरीब लोगों को दबाता है । पंच और पंडित इन्हीं के शोषण में लगे रहते हैं । समाज से न डरनेवाली गौरी की माँ समाज केलिए "डाकिन" है[4] । बेटी के द्वारा इतनी बदनामी होने पर भी वह किसी से डरती नहीं । गर्भ गिराने के बाद सत्यनारायण की पूजा केलिए की गयी मनौती के अनुसार सारे गाँववालों को आमंत्रित करके पूजा की तैयारियाँ की जाती है । सारे गाँववाले इसमें भाग भी लेते हैं । सिमरिया घाट जाकर प्रायश्चित करने की किसी की राय के सामने वह झुकती नहीं । उसका कहना है "बूँद भर गंगा जल में उतनी ही सामर्थ्य है,

---

1. नागार्जुन-रतिनाथ की चाची, पृ.22
2. वही, पृ.28
3. वही, पृ.23-24
4. वही, पृ.58

जितनी कि सिमरिया घाट की गंगा में । यों कोई कहे तो हमारी बेटी पचीस बार गंगा नहा आने को तैयार है । गो-हत्या, ब्रह्म-हत्या का पाप तो इसने किया नहीं, फिर महज मामूली बीमारी केलिए किसी को इतना बडा दंड मैं कैसे दिलवाती ?"[1]

इस तरह आधुनिक विचारधारावाली पौरुष के साथ सभीका मुकाबला करनेवाली गौरी की माँ विशेष रूप से पाठक का ध्यान आकर्षित करती है ।

इस पात्र के चित्रण में भी त्रुटियाँ दृष्टिगत होती है । गौरी की माँ जो नानी की पीढ़ी की है प्रगतिशील बनकर अपनी बेटी की समस्याओं का बडे पौरुष के साथ समाधान ढूँढ़ निकालती है जब कि गौरी और उसकी बेटी प्रतिभामा प्रगतिशील नहीं दिखाई पडती । अपनी नातिन प्रतिभामा की शादी चालीस वर्ष के अधेड से कराते समय उसकी {नानी की} प्रगतिशीलता न जाने कहाँ छिप जाती है ।

दम्मो फूफी या दमयन्ती

"रतिनाथ की चाची" गौरी के जीवन को नारकीय बनाने के पीछे दम्मो का ही हाथ है । बाल विधवा दम्मो समाज में सम्मानित व्यक्ति विश्वनाथ झा की बेटी होने के कारण हर कहीं उसका मान-सम्मान किया जाता है । दम्मो का महिला परिषद् में वही स्थान है जो अदालत में जज का । व्यंग्यबाण कसने में यह सिद्धहस्त है । इसके व्यंग्य बाणों से काँपनेवाली गौरी केलिए यह "विकराल मुँहवाली राक्षसी" है जिसकी कहानियाँ वह बचपन में अपने नाना से सुना करती थी ।"[2] गौरी की खिल्ली उडाते

1. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ.58
2. वही, पृ.5

समय फूफी को उतना ही आनन्द मिलता है जितना "शिकार को गिरफ्त में करके ब्राह्मिन को ।"[1]

गौरी को अपने पुत्र उमानाथ और बहू कमलमुखी के प्यार से वंचित करने का कार्य दम्मो ही करती है । उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक जहाँ कहीं इसका उल्लेख है वहाँ वह किसी की नुक्ताचीनी करती हुई,काना फूसी करती हुई ही दिखाई पडती है । उपन्यासकार ने दम्मो फूफी का चरित्र एक टाइप के रूप में किया है । प्रत्येक गाँव में इस तरह की महिलाएँ होती है जो दूसरों का अहित करने में लगी रहती है । औरों का कान काटना ही उसका पेशा होता है । समूचे उपन्यास की घटनाओं में गति लाने में और गौरी के जीवन को अधिक कष्टप्रद बनाने में इस पात्र का बडा योगदान है ।

गौण पात्र

"रतिनाथ की चाची" में गौण स्त्री पात्रों की संख्या बहुत है । उनमें गौरी का गर्भ गिराने केलिए बुलाई जानेवाली बुधनी चमाइन की विशिष्ट भूमिका है । बडे जातवालों के कुकर्मों को वह साफ साफ यों बता देती है - "एक बात कहती हूँ, माफ करना, बडी जातवालों की तुम्हारी यह बिरादरी बडी मलिच्छ, बडी निठुर होती है मलिकाइन । हमारी भी बहू-बेटियाँ राँड हो जाती है, पर हमारी बिरादरी में किसी के पेट से आठ-आठ नौ-नौ महीने का बच्चा निकालकर जंगल में फेंक आने का रवाज नहीं है । ओह, कैसा कलेजा होता है तुम लोगों का"[2] जाति-पाँति की

---

1. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ.4
2. वही, पृ.23

तीव्र भावना में बंधकर रहनेवाले समाज की एक अछूत नारी द्वारा यह कहलाकर नागार्जुन ने वास्तव में बडे जातवालों के अहं पर कुठाराघात किया है ।

उमानाथ की पत्नी कमलमुखी दम्मो फूफी के चंगुल में फंसकर सास को अनदेखा करती है और उसकी बातों को नहीं मानती । श्रेष्ठ आचरणों की कल्पना में डूबी सास को बेहद दुःख पहुँचाती है और दुश्मन के प्रति जैसा आचरण करने लगती है ।

भोला पण्डित की बेटी बागो, "सज्जनता की मूर्ति"[1] पण्डिताइन, जयनाथ की विधवा बहिन सुमिता, उसकी देवरानी चन्द्रमुखी, जयनाथ से संबन्ध रखनेवाली तेलिन, विधवा गृह की सुशीला, महिला परिषद् की शकुन्तला, जनकिशोरी आदि गौण पात्र भी उपन्यास की अनेक कड़ियों को एक सूत्र में बाँधने केलिए सहायक सिद्ध होती हैं ।

पुरुष पात्र - रतिनाथ

इस उपन्यास के पुरुष पात्रों में प्रमुख चरित्र है रतिनाथ का । गौरी के विधुर देवर का मातृहीन लड़का है रतिनाथ । मातृहीन रतिनाथ को एक माँ का प्यार गौरी से ही मिलता है । चाची और रति एक दूसरे से बहुत प्यार करते हैं । पिछले चार महीनों से जयनाथ लापता है । जिससे दोनों के बीच ममता और प्यार का रंग और गाढ़ा हो जाता है ।

---

1. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ.46

चाची को दुःखी देखना वह कभी भी सह नहीं सकता ।
चाची के नहीं खाने से वह भी खाना न खानेकाहठ करता है । यहाँ तक
कि गौरी को हमेशा रतिनाथ के प्यार के आगे सिर झुकाना पड़ता है ।
चाची से उसका प्यार इतना घनिष्ठ है कि चाची के बारे में कोई कुछ
कहता तो उसका ठीक उत्तर दिए बिना लौटना उसकेलिए असंभव हो जाता है

माँ की थोड़ी सी याद ही रतिनाथ को है वह भी पिता
द्वारा माँ की गर्दन रेतने की घटना की । तीन साल की आयु में घटित
इस घटना से रतिनाथ के मन में पिता के प्रति प्रति-हिंसा भाव घर कर
जाता है । जब कभी यह भाव जागृत हो उठता है तो वह तनी भौंहों
और चढ़ी आँखों से अपने पिता को घूरकर देखने लगता है ।

अपने पिता के प्रति रतिनाथ के मन में ज़रा भी प्यार नहीं है ।
पिता का जीना या मरना उसकेलिए बराबर है । "रतिनाथ अपनी
चाची केलिए जान तक देने केलिए हाज़िर रहता है । पिता के प्रति उसकी
भक्ति या श्रद्धा बिल्कुल दिखावटी थी । हृदय से वह चाची को ही बाप
और माँ सब समझता था"[2] । पिता के कारण अंग्रेज़ी पढ़ने की उसकी इच्छा
पूर्ण नहीं हो पाती । क्रोधी पिता के डर से कभी कभी मुस्कुराना भी
उसकेलिए असाध्य बन जाता है ।

पढ़ाई केलिए चाची के भाई के साथ मोतिहारी जाना रतिनाथ
केलिए जेल जीवन से मुक्ति लगती है । मोतिहारी के जीवन के सबसे पहले
दिन ही उसे सूर्यदेव से बुरा अनुभव ही मिलता है । संस्कृत प्रेमी ज़मीन्दार के

1· नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ·30

2· वही

लड़के को पढ़ाने केलिए जानेवाला रतिनाथ अपने पिता के कट्टर नियंत्रण के बिलकुल खिलाफ स्वच्छन्दता का अनुभव करता है । लेकिन इस स्वच्छन्द वातावरण और कुसंगति का बुरा प्रभाव पड़ता है जिससे वह पढाई के प्रति अरुचि दिखाता है । वह अप्राकृतिक व्यभिचार का शिकार बन जाता है और पढाई भी पूरी नहीं कर सकता । "यह चस्का रत्ती का इतना बढ़ा कि विद्यालय के हम उम्र या छोटे लड़कों पर उसकी भूखी आँखें अक्सर मंडराया करतीं । उसे ख्याल आता कि पाठशालाओं और विद्यालयों में लड़कों के साथ लडकियाँ भी पढने आती तो कैसा अच्छा रहता ।"[1] आज तक जिस पिंजरे में वह पड़ा था उससे मुक्ति पा कर उस बाल मन में इच्छानुसार जीने का मोह पैदा होता है । यहाँ न कोई दण्ड देनेवाला है और न नियंत्रित करनेवाला । इन दिनों में घर जाने की इच्छा भी उसे नहीं होती । अवश्य चाची की याद उसे क्षण भर केलिए दुःखी बना देती । धीरे धीरे उसके चरित्र में सुधार दिखाई पडने लगता है ।

चाची के अंतिम दिनों में परीक्षा के बीचों बीच भी वह चाची की सेवा केलिए पहुँच जाता है और चाची की इच्छानुसार मृत्यु के बाद रत्ती ही मुखाग्नि देता है ।

मातृहीन, पितृ वात्सल्य से वंचित एक ग्रामीण बालक का अपनी चाची के प्रति लगाव सचमुच हृदय द्रावक है । उसके द्वारा किये जानेवाले आचरण परिस्थिति जन्य है । जीवन भर प्रेम से वंचित, गरीबी की गर्त मे आया रतिनाथ, ज़मीन्दार के घर के पकवान खाकर अपने में एक नई स्फूर्ति का अनुभव करता है ।

---

1. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ.127

"रतिनाथ की चाची" उपन्यास का प्रमुख पुरुष पात्र रतिनाथ ही है । इस पात्र की सृष्टि सोद्देश्य परक है । जहाँ चाची जैसे स्त्री पात्र की सृष्टि कर बेहद व्यथाओं का शिकार बनाकर उपन्यासों के पृष्ठों को अश्रुओं से भरपूर करने का प्रयास उपन्यासकार ने किया है वहाँ उस स्त्री के अस्तित्व का सहारा प्रस्तुत करना भी आवश्यक था । इस आवश्यकता की पूर्ति केलिए रतिनाथ की सृष्टि अनिवार्य थी । बेसहारा औरत को पुत्र सहज वात्सल्य प्रदान कर थोडे समय केलिए जीने का सहारा देना उसका काम था । चाची के मृत्यु के साथ इस पात्र की प्रासंगिकता भी नष्ट हो जाती है । लेकिन यहाँ सवाल बाकी रह जाता है कि किशोरावस्था को पार करने के बावजूद भी चाची को शाश्वत जीवन की प्रेरणा देने में वह क्यों असफल रह जाता ?

जयनाथ

उपन्यास के प्रधान पात्र गौरी के जीवन को दुःख की गाथा बनाने का एक मात्र कारण जयनाथ है । सारे दुर्गुणों से युक्त जयनाथ अपनी पत्नी की मृत्यु का कारण भी बन जाता है । पत्नी से रूखा व्यवहार करनेवाला जयनाथ अपनी भाभी से "छुलछुल कर बातें करता हुआ पाया जाता है ।"[1]

अनेक औरतों से यह अनैतिक संबन्ध रखता है । अनेक बार इसके विषैले प्रभाव से मुक्त होने पर भी एक बार गौरी को इसके आगे हारना पड़ता है । गौरी को गर्भवती जानकर वह उधर से काशी भाग जाता है

---

1. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ.30

औरतों से संबन्ध स्थापित करने केलिए झूठा बहाना बनाकर वह काशी के विधवा गृह में जाता है। विधवा गृह की सुशीला नामक विधवा के साथ वह घूमने लगता है। वहाँ से गाँव लौटनेवाला जयनाथ एक तेलिन से संबन्ध स्थापित करता है। इसी पांत में आती है उसकी बहिन की विधवा देवरानी भी।

अपने पुत्र रतिनाथ से वह कभी भी प्यार से व्यवहार नहीं करता। ज़मीन पर पानी ढकेलने की बात हो या पेड पर चढने की वह अपने बेटे को खूब पीटता है। उस छोटे से बालक को रसोई का सारा काम भी करना पडता है। अंग्रेज़ी पढने की रतिनाथ की इच्छा को वह यह कह कर ठुकरा देता है कि "क्या करना है अंग्रेज़ी पढ़कर, क्रिस्तान बनना है[1]। वह अपने पुत्र को मानसिक विकास केलिए आवश्यक खेल-कूद से भी दूर रखता है

एक ब्राह्मण के रूप में जनम लेने पर उसे गर्व है। "पूजा-पाठ, गप-शप, सैर-सपाट, बाबा वैद्यनाथ, बाबा विश्वनाथ, दुर्गा-तारा-काली-इनकी चर्चाओं के अतिरिक्त यदि और कोई वस्तु जयनाथ को प्रिय थी, वह थी विजया बनाम भंड़्ग भवानी[2]।"

महाजन बनने की अभिलाषा में सारी जायदाद बेचकर कजरौटा और सादा कागज़ लेकर बैठनेवाला जयनाथ बादाम और बीज की दुधिया भांग के आगे अंगूठे के निशान के बिना ही रुपये देदेता है। इस तरह दो सौ रुपये वह डुबो देता है। "बाकी भांग, माजून, घी, दूध, मछली, मांस और प्रेयसी के पीछे लगा देता है[3]।

---

1. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ.34
2. वही, पृ.32
3. वही, पृ.131

इन सभी दुर्गुणों के होते हुए भी कभी कभी उसकी आत्म ग्लानि स्पष्ट हो जाती है । भाभी को गर्भवती जानकर लापता होनेवाला जयनाथ जब गाँव लौटता है तो अपने किए पापों को तारा बाबा से कह देता है और गौरी का गर्भ गिराने केलिए एक यंत्र बनवाता है । यंत्र बनवाने केलिए भोज पत्र की ढूँढ में पण्डिताइन के पास गये जयनाथ के ध्यान में जब उसके किये अपराधों की बात लायी जाती है तो उसकी आँखें भर आती है और गौरी के बारे में वह सोचने लगता है - "उमानाथ की माँ । तुम इतनी सुन्दर क्यों हुई ? पूर्व जन्म के किस अभिशाप से वैधव्य का यह दुर्वह भार ढो रही हो ? मेरी कृतघ्नता को, देवि, कभी क्षमा मत करना···।[1]

अपने परिवार के प्रति ज़रा भी लगाव न रखनेवाले, स्त्रीयों की ओर अपनी लालसा की पूर्ति केलिए भटकनेवाले के रूप में ही जयनाथ का चित्रण हुआ है । इस पात्र को हम कथा का उद्गम स्थान भी कह सकते हैं । क्योंकि इससे गौरी के गर्भधारण से लेकर घटती घटनाएँ ही उपन्यास की कथावस्तु है ।

इस उपन्यास में जयनाथ का चरित्र चित्रण एक खलनायक के रूप में हुआ है । गाँव की सुन्दर स्त्रियों को और इधर-उधर की विधवाओं को अपनी वासना का शिकार बनाना जयनाथ का पेशा सा लगता है । लगता है कि गाँव में उसका मुकाबला करनेवाला कोई पुरुष है ही नहीं । निडर होकर अपना मन मनापन दिखानेवाला यह पात्र कहीं कहीं आत्मग्लानि में भी पीड़ित हो जाता है । जयनाथ उतने ही अपराध करता है जितना उपन्यास की गति को बढ़ावा देने केलिए आवश्यक है । जयनाथ नहीं होता तो

1· नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ·45

-34049-

रतिनाथ की चाची की व्यथा भी नहीं होती, न रतिनाथ ही अपनी चाची के प्रति इतना स्नेह दिखाता । परोक्ष रूप में जयनाथ ने दो पात्रों की सृष्टि की है रतिनाथ और उसकी चाची की ।

उमानाथ

रतिनाथ की चाची गौरी का एक मात्र पुत्र है उमानाथ । "जिद्दी, गुस्सैल और पढ़ने में मंद" उमानाथ अपने मामा के घर में रहकर पढ़ने लगता है । वहाँ से घर छोड़कर भागनेवाला उमानाथ एक के बाद एक होकर अनेक पेशे बदलता रहता है और अंत में ट्राम ड्राइवर बन जाता है । मेहनत से कमाये पैसे से वह पिता द्वारा गिरवी रखी गयी ज़मीन छुड़ा लेता है और शादी केलिए तीन सौ रुपये भी लेकर आता है ।

उमानाथ के चरित्र की विशेषता यह है कि अपनी माँ द्वारा किये गये पाप को वह कभी भूलता नहीं । दुर्गापूजा केलिए गाँव आये उमानाथ दम्मो फूफी अपनी माँ की सारी बदनामी सुना देती है । क्रुद्ध उमानाथ अपनी माँ को पीटता है और वक्त बेवक्त वह अपनी माँ को रुलाने में आनन्द पाता है । वह अपनी पत्नी को भी माँ से कोसों दूर कर देता है । उमानाथ के व्यवहार से दुःखी होकर ही उसकी माँ की मृत्यु जल्दी हो जाती है ।

उमानाथ के मन में माँ के प्रति घृणा और प्रतिशोध की भावना स्थायी रूप से रहती है । एक ओर देखें तो इतनी घृणा का कारण यह है कि बचपन से ही गाँव से मीलों दूर परिवार केलिए मेहनत करके लौटते वक्त

सबसे पहले माँ की बदनामी ही वह सुन लेता है । यद्यपि उसकी माँ यह पाप अपनी इच्छा से नहीं करती है तथापि वह युवक यह बदनामी सह नहीं सकता ।

उमानाथ के चरित्र की यह कमी है कि वह अपनी माँ के प्रति अधिक अनुदार है । परिस्थितियों को पहचानकर संयम के साथ व्यवहार करने में वह असफल रहता है । माँ को माँ का जो महनीय स्थान है उसको वह कभी भी समझ नहीं पाता, न माँ की ममता ही उसके उस व्यवहार में परिवर्तन लाने में सहायक बन जाती है । पत्नी के साथ रहकर माँ के प्रति अत्याचार करनेवाला उमानाथ परोक्ष रूप में माँ का हत्यारा ही बनता है ।

तारीचरण

गाँव में किसानों का नेता तारा चरण नई चेतना का प्रतीक है । गाँववालों को सम्सामयिक हलचलों से अवगत करानेवाला तारीचरण इस उपन्यास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । दैनिक "आज" का ग्राहक और समझदार तारीचरण अपने ज्ञान को दूसरों तक भी पहुँचाता है । नागार्जुन ने अपनी विचारधारा के वाहक के रूप में ही तारीचरण की सृष्टि की है । "तारीचरण ग्राम समाज में नए नेतृत्व के उभरने का संकेत है ।"[1]

---

1. सं. सुरेन्द्र त्यागी - नागार्जुन (लेख) ग्रामांचल की क्रान्ति चेतना - नारायण शर्मा "सुमित्र", पृ.110

गौण पुरुष पात्र

गाँव के बुढ्ढे और अपाहिजों को अपनी शादी का एक मात्र आश्रय है भोला पण्डित । इनकी सहायता से वे कलियाँ जैसी बालिकाएँ प्राप्त करते हैं । ग्रामीण परिवेश में यह पात्र बहुत सार्थक लगता है ।

खवास होकर भी गायत्री मंत्र जाननेवाला कुल्ली राउत व्यावहारिक और ज्ञानी है ।

ज़मीन्दार दुर्गा नन्दन सिंह, रोज सुबह शाम बीस-पचीस बार ज़ोर से माई तारा करने वाला तारा बाबा, रतिनाथ का साथी सत्तो, गौरी के भाई जय किशोर आदि छोटे-छोटे पात्रों से "रतिनाथ की चाची" की कथा में पूर्णता आ जाती है । वैसे रतिनाथ की चाची का परिवेश आंचलिक है और इस कारण इस अंचल विशेष में रहनेवाले सीमित लोगों की ज़िन्दगी के बीच से गुज़रना ही उपन्यासकार का लक्ष्य है । इसमें आनेवाले पात्रों को हम किसी वर्ग या टाइप के अंदर कम ही रख पाते हैं । हर पात्र अपने वैयक्तिक विशेषताओं से उपन्यास के अनुरूप रूप स्वीकार करके आते हैं । पात्र चित्रण की अस्वाभाविकता प्रमुख रूप से दो पात्रों में झलकती है । एक गौरी की माँ के विचार उसकी शिक्षा और पारिवारिक संस्कारों के अनुकूल नहीं रहते । लगता है कि उपन्यासकार उस पात्र के अंदर अपने ही विचारों को प्रतिबिम्बित कर रहे हैं और उसको इतना अधिक प्रगतिशील बना रहे हैं ।

दूसरी बात गौरी के चरित्र में दिखाई पड़ती है । अनैतिक संबन्धों की शिकार बनने के बाद गर्भ के टिकने के बाद तुरन्त कोई कार्रवाई करके गौरी अपने सम्मान की रक्षा कर सकती थी । ऐसा न कर आठ

महीने तक उसको पालकर आठवें महीने में गर्भपात की बात सोचनेवाली गौरी की मानसिकता समझ में नहीं आती । विशेषकर जब जयनाथ जैसे व्यक्ति से उसकी जिम्मेदारी स्वीकारने की संभावना नहीं थी, तब इस तरह का आचरण करना उस पात्र की सबसे बड़ी कमज़ोरी है जो इस उपन्यास का सबसे दुर्बल पक्ष है । इसलिए चरित्र चित्रण की दृष्टि से नागार्जुन को सफलता मिली है ऐसा नहीं कहा जा सकता ।

जहाँ तक पुरुष पात्रों का संबन्ध है वहाँ भी ऐसी अस्वाभाविकता खटकती है । जयनाथ खलनायक का प्रतीक बनकर "टाइप" के रूप में आता है तो रतिनाथ भी अपनी परिस्थितियों से ऊपर नहीं उठ पाता । चाची के मन में जीवन की नई प्रेरणा भरने में वह असमर्थ रह जाता है । इतने निकट से पहचानने के पश्चात् भी चाची की मानसिकता को वह थोड़ा भी पहचान नहीं पाता । उधर उमानाथ भी एक व्यक्तित्व रहित पात्र ही लगता है । अपनी माँ को बेहद कष्ट पहुँचानेवाला पुत्र कभी भी यह समझ नहीं पाता कि अपराध भी कहीं क्षम्य होता है ।

ग्राम चेतना के विविध आयाम

सामाजिक आयाम

परिवार का बदलता स्वरूप "रतिनाथ की चाची" में

परिवार समाज की आधारभूत इकाई है । भारतीय परिवार के सदस्यों के बीच जो घनिष्ठता होती है वह विश्वभर में मशहूर है । लेकिन यह पारस्परिक संबन्ध अब टूटने लगा है । संयुक्त परिवार छोटी-छोटी इकाईयों में बंटने लगा है । परिणाम स्वरूप पति-पत्नी, पिता-पुत्र और सन्तानों का संबन्ध भी शिथिल होते दिखाई पड़ता है । "रतिनाथ की चाची" में संबन्धों का यह शैथिल्य द्रष्टव्य है ।

माँ के बाद भाभी ही परिवार की नायिका है या माँ के बाद माँ है भाभी । बदलते जीवन मूल्यों के साथ इस संबंध को हानि पहुँचाई गयी है । "रतिनाथ की चाची" में विधुर जयनाथ अपनी विधवा भाभी से अनैतिक संबंध स्थापित करके रातों रात उसे प्रलोभित करता है । कई बार इसके हाथों से फिसलकर मुक्त होने पर भी एक बार उसे हार माननी पड़ती है । भाभी को गर्भवती जानकर वह भाग जाता है ।

गौरी का पुत्र उमानाथ आधुनिक पीढ़ी की कृत्रिमता का उदाहरण प्रस्तुत करता है । अपनी माँ द्वारा किये गये कार्यों को वह कभी भूलता नहीं । वह अपनी माँ की हर बात पर कोई न कोई शिकायत अवश्य करता है । वह न अपनी माँ को एक कौड़ी भेजता है और न अपनी माँ द्वारा चर्खा चलाना पसन्द करता है ।

सास-बहू संबंध की ऊष्मा भी जाती रही है । गौरी अपनी पुत्र-वधू की कल्पना में खोई खोई रहती है । लेकिन पुत्र वधू कमल मुखी के घर आते ही उसे अपने पुराने अधिकारों से हाथ धोना पड़ता है । यहाँ तक कि बहू उससे बोलती भी नहीं । गौरी की पुत्री प्रतिभामा भी माँ को नहीं मानकर भाभी का समर्थन करती रहती है ।

बदलते रिश्ते-नातों के साथ गाँव के पारिवारिक जीवन में व्याप्त अशांति और कलहपूर्ण वातावरण का सच्चा चित्रण इस उपन्यास में है । उमानाथ पर केन्द्रित अपनी आशा तितर-बितर होते देखकर माँ गौरी टूट जाती है ।

नारी की परिवर्तित भूमिका

स्वतंत्रता के पूर्व भारत में नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय रही। अशिक्षा और अर्थाभाव के कारण नारी शोषण एक साधारण बात रही है। अनमेल विवाह और दहेज प्रथा इसके दो पहलू रहे हैं। आज़ाद भारत में नारी की स्थिति मज़बूत होने लगी तो भी ग्रामीण परिवेश में ज्यों कि त्यों रही और नारी कुप्रथाओं की शिकार बनती रही।

गौरी का विवाह एक दरिद्र, रोगी ब्राह्मण से हो जाता है। असन्तुष्ट दाम्पत्य जीवन के परिणाम स्वरूप दो संतानों की उत्पत्ति होती है प्रतिभामा और उमानाथ। इसके साथ ही वैधव्य का बोझ भी उस पर आ पडता है। सत्रह साल की आयु में चालीस साल के अधेड ब्राह्मण से सात सौ नकद लेकर प्रतिभामा को बेचा जाता है।

विधवा गौरी अपने देवर जयनाथ द्वारा गर्भवती हो जाने से समाज द्वारा बहिष्कृत की जाती है। रूढ़िग्रस्त समाज में प्रगतिशील विचारधारावली गौरी की माँ दूसरों की परवाह किये बिना अपनी बेटी के गर्भ गिराने का प्रबन्ध यह कह कर करती है कि "कोई क्या कर लेगा हमारा बिटिया को मैं प्याज की तरह जमीन के अन्दर दबाकर नहीं रख सकती, इसके चलते जो कुछ हो। मेरे जीते जी गौरी मुसलमान या सिक्ख के घर जाने को मजबूर नहीं की जा सकती [1]।"

उपन्यासकार विधवाओं के प्रति एक विशेष दृष्टि अपनाने लगते हैं। यह दृष्टि विधवाओं के प्रति सहानुभूति उत्पन्न कराना मात्र है।

1. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ.28

विधवा के भविष्य के लिए कोई सुझाव या सुधार शायद उनका विषय नहीं है ।

अन्य भारतीय ग्रामीण समाज की तरह अनमेल विवाह के अभिशाप से "रतिनाथ की चाची" उपन्यास का ग्रामीण समाज बचता नहीं । ग्रामीण समाज की इन प्रथाओं के विरुद्ध आवाज़ उठाने का प्रयास आंचलिक उपन्यासकारों ने किया है । बारह - तेरह बरस की बालिकाओं को लूले, लंगडे बूढ़ों के साथ जीवन यापन करना पड़ता है । शंकरपुर गांव में अनमेल विवाह का संयोजक है भोला पण्डित ।

शंकरपुर गांव की "महिला परिषद्" का वर्णन इस उपन्यास में है । अधिकतर सदस्याएँ अशिक्षित होने के कारण विकासशील योजनाओं की जगह पर ये दूसरों की कमज़ोरियों की आलोचना में लग जाती हैं ।

समाज में कहीं कहीं नारी के जीवन में विकास अवश्य आया है फिर भी ग्रामीण जीवन की कुप्रथाओं और पिछडेपन की कोई शाश्वत मुक्ति संभव नहीं हो पाती है ।

नैतिक मूल्य

आधुनिकता के साथ होनेवाले भटकाव के कारण नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन हो जाता है । क्षण क्षण में परिवर्तित जीवन ने यौन-चेतना को नया सन्दर्भ प्रदान किया है । अपने शारीरिक भूख के आगे रिश्ते-नातों की घनिष्ठता मूल्यहीन बन जाती है । उपन्यास का जयनाथ शारीरिक भूख की मिटाव का शिकार अपनी भाभी को बनाता है । शहरों की अपेक्षा गांवों में विधवाओं की संख्या अधिक है । रूढ़िग्रस्त ग्रामीण जनता हमेशा विधवा विवाह की कट्टर विरोधी रही है । परिणाम स्वरूप ग्रामीण विधवा

आजीवन वैधव्य के बोझ को ढोने केलिए अभिशप्त है । नारकीय जीवन बितानेवाली विधवा की दमित कुण्ठाएँ अवसर पाकर जागृत हो उठती हैं ।

समाज में विधवाएँ कभी शांतिपूर्ण जीवन बिता नहीं सकती । हमेशा दो भूखी आँखें उनका पीछा करती है । काशि के विधवा गृह की सुशीला पति के निधन के बाद अनेक कष्टों को झेलती हुई घर छोडती है और एक दो पुरुषों के हाथों से होकर अब विधवा गृह में रहने लगती है । विधवा गृह के निर्माता सज्जन की पोल खोलकर सुशीला बताती है "उस धनी सज्जन का नाम मैं तुम्हें नहीं बताना चाहती जिसका हृदय हम विधवाओं के प्रति करुणामय है - इतना करुणामय कि तीन-तीन विवाहिताएँ और पाँच-पाँच रखैलियाँ रहते हुए भी चूडियों से सूनी कलाई की ओर ललचाई हुई निगाह से देखा करता है ।"[1]

विधवा चन्द्रमुखी अपनी अपूर्ण इच्छाओं की पूर्ति जयनाथ के द्वारा करती है । समाज में कई अपनी वासनाएँ दमित रखती है तो कई महिलाएँ उकसाये जाने पर अपना रास्ता खो बैठती है । एक गौरी या सुशीला की यह मजबूरी नहीं, भारतीय विधवाओं की हमेशा यही स्थिति रही है ।

जातिवाद

जातिगत असमानता और उससे सम्बन्धित अन्य समस्याओं का वर्णन "रतिनाथ की चाची" में है ।

---

1. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ.85-86

सत्तर साल का खवास कुल्ली राउत बहुत समझदार और व्यावहारिक आदमी है । यहाँ तक कि उसे "गायत्री" भी मालूम है । लेकिन वह जमाना ऐसा रहा कि जो चीज़ मात्र ब्राह्मणों केलिए मानी जाती थी उसे एक शूद्र जान लें यह असहनीय बात है । जयनाथ कुल्ली राउत पर अपना क्रोध यों प्रकट करता है - "साले की चमड़ी उधेड लूँगा । शूद्र है तो शूद्र की भाँति रहे ।"

अँग्रेज़ी को क्रिस्तान की भाषा समझी जानेवाले समाज में रतिनाथ को अँग्रेज़ी पढ़ने का मौका नहीं मिल पाता ।

हर छोटी मोटी बात पर गाँव के लोग जाति की मुहर लगा देते हैं और उसी के आधार पर नुक्ताचीनी करने लगते हैं । उदाहरण केलिए जयदेव की पुत्र वधू के यहाँ से लायी मिठाइयाँ खाने केलिए शुभंकरपुरवाले इनकार इसलिए करते हैं कि लोगों ने पहले ही कहा है कि यह वधू बंगालिन है और उसका पिता ईसाई ।

भारतीय गाँव की सारी विशेषताएँ शुभंकरपुर समाज में विद्यमान है । रूढ़िग्रस्त, परम्परा पर अधिष्ठित गाँव के बदलते रूप को, बदलते रिश्ते-नातों को नैतिक मूल्यों को सही सलामत उभारने में नागार्जुन सफल हुए है ।

आर्थिक आयाम

यद्यपि शुभंकरपुर गाँव की आर्थिक स्थिति का पूर्ण रूप उभर कर नहीं आता है तथापि जहाँ वहाँ प्राप्त झलकियों से आर्थिक स्थिति की रूप रेखा हमारे सामने उभरने लगती है ।

नागार्जुन के ही शब्दों में "शुभंकरपुर की कुल उपजाऊ जमीन का रकबा तीन सौ बीघा था। ढाई सौ बीघा धान के खेत थे, ढाई सौ बीघा रबी और भदई के थे। इसके अलावा आमों के बाग, बाँसों के जंगल, तालाब, गोचर आदि केलिये पचास बीघा और पड़ते थे। ढाई सौ परिवारों की आबादी, खानेवाले मुँह ग्यारह सौ। साफ है कि गरीब ही अधिक थे।"[1]

अभाव का एक दुःखद चित्रण नागार्जुन यों प्रकट करते हैं "अब तक करीब आठ नौ घंटे खाने की यह सामग्री खुली पड़ी थी। सैकड़ों मक्खियाँ इससे परितृप्त हुई होंगी। जौ - मकई-मडुआ की रोटी खाकर तंग आये हुए मुखरों के बच्चे देखते ही इस पर टूट पड़ेंगे, चाट-पोंछकर थाली साफ कर देंगे। मुखरों, उसकी सास, उसका घरवाला, सब ललचाई निगाहों से उस दृश्य को देख भर सकेंगे।"[2]

गौरी जैसी औरतें चर्खा चलाकर पैसा कमाती हुई अपनी आर्थिक समस्याओं का समाधान करती है। लेकिन चर्खा-संघवाले चलाकी से इन औरतों का शोषण करते हैं। गाँव में सामाजिक प्रगति केलिए स्थापित संस्थाएँ ही गाँववालों का शोषण करती हैं। बेरोजगारी से पीड़ित समाज का उद्धार आज़ादी के बाद भी नहीं दिखाई पड़ता।

राजनीतिक आयाम

स्वाधीन भारतीय गाँव पर राजनैतिक परिवर्तनों का सीधा प्रभाव यद्यपि कम देखा जाता है फिर भी गाँव की राजनीति राष्ट्रीय राजनीति से बहुत दूर नहीं रही। गाँव कभी भी समसामयिक हलचलों से कट नहीं सकता। नागार्जुन ने भी आग्रह पूर्वक "रतिनाथ की चाची" में

---

1. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ.12
2. वही, पृ.27

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बदलाव से प्रभावित गाँव का वर्णन किया है ।

आज़ाद भारत में ज़मीन्दारी प्रथा अस्त हो जाती है । उनके शोषण से अवगत साधारण जनता ज़मीन्दारों से बदला लेने लगती है । ज़मीन्दार लोग अपने हाथों से अधिकार फिसलता हुआ देखकर दंग रह जाते हैं । ज़मीन्दार राजा बहादुर जीतने की आशा से चुनाव लड़ता है लेकिन हार जाता है । इसके बाद भी वह चुप बैठनेवाला नहीं है । अपनी मानसिक व्यथा को वह कांग्रेसी मंत्रियों पर पटक देता है । परम्परा की दुहाई देकर वह कांग्रेसी मंत्रियों को धमकी देते हुए कहता है - "आप का खादी का कुर्ता पहले हम अपने खून से तर कर देंगे, उसके बाद जाकर ज़मीन्दारी प्रथा उठा दीजियेगा[1] ।"

गाँववालों का विश्वास है कि खुशामद से और अवसरवादियों से काम निकालना कांग्रेसियों का उद्देश्य होता है । दो नावों में पैर रखकर आगे जाना वे जानते हैं । "मंत्रियों ने अपनी पीठ कर दी किसानों की ओर, मुँह कर दिया जमींदारों की ओर । दुनिया भर में बदनामी फैल गई कि बिहार की कांग्रेस पर जमींदारों का असर है[2] ।"

शुभंकरपुरवालों में उद्भूत नवीन भावक्रान्ति का उद्घाटन "रतिनाथ की चाची" में किया जाता है । किसान संगठित होकर नारे लगाते हैं "कमानेवाला खाएगा, इसके चलते जो कुछ हो[3] ।" बलुआहा पोखर के किनारे पर किसान कुटी की स्थापना की जाती है । हर कहीं

1· नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ·94

2· वही, पृ·94

3· वही

संघर्ष का वातावरण छा जाता है । "सभा, जुलूस भूख हड़ताल । दफा एक सौ चौवालीस, गिरफ्तारी, सजा, जेल, आदि से किसानों में प्रज्वलित अग्नि को बुझाने का प्रयत्न किया जाता है ।[1]

किसानों का नेता बनता है युवा-पीढ़ी का ताराचरण जो विश्व भर की राजनीतिक हलचलों से ग्रामीण लोगों को अवगत कराता है । हिटलर द्वारा रूस पर हमले की बात पर रतिनाथ की चाची अपनी राय भी व्यक्त करती है[2] । युगीन भाव बोध से प्रभावित ताराचरण की आज्ञा को मानकर ग्रामीण लोग ज़मीन्दार के यहाँ नाटक देखने केलिए भी नहीं जाते हैं ।

स्पष्ट है कि शुभंकरपुरवाले अवश्य ही बदलती राजनीतिक हलचलों से प्रभावित हैं और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी । लेकिन यह कहना मुश्किल है कि पूर्ण रूप से यहाँ के लोग जागरूक हैं यद्यपि उपन्यासकार यह कहना चाहते हैं । वैसे ऐसी कोई परिस्थिति भी नहीं जहाँ लोगों की राजनीतिक चेतना कर्मशील हो उठे । लेकिन उपन्यासकार इतना कहकर संतोष का अनुभव करता है कि यह गाँव राजनीतिक दृष्टि से जागरूक है ।

धार्मिक व सांस्कृतिक आयाम

शुभंकरपुर की धार्मिक व सांस्कृतिक परिस्थितियाँ एक सीमा तक आधुनिक जीवन के प्रबोधों से, बदलते हुए मूल्यों से प्रभावित सी लगती है इस गाँव का जीवन इतना परिवर्तित लग रहा है कि मनुष्य और देवता के बीच जो मध्यस्थ था उसका स्थान महत्वहीन बन गया है । भक्ति का स्वरूप भी बहुत अधिक परिवर्तित हो गया है । धार्मिक आचरण केवल बाह्याडम्बर का साधन मात्र रह गया है ।

1· नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ·95
2· वही, पृ·167

तरकुलवा जाते वक्त बडी फुर्ती से सन्ध्या वन्दना करनेवाले रतिनाथ से कुल्ली राउत कर्म धर्म में हडबडी नहीं दिखाने की बात करता है। लेकिन रतिनाथ के अनुसार "अरे, यहाँ कौन देखता है? देखना चलकर तरकुलवा में घंटा भर नाक न दबाये रहा, तो जो कहो।"[1] वह इसे धार्मिक आडम्बर मात्र ही मानता है।

वैसे ही जनयाथ अपने घर में पूजा-पाठ केलिए मुश्किल से आधा घंटा लगाता है जबकि दूसरों के यहाँ घंटों बैठकर पूजा करता है।

गाँववालों में प्रचलित अन्धविश्वासों और अनाचारों का भी स्पष्ट चित्रण उपन्यास में है। इनके विश्वास के अनुसार आसमान पर केवल एक तारा देखना अशुभ है। गौरी की माँ एक तारे को देख कर उसके दोष निवारण केलिए प्रार्थना करती है।[1] गौरी का "अवांछित गर्भ" गिराने केलिए ताराबाबा से भगवती त्रिपुरसुन्दरी का पंचाक्षर मंत्र भोजपत्र पर लिखवाकर देने का कार्य जयनाथ करता है। भांग के भक्त ताराबाबा के पास मन की शांति केलिए जयनाथ जाया करता है। शिवजी का वाहन मानने के कारण बैल पर चढ़ने को शंकर बाबा इनकार करता है।

आस्था की कमी और कर्म को एक प्रकार के दिखावे से ओढ़ने की प्रवृत्ति भी लोगों में दिखाई पडती है। जयनारायण के ज़मीन के सत्याग्रही ब्राह्मण की मृत्यु पुलीस के साथ लडाई में हो जाती है जिससे जयनारायण पर ब्रह्महत्या का पाप लगाया जाता है। इस के प्रायश्चित

---

1 नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ.54

2. वही, पृ.43

स्वरूप वह न सोने-चाँदी का भस्म खाता है और न गंगा में शरण लेता है । कमला नदी में डूबकर एक पीपल के नीचे साधारण सा कोई प्रायश्चित करता है ।

भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग पर्व-त्योहार ग्रामीण लोगों में एक नई स्फूर्ति का संचार कर देते हैं । शुभंकरपुर में मनाये जानेवाले त्योहारों का चित्रण उपन्यासकार ने किया है । "भाई-दूज", दुर्गापूजा की "कलश स्थापना" मधुश्रावणी[1] आदि इनमें प्रमुख है ।

शुभंकरपुर ग्रामीण जीवन के सारी पहलुओं को उसकी पूर्णता के साथ उभारने में नागार्जुन सफल हुए हैं ।

भाषा

शुभंकरपुर के लोग अशिक्षित है लेकिन उपन्यास के पात्र साहित्यिक भाषा का प्रयोग करते हुए दिखाई पडते हैं । यह कुछ अस्वाभाविक लगता है । क्योंकि ग्रामीण जनता विशेषकर अशिक्षित लोग अशुद्ध भाषा का प्रयोग ही करेंगी । फिर भी यह सही है कि उपन्यासकार के मन में उपन्यास में आँचलिकता लाने का कोई मोह नहीं था । इसलिए शब्दों को तोड-मरोड कर ग्रामीण भाषा का रूप लाने का प्रयास नागार्जुन ने नहीं किया । जहाँ कहीं भी स्थानीय शब्दों का प्रयोग किया है वहाँ उसका अर्थ भी स्पष्ट कर दिया गया है । उदाहरण केलिए ओहार (परदा)[2] ओंच (बिछाने का चादर)[3], पानी-फल (मछली)[4] आदि । कहीं-कहीं

---

1. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ. 154

2. वही, पृ.16

3. वही, पृ.112

4. वही, पृ.128

"रेलवे-लाइन, स्टेशन,[1] फेल[2] आदि अंग्रेज़ी के शब्दों और मुख्तार, गवाह,[3] इम्तिहान, हस्तामलक, अफसोस[4] आदि उर्दू के शब्द भी दिखाई पड़ते हैं। इसके अलावा हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी शब्दों के विकृत रूपों का प्रयोग भी दृष्टिगत होते हैं। "मलिच्छ"[5] "बख्त"[6] किरिस्तान"[7] आदि।

"रतिनाथ की चाची" के प्रकृति वर्णन के सन्दर्भ में कवि नागार्जुन की काव्यमयी भाषा अपनी रूप बिखेरती हुई दिखाई पड़ती है। उदाहरण केलिए "दिन भर की प्रचंड गर्मी, दोपहर रात तक की ठिठकी हवा और उसके बाद रात्रिशेष में जब दक्षिण पवन ग्रीष्म ऋतु की श्रान्त शिथिल अलग प्रकृति-नटी के सिमटे हुये आँचल को फरफराते लगता, तो सिवहीं के विशाल वृक्ष की निस्पन्द टहनियाँ उच्छ्वासित हो उठतीं - टप-टप करके आम गिरने लगते[8]।"

वर्णनात्मक शैली में लिखे गये उपन्यास में बीच बीच चेतनाप्रवाह, पूर्वदीप्ति आदि शैलियों का प्रयोग भी किया गया है। रतिनाथ की माँ की मृत्यु, गौरी के मायके की बातें आदि पूर्वदीप्ति शैली के उदाहरण है।

बिम्ब और संकेतों के द्वारा भाषा का सौन्दर्य बढ़ाने की कला भी नागार्जुन ने दिखायी है। उपन्यास का प्रारम्भ एक दृश्यात्मक बिम्ब के साथ होने लगता है। "चैत का महीना था और शाम का वक्त।

---

1. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ.17
2. वही, पृ.33
3. वही, पृ. 3
4. वही, पृ.34
5. वही, पृ.23
6. वही, पृ.24
7. वही, पृ.89
8. वही, पृ.53

बीच आँगन में टोला-पड़ोस की औरतें जमा थीं । सभी किसी न किसी बातचीत में मशगूल थीं । दो-एक की गोद में बच्चा भी था । दो एक जनेऊ का धागा तैयार करने केलिए तकली लिये आई थीं । उनकी तकलियाँ किर्र-किर्र करके काँसे के कटोरों में नाच रही थीं और पूनी से खिंचकर सर्र-सर्र निकलता जा रहा था सूत[1] ।"

ध्वनि बिम्ब के अनेक उदाहरण उपन्यास में दिखाई पड़ते हैं - (1) तकली कातने की ध्वनि "किर्र-किर्र"[2] (2) भैंस के खुरों की ध्वनि "खुट्ट-खुट्ट-खट्ट-खट्ट"[3] आदि ।

आज़ादी के प्रथम प्रहर में रचित "रतिनाथ की चाची" में विकृत सामंती संस्कारों एवं जीवन व्यवस्था के चित्र उभारने में नागार्जुन सफल हुए हैं । यद्यपि उसमें रचनागत त्रुटियाँ हैं तथापि वर्षों से अपने मन को कचोटती सामाजिक दुर्व्यवस्था की सम्यक् अभिव्यक्ति ही "रतिनाथ की चाची" है ।

****

---

1. नागार्जुन - रतिनाथ, पृ.3
2. वही, पृ.12
3. वही, पृ.26

बलचनमा (1952)

आत्मकथात्मक शैली में रचित "बलचनमा" नागार्जुन का दूसरा उपन्यास है। ५ आंचलिक उपन्यास के क्षितिज पर उगा हुआ यह पहला तारा माना जाता है। इस उपन्यास में दरभंगा जिले के अभावग्रस्त, निर्धन कृषक परिवारों के जीवन की करुण गाथा कही गयी है। ईश्वरीय विधान के नाम पर ज़मीन्दारों के द्वारा किये जानेवाले शोषण और दमन नीति के विरुद्ध उभरती प्रतिहिंसा को स्वरबद्ध करने का सफल प्रयत्न नागार्जुन इस उपन्यास में करते हैं।

उपन्यास की शुरूआत बलचनमा के पिता की ज़मीन्दार द्वारा मार पीट से होती है। बाग से दो "किसुन भोग" आम तोडने के अपराध में बलचनमा के पिता ललचनमा को खंभेली के सहारे बाँध दिया जाता है। और बाँस की केली से उसकी खाल उधेड ली जाती है। इसी मारपीट के परिणाम स्वरूप उसकी मृत्यु हो जातीहै। परिवार का एक मात्र आश्रय पिता की मृत्यु के बाद सारे घर का बोझ चौदह वर्षीय बलचनमा के कंधों पर पडता है। मालिक के यहाँ बहिया (गुलाम) बननेवाला बलचनमा बाद में भैंस चराने का काम करने लगता है। वहाँ छोटी मालिकाइन की गलियाँ, बाबू लोगों की जूठन तथा बचा हुआ बासी खाना ही उसकी नियति बन जाती है। पशु से भी गये बीते जीवन मे बलचनमा की मुक्ति मलिकाइन का भतीजा फूल बाबू करता है।

फूल बाबू के साथ पटना का जीवन बलचनमा केलिए एक नया मोड सिद्ध होता है। यहाँ शहरी जीवन और संस्कृति से परिचित होनेवाला बलचनमा जीवन में पहलीबार मानवीय सद्भावना और प्रेमपूर्ण

व्यवहार का अनुभव करता है । परन्तु सुख-चैन का यह जीवन अधिक समय तक नहीं रह जाता । गाँधीजी द्वारा संचालित सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लेने के कारण फूल बाबू को गिरफ्तार किया जाता है । फूल बाबू की जेल मुक्ति के बाद वह गाँव लौटता है ।

घर लौटे बलचनमा को अपनी बहिन रेबनी की चिन्ता सताती है । रेबनी पर बलात्कार का अपना प्रयत्न असफल होने से क्रुद्ध मालिक द्वारा डाके के झूठे आरोप में बलचनमा को पकड़वाने का षड्यंत्र रचा जाता है । इन मुसीबतों से छुटकारा पाने की आशा से फूल बाबू के पास जानेवाले बलचनमा को यही सलाह मिलती है कि - "तुम्हारा तो आपस का झगड़ा है, बहिया-महतो का । इसका निबटारा भी तुम्हीं दोनों कर लोगे । इसमें मेरी कोई ज़रूरत नहीं । जा, जाकर अपने मालिक के ही पैर पकड़ । वह तुझे माफ कर देंगे ।"[1] फूल बाबू जिस आश्रम में रहता है उसी आश्रम के सर्वाधिकारी राधा बाबू की सहायता से बलचनमा की मुसीबतें दूर हो जाती हैं । और वह भी आश्रम में रहने लगता है । राधा बाबू की पत्नी की सहानुभूति, प्रेमपूर्ण आचरण और अच्छे भोजन, कपड़े आदि के कारण उसके बीते दिन वापस आ जाते हैं ।

राधा बाबू से पचास रुपये और उनके द्वारा दी गयी साड़ियाँ लेकर बलचनमा गौने केलिए तैयार हो जाता है । गाँव के रिवाज़ के अनुसार छः साल की आयु में ही उसकी शादी सितल पट्टी की सुगनी से संपन्न हुई थी । बलचनमा की जीवन संगिनी बनी सुगनी माल मवेशियों को चराने का काम हो या खेत का काम सभी में बलचनमा का साथ देने लगती है । इसी बीच रोबनी की बिदाई भी की जाती है । बलचनमा का सुखपूर्ण दाम्पत्य तीन वर्ष पार करता है ।

---

1. नागार्जुन - बलचनमा, पृ. 102

भूकम्प के महानाश से गाँव में कई लोगों की मृत्यु हो जाती है और अनेक घर धराशायी हो जाते हैं। विपत्तियों के इन दिनों में लोगों की सहायता हेतु कांग्रेस पार्टी के लोगों के द्वारा रिलीफ फंड खुलवाया जाता है। "बीस आदमियों के नाम सवा पाँच सौ रुपये की खैरात लिखी गई लेकिन लोगों को मिले सिर्फ दो सौ छः रुपये।[1]" रिलीफ फंड के बहाने से पार्टी के नेता अपनी जेबें भर लेते हैं।

कांग्रेसी लोगों के आचरणों से तंग आकर राधा बाबू सोशलिस्ट बन जाता है और बलचनमा को वोलंटियर बना देता है। किसान मज़दूरों को लाल झण्डे की साया में एकत्रित करके ज़मीन्दार खान बहादुर सादुल्ला खाँ से संघर्ष करने में राधा बाबू लग जाता है। गाँव में होनेवाली मीटिंग में पटने के स्वामी, शर्माजी, डॉ. रहमान आदि के द्वारा किये गये जोशीले भाषणों से गाँववाले अपने अधिकारों से वाकिफ हो जाते हैं। कांग्रेसी नेताओं पर खुलकर वार करनेवाला स्वामी गाँववालों में नई स्फूर्ति भर कर कहने लगता है - "आप सब कुछ पैदा करते हैं तो अपना लीडर भी अपने ही यहाँ पैदा कीजिए। जो आपका आदमी होगा वही आपकी तकलीफों को समझेगा, कांग्रेस आपका दुःख दर्द क्या समझेगी ? आप सिर्फ तीन काम कीजिये - संगठित होकर एक हो जाइए, जान जाय तो जाय मगर ज़मीन नहीं छोड़िये और अदालत कचहरी के इर्द-गिर्द कभी मत जाइए ....[2]।" इकन्नी देकर गाँव के लोग किसान सभा के सदस्य बन जाते हैं। जिसे ज़मीन्दार लोग अपने खिलाफ "किसान आन्दोलन[3]" समझकर अशान्त हो जाते हैं। किसान एकत्रित होकर कसम खाते हैं - "ज़मीन नहीं छोड़ेंगे, चाहे कुछ भी हो जाय।[4]"

---

1. नागार्जुन - बलचनमा, पृ. 166
2. वही, पृ. 180-181
3. वही, पृ. 197
4. वही, पृ. 199

ज़मीन्दार लोग किसानों के द्वारा फसल काटने के प्रयत्न को रुपये के बल पर पुलिस अधिकारियों के द्वारा रोकना चाहते हैं । लेकिन किसानों की अजय शक्ति के सामने पुलिस और दफा 144 का नियम निष्प्रभ बन जाता है । सोशलिस्ट आश्रम का पहरा देने वाले बलचनमा पर ज़मीन्दार के गुण्डे हमला करते हैं और उसे बेहोश छोड जाते हैं ।

प्रेमचन्द के बाद तिरस्कृत किसान मज़दूर की दुःख गाथा को बदलते हुए आर्थिक परिप्रेक्ष्य में पुनर्जीवित करने का श्रेय नागार्जुन को है । स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में सबसे पहले नागार्जुन ने ही बंधुआ मज़दूर, खेतिहर मजदूर और किसानों को अपने हक की लडाई लडते हुए चित्रित किया है । प्रेमचन्द परम्परा को अपनाते हुए भी प्रेमचन्द की आदर्शवादिता या मोह भंग से वे अछूते रहे । इन दोनों के स्थान पर नागार्जुन ने साम्यवादी चेतना की नई स्फूर्ति भर दी । इसी कारण से नागार्जुन के बलचनमा प्रेमचन्द के होरी का स्मरण दिलाने पर भी दोनों में दिन-रात का अंतर दिखाई पड़ता है । परिवेश और विचारधारा के अंतर के साथ ही दोनों पात्रों के प्रस्तुतीकरण में भी यह अंतर स्पष्ट झलकता है । जब होरी आदर्शवादी धरातल पर खडा है तो बलचनमा यथार्थवादी धरातल पर । दृष्टिकोणों की भिन्नता का परिणाम यह निकला है कि - "प्रेमचन्द की सामाजिक चेतना ने नागार्जुन की रचनाओं में समाजवादी चेतना का रूपधारण कर लिया है ।"[1] "समाजवादी चेतना का यह परिणाम भी निकला है कि होरी की निराशावादी दृष्टि बलचनमा की आशावादी दृष्टि में बदल जाती है जिससे लेखक की आस्था का भी परिचय मिल जाता है[2] ग्रामीण संस्कृति और शोषित जनता का प्रतीक होरी जब विसंगतियों के आगे टूट पडता है तो बलचनमा मुसीबतों से जूझता है ।

1· डॉ· सुषमा धवन - हिन्दी उपन्यास, पृ·303

2· डॉ· इन्द्रनाथ मदान - आज का हिन्दी उपन्यास, पृ·47

उपन्यास के आकस्मिक अंत पर अनेक विद्वानों ने असन्तोष प्रकट किया है । इसका जवाब स्वयं नागार्जुन के शब्दों में सुनिए :- "पहले विचार था उसका दूसरा खण्ड लिखूँगा पर अब मेरा विचार बदल गया । क्योंकि मुझे लगता है कि इसमें भी एक चमत्कार है कि शोषित भूमिहीन छोकरा वहाँ तक जाता है और पिटकर गिर पड़ता है । अपने आप में यह भी बहुत मार्मिक परिणति है ।"[1] आगे वे जोड़ते हैं - "सम्पूर्ण क्रान्ति का मायका है हमारा बिहारा उसके गर्भ से प्रचण्ड क्रांति पैदा हो सकती है । पर प्रचंड क्रान्ति का नेतृत्व बलचनमा नहीं कर सकता, क्योंकि वह तो कहीं पंचायत में सरपंच बन गया होगा । उसे कोई याद भी दिलाएगा कि "अरे यार, तू तो इत्ता बड़ा आदमी था, गरम-गरम बातें करता था । तो वह तम्बाकू-सुरती हाथ में मसलता हुआ कहेगा, "वे दिन और थे । अब तो ये नए छोकरे कुछ करें तो करें । हमें जितना करना था कर चुके ।"[2] इससे लेखक वर्तमान भारतीय समाज का चित्रण ही प्रस्तुत करते हैं । एक ओर इसमें यह निहित हैं कि भारत की मिट्टी अभी भी क्रांतिकारी परिवर्तन केलिए परिपक्व नहीं हुई है । इसलिए बलचनमा को बेहोश छोड़ दिया जाता है ।

दूसरी ओर लेखक का मन्तव्य यह है कि क्रांति हमेशा युवा-पीढ़ी के साथ ही आगे बढ़ेगी इसलिए इसे आगे ले जाने का उत्तरदायित्व वे युवा पीढी को सौंप देते हैं । भारतीय नेता का और एक रूप भी नागार्जुन यहाँ उतारते हैं - वह है उसका पाखण्ड रूप । बड़ी बड़ी बातें करने में नेता अपना जोश दिखाता है लेकिन अधिकार प्राप्ति से वह अपने में सिकुड़ने लगता है ।

1· डॉ· रणवीर रांग्रा - साहित्य साक्षात्कार, पृ·169

2· वही, पृ·169

इस उपन्यास की सबसे बड़ी कमी यह है कि अपने विशेष पूर्वाग्रह के कारण वह हार्दिक कम और बौद्धिक अधिक सिद्ध हुआ है । श्री महेन्द्र चतुर्वेदी की राय तो ठीक लगती है - "नागार्जुन यदि अपनी दृष्टि को "वाद" के घेरे से मुक्त करके लिखते तो शायद अधिक हृदय स्पर्शी चित्र और चरित्र देने में समर्थ होते ।[1]" फिर भी नागार्जुन का सर्वश्रेष्ठ और बहुचर्चित उपन्यास है बलचनमा । भूमिहीन किसानों की समस्याओं को स्वरबद्ध करने के साथ साथ दरभंगा जिले के विविध पहलुओं का (सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक धार्मिक व सांस्कृतिक) सच्चा चित्रण अंकित करने में नागार्जुन सफल हुए हैं ।

पात्र चित्रण

बलचनमा

किसान जीवन के अभावों, दर्दों और सामाजिक विषमताओं की दुःख गाथा "बलचनमा" का प्रमुख पात्र है बलचनमा । वह उस अभागे पिता का अभागा बेटा है जो ज़मीन्दार की नृशंसता, क्रूरता एवं अत्याचार का शिकार बनकर मृत्यु की गोद में सदा केलिए सो जाता है । दो किसुन भोग आम चुराने के अपराध में ज़मीन्दार द्वारा बाँस की टहनियों से अपने पिता की मार-पीट का कारुणिक दृश्य बलचनमा के बाल मन में शोषण और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने का बीजवपन कर देता है । यह विद्रोह विभिन्न परिस्थितियों से होकर किसान आन्दोलन के रूप में विकसित होता है । जीवन के कटु से कटु यथार्थ ही बलचनमा को क्रांतिकारी रूप प्रदान

----

1. श्री महेन्द्र चतुर्वेदी - हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण - पृ.210

करते हैं । "उसमें हौसला है, मर्दानगी है, वर्ग संगठन की समझ है, जूझकर उत्सर्ग करने की चेतना है, पर झूठे मूल्यों और बन्धनों को झेलने की भीरुता नहीं ।"[1]

पिता की मृत्यु के बाद सड़े-गले बदबूदार जूठन केलिए छोटे मालिक के घर में उसे भैंस चराने से लेकर मलिकाइन के पैर चांपने तक का काम करना पड़ता है । "गदहा, सुअर, कुत्ता, उल्लू, कोढ़िया"[2] आदि गलियाँ सुनकर बलचनमा के कान दो दिनों में ही "खूब पक्के"[3] हो जाते हैं । इसके साथ ही बात और बेबात पर मलिकाइन की मारपीट भी उसे सहनी पडती है । इस नारकीय जीवन में अपनी माँ, दादी, रेबनी और पिता के बाद उसे सान्त्वना देनेवाली केवल एक भैंस रही जिसे वह चराने केलिए ले जाता है ।

छोटी मलिकाइन के भतीजे फूल बाबू के साथ "पटना जीवन" से बलचनमा बदलती हुई सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों से परिचित हो जाता है । फूल बाबू के साथ गाँधी आश्रम में रहनेवाला बलचलमा कांग्रेस पार्टी, के आदर्शों और गतिविधियों से भली- भाँति परिचित हो जाता है । अपनी बहिन रेबनी पर छोटे मालिक द्वारा बलात्कार के प्रयत्न के सन्दर्भ में कांग्रेस नेताओं की वर्ग रक्षा के बारे में उसे ज्ञान होता है । मालिक के अत्याचारों से मुक्ति की राह देखनेवाले बलचनमा को फूल बाबू से यही सलाह मिलती है कि वह मालिक के पैरों पर पड़कर माफी माँगे । बलचनमा समझ लेता है - "मोराजी हो गए थे तो क्या,

---

1· डॉ· कुंवरपाल सिंह - हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना, पृ·159

2· नागार्जुन - बलचनमा, पृ·10

3· वही

ये तो आखिर बाबू - भैया ही न ! गरीब-गुरबा का दुख ये लोग क्या जाने[1]।" उसी वक्त उसके मन में विद्रोह की चिनगारी फूट पड़ती है और वह सोचने लगता है - "जैसे अंग्रेज़ बहादुर से सोराज लेने केलिए बाबू-भैया लोग एक हो रहे हैं, हल्ला-गुल्ला और झगड़ा - झंझट मचा रहे हैं उसी तरह जन-बनिहर, कुली-मज़दूर और बहिया खवास लोगों को अपने हक केलिए बाबू भैया से लड़ना पड़ेगा[2]।" फूल बाबू के प्रति उसके मन की अनास्था भूकम्प के बाद और भी बढ़ जाती है। भूकम्प रिलीफ फंड के रुपये फूल बाबू अपनी जेब में डाल देता है।

राधाबाबू के सोशलिस्ट बनने से उनसे प्रभावित बलचनमा भी सोशलिस्ट आदर्शों से आकर्षित हो जाता है। सोशलिस्टों से बलचनमा यही समझता है "दो-चार साधू-महात्मा के गिड़गिड़ाने से अंग्रेज़ों का दिल नहीं बदलेगा। समूची जनता आपस के भेद-भाव भुलाकर उठ खड़ी होगी, तभी अंग्रेज़ भागेगा। समूची जनता कैसे आपस का भेद-भाव भूलेगी, कैसे एक होगी ? लोगों को जब विसवास हो जायगा कि जमींदार - महाजन की फाज़िल धन-संपदा उन्हीं में बँट जायगी, रोजी-रोटी का सवाल हल होगा, बच्चों की पढ़ाई-लिखाई सब की जिम्मेदारी सरकार को उठानी पड़ेगी, पैसे के बल पर कोई किसी को बँधुआ गुलाम नहीं बना सकेगा[3]"। स्वामीजी, शर्माजी, डॉ॰ रहमान आदि के जोशीले भाषणों से भी बलचनमा की क्रान्तिकारी चेतना और भी जागृत हो जाती है और वह सोशलिस्ट वालंटियर बन जाता है।

1· नागार्जुन - बलचनमा, पृ॰102

2· वही

3· वही, पृ॰168-169

ज़मीन्दारी उन्मूलन कानून पास होने पर ज़मीन्दार किसानों को बेदखल करना प्रारंभ कर देते हैं और अपनी बड़ी-बड़ी जोतें बनाने लगते हैं। भारत के औसत गरीब-किसान का प्रतिनिधि बलचनमा ज़मीन्दारों की छीना झपटी के विरुद्ध संघर्ष करने को तैयार हो जाता है। चाहे जो कुछ भी हो जाय, आगे बित्ता भर भी ज़मीन मालिकों को हड़पने नहीं देंगे।"[1] किसी के आगे सिर न झुकानेवाला बलचनमा गाँव के किसानों को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य करता है। स्वयंसेवक बनकर आश्रम का पहरा देनेवाले बलचनमा पर ज़मीन्दारों के गुण्डों के द्वारा हमला किया जाता है। सामन्ती साजिशों मे धराशायी बलचनमा मरता नहीं। ज़मीन्दारों से संघर्ष करने का हौसला उसमें है। चाहे यहीं उपन्यास का अंत हो जाए तो भी यह केवल संघर्ष की शुरुआत है - अपने अस्तित्व को पाने का संघर्ष।

बलचनमा की ओर पाठक को आकर्षित करनेवाले और दो-तीन पहलू हैं। स्वाभिमान उसमें कूटकर भरा हुआ है। उसकी ज़िन्दगी रही सहजीवी "प्राणी" ज़मीन्दार के अत्याचारों को दैविक मानकर सहने की। लेकिन बलचनमा हमेशा ज़मीन्दारों की करतूतों के खिलाफ वार करता हुआ दिखाई पड़ता है। अपनी बहिन रेबनी पर छोटे मालिक द्वारा किये गये बलात्कार के प्रयत्न को जानकर उसके खिलाफ वह सोचता है - "मैं गरीब हूं। तेरे पास अपार सम्पदा है, कुल है, खानदान है, बाप-दादे का नाम है, अड़ोस-पड़ोस की पहचान है, जिला-जवार में मान है और मेरे पास कुछ नहीं है। मगर आखिरी दम तक मैं तेरे खिलाफ डटा रहूँगा। अपनी सारी ताकत को तेरे विरोध में लगा दूँगा। माँ और बहन को जहर दे दूँगा। लेकिन

---

1. नागार्जुन - बलचनमा, पृ. 198

उन्हें तू अपनी रखैली बनाने का सपना कभी पूरा न कर सकेगा ....[1]" अपने व्यक्तित्व की उज्वलता और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने का निश्चय यहाँ दृष्टव्य है ।

जीवन के कटु यथार्थ को भोगनेवाला बलचनमा आस्थावादी नहीं रह जाता । उसकी दादी और माँ का समय रहा ईश्वरीय न्याय का । इसकी परिभाषाएँ अलग अलग है । "भगवान जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं[2] ।" वह सोचता है जब चार सदस्योंवाला परिवार छोड़कर उस का पिता मर जाता है तो भगवान ठीक ही करते हैं । जब माँ और दादी भूख के मारे आम की गुठलियाँ का गूदा चूसने लगती है और मालिक लोग खुशबूदार भात और तरह तरह के पकवान खाते हैं वह भी ईश्वर ठीक ही करते हैं । पण्डित की राय में जो गुलाम अपने स्वामी को प्रसन्न रखता है उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है, बलचनमा कभी इस भगवान पर विश्वास नहीं करता ।

आस्थावादी न होने पर भी बलचनमा अनैतिक शारीरिक सुख का उत्सर्ग करने वाला है । मौका मिलने पर भी प्यार के पचडे में न पडनेवाला बलचनमा एक आदर्श गृहस्थी की स्थापना करता है । मल्लिकाइन की नौकरानी सुखनी अपने शारीरिक सुख केलिए बलचनमा से संबन्ध जोडना चाहती है । लेकिन बलचलमा उसका तिरस्कार कर देता है । महेन बाबू की बहिन अनीता के प्रेम से भी वह दूर हट जाता है ।

1· नागार्जुन - बलचनमा, पृ·88

2· वही, पृ·19

सही अर्थ में बलचनमा धरती पुत्र है । अपने या पराये के भेद के बिना काम करनेवाला बलचनमा दूसरों द्वारा अपनी खिल्ली उड़ाए जाने पर कहता है - "मैं बैल ही सही, गधा ही सही बेइमान तो नहीं हूं, काम चोर तो नहीं हूं, कोढ़ी तो नहीं हूं असली बात यह भैया कि काम करते वक्त मैं किसी भी किस्म की खिचिर-फिचिर या ढिलाई का कायल नहीं था । जिस मुस्तैदी से अपना काम करता उसी मुस्तैदी से दूसरे का भी[1] ।"

यों बलचनमा का चरित्र सच्चे रूप में नई पीढ़ी के परिश्रमी, विद्रोही, ईमानदार किसान के रूप में प्रस्तुत किया जाता है ।

"बलचनमा के माध्यम से उपन्यासकार ने युग-जीवन की चेतना को पहचाना है । निम्न वर्ग की अजेय शक्ति एवं हार न माननेवाले व्यक्तित्व को वाणी दी है । बलचनमा का संघर्ष और विद्रोह बिहार के ग्रामों की आत्मा की आकुलता नहीं है, वह संपूर्ण राष्ट्र की व्याकुलता है[2] ।" डॉ॰ इन्दु प्रकाश पाण्डेय की राय में - "बलचनमा योजनानुसार रचा गया एक पात्र है जो लेखक के सैद्धान्तिक महायुद्ध का नायक है[3] ।"

डॉ॰ बेचन इस पात्र रचना की असफलता पर संकेत करते हुए लिखते हैं - "बलचनमा" के बलिष्ठ व्यक्ति का, जो कि कल्पना हम उसके मुख पृष्ठ को देखकर करते हैं, जितना बलिष्ठ वह चित्र चित्रकार ने अंकित मुख पृष्ठ पर खींचा है, उतना बलिष्ठ चित्र नागार्जुन उपन्यास के भीतर नहीं

1· नागार्जुन - बलचनमा, पृ॰161

2· बाबू राम गुप्त - उपन्यासकार नागार्जुन, पृ॰164

3· डॉ॰ इन्दु प्रकाश पाण्डेय - हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन सत्य पृ॰105

कर सके हैं । मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि बलचनमा के व्यक्तित्व को लेखक की चेतना अपने गर्भ में संभाल नहीं सकी । भावों और विचारों की गर्मी से उसका अकाल प्रसव हो गया है, ऐसा लगता है।[1] बेचन के विचारों को हम पूर्ण रूप से मान्यता नहीं दे सकते हैं । क्योंकि नागार्जुन का लक्ष्य "बलचनमा" उपन्यास में बलचनमा के चरित्र को उभारना उतना नहीं जितना समूचे अंचल की जिन्दगी को उभारना । बलचनमा के माध्यम से नागार्जुन ने संघर्ष करने की शक्ति को उजागर करके नई पीढ़ी की आकांक्षाओं को भी स्वरबद्ध किया है । इस प्रयास में जो कुछ भी संभव है और जो कुछ भी स्वीकार्य है उसको उपन्यासकार ने किसी शंका के बिना अपनाया है । यदि एक महान विद्रोही के रूप में एक बलिष्ठ पात्र की सृष्टि की जाती तो वह पात्र कभी भी स्वाभाविकता के ढांचे के अन्दर अपने को आबद्ध नहीं किया होता । ऐसी स्थिति में बलचनमा अस्वाभाविकता और मार्क्सवादी प्रोपगान्डा का प्रतिमान बनकर जीवन्तता से वंचित हो जाता । लेकिन इस उपन्यास में बलचनमा "प्रोपगेण्डा" का साधन नहीं बना है ।

भारत के किसी भी किसान या मज़दूर का प्रतिनिधित्व करने वाला है बलचनमा का चरित्र । इससे भी अधिक वह नागार्जुन के मानसपुत्र किसान का प्रतिनिधित्व करनेवाला पात्र बन गया है क्योंकि जीवंतता के क्षणों में यथार्थ के साथ साथ आदर्श और साम्यवादी संघर्ष के दर्म्यानों से गुज़रने केलिए वह बाध्य सा हो जाता है ।

---

1. डॉ॰ बेचन - नागार्जुन (सं॰ सुरेन्द्र त्यागी), पृ॰183

फूल बाबू

अपने कांग्रेस विरोध को व्यक्त करने केलिए नागार्जुन द्वारा सर्जित पात्र है फूल बाबू । इसी फूल बाबू के कारण ही बलचनमा शहरी जीवन से परिचित होकर बदलते सन्दर्भों से प्रभावित हो जाता है । गांधीजी के आदर्शों से आकृष्ट फूलबाबू वकील बनने की पढ़ाई इसलिए छोड देता है कि वह झूठ बोलना नहीं चाहता । स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेकर जेल शिक्षा भोगनेवाला फूल बाबू गांधी आश्रम में जीने लगता है । वेश-भूषा में वह ज़रूर परिवर्तन लाता है लेकिन यह परिवर्तन केवल बाहर ही रह जाता है ।

छोटे मालिक द्वारा रेबनी पर किये जानेवाले बलात्कार प्रयत्न और बाद की समस्याओं का फैसला लेने केलिए फूल बाबू के पास जानेवाले बलचनम को उसके स्वजनपक्षपात का परिचय मिलता है । झूठ के डर से पढ़ाई छोडनेवाला फूल बाबू अब भूकम्प रिलीफ फंड से पैसा चुराने में नहीं हिचकता ।

फूल बाबू का चित्रण सचमुच एक राजनीतिक नेता की प्रवृत्तियों का पर्दाफाश करनेवाला है । पद और यश प्राप्त करने पर अपना पैंतरा बदल देनेवाला फूलबाबू भारतीय राजनीतिक नेता का सच्चा रूप प्रस्तुत करता है । यह पात्र नागार्जुन के साम्यवादी दृष्टिकोण को और भी सशक्त बना देता है ।

राधा बाबू

उपन्यास का एक आदर्शात्मक पात्र है राधा बाबू । अपने ऊपर आरोपित मामलों से बलचनमा को मुक्त करानेवाला है राधाबाबू ।

कलक्टर बनने की पिता की आशा को ठुकराकर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेनेवाला राधा बाबू गाँधी आश्रम में रहने लगता है। वहाँ वह अपनी मर्जी का जीवन जीने लगता है। हिसाब-किताब पूछनेवाला कोई भी वहाँ नहीं दिखाई पडता। बाद में कांग्रेस पार्टी के आदर्शों और गतिविधियों से मेल न खानेवाले नौजवानों के साथ राधा बाबू भी सोशलिस्ट बन जाता है। मह्पुरा गाँव में सोशलिस्ट आश्रम की स्थापना करके वह बलचनमा का सोशलिस्ट वोलंटियर बना देता है।

स्वयं राधाबाबू सार्वजनिक पैसे को हडपता है लेकिन व्यवहार कुशलता की दृष्टि से वह अधिक नरम दिखाई पडता है। बलचनमा के प्रति उसका व्यवहार इसका उदाहरण है। इस पात्र के माध्यम से नागार्जुन यह स्पष्ट कर देते हैं कि भविष्य की परवाह के बिना स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़नेवाले युवक किस प्रकार बदलते परिप्रेक्षों से प्रभावित होकर सोशलिस्ट बन गये हैं।

स्वामी सहजानन्द

अपने जोशीले भाषण द्वारा मह्पुरा गाँव के किसान मज़दूरों को साम्यवादी चेतना से प्रभावित करनेवाला है स्वामी सहजानन्द। उपन्यास में जगह जगह साम्यवाद के प्रचार हेतु अनेक पात्रों के मुँह से कांग्रेसी नेताओं के आचरणों की नुक्ताचीनी करते हुए दिखाया जाता है। स्वामी की रचना भी इसी हेतु हुई है। लेकिन यह कुछ अजीब सा लगता है कि कांग्रेस नेताओं के द्वारा गरीबों की कमाई खाने की बात कहनेवाले स्वामीजी केलिए ग्रामीण

लोगों को "गाय का पांच सेर दूध, पके केलों की समूची घौद और भर टोकरी संतोला - लेंबू" का इन्तजाम करना पडता है । कथनी और करनी में आकाश पाताल का फर्क रखनेवाले ऐसे धोकेबाज नेताओं के कारण ही भारत की प्रगति में रुकावटें आ जाती है इस ओर उपन्यासकार ने संकेत किया है ।

स्त्री पात्र

उपन्यास में "बलचनमा" के समान प्रमुखता रखनेवाला कोई स्त्री पात्र नहीं है । उपन्यास का कथ्य गरीब किसान-मज़दूरों की अपनी हक की लडाई होने के कारण इसमें अधिकांश पुरुष पात्रों का चित्रण ही हुआ है । सामाजिक शोषण, अनैतिक आचरण आदि सन्दर्भों में ही स्त्री पात्रों का चित्रण हुआ है ।

छोटी मलिकाइन

सामन्ती सभ्यता की मुखमुद्रा शोषण को हथियार बनाये हुए एक पात्र है छोटी मलिकाइन । कान फटनेवाली गलियाँ सुनानेवाली छोटी मलिकाइन बलचनमा को पीटने में कभी हिचकती नहीं । घास लाने में देरी हो या खाते वक्त छोटे बच्चे को न संभालने की बात बलचनमा को इससे खूब मार खानी पडती है ।

गरीबों का गला घोंट शोषण करने में निपुण है यह औरत । धान देते समय के छोटे बटखरा को लेते समय बडे में बदलाकर गरीब ग्रामीणों को यह धोखा देती है । अभाव और दु:ख-दर्द का अर्थ न समझनेवाली मलिकाइन

स्त्री सहज माया-ममता मे वंचित है । रात-दिन शोषण में लीन छोटी मलिकाइन सामन्ती सभ्यता की निष्ठुर प्रवृत्तियों को ली हुई है ।

बलचनमा की दादी

अपनी आँखों के आगे अपने एक मात्र पुत्र को मालिक द्वारा मार-पीट जिसके परिणाम स्वरूप होनेवाली मृत्यु का खौफनाक दृश्य आदि को देखने केलिए अभिशप्त पात्र के रूप में बलचनमा की दादी का रेखांकन उपन्यासकार ने किया है । अपने बेटे को मालिक द्वारा पीटते देखकर उस निस्सहाय माँ के मुँह मे यही निकलता है - "दुहाई सरकार की, मर जायगा ललुआ । छोड दीजिये सरकार अब कभी ऐसा न करेगा दुहाई मालिक की । दुहाई माँ, बाप की ।" इस तरह रोने चिल्लाने के अतिरिक्त कुछ करने केलिए वह अशक्त है ।

चाह कर भी छोटी आयु में ही अपने पोते को नौकरी केलिए भेजने को वह विवश बन जाती है । लेकिन मालिक द्वारा अपने बेटे की कमाई का निशान खेत को छीनने की प्रवृत्ति का वह विरोध करती है

ज़िन्दगी भर दुःख दर्द को भोगने की नियति मे अभिशप्त बलचनमा की दादी अपनी नियति को कोसने के अलावा कुछ नहीं कर पाती ।

गौण पात्र

उपन्यास की मुख्यधारा को आगे ले जाने केलिए अनेक गौण

1· नागार्जुन - बलचनमा, पृ·5-6

पात्रों की सृष्टि नागार्जुन ने की है । गौण होते हुए भी उपन्यास में इन पात्रों का अपना अपना स्थान है ।

सामंती सभ्यता की निष्ठुर वृत्तियों का परिचय देनेवाले दो पात्र हैं मझले मालिक और छोटा बाबू । मझले मालिक के कारण ही बलचना के पिता की मृत्यु हो जाती है और "रंगीली तबीयत का आदमी"[1] छोटे बाबू द्वारा रेबनी पर बलात्कार की कोशिश की जाती है । गाँव में सोशलिस्ट पार्टी का मजीब साझेदार के रूप में डॉ॰ रहमान का चित्रण हुआ है और शर्माजी का चित्रण उपन्यासकार ने साम्यवाद के प्रचार हेतु किया है । इसके अलावा बलचनमा का दोस्त चुन्नी, सबूरी काका, महेन बाबू आदि का चित्रण भी है ।

मालिक द्वारा बेइज्जत होने का अनुभव है बलचनमा की माँ को । लेकिन वह अपनी बेटी रेबनी पर मालिक के हमले को सह नहीं पाती ।

दमित वासना की पूर्ति हेतु भूत का नाटक रचनेवाली नौकरानी सुगनी अपनी वासना पूर्ति बलचनमा के माध्यम से कराने की कोशिश करती है । इसके अलावा बलचनमा की बहिन रेबनी, राधा बाबू की पत्नी कंचनलता, मोसम्मात जानकी आदि पात्र भी अपनी छोटी छोटी भूमिकाएँ अदा करने में सफल हुए हैं ।

लगता है "बलचनमा" उपन्यास के चरित्र चित्रण का विधान उपन्यासकार ने एक विशेष दृष्टि से किया है । सामंती सभ्यता के और शोषण के भयानक रूप का उद्घाटन करने में ये पात्र सहायक तो हुए हैं, लेकिन उनकी चीखें और चिल्लाहट एक दर्द भरी व्यथा बनकर हवा में बह जाती है कहीं भी विद्रोह का स्वर उस दृष्टि से ध्वनित नहीं हो पाता है जिस

---

1. नागार्जुन - बलचनमा, पृ॰76

दृष्टि से साम्यवादी स्थापना केलिए होना चाहिए था। वैसे उपन्यासकार ने अपने मन की गहराई में साम्यवादी समाज की कल्पना को ही बहुत प्रश्रय दिया है । परन्तु बलचनमा जैसे नायक के क्रांति के धीमे स्वर को भी बुलन्द नहीं कर पाता । पात्रों की यह दुर्बलता पाठक के मन में सिर्फ सामंतीय सभ्यता के विरुद्ध रोष की भावना मात्र पैदा कर पाती है । पाठक को लगता है कि शोषण के परिणाम स्वरूप उभरनेवाले एक नरक के हिस्से में जीनेवाले आदमी बनाम जानवर की कहानी मात्र यहाँ कही गयी है । इसलिए वह जानवर है कि वह सब कुछ सह लेता है कुछ नहीं कर पाता ।

विविध आयाम

सामाजिक

असंतुलित अर्थ व्यवस्था के शिकंजे में बुरी तरह जकड़े दरभंगा जिले के रामपुर गाँव के सामाजिक जीवन का चित्रण है "बलचनमा" । आज़ादी पूर्व भारत के ग्रामीण समाज का जीवन दुःखपूर्ण रहा । सामन्ती सभ्यता के अभिशाप के रूप में "शोषण" हर कहीं विराजमान है ।

उपन्यास का प्रारंभ ही कृषकों पर होने वाले अमानवीय अत्याचारों से होता है । बाग से दो आम तोड़ने के साधारण अपराध के लिए उसे पाशविक अत्याचारों का सामना करना पड़ता है । "मालिक के दवराज़े पर मेरे बाप को एक खंभिली के सहारे कसकर बाँध दिया गया है । जाँघ, चूतर, पीठ और बाँह सभी पर बाँस की हरी केली के निशान उभर आये हैं । चोट से कहीं-कहीं खाल उखड़ गई है -- यमराज की भाँति मझले मालिक बैठे हुये हैं ।"[1]

---

1. नागार्जुन - बलचनमा, पृ. 5

यह दृश्य दिखाता है कि तत्कालीन समाज का मनुष्य ज़मीन्दारों के हाथों का खिलौना मात्र रह गया है ।

मालिकाइन का बलचनमा को अपने पुत्र को रुलाने के आरोप में गालियाँ देना, शाम देर से पहुँचने पर झाडू से मारना[1] बदबूदार चीज़ें खाने को देना, न खाने पर खाना बंद करना[2], रात भर बलचनमा से मालिक का शरीर दबवाना, और उसे सोने न देना[3] आदि इस तरह के अत्याचारों के उदाहरण हैं ।

शोषण पूर्ण समाज का प्रभाव वहाँ के नारी जीवन पर भी प्रतिबिम्बित होता है । गाँव की निरीह, निर्धन कन्याओं पर ज़मीन्दारों की कुदृष्टि हमेशा पडती रहती है । "बडे घरों के क्या जवान, क्या बूढ़े, बहुतेरों की निगाह पाप में डूबी रहती थी । गौना होकर कोई नई नवेली किसी के घर आती तो इन लुच्चों की आँख उसके घूँघट के इर्द-गिर्द मँडराया करती[3] ।"

ज़मीन्दारों को भगवान का अवतार माननेवाले समाज में रेबनी जैसी निर्धन, निरीह कन्याओं को अपनी इज्जत की रक्षा करना बहुत कठिन बन जाता है । "दुअन्नी" के बदले जवान लडकी का सौदा करनेवाले समाज में मालिकों केलिए किसी की कलाई पकडना "खाँसने और छींकने"[5] के समान साधारण बात रह जाती है ।

1· नागार्जुन - बलचनमा, पृ·10
2· वही, पृ·11
3· वही, पृ·33
4· वही, पृ·70
5· वही, पृ·78

अपने खान-पान केलिए ज़मीन्दारों पर आश्रित समाज की नारियों में ज़मीन्दारों की करतूतों के खिलाफ आवाज़ उठाने की शक्ति नहीं रह जाती। यही नहीं उसके खिलाफ कुछ सोचना भी वे पाप समझते हैं।

इस तरह नारी शोषण का भयानक रूप इस उपन्यास में प्रस्तुत किया जाता है जो सामंती सभ्यता की निशानी बनकर, सामाजिक जीवन का कलंक बनकर पाठकों को चिंताग्रस्त कर देता है।

"समाज में छुआ-छूत और जाति-पाँति की भावनाएँ मौजूद रहती है। "तिरहुतिया बाँभन बड़े खटकर्मी होते हैं। छोटी जातिवालों का छुआ नहीं खायेंगे।"[1] गाँधीजी के भक्त फूल बाबू भी समाज के डर से अपने घर में ग्वाले को रसोईया के रूप में रखने की बात छिपा देता है। हिन्दू धर्म के ही निम्न जाति के लोग दूसरे धर्म के लोगों से दूर ही रहते हैं। ब्रह्मपुरा आश्रम में मुसलमानों के द्वारा पकाया भोजन बलचनमा इसी कारण से कमरे में जाकर खाने लगता है कि "यह खबर गाँव - घर पहुँच जाएगी, नाहक बखेड़ा खड़ा होगा।"[2]

छुआ-छूत का भेदभाव इतना कटु है कि रामपुर में "चमार और मुसलमानों केलिए कुएँ भी अलग अलग है।"[3] छुआछूत की भावना से मानसिक रूप से रोगग्रस्त भारतीय जनमानस का रूप इससे स्पष्ट हो जाता है।

---

1. नागार्जुन - बलचनमा, पृ.54
2. वही, पृ.178
3. वही, पृ.165

आज़ादी पूर्व गाँव में फैले इन अनाचारों के चित्रण के माध्यम से नागार्जुन ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि उत्तर भारत के गाँव की नींव कितनी दूषित, कलुषित और जर्जरित रही है। रूढ़ियों और अन्ध-विश्वासों से दबी मानवता की कराह और करुण पुकार ऐसे प्रसंगों में गुंजित होती है।

नैतिक

रामपुर गाँव की नैतिक स्थितियाँ सामंतीय सभ्यता की यादों को ताज़ा करनेवाली है। वहाँ असल में वह नैतिकता पनपती है जिसका पूरा आधार शोषण मात्र है और इस नैतिकता की जड़ें आचार, अनुष्ठान और विश्वास की गहराई तक पहुँच गयी हैं। अशिक्षित और अनपढ़ परम्परावादियों की दृष्टि में जमीन्दार कभी भी अनैतिक कार्य नहीं करता। जो कुछ भी वह करता है नैतिक है इसलिए गाँव की बहू-बेटियों का हाथ पकड़ते समय भी उनकी नैतिकता को धक्का नहीं लगता क्योंकि वह उन लोगों केलिए साधारण बात है। मालिक के हाथों में वासना की शिकार बनी पुरानी पीढ़ी की औरतें यह समझने लगती हैं कि कम से कम अपनी बहू बेटियों की इस तरह की दुर्गति न हो। इसी कारण से मालिक द्वारा रेबनी पर बलात्कार के प्रयत्न के विरुद्ध बलचनमा की माँ जो स्वयं मालिक की वासना की शिकार बनी हुई थी, फुफकार उठती है।[1]

गाँव की स्त्रियों के बीच भी नैतिकता का कोई विशेष नियम नहीं रहता। मालिक के घर की "मुँहफट" नौकरानी जो अतृप्त

----

1. नागार्जुन - बलचनमा, पृ.20

वासनाओं की शिकार है, बलचनमा को अकेले पाकर अपनी वासना की तृप्ति करना चाहती है । उसके दोनों बाहों को कसकर चूमती हुई वह कहती है - "अगर तू मेरी बातों में "ना" कभी न करे तो । " सुखनी पर भूत सवार की वृत्ति भी एक प्रकार से दमित वासना की पूर्ति हेतु रचित नाटक ही है ।

महेन बाबू की छोटी बहिन अनीता भी बलचनमा पर फिदा हो जाती है ।

इस तरह एक ओर नौकरानी अपनी वासना पूर्ति केलिए लालायित रहती है तो "बडे घर की बेटी" अनीता भी बलचनमा के प्रति आकृष्ट हो जाती है । वैसे नैतिकता, बलचनमा और उसके समान सोचनेवाली नई पीढ़ी की संस्कारगत मूल भावना बनकर रह जाती है ।

वैसे बलचनमा का गाँव पूर्ण रूप से सामंतीय सभ्यता से ग्रसित है । ऐसे गाँव में नैतिकता वह मूल्य नहीं रखता जो आधुनिक अर्थों में अपेक्षित है । अक्सर जो सामंतीय अर्थ व्यवस्था में शोषण का बोलबाला चलता है वही स्त्री के प्रति भी ज़ारी किया जाता है । निम्न श्रेणी की स्त्री परम्परा से चले आने वाले शोषण की आदी है और उसे उसमें किसी प्रकार की अस्वाभाविकता नहीं दिखाई पडती । इसका यह भी कारण है कि अशिक्षित के समान वैध और अवैध का और सद् आचरण का सवाल नहीं खडा होता । दूसरे अर्थों में यह मानकर चलना पडता है कि नैतिकता का अर्थ और उसकी सीमाएँ सामाजिक अर्थ व्यवस्था और शिक्षा की निजी स्थिति पर आधारित हैं ।

आर्थिक

ज़मीन्दारी प्रथा जहाँ कहीं भी कायम थी उस समाज की आर्थिक स्थिति का चित्रण अनजाने ही मन में साकार हो उठता है। गरीब किसान-मज़दूर का ज़मीन्दार द्वारा हर कहीं शोषण इस सभ्यता से अटूट संबन्ध रखनेवाली बात है। "बलचनमा" में नागार्जुन तत्कालीन समाज की आर्थिक स्थिति का सजीव चित्रण करने में सफल हुए हैं।

गाँव के औसत परिवार एक व्यक्ति की कमाई पर जीवन यापन करने वाले होते हैं। अत: तीन-चार सदस्यों वाले परिवार में किसी को पेट भर भोजन नहीं मिल पाता। गरीबी और रोग परिवार के सदस्य बन जाते हैं।

बलचनमा के परिवार का चित्रण समाज के अभाव का दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। पिता ललचनमा की मृत्यु के बाद चार सदस्योंवाले परिवार की भूख मिटाने केलिए बलचनमा को काम करना पड़ता है। एक वक्त पेट भरने केलिए तरसनेवाले इन लोगों को आम लताम (अमरूद) जामुन, कटहर, खीसा, कुसियार (गन्ना), ककड़ी, तरबूजा और खरबूजा[1] से मदद मिलती है। इन गरीब लोगों की नियति में मालिकों का जूठन खाना ही लिखा हुआ है। अच्छी चीज़ कुछ भी इन लोगों ने खायी है वह मालिकों का जूठन ही रहा है लेकिन यह जूठन मिलने की बात भी भाग्य पर टिकी है।

---

1. नागार्जुन - बलचनमा, पृ. 15

सामंती शोषण और वर्ग संघर्ष का चित्रण नागार्जुन पूरे आवेग के साथ इस उपन्यास में उभारते है । नैतिक या अन्य जीवन-मूल्यों से वंचित ये लोग रात-दिन धन बटोरने में लगे हुए हैं । एक वक्त भी खाने केलिए तरसनेवाले गरीब परिवारों में अगर किसी की मृत्यु हो जाती है तो उससे सम्बन्धित दाह संस्कार क्रियाओं के समय ही शोषण अपना रूप धारण कर लेता है। बलचनमा का अनुभव ही देखिए "हमारे पास कुल सात कट्ठा ज़मीन थी । मंझले मालिक माँ कसाई के एक कसाई थे । बाबू मरने पर उन्होंने बारह रुपये माँ को कर्ज दिये थे । बदले में सादे कागज पर अंगूठे का निशान ले लिया था । सूद देते-देते हम थक गये, मूल ज्यों-का-त्यों खड़ा था"[1] कर्ज से मुक्ति केवल मृत्यु से ही संभव हो जाती है । तत्कालीन समाज की स्थिति ऐसी रही कि "अदालत उनकी, हाकिम उनका, थाना-दारोगा उनका, पुलिस उनकी । गरीबों के लिए सिवाय लात-जूता के और है ही क्या ?"[2] परन्तु इस स्थिति में आहिस्ता आहिस्ता परिवर्तन दिखाई पडने लगता है ।

शोषण और तिरस्कार से तंग आकर किसान मज़दूर अपनी हक की लडाई लडने केलिए एक झण्डे के नीचे एकत्रित हो जाते हैं । "ज़मीन किसकी ..... जोते बोये उसकी"[3] नारा लगाकर गाँव के किसानों को शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने केलिए समाजवादी गुट तैयार कर लेते हैं । यहीं से राजनीतिक दल का गठन और सामाजिक नीति केलिए संघर्ष शुरू हो जाते हैं ।

---

1. नागार्जुन - बलचनमा, पृ.14
2. वही, पृ.56
3. वही, पृ.183

नागार्जुन का गाँव आर्थिक दृष्टि से पूर्णतया सामंतीय गाँव लगता है । यहाँ सिर्फ दो ही वर्ग हैं एक सर्वहारा वर्ग जो पीड़ित, शोषित और पद दलित है और दूसरा वह पूंजीवादी वर्ग जिसके पास धरती, धन, दौलत और राज सत्ता है । सत्ता और धन के बल पर सर्वहारा वर्ग का शोषण उस सीमा तक वे करते हैं जिसकी कोई कल्पना भी नहीं की जा सकती । इस तरह आर्थिक स्थिति का वह चित्रण मिलता है जो हर दृष्टि से खतरनाक लगता है ।

राजनीति

स्वतंत्रता पूर्व गाँव की राजनीतिक सत्ता ज़मीन्दारों के हाथों में सुरक्षित रही । हर कहीं उन लोगों की इच्छा ही कानून का रूप धारण कर लेती थी । स्वतंत्रता संग्राम की लहर जब सारे भारत में उमड़ने लगती है तब उसके प्रभाव वलय से गाँववाले मुक्त नहीं रह सके । लेकिन जिस तरीके से स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी गयी उससे नागार्जुन रंज मात्र भी तृप्त नहीं रहे । उनकी यह अतृप्ति व्यंग्यात्मक रूप में महेन बाबू की माँ द्वारा यों प्रकट होती है - "फूल बाबू को यह क्या सनक सवार हुई ? गाँधी ने भले घर के लड़कों को बिगाड़ने का ठेका ले लिया है क्या ? पढ़ाई लिखाई छोड़ कर कालेज के लड़के अब क्या नमक ही बनाया करेंगे ?"[1]

किसी भेद-भाव के बिना एक जुट होकर स्वराज्य प्राप्ति केलिए लड़नेवालों को देखकर ज़मीन्दारों के हाथों क्रूर यातनाएँ सहनेवाला बलचनमा भी अपनी कल्पना में आज़ादी का सुख अनुभव करने लगता है ।

---

1. नागार्जुन - बलचनमा, पृ.62-63

"मैं ने सोचा मुलुक से अंग्रेज़ बहादुर चला जायगा, फिर यही बाबू-भैया लोग अफसर बनेंगे और तब इस बाबाजी महाराज की भी उद्धार हो जायगा। ....महेन बाबू ने यही कहा था कि सोराज होने पर सबके दिन लौटेंगे, सबका भाग चमकेगा। हमारा भी, तुम्हारा भी।

परन्तु फूल बाबू जैसे लोगों के आचरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कांग्रेस पार्टी गाँव के किसान मज़दूर के हितों का संरक्षण करने में समर्थ नहीं होगी। भूकम्प पीड़ितों की सेवा केलिए खुले रिलीफ फंड से फूल बाबू धन हड़पता है। वैसे ही छोटे मालिक के अत्याचारों से मुक्ति पाने केलिए फूल बाबू की शरण में गये बलचनमा को वर्गगत रक्षा का उदाहरण ही मिलता है। इसके साथ ही गरीब किसान-मज़दूरों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करनेवाली अनेक परिस्थितियाँ भी उस समय विद्यमान रहती हैं। गाँवों में शोषण की इकाई ज़मीन्दार से छुटकारा पाने केलिए किसान-मज़दूर हमेशा तरसता रहता है। राष्ट्रीय स्तर पर शोषण की इकाई अंग्रेज़ बहादुर को भगाने केलिए जिस तरह सारे भारतवासी एक जुट हो जाते हैं उसी तरह ज़मीन्दार से मुक्ति पाने केलिए गाँववालों को एकत्रित होने की ज़रूरत बलचनमा जैसे किसान-मज़दूर महसूस करने लगे हैं।

कांग्रेस आश्रम में चलनेवाले भ्रष्टाचारों का चित्रण नागार्जुन उपस्थित करते हैं। "राधा बाबू राजा खानदान के थे। पढ़ाई करते समय स्टेट का पैसा फूंकते रहे और अब पब्लिक का। चन्दा आसरम में काफी आता था। कोई उनसे हिसाब लेनेवाला नहीं था। जैसे मरजी आई पैसे खरचा किया[1]।"

---

1. नागार्जुन - बलचनमा, पृ.112

कांग्रेस पार्टी के ही युवा पीढ़ी के लोग लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग की भिन्नता के कारण समाजवाद से प्रभावित हो जाते हैं । पटना के स्वामी, शर्माजी आदि से भी लोग आकर्षित हो जाते हैं । इसी चेतना के परिणाम स्वरूप ज़मीन्दार के खिलाफ डा॰ रहमान की रहनुमाई में किसान-मज़दूर संगठित हो जाते हैं । सचेत किसान-मज़दूरों का परिचय इन नारों से अभिव्यक्त हो जाता है - "धरती किसकी ? जोते-बोये उसकी । किसान की आज़ादी आसमान से उतर नहीं आएगी । वह परगट होगी नीचे-जुती धरती के भुर-भुर ढ़ेलों को फोड़कर । [1] ।"

यों ज़मीन्दार-किसान संघर्ष को दिखाकर नागार्जुन यह स्पष्ट करते हैं कि स्वतंत्रता पूर्व भारतीय गाँव भी बदलती हुई राजनीतिक चेतना से प्रभावित रहा है और उनकी आकांक्षाएँ स्वाधीनता प्राप्ति के बाद उभरनेवाले एक समाजवादी सामाजिक व्यवस्था पर केन्द्रित रही है ।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक

"बलचनमा" के गाँव के धर्म का जो स्वरूप है वह औसत भारत के गाँव का प्रतिनिधित्व करनेवाला है । धर्म यहाँ रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, भूत-प्रेतों पर आधारित मान्यताओं को समेटकर चलता है । धार्मिक भाव सामाजिक भाव से मिलकर प्रतिबिम्बित होता है ।

जातिगत भेद-भाव के समान ही उच्च जाति और निम्नजाति के लोगों के द्वारा पूजनेवाले देवी-देवताओं में भी अन्तर है । निम्न जाति के लोग ~~कारनी~~ भुइयाँ महाराज की उपासना करते हैं जबकि उच्चजाति के लोग काली की ।

1• नागार्जुन - बलचनमा, पृ•207

धार्मिक भावनाओं से मिलीजुली मनोवृत्तियों के एक पक्ष पशु-बलि का उपन्यास में चित्रण है । छोटे मालिक के बेटे के जनेऊ में सोलह बकरों की बलि चढ़ायी जाती है और चार भस्मी पीटे जाते हैं । "भगवती की पिंडी के सामने देवाल {दीवार} पर खून के फव्वारों की निशानी हवेली के अन्दर" रह जाती है ।[1]

यहाँ के अन्धविश्वास अजीब से लगने वाले हैं । यहाँ के धनिक परिवारों में गाय नहीं पालते हैं । इनका यह विश्वास है कि पालने पोसने की सामर्थ्य जिन्हें भगवान ने दिया है उनके यहाँ भैंस ही पालना चाहिए । घर में गाय रखना ये हीनकार्य समझते हैं । गो-हत्या को ये लोग पाप मानते हैं । ताड़ी पिये छकौडी चाचा के बेफिक्री से साँप के डंसने से गाय मर जाती है जिससे उस पर गो वध का पाप आ धमकता है । इसके प्रायश्चित स्वरूप उसे सिमरिया घाट {गंगा} जाना पड़ा, सब चोटी के बाल कटाने पडे, बालू-गोबर निगलना पड़ा, दान-दच्छिना करनी पड़ी[2] ।"

अंधविश्वास में फंसे जनसाधारण का चित्रण मुखिया पर सवार भूत के चित्रण से स्पष्ट हो जाता है । मुखिया पर जब भूत लग जाता है, तो वह बोलती है - "ही ही ही ही मैं काली हूं, पोखर पर जो बाँना पीपल है उसी पर रहती हूं, खा जाऊंगी समूचा गाँव । बकरा दो बकरा ....[3] दासो ठाकुर द्वारा एकांत कोठे में पूजा की जाने पर वह स्वस्थ हो जाती है ।

1· नागार्जुन - बलचनमा, पृ·171

2· वही, पृ·172

2· वही, पृ·30

रामपुर गाँव मे संबन्धित अनेक संस्कारों और त्योहारों का वर्णन उपन्यास में है । ग्वालों की बिरादरी में छोटी आयु में ही शादी की जाती है । बलचनमा की शादी छः वर्ष की आयु में हो जाती है । यहाँ के रिवाज के अनुसार बारात में औरतों को नहीं ले जाते हैं[1] ।

गौने के पूर्व ही डोरा-सिन्दूर और सगुन के सामान लेकर घरवालों को राजी करने केलिए दुल्हे के घर मे कोई जाता है[2] । गाने के बाद दुल्हा और दुल्हिन दोनों को, एक डोली पर बिठाकर आंगन में दाखिल किया जाता है[3] ।

गाँव में मनाये जानेवाले प्रमुख त्योहार है दुर्गापूजा[4], दिवाली, भाई-दूज[5] आदि ।

इसके अलावा उपनैन (यज्ञोपवीत संस्कार)[6], श्राद्ध[7], छुट्ठी[8] आदि धार्मिक संस्कारों का भी उल्लेख उपन्यास में हैं ।

लोकगीत

"बलचनमा" में नागार्जुन ने लोकगीत की उपेक्षा नहीं की है । इसमें केवल एक ही लोकगीत को उन्होंने शामिल किया है । गौने के बाद अपनी नई नवेली वधू के साथ गाँव लौटते वक्त एक गीत का प्रस्तुतीकरण है ।

---

1 नागार्जुन - बलचनमा, पृ॰145
2॰ वही, पृ॰144
3॰ वही, पृ॰145
4॰ वही, पृ॰ 39
5॰ वही, पृ॰ 41
6॰ वही, पृ॰171
7॰ वही, पृ॰172
8॰ वही, पृ॰185

सखि हे मजरल आमक बाग ।
कुहू कुहू चिकरए कोइलिया
झींगुर गावए फाग ।
x x x x x ।।[1]

आम का बाग मंजरियों से लद जाता है जिससे मस्त होकर कोयल और झींगुर गाने लगते हैं । लेकिन नायिका विरह मे दुःखी रहती है ।

भाषा

जिला दरभंगा के रामपुर गांव पर केन्द्रित "बलचनमा" उपन्यास में भाषा और बोली का प्रयोग पात्रानुकूल किया गया है । डॉ॰ सत्यपाल चुघ की राय में - "हिन्दी उपन्यास साहित्य में आंचलिक वातावरण विधान में समर्थ आंचलिक भाषा का सर्वाधिक प्रयोग पहले इस उपन्यास में हुआ"[2]।

स्थानीय शब्दों के प्रयोग के द्वारा आंचलिकता सजीव लगती है । जन-जीवन के दैनिक व्यापारों का वर्णन करते वक्त वह असभ्य गालियों का उल्लेख करने में भी हिचकते नहीं । शब्द विकार के साथ (उदा॰ सिर्मिनिरिस (45) अन्हेरी (101) मलिस्टर (195) आदि) अंग्रेजी सिक्रेटेरियट (63) डिस्टिक बोड (151), रिलीफ (165) आदि) और उर्दू फिजूल (20) औकात (28), मोहब्बत (131) आदि) के शब्दों के प्रयोग भी दिखाई पड़ते हैं ।

1· नागार्जुन - बलचनमा, पृ॰152

2· डॉ॰ सत्यपाल चुघ - प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों की शिल्पविधि,पृ॰57

मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग जैसे "जिसकी लाठ उसकी भैंस"[1] "बेकार मन शैतान का घर"[2] "आन गाम्क पोथिर अपना गाम्क गाछी"[3] आप भला तो जहान भला"[4] आदि के प्रयोग से भाषा में सजीवता लायी गयी है ।

शैली

उपन्यास की रचना आत्मकथात्मक शैली में की गयी है । बलचन्द राउत नामक गरीब किसान मज़दूर अपने अनुभव और दूसरों से सुनी-सुनाई बात को उपन्यास में दोहराता है । अतीत की बातों से संबन्धित होने के कारण अधिकांशत पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग ही उपन्यासकार ने किया है । "बलचनमा की मालिक द्वारा मारपीट स्वरूप हुई मृत्यु[5] रेबनी पर छोटे मालिक द्वारा बलात्कार का प्रयत्न[6] आदि पूर्वदीप्ति शैली के उदाहरण हैं । मालिक के घर में बलचनमा की जीवन संबन्धी घटनाएँ वहाँ से पटना जाने की बात आदि वर्णनात्मक शैली के उदाहरण है । उपन्यास में चित्रित आश्रम[7] और मज़दूर संघर्ष के दृश्य फोटोग्राफिक शैली के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं ।

---

1. नागार्जुन - बलचनमा, पृ.56
2. वही, पृ.70
3. वही, पृ.106
4. वही, पृ.141
5. वही, पृ.-5-6
6. वही, पृ.79-80
7. वही, पृ.96-97

बिम्ब और प्रतीक

बिम्ब और प्रतीकों के द्वारा प्रभावात्मकता लाने का सफल प्रयत्न उपन्यासकार ने किया है ।

ध्वनि बिम्ब

विविध ध्वनियों के माध्यम से नादात्मक बिम्ब उभारने का प्रयत्न निम्न उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है ।

खड़ाऊँ की ध्वनि-खटर-खटर, खट्ट-खुट्ट[1]
पानी काटते हुए आगे बढ़नेवाले जहाज की ध्वनि - छरर-छरर, सरर - सरर आदि ।[2]

घ्राण बिम्ब

1. "आम के बौरों की खुशबू का ऐसा झोंका आया कि तबियत मस्त हो गई । ...... खुशबू का यह झोंका लगा तो मामा तक अपनी लाठी टेककर खड़े हो गये ।"[3]

2. "पीने के पानी का सवाद सैकड़ों जगह बिगड़ गया था । अजीब बदबू आती थी । होठों से पहले साली नाक ही जवाब दे देती ।"[4]

---

1. नागार्जुन - बलचनमा, पृ.38
2. वही, पृ.51
3. वही, पृ.151-152
4. वही, पृ.164

प्रतीक

बाँस की छिपाठी पर लाल झंडा फहरा रहा है । नगीज जाकर नजर ऊपर की तो लाल झंडे पर दो औजारों के निशान दिखाई पडे - एक निशान था हँसुआ का, दूसरा हथौडे का । हँसुआ को मूने पेट पर हथौडे का माथा ।[1]" यह लाल झण्डा और उसपर अंकित हँसुआ और हथौड का चिह्न क्रांति का प्रतीक है ।

"अनादि काल से आती हुई मनु-याज्ञवल्क्य अनुमोदित हिन्दू वर्ग-व्यवस्था के अवशेष समाज की प्रस्तुत कथा मिथिला के समाज का दर्पण है, जहाँ ब्याह, श्राद्ध, उत्सव, शोक, झगडे, गीत, जीवन का प्रत्येक व्यापार अपनी ऐतिहासिक व्यथा के साथ उपस्थित किया गया है । समाज के परिवर्तन की मुख्य धाराओं, शिक्षा व राजनीति का यथार्थ अध्ययन इसे आँचलिकता की पूर्णता की ओर ले जाता है[2] ।"

डॉ॰ बेचन की राय में "यह उपन्यास विश्व उपन्यास साहित्य में स्थान पाने योग्य है[3] ।"

प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास "बलचनमा" मे अपनी अस्तित्व की लडाई लडनेवाले नई पीढ़ी के नायक बलचनमा का सफल अंकन हुआ है ।

1· नागार्जुन - बलचनमा, पृ·177

2· श्री· मधुकर गंगाधर आलोचना जनवरी 1966, पृ·82

3· डॉ· बेचन - आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और चरित्र विकास, पृ·244

नई पौध (1953)

नई पौध का घटनास्थल है मिथिला का नौगछिया गाँव । सामन्ती व्यवस्था की बची खुची मान्यताएँ, आचार-विचार, विवाह संबन्धी कुरीतियाँ आदि के खिलाफ प्रगतिशील विचारवाले नवयुवकों की सामाजिक चेतना को यथार्थवादी धरातल पर उभारने का प्रयास नागार्जुन ने "नई पौध में किया है ।

जेठ के महीने के साथ ग्रामीणों की आशा-आकांक्षाएँ प्रफुल्लित हो जाती है । "जेठ का महीना था । लगन के दिन थे । अब की दो साल बाद ये दिन आये थे । इन दिनों की बाट जोहते-जोहते कई बूढ़ियों को उन्निद रोग हो गया था । कोई पोते की लड़की के दामाद का मुँह देखकर मरने की बात करती थी तो किसी का मनोरथ नतनी के बेटे की बहू का घूँघट हटाना भर रह गया था[1] ।"

इसी दिन खोखा पंडित की परी सी नतनी विश्वेश्वरी का विवाह है । उसकी आयु चौदहवाँ पार कर पन्द्रहवाँ पर पहूँच रही है । सौराठ के मेले से(शादी के उम्मीदवारों का मेला)पंडित विश्वेश्वरी केलिए एक वर ढूँढ लाता है । शकल-सूरत तो उसकी ठीक है मगर उमर अधिक है बहुत बड़ा काश्तकार है सीतामढ़ी से पच्छिम कहीं उसका घर है यह पाँचवीं बार वह दूल्हा बन रहा है .....[2] ।"

----

1. नागार्जुन - नई पौध, पृ.3
2. वही, पृ.5

इस व्यापार में पंडित नौ सौ रुपये पाता है । पिता की इस धनलोलुपता के विरुद्ध आवाज़ उठाने की हिम्मत उसके पुत्रों में नहीं है । क्योंकि वे अपने पिता द्वारा अपनी बहिनों को बेच दिये जाने के साक्षी हैं । "कोई गूँगे के पल्ले पड़ी थी तो कोई बौडम के पल्ले । कोई तीन जिला पार फेंक दी गई थी तो कोई पाँच सौ कोस पर । उनमें से चार को भाग्य ने वैधव्य के बीहड जंगल में डाल दिया था । एक पगली हो गई थी, एक को उसके आदम खोर पति ने किरासन तेल की मदद से जलाकर खाक कर डाला था ।[1]" बिसेसरी की माँ रामेसरी अपनी बेटी को इस राक्षसी लोभ से छुटकारा देने के लिए कनेर की गुठली पिसकर पिलाना चाहती है । चाहकर भी कर न पाने के अभिशाप से वह ग्रसित है ।

विवाह की सारी तैयारियाँ हो जाती है । पाँच लड़कों का पिता, साठ वर्ष का बूढ़ा चतुरानन चौधरी वर के रूप में उपस्थित हो जाता है । इसी अवसर पर प्रगतिशील विचारधारा की नई लहर से प्रभावित शिक्षित नई पीढी के युवक जो कि बमपार्टी के नाम से मशहूर है, इसका विरोध करने लगते हैं ।

बमपार्टी के सदस्य उस बूढ़े से लौट जाने का विनम्र निवेदन करते हैं । किन्तु ब्याह करने के शौक से आया बूढ़ा क्रुद्ध होकर भभक उठता है - "तुम लोग गुंडई पर उतर आये हो । सारी काबिलियत छुड़ाड दूँगा । चार अच्छर पढ़ लिये हो तो क्या बूढ़-पुरनिया लोगों की गंजी चाँद पर चप्पल मारोगे ?.....[2] ।" इसी बीच खोखा पंडित लाठी से वार करना शुरू करता है । लेकिन बम पार्टी के दिगम्बर द्वारा चेतावनी की जाती है - "यह बाबू साहेब जितनी देर लगाएंगे अशांति उतनी ही बढ़ेगी

---

1. नागार्जुन - नई पौध, पृ.6

2. वही, पृ.38

आप यह गाँठ बाँध लीजिए कि गाँव का एक एक नौजवान पिटते-पिटते बिछ जाए मगर यह ब्याह नहीं होने देगा ।" अंत में बूढ़े वर को भगाने में वे सफल हो जाते हैं ।

रूढ़िग्रस्त परम्पराओं का विरोध मात्र ही बमपाटी का उद्देश्य नहीं रहा । प्राचीन जर्जर परम्परा को तोड़कर उस पर नवीन का निर्माण ही इनका उद्देश्य रहा । इसलिए बूढ़े वर को भगाकर विश्वेश्वरी का विवाह दिगम्बर के मित्र वाचस्पति से किया जाता है । स्पष्ट है कि समाज में व्याप्त कुरीतियों के खिलाफ नई पीढ़ी न केवल संगठित होती है बल्कि ज़रूरत पड़ने पर संघर्ष करने को भी तैयार हो जाती है ।

"इस उपन्यास के माध्यम से नागार्जुन ने मिथिला के जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है और एक सड़ी गली प्रथा, स्वार्थवृत्ति तथा पुरानी-पीढ़ी की शोषक वासना का नंगा चित्र उतारा है[2] ।" "मानवीय मूल्यों पर आधारित नवीन सामाजिक चेतना को आवाज देने का सफल प्रयत्न नागार्जुन ने किया है[3] ।"

नारी के प्रति गाँववालों की और उस विशेष जाति की जो दृष्टि है उसका वस्तुनिष्ठ चित्र यहाँ उभरने लगता है । स्त्री समाज के प्रति किये जानेवाले अन्याय के प्रति आवाज़ उठाने केलिए समाज में नवयुवकों की बमपाटी मात्र रह जाती है । उपन्यासकार ने प्रमुख रूप से नारी के सामाजिक अस्तित्व और उसके अधिकारों के प्रति जनता का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया है यह इस उपन्यास का सशक्त तथ्य है ।

---

1. नागार्जुन - नई पौध , पृ.60-61
2. डॉ. सगीना जैन - आँचलिकता और हिन्दी उपन्यास, पृ.140
3. डॉ. ह.के. कडवे - हिन्दी उपन्यासों में आँचलिकता की प्रवृत्ति,पृ.143

पात्र चित्रण

तत्कालीन समाज में व्याप्त अनमेल विवाह के परिणाम स्वरूप नारी की दयनीय स्थिति का वर्णन करने में इस उपन्यास में प्रारंभ से अंत तक नारी की असहाय अवस्था का चित्रण मिलता है । उस समाज में नारी केवल बिकने का साधन मात्र है । समाज द्वारा किये जानेवाले शोषण के विरुद्ध लड़ने की शक्ति उसमें नहीं है । समाज द्वारा दमित इन औरतों की कहानी प्रस्तुत करके प्रगतिशील दृष्टिकोण से इस समस्या का हल सुझाना भी वस्तुत: उपन्यासकार का लक्ष्य रहा है ।

विश्वेश्वरी

आर्थिक अभाव के कारण समाज में प्रचलित अनमेल विवाह की आग में झुलसने केलिए तैयार की गयी एक मासूम कन्या है विश्वेश्वरी ।

"बेटी बेचवा" के रूप में प्रसिद्ध धनलोलुप नाना गोगा पण्डित सौराठ मेले से चौदह वर्षीय बिश्वेश्वरी केलिये साठ साल का एक वर ढूँढ कर लाता है । खंजन से दूल्हे की सारी बातें सुनकर "रह-रह कर बिसेसरी के मन में यही तरंग उठती थी कि कुएँ में जाकर कूद पडें बीच आँगन में खडी होकर चिल्ला पडे - इससे अच्छा यही होगा कि भगवती दुर्गा की पौड़ी पर मेरी बलि चढ़ा दो ।[1] "इस तरह की परेशानी के बीच भी आनेवाली दुर्घटना से मुक्ति की उसके मन में आशा है ।

---

1. नागार्जुन - नई पौध, पृ॰6

प्राईमरी शिक्षा प्राप्त बिसेसरी गाँव के प्रगतिशील युवकों द्वारा संस्थापित बमपाटी की अनियमित सदस्या है । "वे एक दूसरे की दिक्कतों से पूर्ण परिचित थे । खेल-मनोरंजन सोच-विचार, सुख-दुख कभी-कभी नाराज़ता यानी भी बहुत-सी बातों में वे परस्पर आत्मीय बन चुके थे[1]।" बूढ़े दूल्हे के बारे में जानते ही बिसेसरी इसकी सूचना अपनी हितकांक्षी, बमपाटी से संबंध रखनेवाली बूलो की भाभी को देती है, इसी के अनुसार ही बमपाटीवाले आगे जाकर बूढ़े दूल्हे को भगा देते हैं ।

बिसेसरी के मन में भविष्य के बारे में सारी आकांक्षाएं हैं । इसीलिए वह भगवान से मनौतियाँ करती है । बीस या बाईस साल के पति मिलने पर चाँदी की बाँसुरी चढ़ाने की प्रार्थना करती है । यह प्रार्थना सच भी निकलती है । वाचस्पति नामक युवक से उसकी शादी भी हो जाती है

नई चेतना से प्रभावित बिसेसरी यह चाहती है कि समाज में पुरुषों के साथ नारी के भी समान अधिकार हो । दुर्गा-पूजा के चन्दे के बारे में हुए विचार विमर्श में वह पूछ लेती है - "सब समझती हूँ मैं ! सोराज हुआ होगा दिल्ली और पटना में । यहाँ जो ग्राम सरकार कायम हुई है, उसके एगारह जो मेम्बर है । जनानी भी एकको गो है बूलो ?"[2] ।

आज़ादी के साथ ही उजागर होनेवाली नारी चेतना को नागार्जुन "नई पौध" में स्वरबद्ध करते हैं । समाज के हर क्षेत्र में नारी भी पुरुष के साथ अपना उचित स्थान प्राप्त करें यही उपन्यासकार का लक्ष्य है ।

---

1. नागार्जुन - नई पौध, पृ.37
2. वही, पृ.127

समाज की रूढ़ियों से लड़ने की नई चेतना शिक्षा और अन्य स्रोतों से नारी में जागृत हो उठती है । नई चेतना के प्रतीक के रूप में बिसेसरी का चरित्र इस उपन्यास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

बिसेसरी के चरित्र में नवयौवना की समूची आकांक्षाएँ हैं और प्रगतिशील विचारों के प्रति आस्था भी । परन्तु पूर्ण रूप से अपनी रूढ़ियों को छोड़ नहीं पाती । भगवान से बाईस वर्षीय पति की मनौती करना इसका उदाहरण है । नौगछिया गाँव की परिस्थितियों को सामने रखकर विचार करने पर लगता है कि इस चौदह वर्षीय लड़की का चरित्र समूचे गाँव के परिवेश में फिट नहीं हो पाता । लगता है कि उपन्यासकार का स्वर और उनके विचार एकदम इस पात्र पर हावी हो गये हैं । अन्यथा बमपाटी के जैसे युवकों के मध्य में अनियमित सदस्या के रूप में भाग लेना कठिन बात है । जो भी हो परिवर्तन के कांक्षी उपन्यासकार इस पात्र के माध्यम से गाँव की नव युवतियों में एक नई आस्था और आत्मविश्वास भर कर संघर्ष की दिशा में अधिकारों की रक्षा केलिए अग्रसर होने का आग्रह प्रकट करते हैं । दो पीढ़ियों की भिन्न मानसिकता रामेसरी-बिसेसरी द्वारा प्रकट करके नागार्जुन ने नये दायित्वों को संभालने की शक्ति आर्जित करने का सुनिश्चित लक्ष्य नारी के सामने प्रस्तुत किया है ।

रामेसरी

धन लोलुप, स्वार्थी, निष्ठूर खोखा पण्डित की बडी लड़की है रामेसरी । अच्छे घरवाले पण्डित से उसका विवाह हुआ था । इस अभागिन को दाम्पत्य का सुख केवल तीन साल केलिए ही भोगने का अवसर मिलता है । पति की मृत्यु के बाद ससुराल रहने की उसकी कोशिश जेठानी और देवरानी मिलकर नाकाम कर देती हैं जिससे उसको अपने मायके लौटना पड़ता है ।

उसकी एक मात्र संतान है चौदह वर्ष की विश्वेश्वरी "बड़ी उमर तक निपूती रहनेवाली स्त्री जिस नेम-निष्ठा से, जिस नेह-छोह से तुलसी के पौधे को पोसती है, उसी तरह रामेसरी ने बिसेसरी को पोसा था[1] । इसी लाडली केलिए ही खोखा पण्डित पाँच बेटों के पिता को ढूँढ कर लाता है

संसार भर में अपने बच्चों की चिन्ता जितनी माँ को सताती है उतनी और किसी को नहीं । बेटी के जीवन में आनेवाले इस अग्निपात के बारे में सोचकर वह दु:खी हो जाती है । वह अपनी बेटी का बलिदान नहीं चाहती । इसलिए वह अपनी बेटी को जहर देना चाहती है । एक ओर इस तरह सोचना पाप है फिर भी जिस दु:ख का अनुभव वह स्वयं कर चुकी है उसकी बेटी द्वारा उसी दु:ख का भार ढोना वह नहीं चाहती । वह मन ही मन क्रुद्ध होकर सोचती है - "लड़की के जीवन को धूल में मिलाने का उसे क्या अधिकार है ? दूल्हे को आने तो दो, उस बुड्ढे के माथे पर अंगारे न डाल दूँ तो रामेसरी मेरा नाम नहीं[2] ।" झट से उसे अपनी असहाय स्थिति का बोध हो जाता है । वह जानती है कि उसके चाहने पर भी शादी होकर ही रहेगी । अभागिन विधवा चीखने और चिल्लाने के सिवा और क्या कर सकती है ?

दूल्हे की धन - संपदा के बारे में अचानक रामेसरी के मन में एक दम और एक विचार जाग उठता है "सुना है धन-संपदा काफी है । रानी बनकर रहेगी मेरी बीसो उमिर कुछ अधिक है तो क्या हुआ[3] ।" जब "रामेसरी की आँखों के आगे अपनी बेटी का मासूम मुखड़ा ज़ोरों से नाच"[4]

---

1 नागार्जुन - नई पौध, पृ·23

2· वही, पृ·7

3· वही, पृ·26

4· वही, पृ·

उठता है एक प्रकार का मानसिक द्वन्द्व, एक कसक वह अनुभव करती है । "धन-संपदा ही क्या सबसे बड़ी चीज़ है ? पंद्रह साल की कच्ची छोकरी पचास साल के पकठोस दूल्हा के साथ किस तरह अपनी जिनगी काटेगी ? हे राम ..... !"[1]

नई पौध (नई पीढ़ी) पर भरोसा रखनेवाली रामेसरी उनके द्वारा अपनी बेटी की शादी न होने देने की इच्छा करती है । यह शादी न होने की सूचना मिलने पर वह मन ही मन सन्तोष का अनुभव करती है ।

स्वावलम्बन शीलता इस पात्र की विशेषता है । वह हमेशा किसी न किसी कार्य में लगी रहती है । चर्खा चलाकर प्रतिमाह दस-बारह रुपये वह अपनी लाडली की ज़रूरत केलिए और अन्य कार्यों केलिए कमाती है ।

रामेसरी का अपनी बहिनों से प्यार विशेष रूप से उल्लेखनीय है । अपने को छोड़कर बाकी सभी बेटियों को खोखा पण्डित बेच देता है जिस पर रामेसरी दुःखी है । "रामेसरी अपने अभाग पर उतना कभी नहीं रोई जितना कि बहनों की बदनसीबी पर रोती रहती थी ।"[2] रामेसरी की यह प्रवृत्ति उसकी अपनी बहिनों के प्रति सहज स्नेह का द्योतक है ।

रूढ़ियों के शिकंजे में फंसी भारतीय नारी का करुणामय रूप "नई पौध" में चित्रित है । अपने परिवेश से लड़ने की क्षमता उसमें ज़रूर है लेकिन वह जिस समाज में जीती है उसके दायरे में नारी की स्थिति ऐसी है कि इन सारी यंत्रणाओं को सहकर आँसू के घूँट पीने केलिए वह मजबूर है ।

---

1. नागार्जुन - नई पौध, पृ.26
2. वही, पृ.6

भाभी

बूलो के भाई की घरवाली नेपाल की तराई की किसान कन्या सभी की भाभी है । वह शारीरिक सौन्दर्य की बात से हज़ारों में एक होगी लेकिन दिलेरी और दिलदारी की दृष्टि से लाखों में एक ।

बमपार्टी के नवयुवकों को मार्ग दर्शन करानेवाली है भाभी। ये युवक तो सभी से पूछे बिना एक कदम भी आगे नहीं रखते । सभी की हितकांक्षी भाभी से ही सर्वप्रथम विश्वेश्वरी बूढ़े के साथ अपनी शादी तय की जाने की बात कहती है । इस अनमेल विवाह की बात सुनकर वह जागृत हो जाती है और बमपार्टी के सदस्यों के सामने इसे समस्या बनाकर खड़ा कर देती है ।

जर्जरित सामाजिक रूढ़ियों से संघर्ष चाहनेवाली भाभी हमेशा हिंसा से दूर रहने की सलाह ही दे देती है । वह अपने देवर की ही नहीं बमपार्टी के सभी युवकों की भलाई चाहती है । इसी ममतामयी भाभी के बारे में बूलो का मित्र माहे सोचता है - "हर बात में भाभी हमारी तरफदारी करती है । हमारे खिलाफ जो कुछ भी शिगूफा छूटता है, उसमें यह हमारी ओर से वकालत करती है । हमें बढ़िया से बढ़िया सलाह देती है और मोह तो देखो । मार-पीट मत करना ।"[1]

प्रगतिशील चेतनावाले नवयुवकों को सही रास्ते पर ले जानेवाली भाभी इस उपन्यास में थोडी देर केलिए ही आती है तो भी वह जो प्रभाव पाठक के हृदय पर छोड़ती है वह महत्वपूर्ण है । वस्तुत: उपन्यासकार ने

---

1. नागार्जुन - नई पौध, पृ.35

भाभी को नारी के अधिकारों की रक्षा करने का मोह रखनेवाली एक असाधारण युवती के रूप में प्रस्तुत किया है ।

अप्रमुख स्त्री पात्र

पति जितना भी निष्ठुर क्यों न हो पति को परमेश्वर माननेवाली भारतीय नारी का प्रतीक पंडिताइन के अलावा अपनी पुत्र की शादी पर चिन्तित वाचस्पति की माँ, पंडित की बहुएँ, बिसेसरी की सहेली खंजन आदि चरित्रों का भी उपन्यास में उल्लेख है । इस उपन्यास में आनेवाले अप्रमुख स्त्री पात्र किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति के दायित्व को लेकर सामने आते हैं । सब के सब असहाय हैं । उनमें कोई खास व्यक्तित्व नहीं रह जाता । भारतीय नारियों में नब्बे फीसदी स्त्रियाँ इन्हीं की कोटि की है - अशिक्षित, विवेकहीन और लाचार जीवन की गठरियाँ ।

वैसे इस उपन्यास में नारी पात्रों की कमी तो महसूस की जाती है । प्रमुख रूप में आनेवाली रामेसरी और बिसेसरी ही हमारे ध्यान का केन्द्र बनती है । लेकिन रामेसरी के आगे और पीछे ऐसी कई महिलाओं का परिचय मिलता है जो कौड़ी के दाम पिता द्वारा बेची जाती है और बूढ़ों के पल्ले पड कर अपने जीवन को नारकीय बना लेती है । इन पात्रों के इर्द-गिर्द ध्वनित होनेवाली सिसकियों की और वैधव्य के भार की और विक्षुब्ध मानसिकता की दर्दभरी आवाज़ सुना जाने में उपन्यासकार एक सीमा तक सफल हुए हैं ।

पुरुष पात्र

खोखा पण्डित

"नई पौध" उपन्यास का प्रमुख पात्र है खोखा पंडित । मूल्यहीन सामाजिक कुरीतियों का प्रतीक खोखा पंडित अपनी मीठी आवाज़ में भागवत की कथा सुनाकर प्रतिष्ठा और सम्मान का पात्र बनता है । पुरानी रूढ़ियों पर आस्था रखनेवाला यह स्वार्थी, निष्ठुर, धनलोलुप पंडित अपनी छः कन्याओं को बेचकर पैसा कमाता है । अब वह सौराठ के मेले मे साठ साल के दूल्हा ले कर आता है । वह भी अपनी परी सी सुन्दर चौदह वर्षीय नतिनी केलिए । इस सौदे में वह नौ सौ रुपये पाता है । "पंडित की निगाहों में नौ अंक पर दो शून्य नाच उठे, बडी शकल में । नौ का वह अंक और उस पर के वे दोनों शून्य धीरे-धीरे बडे होते गये, बडे होते गये और बड़े होते गये[1] ।"

अपने द्वारा किये जानेवाले हर कार्य में न्याय देखनेवाला पण्डित दूल्हे की आयु पर फिक्र ही नहीं करता । वह सोचता है - "उमर ज़रा ज्यादा है तो क्या हुआ ? कम उमर के लोग क्या नहीं मरते हैं ? बाबा वैद्यनाथ की अनुकंपा होगी तो इसी दूल्हे के घर बिश्वेश्वरी की कोख से एक से एकइस संतान हो सकती है[2] ।"

लेकिन यह विवाह नौगाछिया के नवयुवक नहीं होने देते । यहाँ पर नयी और पुरानी पीढ़ी में संघर्ष होता है और नयी पीढ़ी की विजय दूल्हे को भगाना - गाँव में पनपती नई चेतना को मूर्त रूप प्रदान करती अपनी कोई योजना ठीक नहीं बैठते हुए देखकर खोखा पण्डित गाँव छोडता है

1· नागार्जुन - नई पौध, पृ·17

2· वही, पृ·14

यह बूढ़ा पण्डित इस पीढ़ी का प्रतीक है जो अभी समाप्त हो रही है। वधुओं का व्यापार करनेवाले और स्त्री को मात्र सौदागिरी का सामान समझनेवाले रूढ़िवादी अन्धविश्वासी पीढ़ी की हार को दिखाकर उपन्यासकार ने परिवर्तन की ओर इशारा किया है। भारतीय गाँव आज भी ऐसे पोंगी पंडितों से भरे पड़े हैं। स्वार्थ और गरीबी धन की लोलुपता इन के ऐसे रोग हैं जो हटाये नहीं जा सकते।

दिगम्बर मल्लिक

बिहार बैंक (पटना) के असिस्टेंट एकाउंटेंट नीलकंठ मल्लिक का यह पुत्र गणित में कमज़ोर होने के कारण नाइन्थ में दो बार फेल हो जाता है। धनी बाप का पुत्र दिगम्बर चतुर है और नवयुवकों पर उसकी विशेष रूप से धाक है। नम्रता की मूर्ति दिगम्बर को सारे लोग आदर और गौरव से देखने लगते हैं।

सभी केलिए माननीय नेता दिगम्बर केलिए अपनी साथी की समस्या अपनी समस्या है और उसे सुलझाना वह अपना कर्तव्य समझता है। उपन्यास के पहले अंश में ही पण्डित द्वारा माहै के पिछवाडे में खुदवाये गड्ढे को भरवा देने में प्रयत्नशील दिगम्बर का चित्रण होता है। इसमें वह सफल भी निकलता है और आगे से "बडे-बूढ़े और सयाने लोग नवयुवकों को प्रतिद्वन्दी दृष्टि से देखने"[1] लगते हैं।

---

1. नागार्जुन - नई पौध, पृ.14

समाज में अब भी जीवित निष्ठुर आचारों के विरुद्ध अपने प्राणों की बलि देने केलिए तैयार दिगम्बर बिश्वेश्वरी से शादी करने केलिए आये साठ साल के दूल्हे को भगा देता है । अपने दिल्ली दोस्त वाचस्पति को समझा-बुझाकर बिश्वेश्वरी से उसकी शादी भी सम्पन्न करा देता है । दुर्गानिन्दन की सोच ठीक ही लगती है - "आज दिगो दुर्गा को मामूली कायस्थ दिगम्बर मल्लिक नहीं, संकट मोचन बजरंग बली हनुमान जी का अवतार प्रतीत हो रहा था ।"[1]

अनमेल विवाह का विरोध करनेवाला दिगम्बर बाल्यविवाह का भी विरोधी है । सत्रह साल की अपनी बहिन की शादी के बारे में पूछनेवालों को अपने उत्तर से वह बेजवाब कर देता है ।

इस साहसी, दयालु युवक में साहित्य सृजन की क्षमता भी है । चार-छः कहानियों की रचना की गयी है और अनेक कहानियाँ अधूरी पड़ी हुई है ।

उपन्यास के आदि से अंत तक अन्याय और अनाचारों के विरुद्ध मोर्चा लेनेवाला दिगम्बर पाठक के आकर्षण का केन्द्र बनता है । प्रगतिशील विचारधारावाला यह युवक सचमुच नागार्जुन का मानस पुत्र है जिसके द्वारा अपने विचार पाठक तक पहूँचाने में नागार्जुन का प्रयास सराहनीय है । यह बात इस पात्र के प्रति उत्पन्न होनेवाली दिलचस्पी से स्पष्ट होती है । एक सीमा तक यह पात्र समय सापेक्षिता का प्रतीक भी है ।

---

1. नागार्जुन - नई पौध, पृ. 122

वाचस्पति

दिगम्बर के मिडिल स्कूल का साथी वाचस्पति सोशलिस्ट नेता है । उन दोनों की मित्रता में पढ़ाई के दिनों में जो घनिष्ठता रही वह अटूट रूप से आज भी जारी है ।

पढ़ाई के दिनों में सोशलिस्ट नेता के सम्पर्क में आया वाचस्पति समाज सेवा में अपने जीवन की सार्थकता ढूँढ़ने लगता है । "अब वह छः लाख की आबादी वाले तीन-तीन थाना की जनता की इक छः सात वर्षों के अन्दर नौ दफे जेल जाकर थाली कटोरा बजा आया था ।"[1]

बेटी की शादी के बाद अकेली बनी वाचस्पति की माँ अपने बेटे की शादी का भार दिगम्बर को सौंप देती है । दिगम्बर के प्यार के आगे वाचस्पति को झुकना पड़ता है । बिश्वेश्वरी के बारे में दिगम्बर से सुनकर और उसकी परिस्थिति को भली भाँति समझकर वाचस्पति सहायता का हाथ आगे बढ़ाता है और बिसेश्वरी को अपनी जीवन संगिनी बना लेता है। वाचस्पति का यह समर्पण उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि समाज कल्याण के प्रति की जानेवाली आत्माहुति ।

चतुरानन चौधरी

"नई पौध" में सामन्ती सभ्यता के प्रतीक के रूप में चतुरानन चौधरी का चित्रण किया गया है । साठ साल की आयु में सौराठ मेले में

---

1. नागार्जुन - नई पौध, पृ. 113

पाँचवीं शादी केलिए वर बनकर आनेवाले चौधरी की मुलाकात अपनी चौदह वर्षीय नतिनी केलिए वर ढूँढ़ने आये खोखा पण्डित से होती है । नौ सौ रूपये पर बात पक्की हो जाती है । लेकिन नई शिक्षा और चेतना से प्रभावित नई पीढ़ी के युवक इनके खिलाफ मोर्चा लेते हैं, और उसे हार कर लौट जाना पड़ता है ।

सामंती सभ्यता की बची खुची निशानी के रूप में चौधरी का चित्रण हुआ है । शोषण उसके रक्त में ही पलता है । इसलिए वृद्धावस्था में भी चौदह वर्षीय कुमारी से अपना संबन्ध जोडने केलिए वह हिचकता नहीं । चौधरी में प्रतिशोध और धोकेबाजी के सभी अवगुण विद्यमान हैं । दिगम्बर के प्रति उसके मन में यह प्रतिशोध जागता है और झूठे मामले में उसे फंसाने केलिए सोचता है । इससे यह बात स्पष्ट होने लगती है कि नागार्जुन ने चौधरी के माध्यम से गाँव के बडे बडे परिवारों के अनदेखे बिलों में छिपे पडे शोषण के उन महा सर्पों की ओर ध्यान आकर्षित किया है जिनके छूने मात्र से नवयौवनाओं का रूप काफूर हो जाता है और वैधव्य के श्मशान में अस्त होने लगता है ।

इसके अतिरिक्त घटकराज का काम करनेवाला मटुकी पाठक, बसपार्टी का सक्रिय सदस्य माहे, पिता के कुकर्मों पर दुःखी दुनाई पाठक आदि अनेक पात्र उपन्यास में दृष्टिगत होते हैं ।

इस उपन्यास के पात्र निजी वैयक्तिकता के प्रतीक नहीं होकर सामाजिकता के प्रतीक बन जाते हैं ।

विविध आयाम

सामाजिक

ग्रामीण जीवन के विविध पहलुओं में आये परिवर्तनों को स्वरबद्ध करने का प्रयास आंचलिक उपन्यासकारों के द्वारा किया जाता है। वे अपने भोगे हुए सत्य को सामाजिक धरातल पर विश्लेषित करने केलिए कटिबद्ध रहते हैं। "आज की परिस्थितियों से उत्पन्न वास्तविक संत्रास का चित्रण एवं अस्तित्व की सही चुनौतियों को सार्थक ढंग से स्वीकार करने का प्रयत्न इन उपन्यासों में दृष्टिगत होता है[1]।"

समाज की सबसे मूल्यवान इकाई परिवार ही परिवर्तन का पहला शिकार बन जाता है। परिवार का सदस्य व्यक्ति और परिवार तथा परिवार और समाज के पारस्परिक संबंधों में एक तनाव सा उत्पन्न होता है। परिणाम स्वरूप सभी के सामने अपने अपने अस्तित्व का सवाल ही प्रमुख रह जाता है। स्वार्थ की भावना व्यक्ति की मुखमुद्रा बन जाती है, वह पिता हो या पुत्र।

विज्ञान और शिक्षा से नई पीढ़ी की मानसिकता प्रभावित हो रही है जिससे परम्परागत रूढ़ियों और मूल्यों से नई पीढ़ी का टकराव शुरू हो जाता है।

---

1. डॉ. सुरेश सिन्हा - हिन्दी उपन्यास, पृ. 153

अपनी छः बेटियों को बेचकर ऋणमुक्त होनेवाला खोखा पंडित अब अपनी चौदह वर्षीय नतिनी केलिए साठ साल के दूल्हे को लेकर आ जाता है। लेकिन गाँव की "नई पौध" इसे नहीं होने देती। "बिसेसरी को, एक बूढ़े से विवाह कराकर नारकीय जीवन में ढकेलने का जो षड्यंत्र ढलती पीढ़ी ने किया है और समाज ने जिसका अनुमोदन किया है, उसे उठती पीढ़ी के नवयुवकों ने तोड दिया है[1]।"

"नई पौध" के समाज में नारी की स्थिति अत्यन्त दुःखद है। जिस तरह बैल और गाय को बेचने केलिए मंडी लगायी जाती है उसी तरह सौराठ के मेले में लड़कीवाले और लडके वाले एकत्रित हो जाते हैं, और यहाँ सौदा तय किया जाता है। अर्थात् लड़की केवल बिकने की चीज़ मात्र समझी जाती है।

नारी शिक्षा उस समाज में प्रचलित नहीं है। बिसेसरी को अपर प्राइमरी तक पढ़ने की सुविधा उसकी माँ के कारण ही मिलती है। इसे आगे पढ़ाने में नाना खोखा पण्डित को ज़रा भी इच्छा नहीं है। अपनी बेटी की शिक्षा केलिए टूट करनेवाली रामेसरी भी अपनी बेटी के अनमेल विवाह के विरुद्ध कुछ नहीं कर पाती।

प्रगतिशील विचारधारावाले युवकों के संपर्क में आकर नारी भी अपने अधिकारों के प्रति जागृत होने लगती है। नई चेतनावाले युवकों का मार्ग दर्शन देनेवाली है बूलों की भाभी। बिससेरी तो "बम पार्टी" की अनियमित सदस्या है। स्वराज्य प्राप्ति के बाद भी ग्राम-सरकार में एक भी औरत को सदस्यता प्राप्त न होने पर वह अपना विद्रोह प्रकट करती है।

---

1. डॉ॰ गणेशन - हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन, पृ॰195

"नई पौध" में सामाजिक जीवन को यथार्थ रूप में अंकित करने में नागार्जुन इतने सफल हुए है कि वह कभी भी आरोपित रूप में प्रतिभासित नहीं होता है । पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के टकराव द्वारा नई पीढ़ी की विजय दर्शाकर समाज की गयी - गुज़री रूढ़ियों को ढोने केलिए अभिशाप्त नारियों के उद्धार का चित्रण बहुत सहज ढंग से प्रस्तुत करने की कोशिश करते हैं

आर्थिक

"नई पौध" का नौगच्छिया गाँव आर्थिक दृष्टि से अभावग्रस्त है खोखा पण्डित की ही बात लीजिए । दहेज दे कर अपनी बेटियों की शादी कराने की आर्थिक स्थिति उसकी नहीं रही । और ऋण से मुक्ति भी वह चाहता है । इसका एक मात्र रास्ता अपनी बेटियों को बेचना ही समझता है स्वार्थ की भावना उसमें है ही लेकिन केवल स्वार्थ के कारण ही नहीं बल्कि आर्थिक विषमता के कारण वह इस तरह करने केलिए विवश बन जाता है ।

समाज की स्थिति आर्थिक व्यवस्था पर आधारित है । अर्थ के आधार पर ही समाज में मानव का स्थान निश्चित किया जाता है । आर्थिक विपन्नता ग्रस्त बिसेसरी के साथ विवाह केलिए सहमति व्यक्त करते हुए वाचस्पति दुर्गानन्दन से कहता है - "आप लोग सामाजिक विषमता के कारण जिस मुसीबत में फँस गये थे, उसके बारे में दिगंबर से मेरी काफी चर्चा हो चुकी है और हमने जो फैसला किया सो आपको मालूम हो गया होगा । व्यक्ति का संकट ही समाज का संकट है और समाज का संकट समूचे देश का संकट है [1] ।"

---

1. नागार्जुन - नई पौध, पृ.130-131

आर्थिक रूप से पिछड़े नौगाछिया गाँव की सामाजिक समस्याओं के मूल में वहाँ की आर्थिक विपन्नता ही है ।

राजनीतिक

नौगाछिया गाँव की भूत तथा वर्तमान काल की राजनीतिक हलचलों का नागार्जुन ने चित्रण किया है । सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लिये हुए नीलकंठ मल्लिक के बारे में नागार्जुन लिखते हैं "30-32 के राष्ट्रीय आन्दोलन में हाई स्कूल की मास्टरी छोड़कर और नमक बनाकर नीलकंठ बाबू जेल गये, साल भर की सजा हुई थी[1] ।" इसी परंपरा का है बम पार्टी का दिगम्बर ।

आज़ादी के बाद शोषणमुक्त समाजवादी समाज का सपना सपना ही रह जाता है । आज़ादी के बाद जो विकास हुआ है उससे गाँव सदा वंचित रह जाता है "स्वराज हुआ होगा दिल्ली और पटना में[2] ।"

कांग्रेज़ी शासन के प्रति लोगों के मन में अब कोई लगाव नहीं रह जाता है । वे अंग्रेज़ी शासन को कांग्रेसी शासन से भी बेहत्तर सोचने लगते हैं । वे कहने लगते हैं - "अंग्रेज़ बहादुर ही अच्छे ! इन से तो हम भर पाये "अंग्रेज़ लहू पीता था, ई लोग हड्डी चबाते हैं[3] ।"

---

1. नागार्जुन - नई पौध, पृ.66
2. वही, पृ.127
3. वही, पृ.41

सरकारी कर्मचारियों की सहायता से गाँव में चोरी कायम रहती है। गाँव का मुखिया अपने आँगन में तिरंगा झण्डा फहराकर चोरी करने में लग जाता है। गाँव के नवयुवक-दल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के पास दरख्वास्त देते हैं - "हमारे गाँव का मुखिया चीनी और किरासन के बँटवारे में धाँधली करता है, इस गड़बड़ी को फौरन दुरुस्त किया जाय[1]।" इसके परिणाम स्वरूप सप्लाई-इन्स्पेक्टर द्वारा जाँच की जाती है। दरख्वास्त पर हस्ताक्षर किये नौ आदमियों में से केवल पाँच ही इन्स्पेक्टर के सामने आते हैं। उनके नाम पर अलग-अलग कार्ड बना दिया जाता है। स्पष्ट है कि अफसर लोग जन साधारण के कष्ट पर तनिक भी ध्यान नहीं देते।

नवयुवकों में राजनीति का प्रभाव वाचस्पति के द्वारा स्पष्ट किया जाता है। सोशलिस्ट विचारधारा से प्रभावित वाचस्पति पढ़ाई छोड़कर त्याग और तपस्या की कँटीली पगडंडी पकड़कर[2] समाज सेवा में लीन रहता है।

समाज में प्रचलित जर्जर रूढ़ियों और मान्यताओं के विरुद्ध वार करने के उद्देश्य से रचित इस उपन्यास में राजनीतिक या सैद्धान्तिक विचारधारा का मोह दिखाई नहीं पड़ता है। किसी भी पात्र पर अपना प्रगतिवादी मोह थोपने का रंच मात्र प्रयत्न भी नागार्जुन ने नहीं किया है। इस उपन्यास में उनकी समाजवादी दृष्टि ही प्रकाशमान रहती है।

धार्मिक व सांस्कृतिक

गरीबी और अशिक्षा के अभिशाप से लंबे अर्से से पीड़ित नोगाच्छिया गाँव के लोग रूढ़िवादी धार्मिक मान्यताओं और अंधविश्वासों में बुरी तरह जकड़े हुए हैं।

---

1. नागार्जुन - नई पौध, पृ. 9
2. वही, पृ. 113

धार्मिक भावना का एक पक्ष पशु-बलि की चर्चा करके नागार्जुन धार्मिक अन्धविश्वासों की कलई खोलकर रख देते हैं । "टुनाई का समूचा परिवार हाथ जोड़कर भगवान से अनुनय करते कि चाहे जैसे भी हो बिसेसरी का ब्याह अगहन के लगन में अवश्य हो जाय । पंडिताइन ने आँचल पसारकर और मत्था टेककर जोड़ा छागर (तरुण बकरा) कबूला था दुर्गामाई के आगे[1] ।"

स्वार्थ पूर्ति केलिए मनौतियाँ मानने के भौतिक पक्ष को भी नागार्जुन 'नई पौध' में चित्रित करते हैं । बिसेसरी की शादी केलिए बच्चन सत्यनारायण की पूजा का संकल्प लेता है तो रामेसरी गंगाजल भरकर बाबा वैद्यनाथ को नहलाने की मनौती । स्वयं बिसेसरी बीस बाईस साल का दूल्हा मिलने पर चाँदी की बाँसुरी चढ़ाने की मनौती करती है । मनौतियों पर ग्रामवासियों का विश्वास इससे स्पष्ट हो जाता है ।

लेकिन बाहरी प्रभावों से लोग अधिक से अधिक बाह्याडम्बर प्रिय बन जाते हैं । शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ ही धर्म के नाम पर चलनेवाली रूढ़िवादिता भी जीर्ण-शीर्ण हो जाती है । अंधविश्वास और रूढ़ियों के बल पर जीवन यापन करनेवाले खोखा पण्डित की जबान सुनिए - "अब तो खैर धर्म-विश्वास कम हो गया, पहले मगर भागवत से काफी आमद थी[2] ।" वैसे ही धार्मिक आचरणों में लोगों की बढ़ती अरुचि पर प्रकाश डालते हुए दुर्गानन्दन के सहपाठी का भाई कहता है - "जहाँ के लोग पहले भागवत की कथा सुनते थे, वहाँ वाले नज़दीक के शहरों में आकर सिनेमा देख जाते हैं । गेहूँ सस्ता होता है तो घर-घर सतनारायन की पूजा होती है[3] ।"

---

1. नागार्जुन - नई पौध, पृ.91-93
2. वही, पृ. 4
3. वही, पृ.94

शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ गाँवों में लक्षित परिवर्तनों से नागार्जुन पूर्ण रूप से आश्वस्त हैं । धार्मिक अन्धविश्वासों और रूढ़ियों में जकड़ी ग्रामीण जनता को प्रगति के पथ पर ले जाने का दायित्व वे नई पीढ़ी पर सौंप देते हैं ।

जातिगत संस्कारों से संबन्ध रखनेवाले अनेक रिवाज़ नौगछिया गाँव में भी दिखाई पड़ते हैं । शादी के पहले दुल्हिन से आम और महुआ के पेड पुजवाते हैं[1] ।"

विवाह के बाद की चौथी रात ही वर-वधू की मिलन रात्रि होती है ।

गाँववालों से मनाये जानेवाले त्योहार जैसे "तीज"[2], "मातृ नवमी"[3] "जन्माष्टमी"[4] का चित्रण उपन्यासकार ने किया है ।

नौगाछिया गाँव को उसकी पूर्णता के साथ उभारने में नागार्जुन सफल सिद्ध हुए हैं । "सौराठ में शादी-विवाह की सौदेबाजी, मधुबनी स्थित न्यायालय के दृश्य, गाँव के प्रमुख द्वारा चीनी और मिट्टी के तेल के वितरण में की जानेवाली धाँधली, वर्तमान शासन के स्वरूप की झलक, यथास्थान धार्मिक मंत्रों के उद्धरण और स्थानीय बोली के शब्दों के प्रयोग ने मिथिला-अंचल के सामाजिक जीवन को मानो सजीव-साकार बना दिया है[5] ।"

---

1 नागार्जुन - नई पौध, पृ.44
2. वही, पृ.84
3. वही, पृ.102
4. वही, पृ.104
5. बाबू राम गुप्त(डॉ) उपन्यासकार नागार्जुन, पृ.105

भाषा शैली

नौगछिया गाँव में शिक्षित लोग बहुत कम है इसलिए खडी बोली हिन्दी के साथ शब्द विकार, अर्थ विकार आदि के भरमार के साथ साथ उर्दू और अंग्रेज़ी शब्दों को -- भी उपन्यास की भाषा में देखी जा सकती है । उपन्यास की भाषा ज्यादा समझ में आनेवाली है फिर भी समूचे उपन्यास में दिखाई पडनेवाले कुछ विशेष शाब्दिक प्रयोगों को निम्न ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है ।

स्थानीय शब्द

"जग (यज्ञ) टप कर" (पार करके) जथा-जाल (धन संपदा, जर जमीन) अग्निहोत्री (रसोईया) आदि ।

शब्द विकार

सर्दी (4), सुभीता (7) अपसोच (40) आसरा (123) आदि ।

अंग्रेज़ी शब्द

हैंडल (पृ. 75), मिनिस्टर (108), एक्सप्रेस आदि ।

उर्दू शब्द

अफवाह (5), जिन्दगानी (6), तरफदारी, खिलाफ, मुसीबत, बर्दाश्त (35) इज्जत - आबरू, हुकूमत (41) महफिल (51) आदि ।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ जोड़कर बातचीत करने की गाँववालों आदत रहती है । "नई पौध" में भी इसका प्रयोग हुआ है ।

(1) पानी में आग लगना (पृ.25)

(2) अकेली राधा कितने नाचेगी (पृ.27)

(3) शेर शेर है और गीदड गीदड ही रहेंगे (पृ.56) आदि ।

इस उपन्यास में भी प्रकृति वर्णन के सन्दर्भ में नागार्जुन का कवि हृदय जागृत हो उठता है । "आधा सावन बीतते न बीतते लोग अपने-अपने खेत आबाद कर चुके थे । धान के हरे-हरे पौधों से एक-एक मैदान, एक-एक पाँतर हरियाली का समुद्र हो रहा था । बयार सिहरती तो इस समुद्र की हरित-नील-लोल लहरियाँ सातों सागर की तरंगित सुषमा को मात कर जाती, 1 ।"

शैल्पिक विशेषताएँ

"नई पौध" उपन्यास में नागार्जुन ने सन्दर्भ के अनुसार पूर्वदीप्ति, चेतना प्रवाह आदि शैलियों का सहारा लिया है

उपन्यास का शीर्षक ही एक प्रतीक है । सामाजिक रूढ़ियों से विद्रोह करनेवाली प्रगतिशील चेतना से प्रभावित नई पीढ़ी का प्रतीक है यहाँ "नई पौध" ।

---

1. नागार्जुन - नई पौध, पृ.54

सांकेतिकता और बिम्ब योजना के सहयोग से उपन्यास का सौन्दर्य बढ़ गया है ।

उपन्यास की आंचलिकता के बारे में कोई शंका ही नहीं रह जाती । मूल कथा प्रगतिशील विचारों से प्रभावित रहने पर भी नागफिछया के ग्रामीण जीवन को उसकी समग्रता के साथ उतारकर उपन्यास को आंचलिकता का रूप दिया गया है ।

---o---

बाबा बटेसरनाथ (1954)

नागार्जुन ने अपना चौथा उपन्यास "बाबा बटेसरनाथ" में नूतन शिल्प प्रयोग के द्वारा उत्तर रूपउली गाँव के लोकजीवन का चित्र खींचा है । एक वट वृक्ष "जो उन लोगों केलिए महज वृक्ष नहीं है, बल्कि जीवन का प्रतीक है"[1] के मुँह से उस गाँव के सौ वर्षों का सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक तथा धार्मिक इतिहास जैकिसुन को सुनाया जाता है । सुषुप्तावस्था में पड़ी जनता में जागरण का मंत्र फूँकना ही गाँववालों केलिए प्रिय "बटेसरनाथ" का लक्ष्य रहा । "बहुजन सुखाय बहुजन हिताय" के महत्वपूर्ण आदर्श का प्रतीक बटेसरनाथ सामूहिक शक्ति का महामंत्र जैकिसुन को बता देता है ।

विघ्न-बाधाओं के बीच पथ प्रशस्त करनेवाला बाबा बटेसरनाथ स्वतंत्रता पूर्व और बाद के भारतीय गाँव की कहानी कहता है जो उस गाँव के उत्थान-पतन की कहानी है । एक ओर स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेज़ और ज़मीन्दारी अत्याचारों के चंगुल में फँसा हुआ रूपउली गाँव है तो दूसरी ओर प्रजातंत्रीय शासन में जन प्रतिनिधियों और उच्च वर्ग और उनकी चाह पर चलनेवाले सरकारी अधिकारियों की दमन नीति से बुरी तरह पीड़ित रूपउली गाँव ।

"छोटी औकात के और नीची जाति के लोगों को तो खैर वह कीड़े-मकोड़े समझता ही था, अच्छी अच्छी हैसियत के भले-मानसे व्यक्तियों से वक्त - बेवक्त नाक रगड़वाता था जमींदार[2] ।"

---

1. डॉ. नगीन जैन - आँचलिकता और हिन्दी उपन्यास, पृ.140
2. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ, पृ.34

ज़मीन्दार की हरकतों के साथ ही साथ लोगों को अँग्रेज़ों की हरकतें भी सहनी पड़ती है । यहाँ तक कि गोरे साहब को सलाम न करने के अपराध से हंटरों की बौछार भी सहनी पड़ती है । विदेशी माल के निर्यात से स्थानीय उद्योग धन्धे नष्ट हो जाते हैं । बढ़ती मशीनीकरण के कारण नगरोन्मुखता स्वतंत्रता पूर्व गाँव का अभिशाप बन जाता है । इसका परिणाम है सर्वहारा वर्ग का जन्म । यह रहा स्वतंत्रतापूर्व रूपअली गाँव का चित्रण ।

लेकिन यह सुषुप्तावस्था अधिक समय तक नहीं रह जाती । महात्मा गाँधी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन, अनशन आदि के द्वारा अँग्रेज़ों के खिलाफ लोग पाँति बाँधने लग जाते हैं । भारत के दूसरे गाँवों के समान रूपअली गाँव से भी स्वतंत्रता संग्राम में अपना योगदान दिया जाता है । आज़ाद भारत में कांग्रेस शासन के अधीन चलनेवाले अत्याचारों से भी बटेसरनाथ परिचित है ।

ज़मीन्दारी उन्मूलन कानून के पास होते ही ज़मीन्दार लोग सार्वजनिक उपयोग की भूमियों को चुपके चुपके बेचने लगते हैं । रूपअली के स्वार्थी किसान टुनाई पाठक और जैनारायण झा राजा बहादुर से बरगदवाली ज़मीन और पुरानी पोखर को अपने कब्जे में कर लेते हैं। इस से ज्ञात होते ही रूपअली गाँव के लोग सुलग उठते हैं । गाँव में यह अफवाह भी फैल जाती है कि ~~सुलग उठते हैं कि गाँव में यह~~ जैनारायण और टुनाई पाठक बरगद को कटवाना चाहते हैं । जैकिसुन, जीवनाथ आदि युवा पीढ़ी के लोग थाना-कचह से लेकर कांग्रेस कमेटी, असेम्बली और पार्लियमेन्ट के सदस्यों तक जा कर निराश लौटते हैं ।

अपने विरुद्ध मोर्चा लेनेवाले जैकिसुन और जीवनाथ को फंसाने की राह देखनेवाले जैनारायण और टुनाई पाठक के द्वारा गूंगी चमार की हत्या की जाती है । इस हत्या के अभियोग से जीवनाथ, सरजुग महतो, जैकिसुन

यादव, लछमन सिंह और मुतरी झा की गिरफ्तारी हो जाती है । स्वतंत्रता संग्राम में सजीव रूप से भाग लेनेवाला दयानाथ गाँव के उच्चवर्ग और कांग्रेसी शासकों के द्वारा किये जानेवाले शोषण और कांग्रेसी शासकों के द्वारा किये जानेवाले शोषण के विरुद्ध लोगों को संगठित करने में लग जाता है । दयानाथ जनवादी नौजवान संघ के प्रधान मंत्री वकील श्याम सुन्दरदास से मिलकर गिरफ्तार लोगों को जमानत पर मुक्त कराता है । कल्लू की सच्चाई खुलते ही जैनारायण और टुनाई पाठक के नाम पर वारण्ट निकलता है । गाँव में किसान सभा व नौ-जवान संघ की कमेटियों की स्थापना की जाती है, जिससे पूंजीवाद को विनष्ट करने केलिए गाँव के किसान मज़दूरों को तैयार किया जाता है । साम्यवादी चेतना से प्रभावित युवा पीढ़ी द्वारा ग्रामीण स्थिति में सुधार लाया जाता है ।

युवा पीढ़ी के लोगों को क्रांति का सन्देश देनेवाला बरगद का पेड शोषण के विरुद्ध जागृत जनता से सन्तुष्ट बनकर कहता है - "तुम लोगों ने तो बस्ती की हवा ही बदल दी । मैं आशीर्वाद देता हूँ, रूपअलीवाल की यह एकता हमेशा बनी रहे । सुखमय जीवन केलिए तुम्हारी यह सामूहिक प्रचेष्टा कभी मन्द न हो, स्वार्थ की व्यक्तिगत भावना कभी तुम्हारी चेतना को धुंधला न बनाये ।"[1] अपनी सूखी लकडियों से ईटें पकाकर उन ईटों से ग्राम-कमेटी का मकान तैयार करवाने में बरगद का पेड अपने जीवन की सार्थकता देखता है । टूटी-फूटी सामन्ती मान्यताओं के स्थान पर क्रांति की स्थापना चाहनेवाला बरगद का पेड उसी स्थान पर नये बिरवा रोपने की इच्छा प्रकट करता है । सिन्दूरी अक्षरों में अंकित तीन शब्द "स्वाधीनता ! शान्ति ! प्रगति"[2] से उपन्यास समाप्त होता है ।

1· नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ, पृ·115

2· वही, पृ·115

वटवृक्ष के मानवीकरण द्वारा नागार्जुन ने उपन्यास क्षेत्र में एक नया प्रयोग तो ज़रूर किया है फिर भी बाबा द्वारा कथा विकास "लीला स्फुरण जैसी चीज़ लगती है।[1]" पाठक और जयनारायण द्वारा बरगद की पेड बेचने की बात से व्याकुल जैकिसुन को स्वप्न में बाबा से मुलाकात होती है। तत्पश्चात् बाबा का कथावाचन, चेष्टाएँ आदि का पाठक पर कोई प्रभाव ही नहीं रह जाता। "साम्यवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक लेखक का इस प्रकार के प्रतीक के रूप में अवतारवाद खटकता है।[2]" अगर लेखक इस उपन्यास की रचना जीवित कथा पात्रों के माध्यम से करते तो यह अधिक यथार्थवादी और आकर्षक होती।

प्रयोगात्मक दृष्टि से इस उपन्यास में थोड़ी बहुत नवीनता मिल भी जाती है लेकिन उपन्यास की संरचना अंतर्विरोधों से भरपूर है। सौ वर्षों की गाँव की कहानी कहते समय जिस सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का चित्रण होना चाहिए था उसका नितांत अभाव उपन्यास में है। लगता है कि उपन्यास में जन जीवन के शोषण और उसके उन्मूलन के पक्ष को ही प्रधानता दी है। वटवृक्ष के माध्यम से मार्क्सवादी विचारधारा को प्रस्तुत करना, वह भी स्वप्न के माध्यम से एक ऐसी अनजझती बात लगती है कि कोई अन्धविश्वास के माध्यम से विज्ञान के सिद्धान्तों का समर्थन करें। बरगद यदि प्रतीक है तो बरगद के नीचे स्वप्न देखने वाले को भी प्रतीक के रूप में चित्रित करना चाहिए था। अगर बरगद अपने नन्हे से पौधे से यह कहानी कहता तो उसके बीच तालमेल अवश्य बैठ जाता। चेतनहीन माने जानेवाले वृक्ष और चेतन से युक्त मनुष्य दोनों के बीच होनेवाले संवाद वह भी द्वन्द्वात्मक बौद्धिकवाद के सिद्धांत को लेकर बडी अजीब सी लगती है। संदेश कहने का एक ढंग होता है। बरगद इस सन्देश प्रेषक का कार्य कहाँ तक निभा पाया है यह चिन्तनीय है।

---

1. डॉ. लक्ष्मीकान्त सिन्हा - हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्भव और विकास, पृ.305
2. डॉ. नगीना जैन - आँचलिकता और हिन्दी उपन्यास, पृ.143

पात्र चित्रण

बाबा बटेसरनाथ

उपन्यास का प्रमुख पात्र है रुपउली गाँव का वटवृक्ष "बाबा बटेसरनाथ" । गाँव के रग-रग नस-नस को पहचाननेवाला यह वटवृक्ष आत्मकथा सुनाने के साथ ही साथ रुपउली गाँव का इतिहास भी सुनाता है । "बाबा वटवृक्ष देहाती लोक-जीवन का प्रतीक है, गाँव के पूर्वजों की आत्मा का प्रतीक है[1] । वर्तमान शासन व्यवस्था के प्रति अपनी अनास्था प्रकट करना तथा साम्यवादी व्यवस्था के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करना इस पात्र सृजन के पीछे नागार्जुन का लक्ष्य रहा ।

गाँववालों केलिए प्रिय बटेसरनाथ सुख-दु:खों में उनका साथ देनेवाला पथ बन्धु है । प्रेमी हो या प्रेमिका, बहू हो या बेटी, विद्यार्थी हो या किसान, सधवा हो या विधवा "कौन नहीं आता बटेसर बाबा के पास, और कौन नहीं यहाँ आकर अपने को ताज़ा महसूस करता ?"[2]

जैकिसुन के परदादा द्वारा लगाया गया यह वटवृक्ष उसके बाद की तीसरी पीढ़ी के जैकिसुन को सपने में रुपउली के उत्थान-पतन की पिछले सौ वर्षों की कहानी सुनाता है । विगत युग की वास्तविक परिस्थितियों को बाबा इसलिए सुनाता है कि जिससे सुषुप्तावस्था में पड़ी युवा पीढ़ी वर्तमान युग की परिस्थितियों से अवगत हो जाय और उसे सुलझाने केलिए समर्थ हो जाय ।

---

1. डॉ. ह. के. कडवे - हिन्दी उपन्यासों में आँचलिकता की प्रवृत्ति, पृ.144
2. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ, पृ.5

"बहुजन सुखाय बहुजन हिताया लोकानुकम्पाय" के महत्वपूर्ण आदर्शवाला यह वटवृक्ष परोपकार में ही जीवन की सार्थकता समझता है। उसके मतानुसार "जीने केलिए जीना, जीना नहीं है, परोपकार केलिए जीना ही जीना है[2]।" लेकिन किसी की स्वार्थपूर्ति केलिए अपने को बलि देना वह नहीं चाहता। अकाल के दिनों में तरह तरह के पत्तों से भूख मिटानेवाले लोग बरगद के पत्ते, फल आदि उसके लास के कारण खा नहीं पाते। इस पर वह अपने आप को कोसने लगता है। अकाल के बाद आये बाढ़ के दिनों में लोग इस पेड पर मचान बाँधकर रहने लगतेहैं और उसके बिलों में साँप, छिपकली और गिलहरियाँ भी आश्रय पाते हैं। प्राकृतिक अकाल, बाढ़ आदि विभीषिकाओं को देखकर मानवीय हाव-भाव से युक्त बरगद का पेड दुःख के मारे खिन्न रह जाता है।

श्रद्धा और भक्ति से भी अधिक स्नेह और प्यार चाहनेवाला है बाबा बटेसरनाथ। अपनी डालियों पर उछलने-कूदनेवाले बच्चे, बकरी की मूखी सीगणियों से सतघरा खेलनेवाले चरवाहे, एक के पीछे एक बैठकर जूँ निकालने-वाली लडकियाँ आदि बाबा केलिए प्रिय लगते हैं। लेकिन जिस दिन से ब्रह्म महाराज की ध्वजा इस पेड के नीचे रखी जाती है उस दिन से लोगों का प्यार श्रद्धा और भक्ति में बदल जाता है। मनोकामनाओं की पूर्ति हेतु लोग यहाँ तरह-तरह की पूजाएँ करने लगते हैं। जनम के दसवीं दिन से अपनी गोद में खेले कूदे बकरे को अपने ही सम्मुख बलि चढाते हुए देखकर बटेसरनाथ का कलेजा सूख जाता है। इस तरह पाँच साल गुजरने पर एक दिन बटेसरनाथ ब्रह्म महाराज से मुक्त हो जाता है।

ज़मीन्दार और अँग्रेज़ों के हाथ में बुरी तरह पीडित भूमिजीवि और श्रमजीवि जनता की कथा, शोषण के खिलाफ जागृत होनेवाली जनता की

---

1. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ, पृ.11
2. वही

कथा आदि के द्वारा बटेसरनाथ जैकिसुन को वर्तमान शोषण के विरुद्ध खड़ा करने को प्रेरित करता है ।[1]

कांग्रेसी शासन से बाबा असन्तुष्ट है । हर कहीं उच्च वर्ग की चाल ही चलती है । तानाशाही अधिकारियों और उच्च वर्ग के स्वेच्छाचारियों के विरुद्ध सामूहिक रूप से संगठित होने की ओर जैकिसुन का ध्यान आकर्षित करते हुए सामूहिक शक्ति के महत्व को झींगुरों के उदाहरण द्वारा बाबा स्पष्ट कर देता है । "झींगुर एक तुच्छ कीडा होता है । सैकडों-हज़ारों की तादाद में जब ये एक-स्वर होकर आवाज़ करने लगते हैं तो एक अजीब समां बंध जाता है झींगुरों की एक अखण्ड झंकार कई-कई पहर तक चलती रहती है । सामूहिक स्वर की इस एकाग्र महिमा के आगे मेरा मस्तक सदैव नत होता रहा है और होता रहेगा ।"[1] अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष करने की आशा रखनेवाला बटेसरनाथ आशावादी है । जैकिसुन से वह कहता है "तू जिस युग में पैदा हुआ है वह राजाओं - ज़मीन्दारों और सेठों साहूकारों का युग नहीं, बल्कि तेरे - जैसे आम नौजवानों का ज़माना है[2] ।"

युवा पीढ़ि में प्रस्फुटित नई ऊर्जा और साम्यवाद से प्रभावित गाँव की किसान सभा की विजय आदि से बटेसरनाथ संतुष्ट रहता है । वह अपनी जीवन की सार्थकता इस में देखता है कि "मेरे पेड की सूखी लकड़ियों से ईंटें पका लेना । उन ईंटों से ग्राम-कमेटी का मकान तैयार होगा[3] ।" उस स्थान पर एक बिरवा लगाने पर भी वह ज़ोर देता है । या टूटी फूटी जर्जरित सामंती सभ्यता के स्थान पर नई स्फूर्ति से युक्त युवा पीढ़ी की स्थापना ।

---

1. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ, पृ.13
2. वही, पृ.38
3. वही, पृ.116

बाबा बटेसरनाथ के इस पात्र के माध्यम से नागार्जुन साम्यवादी विचारधारा की ओर अपनी विशेष रुचि व्यक्त करते हैं। कांग्रेसी शासन पर विश्वास न रखनेवाला लेखक वर्तमान समस्याओं का समाधान साम्यवादी चिंतन द्वारा करने की आशा रखते हैं। तन-मन से समाज का कल्याण चाहनेवाले बटेसरनाथ के माध्यम से परोपकार में जीवन की सार्थकता अनुभव करने के उच्च मानवतावादी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करते हैं।

दयानाथ

"बाबा बटेसरनाथ" के मानवीय पात्रों में दयानाथ का चरित्र ही सबसे आकर्षक है। यह एक विकासशील पात्र है। भारत के स्वतंत्रता संग्राम और उसके बाद आज़ाद भारत के शोषण के विरुद्ध जनमत को एकत्रित करने तक उनका चरित्र फैला हुआ है।

अनपढ़ दयानाथ गाँधीजी से प्रभावित होकर असहयोग आन्दोलन, सत्याग्रह आदि में भाग लेता है। मातृभूमि की आज़ादी केलिए जेल जाना उसके लिए तीर्थयात्रा के समान पुण्यदायक है।

आज़ादी की अर्थ-शून्यता से ठीक तरह अभिज्ञ होकर शासक वर्गों के अत्याचारों के खिलाफ ग्रामीण जनता को एकत्रित करने का श्रेय दयानाथ को है। झूठे आरोपों से जेल शिक्षा भोगनेवाले जीवनाथ जैकिसुन आदि युवकों की मुक्ति और सार्वजनिक भूमि की बेदखली के बारे में कांग्रेज़ एम.एल.ए. उग्रमोहन बाबू से सलाह लेने केलिए गया दयानाथ निराश लौटता है इस स्वार्थी शासक वर्ग से ग्रामीण लोगों की मुक्ति का मार्ग वह रात दिन देखने लगता है। इस हेतु क्रान्तिकारी मार्ग को अपनाने को भी वह सोचता है।

उसकी राय में गरीब के घर में पैदा हुआ आदमी ही गरीब का "संकट मोचक" बनेगा । जमींदारों और सेठ वकीलों की पार्टी कांग्रेस में किसान को निर्मूल्य समझनेवाले दयानाथ को सोशलिस्ट नेताशाही पर भी विश्वास नहीं रह जाता । उसकी एक मात्र आशा साम्यवादी विचारधारा पर टिकती है ।

किसान सभा के उप सभापति के रूप में चुना गया दयानाथ गाँव में घूमकर किसान-सभा के बारे में गाँववालों को समझाता है । किसान सभा की संस्थापना के बाद गाँव की सर्वतोन्मुखी प्रगति केलिए वह कार्यरत रहता है ।

मातृभूमि की आज़ादी केलिए अपने जीवन को उत्सर्ग करने केलिए तैयार दयानाथ आज़ाद भारत में शोषण और अत्याचार को देखकर क्रुद्ध होता है । अंग्रेज़ों से संघर्ष कर आज़ादी प्राप्त करने का इतिहास रहा दयानाथ का । वही दयानाथ आज़ाद भारत के स्वार्थी, धन-लोलुप शासकों के विरुद्ध लड़कर जन शक्ति का परिचय देने में समर्थ निकलता है ।

वकील श्याम सुन्दर बाबू

रूपअली गाँव को अपनी समस्याओं से उद्धार करनेवाला है वकील श्याम सुन्दर । जनवादी नौजवान संघ की जिला कमेटी के अध्यक्ष बने वकील अपनी छात्र जीवन में ही "प्रादेशिक स्टूडेण्ड फेडरेशन" से सार्वजनिक सेवा भावना का उचित परिचय प्राप्त करता है । वाक् शक्ति में निपुण होने के कारण वह अपनी पेशे में जल्दी ही मशहूर बन जाता है । गाँव में नौजवान संघ की शाखा खोलने की सलाह देनेवाला श्याम सुन्दर जैकिसुन, जीवनाथ आदि पाँच युवकों को जेल से मुक्त होने में सहायता भी पहुँचाता है ।

संपन्न परिवार का होकर भी उच्च वर्ग द्वारा किये जानेवाले अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले वकील के चित्रण में नागार्जुन सफल हुए है

जैकिसुन

सुषुप्तावस्था में पड़ी युवा पीढ़ी के प्रतीक के रूप में जैकिसुन का चित्रण हुआ है । वर्तमान शासन के शोषण में बुरी तरह जकडे लोगों के मन को जैकिसुन के द्वारा जागृत करने का चित्रण ही उपन्यास में है । जैकिसुन के परदादा द्वारा रोपा गया वटवृक्ष गत सौ वर्षों के इतिहास को सुनाता है । जिससे प्रभावित होकर उच्च वर्ग के विरुद्ध खडे हुए जैकिसुन को गूँगे चमार की हत्या के झूठे अभियोग मे जेल जाना पड़ता है ।

गाँव में किसान सभा की स्थापना के बाद घूम-घूम कर किसान सभा के उद्देश्य का प्रचार करके गाँववालों को अत्याचार के विरुद्ध खडा करने में वह सफल निकलता है ।

सुषुप्तावस्था से जागृत होकर अपनी शक्ति से ज्ञात युवा पीढ़ी के प्रतीक के रूप में ही जैकिसुन का चित्रण हुआ है ।

जीवनाथ

जीवनाथ के बारे में बाबा बटेसरनाथ जो कुछ कहता है उससे उसका चरित्र पूर्ण रूप से साकार हो उठता है "बस्ती रूपउली में आम लोगों के दु:ख-सुख की जैसी चिन्ता यह पट्ठा रखता है, उसका दसवाँ हिस्सा भी अभी तेरे अन्दर में नहीं पाता हूँ [1] ।"

---

1. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ, पृ.34

चौदह वर्ष की छोटी आयु में ही मातृभूमि की रक्षा केलिए पढ़ाई छोड़कर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने लगता है । पुलिस द्वारा मार खाने पर भी अंग्रेज़ राज की जय बोलने केलिए वह तैयार नहीं होता ।

वह अपने को किसी राजनीतिक पार्टी के सदस्य के रूप में जानना नहीं चाहता । एक "ईमानदार नेशनलिस्ट" बनकर रहना ही वह पसन्द करता है । यही जीवनाथ बाद में किसान-सभा का अध्यक्ष चुना जाता है गाँव के 1200 लोगों को किसान सभा के सदस्य बनाने में वह सफल निकलता है । समाज की प्रगति केलिए प्रयत्नरत जीवनाथ का चरित्र साम्यवादी विचार से प्रभावित है ।

अन्य पात्र

सामंती बर्बरता का शिकार बना शम्भु मर्दन, बंगाली विद्यार्थियों से संपर्क के परिणाम स्वरूप क्रान्ति की समर्थन करनेवाला वीर भद्र, अधिकार प्राप्ति के बाद उच्च वर्ग के हितकांक्षी बना उग्र मोहन आदि अनेक पात्रों से इस उपन्यास की रचना संभव हुई है ।

नागार्जुन के अन्य उपन्यासों से भिन्न होकर इस उपन्यास में एक ही स्तर के अनेक पात्रों का सृजन किया गया है । परिणाम स्वरूप उनमें से एक भी पात्र विकास नहीं पा सका है । कथा विन्यास में यह पात्र बहुलता बाधा डालती हुई दिखाई पड़ती है । एक जैसे नाम के पात्रों के कारण कथा पाठ में कठिनाई महसूस होती है ।

---

1. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ, पृ.90

इस उपन्यास के पात्र भी लेखक की वादोन्मुखता से बच नहीं पाते हैं । "राजनीतिक मत का प्रभाव होने से उनके चरित्र-चित्रण में उतनी सजीवता नहीं आती, जितनी बरगद बाबा के व्यक्ति चित्रण में है[1] ।"

विविध आयाम

सामाजिक

नागार्जुन के विचारों का प्रतीक बाबा बटेसरनाथ द्वारा रूपउली गाँव की चार पीढ़ियों की कहानी सुनायी जाती है जिससे स्वतंत्रता पूर्व और बाद के ग्रामीण समाज की झाँकी प्रस्तुत होती है ।

एक शताब्दी से रूपउली गाँव से आत्मीय संबन्ध स्थापित बाबा उस गाँव का चित्रण यों करता है "रूपउली बड़ी बस्ती नहीं थी । तीन सौ परिवार थे, खानेवाले मुँहों की तादाद थी ढ़ाई हज़ार-अलावा पशुओं पक्षियों और कुत्तों बिल्लियों के । ब्राह्मण थे, राजपूत थे, भूमिहार थे । बाकी आबादी ग्वालों, अहीरों, धानुकों और मोमिनों की थी । दो घर चमारों के थे, एक परिवार था पासियों का[2] ।"

समाज में ज़मीन्दार और राजा बहादुरों का मनमानापन चलता रहा । शोषक दो मंजिलों पर कायम रहा । एक मंजिल पर अंग्रेज़ बहादुर है तो दूसरी मंजिल पर जमीन्दार । शोषण के खिलाफ उंगली उठाने की हिम्मत

---

1. डॉ. ह.के. कडवे - हिन्दी उपन्यासों में आँचलिकता की प्रवृत्ति, पृ.144
2. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ, पृ.14

किसी में नहीं रह जाती । अगर हिम्मत है तो भी कुछ कर पाने से उच्च वर्ग इन्हें रोकता रहा ।

अंग्रेज़ी शासन की चक्की में पीसते रूपअली गाँव का जीवन नारकीय रह जाता है । शहर हो या गाँव, व्यापार का क्षेत्र हो या खेती का हर कहीं गोरे चमड़ीवालों की तूती बोलती थी । यहाँ तक कि "राजाओं के मुकुट और जमीन्दारों के तुर्रेदार पगड़ फिरंगियों के रास्ते की धूल के ज़र्रों को चूमने केलिए बेताब दीखते थे [1] ।"

शिक्षा उच्च वर्ग के हाथों तक सीमित रह जाती है। निर्धन, निरीह जनता को जानवर से भी गया बीता समझनेवाले समाज में उच्च वर्ग के शिक्षित लोगों के दृष्टिकोण में शिक्षा से कोई परिवर्तन संभव नहीं होता है । गरीब लोगों से इनका सम्बन्ध इतना सीमित रह जाता है कि "किस गरीब की ज़मीन बिकनेवाली है, कौन निपूता कितनी जायदाद छोड़कर मरा है, नाबालिग लड़केवाली किस विधवा की क्या हैसियत है ...... [2] ।"

भारत की आंचलिक आत्मा को अपनी कब्जे में रखने केलिए अंग्रेज़ों के द्वारा पैदा किया गया स्वार्थी देश द्रोहियों का जमीन्दार वर्ग और इनके द्वारा जनता का शोषण आदि से 15 अगस्त 1947 को भारत आज़ाद हो जाता है । कांग्रेस शासन का प्रारंभ होता है । एक पीढ़ी का जीवन अंग्रेज़ों और ज़मीन्दारों के द्वारा कुचल दिया जाता है तो दूसरी पीढ़ी का जीवन भी इससे भिन्न नहीं रह जाता । शोषक का रूप ज़रूर बदल जाता है और शोषण की रीति भी । स्वाधीन भारत की जाग्रत जनशक्ति के दबाव में आकर ज़मीन्दारी उन्मूलन कानून पास किया जाता है ।

---

1. नागार्जुन- बाबा बटेसरनाथ, पृ. 61
2. वही, पृ. 14

लेकिन सत्ताधारी कांग्रेस नेताओं की सहायता से ज़मीन्दार लोग सार्वजनिक भूमि को चुपके-चुपके बेच डालते हैं। इसके विरुद्ध कार्यरत नई चेतनावाले युवा पीढ़ी के लोगों पर हत्या के झूठे अभियोग लगाकर उन्हें जेल भेज दिये जाते हैं। फिर भी अपंग, जर्जरित सामन्ती सभ्यता की बची खुची मान्यताओं का अंत करने में वे सफल निकलते हैं।

शिक्षा या अन्य क्षेत्रों में अब विकास का नया प्रकाश फैल जाता है। शिक्षा जो एक ज़माने में उच्च जातवालों की बपौती रही थी, अब निम्न वर्ग की पहुँच की बात बन जाती है।

युग-युगों से शोषण का अन्धकारमय जीवन बिताने केलिए अभिशप्त रूपउली गाँव में नई पीढ़ी के विकास के साथ नई स्फूर्ति का संचालन होता है। उच्च और निम्न के भेद भाव और छुआ-छूत की भावना से आज़ादी पूर्व भारतीय गाँव का जो स्वरूप था उसमें परिवर्तन स्वतंत्रता प्राप्ति की सबसे बडी देन सी लगती है। फिर भी जहाँ तहाँ फैले हुए सामन्तीय व्यवस्था के सेहुँडों (काकटस) से यह सिलसिला आगे चलता है। लेकिन प्रगतिशील चेतनावाली युवा-पीढ़ी के सशक्त हस्तक्षेप के कारण ग्रामीण जनता का जीवन थोडा बहुत बदलने लगता है। "ज़मीन्दार वर्ग और कांग्रेस दल के वास्तविक चरित्र का उद्घाटन करते हुए उपन्यासकार ने वर्तमान समस्याओं का निराकरण केवल साम्यवादी-समाजवादी समाज व्यवस्था में ही देखा है।[1]" आपसी पक्ष-पात और स्वार्थी चिन्ता से मुक्त होकर एकता के सूत्र में बंधे रहने से ही समाज की प्रगति संभव है, यही उपन्यासकार का संदेश लगता है। वैसे इस उपन्यास में ज़ोर सामाजिक आयाम पर दिया जाता है और जिसके परिवर्तन की सौ वर्षों की कहानी स्वयं बरगद कह देता है। परोक्ष रूप में भारत के गाँवों में आनेवाले विविध परिवर्तनों की सौ वर्षों की कथा उपन्यासकार कह देते हैं।

---

1. डा. राम गोपाल: उपन्यासकार नागार्जुन पृ.106

आर्थिक आयाम

रूपउली गाँव के स्वतंत्रता पूर्व और बाद की आर्थिक स्थिति पर नागार्जुन प्रकाश डालते हैं । जन संख्या में वृद्धि, प्राकृतिक साधनों पर निर्भरता, विदेशी माल की आयात परिणाम स्वरूप कुटीर उद्योगों का नाश आदि के कारण स्वतंत्रता पूर्व गाँव में बेकारी और निर्धनता व्याप्त रहती है । इन्हीं कारणों से नगरोन्मुखता स्वतंत्रतापूर्व भारत के गाँववालों की विवशता बन जाती है । क्योंकि "साठ प्रतिशत परिवार ऐसे थे जिनका गुजारा मजदूरी पर निर्भर था । वे काम केलिए पड़ोस के कई गाँवों तक चले जाते; पचीस-पचास आदमी शहरों में कुलीगिरी या दूसरे मामूली काम करके यहाँ अपने परिवारों की जीविका चलाते थे । गन्ने का सीजन आता तो दस-पाँच जने चीनी के कारखानों में अस्थायी काम पा जाते[1] ।"

ऐसी स्थिति में अकाल, बाढ़ आदि दैवी प्रकोपों से स्थिति और भी विकट हो जाती है । भूख की भट्ठी में छटपटानेवाले "मामूली हैसियत के किसान शकरकंद बनाम अल्हुआ की शरण ले चुके थे । खेत-मजदूर और जन-बनिहार आम की सूखी गुठलियाँ चूर-चूर कर मण्डुआ का ज़रा-सा आटा उसमें मिलाकर टिक्कड़ बनाते और उसी से भूख की आँच को शान्त करते[2] । भूख से मृतप्राय लोग मछली और कछुओं पर टूट पड़ते हैं । जब वह भी अप्राप्त बनत है तो वे तरह तरह के पत्ते और ईंट के चूरन से पेट की जलन को बुझाते हैं ।

जन शक्ति और धनशक्ति दोनों का नाश करनेवाली प्राकृतिक आपदाओं का चित्रण नागार्जुन ने यों प्रस्तुत किया है कि पाठक के मन में यह देर तक छाया रहता है । एक ओर ज़मीन्दार और अंग्रेज़ों के शिकंजे में

---

1. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ, पृ. 14

लोग बुरी तरह जकड़े रहते है तो दूसरी ओर प्राकृतिक प्रकोपों के कारण उनका जीना ही दुष्कर बन जाता है ।

सत्यनाश के इन्हीं दिनों में अंग्रेजों का आर्थिक शोषण उसका कराल रूप धारण कर लेता है । अकाल पीड़ितों तक सहायता पहुँचाने के नाम से गाँव में रेल पथ का निर्माण किया जाता है । एक-दो पैसे की मजूरी पर अंग्रेज गरीबों से काम कर लेते । मरता क्या नहीं करता । इन तुच्छ मजूरी की प्राप्ति केलिए लोग हड्डी तोड मेहनत करने लगते हैं । यहाँ की अच्छी सी अच्छी चीज़ों से लेकर फौजी जवान, चपरासी और बाबू लोगों की प्राप्ति में उन्हें ये रेल-पथ और भी सुविधा जनक सिद्ध होता है ।

आज़ादी के बाद भी ज़मीन्दार और राजाओं को आड में अंग्रेज़ सरकार की सहायता प्राप्त होती है । इसके साथ अन्य कारणों से भी आर्थिक शोषण कायम रहता है । "जाते-जाते भी ये राजा, जमींदार, भूस्वामी, सामन्त चाँदी काट रहे हैं । घोडे की कीमत पर वे हाथी हटा रहे हैं, बछडे की कीमत पर घोडा, और बछडा ?"

प्रगतिशील कार्यक्रम के रूप में ज़मीन्दारी उन्मूलन का शुभारम्भ किया जाता है । लेकिन इसमें दी गयी छूट के आड में सार्वजनिक उपयोग की भूमि को भी स्वार्थी ज़मीन्दार बेच डालते हैं । किसान सभा जैसे संगठनों के प्रभाव स्वरूप इन सामन्ती श्रीमंतों से मुक्त होने की चाह गाँववालों में जागृत हो जाती है । इसके फलस्वरूप आर्थिक शोषण क्षीण होने लगता है । यद्यपि शोषण को जड से उखाड नहीं दिया जाता तथापि ग्रामीण धरातल पर समता की भावना ज़रूर दिखाई देती है ।

सामाजिक जीवन का आधार आर्थिक पक्ष है और इस आर्थिक पक्ष को सुधारने केलिए उपन्यासकार ने कई हितकारी सुझाव प्रस्तुत किये हैं

जिससे आनेवाले कल की शोभा बढ़ सकती है "पढ़े-लिखे काफी ऐसे लोग हैं जो नासमझी के कारण गाँवों और शहरों को प्रतिकूल बतलाते हैं। खाना और कपड़ों की तंगी न रहे, सभी लिख-पढ़ जायँ, बाहर जाने-आने की सुविधा मिले, काम और आराम का बदस्तूर सिलसिला हो, मनोरंजन के साधन सुलभ रहें, तो फिर इन देहातों का ढाँचा ही बदल जायगा। आलस्य, पिछड़ापन, अभाव, अशिक्षा, अस्वास्थ्य, गन्दगी आदि दुर्गुण हमेशा नहीं रहेंगे।"[2] वर्तमान शासन व्यवस्था पर आस्था नहीं रखनेवाला लेखक समाजवादी आर्थिक विचारधारा के प्रति अपनी अटूट विश्वास रखते हैं। उपन्यास का आर्थिक आयाम आशावादी स्वर को उभारता है और ग्रामीणों को एक नयी मार्ग रेखा की ओर बढ़ने की सूचना देता है।

राजनीतिक आयाम

नागार्जुन "बाबा बटेसरनाथ" में स्वतंत्रता संग्राम, उसमें रूपउली गाँव का योगदान, स्वतंत्रता प्राप्ति, जन प्रतिनिधियों का स्वार्थपूर्ण शासन परिणाम स्वरूप गाँव में साम्यवाद का प्रभाव, शोषण का अंत आदि घटनाएँ सजीव ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

अंग्रेज़ी शासन के कुचक्रों से मुक्त होने की छटपटाहट भारतवासियों ज़ोरों पकड़ने लगती हैं। स्वतंत्रता संग्राम के कुरुक्षेत्र में महात्माजी के प्रवेश से एक नये इतिहास का शुरुआत हो जाता है। 1920 के अंत में असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ हो जाता है। नई चेतना से स्पन्दित भारतवासी अहिंसात्मक मार्ग तक अपने को सीमित नहीं रह पाते। "चौरी चौरा" जैसे हत्याकाण्डों से हताश महात्माजी जन संग्राम को एक दम स्थगित कर देते हैं

---

1. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ, पृ. 48

आजादी की महत्ता से अब पढ़े-लिखे लोग ही नहीं अनपढ़ साधारण लोग भी आकर्षित हो जाते हैं । 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन, 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन आदि में लोग सक्रिय रूप से भाग लेते हैं ।

एक ओर महात्माजी के नेतृत्व में अहिंसात्मक मार्ग से स्वतंत्रता प्राप्ति का आन्दोलन चलता है तो दूसरी ओर अहिंसा पर विश्वास न रखनेवाले लोग हिंसा को अपनाकर आगे चलने लगते हैं । बंगाल में क्रांति की एक नई परम्परा शुरू हो जाती है । परिणाम स्वरूप वहाँ के अनेक अंग्रेज़ अफसर मारे जाते हैं । इन मामलों से बेचैन महात्माजी अंग्रेज़ों के हृदय द्रवित न होने का कारण सत्याग्रह जैसे पवित्र मार्गों का अपवित्र होने से बताते हैं । जाति और वर्ण के भेद-भाव के बिना अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध संघर्षरत रहने के परिणाम स्वरूप 1947 में स्वतंत्रता प्राप्त होती है ।

भारत के अन्य किसी गाँव के समान स्वतंत्रता प्राप्ति में रूपउली गाँव का योगदान महत्वपूर्ण है । आज़ादी की समझदारी से लोग इतने प्रभावित हो जाते हैं कि "गिरफ्तार होना, जेल के अन्दर कैद काटना, लाठियों की चोट बर्दाश्त करना, पुलिस और मिलिटरी के फौजी बूटों से कुचला जाना इन बातों से ज़रा भी नहीं घबराते थे लोग । सत्याग्रह और पिकेटिंग त्योहार बन गये थे ।"[1] मेले के समान मुसीबतों इन मामलों में स्वार्थलोभ की रंजमात्र भी इच्छा के बिना भाग लेनेवाले लोगों के मन आज़ाद भारत के रंग बिरंगी सपनों से रंगीन बन जाता है । उनके मन में शोषण मुक्त सम भावनायुक्त भारत का रूप ही रह जाता है । स्वतंत्रता प्राप्ति केलिए भरसक प्रयत्न करनेवाली कांग्रेस पार्टी को सत्ता में लाने के पीछे उनकी यही आशा ही रहती है ।

---

1. नागार्जुन - बलचनमा, पृ.78

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही गाँववालों के सपने मुरझाने लगते हैं[1]। भारत की विविध समस्याओं को दूर करने में सत्ताधारी काँग्रेस पार्टी सफल नहीं निकलती है। आज़ादी के फलों को नेताओं और मंत्रियों तक सीमित रखने में ही वह सदैव ध्यान देती रही। यहाँ तक कि काँग्रेस की सदस्यता केवल ज़मीन्दार, वकील, बारिस्टर आदि को ही मिल जाती है। शहर में रहनेवाले हो चाहे गाँव में, निर्धन लोगों को कभी भी "अपने संगठन की रीढ़" बनाने में वे तैयार नहीं रहते। उपन्यासकार अपना विचार वटवृक्ष के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं -"आज़ादी ! छि: ! आज़ादी मिली है हमारे जगमोहन बाबू को, कुलानन्ददास को काँग्रेस की टिकट पर जो भी चुने गये हैं उन्हें मिली है आज़ादी। मिनिस्टरों को तो और ऊँचे दर्जे की आज़ादी मिली है[2]।"

स्वतंत्रता के बाद स्थापित प्रजातंत्र शासन से उपन्यासकार नागार्जुन सन्तुष्ट नहीं है। उनके अनुसार "गरीबों का संकट मोचक वही होगा जो खुद गरीब के घर पैदा हुआ रहेगा[3]।" यह स्पष्ट है कि शासन कुछ इने-गिने लोगों के हाथों में सीमित रह जाती है। ज़मीन्दारी उन्मूलन कानून के साथ ही सार्वजनिक भूमि को भी बेच डालने की क्रिया में ज़मीन्दार लोग लग जाते हैं। इसके विरुद्ध संगठित होनेवाले लोगों को राजनीतिक नेताओं की सहायता से झूठे मामलों में फँसाने का कार्य ज़मीन्दार लोगों के द्वारा किया जाता है।

काँग्रेस पार्टी से प्रत्याशित कोई भी मदद न मिलने से हताश ग्रामीण लोगों के मन में वकील श्याम सुन्दर दास के कारण आशा की किरण प्रज्वलित हो उठती है। अपने अधिकार हनन से तिलमिलानेवाले लोग जल्दी ही साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित हो जाते हैं।

---

1. नागार्जुन - बलचनमा, पृ.105
2. वही, पृ.95
3. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ, पृ.105

गाँव में नौजवान संघ और किसान कमेटियाँ खोली जाती है । बेदखली के खिलाफ जन आन्दोलन हेतु किसान-मज़दूर संगठित होने लगते हैं । उच्च वर्ग के स्वेच्छाचारियों से अपनी हिफाजत केलिए, तानाशाह अधिकारियों से वाजिब हक हासिल करने केलिए[1] आयोजित मोर्चों में वे सफल निकलते हैं । इन्हीं परिवर्तनों से सन्तुष्ट होकर उपन्यासकार पेड़ बाबा से कहलवाते हैं कि "साधारण जनता का युग आगे आनेवाला है बेटा"[2] लेखक की आस्थावादी दृष्टिकोण यहाँ स्पष्ट झलकती है ।

आज़ादी के बाद सत्ता से मदोन्मत्त बनकर बेहोश बने राजनीतिक नेता पूर्ण रूप से अवसरवादी और भ्रष्टाचारी बन जाते हैं । आज़ाद भारत की महत्ता को गाँव-गाँव पहुँचानेवाला नेता गण उसके बाद सारे गाँव और गाँववालों को भूल जाता है । ग्रामीण लोगों केलिए आज़ादी मुट्ठी भर लोगों की स्वार्थपरता, कृत्रिमता, खुशामदी और बेईमानी का समुच्चय मात्र रह जाती है । इसके विरुद्ध साम्यवादी चेतना और अन्य गतिविधियाँ जागृत भारतवासियों के राजनीतिक जीवन के सत्यात्मक पहलुओं के रूप में हमारे सामने आ जाते हैं ।

धार्मिक और सांस्कृतिक आयाम

भारतीय ग्रामीण जीवन में धर्म का अर्थ लोगों के आचार-विचार और आचरणों तक सीमित रह जाता है । इसका कारण यह है कि भौतिकता के अतिप्रसार के कारण धर्म की शक्ति दिन-प्रति-दिन क्षीण हो रही है । इसके फलस्वरूप बाह्याचार, आधारहीन रूढ़ सत्यों की स्वीकृति, स्वार्थपूर्ति हेतु देवी-देवताओं की पूजा, भूत-प्रेत पर विश्वास आदि धर्म के प्रतीक के रूप में रह जाते हैं ।

1· नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ, पृ·112

2· वही,

रूपअली गाँव के लोग धार्मिक पाखंडों से मुक्त नहीं रह जाते। बाबा बटेसरनाथ के माध्यम से गाँव में प्रचलित वृक्ष पूजा स्पष्ट हो जाती है। उस पर ब्रह्म बाबा का निवास, फल स्वरूप लोगों के द्वारा की जानेवाली पशु बलि आदि चित्रणों से नागार्जुन ग्रामीण जनता के अन्धविश्वासों पर प्रकाश डालते हैं।

भारतीय समाज के विकास में अडचन डालनेवाली प्रमुख बातों के रूप में ही लेखक अंधविश्वासों और रूढ़ियों का चित्रण करते हैं। प्राकृतिक प्रकोपों को दैवी प्रकोप समझकर पूजा-पाठ में मग्न लोग समाज के अनुरूप नई स्फूर्ति के वाहक नहीं बन पाते हैं। सामाजिक कुरीतियों के खोखलेपन को व्यक्त करते हुए बाबा वटवृक्ष कहता है "मेरी छाया में बैठकर तेरी इस बस्ती रूपअली के ब्राह्मणों ने मिट्टी के ग्यारह लाख शिवलिंग बनाये और उनकी सामूहिक पूजा की उन्होनें, फिर भी मेघ की कृपा नहीं हुई - नहीं हुई! नहीं हुई!! नहीं हुई!!!

उच्च जाति और निम्न जाति के भेद-भाव के अनुसार ही देवी-देवताओं की पूजा-पाठ में भी अन्तर दिखायी पड़ता है। उच्च वर्ग के लोग जब इन्द्र भगवान और चण्डी को सन्तुष्ट बनाने केलिए पूजा-पाठ करते हैं तो गाँव के निम्न जाति के ग्वाले, अहीर और धानुक मिलकर भुइँयाँ महाराज की पूजा करने लगते हैं।

रूपअली गाँव के लोगों में व्याप्त बाह्याडम्बर प्रियता, अन्धविश्वास आदि का सजीव चित्रण लेखक ने उतारा है।

ग्रामीण संस्कृति के प्रमुख और पर्व-त्योहारों का चित्रण भी "बाबा बटेसरनाथ" में है। "जेठ महीने की अमावस" सुहागिन औरतों केलिए

त्यौहार का दिन है । उस दिन बड़े घरानों की सधवा स्त्रियाँ थाली में तरह-तरह के नैवेद्य लेकर बरगद के पेड़ की पूजा करने में आया करती है । "वारुणी परब" का सम्बन्ध गंगा स्नान से है ।

बदलती हुई परिस्थितियों मे त्यौहारों का रंग फीका पड़ने लगता है और त्यौहार की मजबूरी नाम मात्र केलिए रह जाती है । सौ वर्षों की जीवन कथा प्रस्तुत करते समय सांस्कृतिक परिवेश को पूर्ण रूप से उभारने की कोशिश नहीं की गयी है । वैसे सौ वर्षों में किसी भी गाँव के सांस्कृतिक जीवन में रीति-रिवाजों में बहुत सारा परिवर्तन आ जाता है । इस पर बहुत कम प्रकाश ही डाला गया है ।

भाषा शैली

"बाबा बटेसरनाथ" की भाषा में स्थानीय शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर है । शब्द विकार, अंग्रेज़ी और उर्दू शब्दों के प्रयोग तो इसमें अवश्य है । शब्द विकार के कुछ उदाहरण - सतुरमर्दन (शत्रु मर्दन) पृ.35, परगट (प्रकट) पृ.48, किरस्टानी (क्रिस्तानी) पृ.60, डोंगा (धोखा) पृ.79 आदि ।

उर्दू शब्द

तदबीर (67) वाकिफ (15) तफसील (40) तरफदारी, मुतातिब (68) हिफाजत (89) आदि ।

---

1. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ, पृ.33

अंग्रेज़ी शब्द

ब्रांच लाइन, रेलवे-जंकशन, इन्कमटैक्स, रेलवे-वर्कशाप (14) डिक्टेटर (72) पिकेटिंग प्रोग्राम आदि ।

वर्णनात्मक शैली में लिखे उपन्यास में बाबा बटेसरनाथ के चित्रण में फेन्टसी शैली का प्रयोग किया है । सम्पूर्ण गाँव के पिछले सौ वर्षों का लोक-जीवन प्रस्तुत करने केलिए लेखक वटवृक्ष को जो रूप प्रदान करते हैं वह यों है - वटवृक्ष की "शाखाओं की घनी-हरी झुरमुटों में से सफेद बड़े-बड़े बालोंवाला एक भारी सिर निकल आया । दाढ़ी भी काफी बड़ी-बड़ी थी ।

यह एक विशालकाय मानव था । हाथ-पैर खूब बड़े-बड़े । शरीर जिस प्रकार लम्बा-छरहरा था, डील-डौल इतना मोटा नहीं था । कमर में मटमैली धोती लपेटी हुई थी, बाकी बदन यों ही खाली था । छाती, पीठ, जाँघों और बाँहों पर रोओं के जो जंगल थे, उन पर मुलतानी मिट्टी-सा हल्का पीलापन छाया हुआ था । भारी भरकम काठीवाला वह आदमी आहिस्ते-आहिस्ते आया ।"[1]

पूर्वदीप्ति शैली के प्रयोग द्वारा ही जैकिसुन के पिता की मृत्यु और शत्रुमर्दन की बात कही जाती है ।

बिम्ब योजना, प्रतीक और संकेतों के माध्यम से उपन्यास की भाषा में सजीवता लायी गयी है ।

---

1. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ, पृ.8

दृश्य बिम्ब का सुन्दर उदाहरण वटवृक्ष के चित्रण से प्रस्तुत होता है[1]।

स्पर्श बिम्ब

बिलकुल पास आयी तो मेरे कन्धे पर दाहिना हाथ डाला और कुछ सोचने लगी । मुझे महसूस हुआ कि ज्यादा देर तक अगर इसने अपना हाथ मेरे कन्धे पर रखा तो छाती पानी-पानी होकर बह जायेगी.....[2]

घ्राण बिम्ब का उदाहरण

"हुआ यह कि नारी-देह की विलक्षण गन्ध पाकर मेरी रग-रग स्पन्दित हो उठी, पत्ते जल्दी-जल्दी हिलने लगे और दूसों की कोखें दहकने लगी[3]।"

नाद बिम्ब का उदाहरण

गौरैया के चजे की रुलाई - चे - चूं - चूं[4]।
झींगुर की पल्टन - ईं ईं ईं ईं ईं ईं[5]।"

प्रतीक

ताजे - कटे बाँस की हरी - लम्बी ध्वजा के सहारे एक श्वेत पताका फहरा रही थी । उस पर सिन्दूरी अक्षरों में तीन शब्द अंकित थे

---

1. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ, पृ.8
2. वही, पृ.31
3. वही, पृ.31

स्वाधीनता !
शान्ति !
प्रगति !

श्वेत रंग शान्ति और प्रगति का प्रतीक है । साम्यवादी विचारधारा के अनुसार क्रांति के माध्यम से ही प्रगति संभव है । यहाँ लाल रंग क्रांति का प्रतीक है ।[1]

संकेत

"देखते हो ना ? इस बार फागुन में ही कैसी मनहूसी छा गयी है । रात को काला कौआ चीखता रहता है कर्र-कर्र । दिन के समय गीदड हुँआ - हुँआ करता है अब की भारी अकाल पडेगा, देख लेना ।[2]"

रात के वक्त कौए नहीं चीखेंगे और दिन के समय गीदड हुँआ-हुँआ नहीं करेंगे । असाधारण रूप से यह चीख आनेवाली विपत्ति के संकेत स्वरूप ही प्रस्तुत है ।

सभी दृष्टियों से उपन्यासकार नागार्जुन के एक नूतन शिल्प प्रयोग के रूप में "बाबा बटेसरनाथ" का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

----

1 नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ, पृ.117
2. वही, पृ.43

वरुण के बेटे {1957}

प्रगतिशील चेतना के कथाकार श्री नागार्जुन का छठा उपन्यास है "वरुण के बेटे"। उनके अन्य उपन्यासों से भिन्न होकर इस उपन्यास में वे मछुओं के जीवन की, जिससे सारी दुनिया अनभिज्ञ रहती है, तमाम विषमताओं का पर्दा-फाश करते हैं। "वरुण के बेटे" मछुओं की जिन्दगी को अभिव्यक्ति देनेवाला हिन्दी का प्रथम उपन्यास है।[1]" बिहार के उत्तर पूर्वी जिला दरभंगा को ही वे अपने अधिकांश उपन्यासों का कथा क्षेत्र बनाते रहे हैं, जहाँ के वे निवासी हैं। "वरुण के बेटे" का घटना स्थल भी दर-भंगा के नज़दीक का गाँव मलाही-गोढियारी है। गरोखर {गढ़पोखर} और धनहाचौर नामक दो पोखरों के इर्द गिर्द घूमनेवाले मछुओं का जीवन ही इसकी कथा वस्तु है। जिन्दगी की व्यथाओं से लडते-उलझते मछुए अपने अस्तित्व को बनाये रखने में संघर्षरत रहते हैं।

सारी दुनिया जब निशा की गोद में सोई रहती है तब ये मछुए गरोखर में जाल फैलाकर बर्फीले पानी में डुबकियाँ लगाते हैं। इतने श्रम के बाद भी भूख से तडपना इनकी नियति सी लगती है। रात भर ठंडे पानी में डुबकियाँ लगाकर "कडाके की भूख"[2] से आये खुरखुन को अपने घर से मुट्ठी भर चावल ही मिलता है। कच्चे चावल को भीगने केलिए अंगोछे में पोटली बाँधकर पानी भरे डोल में डुबो देता है और कहने लगता है - "कच्चे-चावलों से दाँतों-मसूडों की वर्जिश नाहक कौन करवाए।[3]" इस तरह के अभावग्रस्त मछुओं के सपने, मोह भंग और नई चेतना के परिणाम स्वरूप शोषण के खिलाफ विद्रोह आदि से "वरुण के बेटे" की रचना की गयी है।

---

1. डॉ॰ज्ञानचन्द गुप्त - आँचलिक उपन्यास शिल्प और सम्वेदना, पृ॰42
2. नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ॰14
3. वही, पृ॰14-15

प्रगतिशील कथाकार के रूप में लब्धप्रतिष्ठित नागार्जुन की अपनी एक प्रतिबद्ध दृष्टि है जिसकी छाया इस उपन्यास पर छायी हुई है। भारत के स्वतंत्र होने का सपना साकार हो जाता है, उसके साथ ही यहाँ के नागरिक तरह तरह के सपने संजोते रहते हैं। मोहन माँझी, स्वाधीनता संग्राम का एक अदना-सा सिपाही[1] गढ़पोखर के सम्बन्ध में एक सपना देखने लगता है - "गढ़पोखर का जीर्णोद्धार होगा आगे चलकर और तब मलाही-गोंढ़ियारी के ये ग्रामांचल मछली-पालन-व्यवसाय का आधुनिकतम केन्द्र हो जाएँगे। वैज्ञानिक प्रणाली से यहाँ मछलियाँ पाली जाएँगी। मलाही-गोंढ़ियारी का एक-एक परिवार सरोवर की बदौलत सुखी-सम्पन्न हो जाएगा। विशाल जलाशय की कछारों में हम किस्म-किस्म के कमलों और कुमुदिनियों की खेती करेंगे। पक्की-ऊँची भिंडों पर इकतल्ला सैनिटोरियम बनेगा, फिर दूर-पास के विश्रामदर्शी आ-आकर यहाँ छुट्टियाँ मनाया करेंगे ...."[2]। लेकिन यह मात्र सपना ही रह जाता है। ज़मीन्दारी उन्मूलन कानून के साथ भूस्वामियों को अनेक छूट दी जाती है। "व्यक्तिगत जोत की ज़मीन, बाग-बगीचे, कुआँ-बभच्चा और पोखर, देवी-देवता के नाम चढ़ी हुई जायदाद, चरागाह, परती-पराँत, नदियों के घाट और तटवर्ती भूमि जैसी कुछ-एक अचल सम्पत्तियों के मामले"[3] में मिली छूट के बल पर पोखरों और चरागाहों को बेचने में वे लग जाते हैं। इसी परिस्थिति का लाभ उठाकर देपुरा के ज़मीन्दार अपने पोखरे को सतघरा के ज़मीन्दार को बेच देता है। यहाँ से एक ओर ज़मीन्दार और सरकारी अधिकारी और दूसरी ओर अभावग्रस्त शोषितों के प्रतीक मछुओं के बीच का संघर्ष शुरू होता है।

---

1. नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ.32
2. वही, पृ.32
3. वही, पृ.31

सतघरा के ज़मीदार द्वारा मछुआरों की ज़मीन पर कब्जा करने के खिलाफ भोला, खुरखुन, बिसुनी, रंगलाल आदि पचास-साठ लोग मिलकर गढ़पोखर पर अपना अधिकार न छोड़ने का निश्चय करते हैं। जन-जागरण की चेतना का परिचय बूढ़े गोनड के इन शब्दों में व्यक्त होता है - "यह पानी सदा से हमारा रहा है, किसी भी हालत में हम इसे छोड नहीं सकते। पानी और माटी न कभी बिके हैं, न कभी बिकेंगे। गरोखर का पानी मामूली पानी नहीं, वह तो हमारे शरीर का लहू है। जिनगी का निचोड है।[1]"

सतघरा का ज़मीन्दार गढ़पोखर की बन्दोबस्ती करके गाँववालों को समन भिजवाता है। भोला, नकछेदी और गंगा साहनी ने तीन हज़ार रुपये में दो वर्ष केलिए गढपोखर का ठेका लिया था। मछलियों की आय का अर्धांश इन तीनों को तथा शेष आधा भाग अन्य मछुओं को मिलता आया है। नए ज़मीन्दार के समन से मछुए अशांत हो जाते हैं। मलाही गोंढियारी के मछुओं को गरोखर के पानी से बेदखल करने की नीति के विरुद्ध मोहन माझी देहाती लोगों से मिलकर किसान-सभा की संस्थापना करते हैं। अपने दुश्तैनी हक को किसी मूल्य पर भी ज़मीन्दार को न देने का निर्णय लिया जाता है। दफा 144 लगाकर गढपोखर में मछुओं के प्रवेश पर पाबन्दी लगाने केलिए आये डिप्टी मजिस्ट्रेट को पपोखर के सम्बन्ध में कोई मुचलका न दे कर मछुआ-संघ के सदस्य मधुरी, मंगल, जलेसर, कन्हाई और नकछेदी जेल जाना स्वीकार कर लेते हैं। गाड़ी में बैठकर "इनकिलाब ज़िन्दाबाद" के नारे लगानेवाले चित्रण द्वारा अन्याय के विरुद्ध लेखक का प्रतिक्रियात्मक दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है।

---

1. नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ.33

इस प्रमुख कथा के साथ कई अप्रमुख कथाएँ भी गूँथी हुई हैं। भोला-खुरखुन की कथा, मधुरी मंगल की कथा, महाजाल डालने की कथा, मधुरी के गौने का प्रकरण, बाढ़ एवं सहायता कैंपों का चित्रण, कोसी बाँध की कथा आदि भी आकर्षक लगती है। इसमें बाढ़ पीड़ितों की कथा सबसे महत्वपूर्ण है। मछुओं के जीवन का आधार जल ही संहार रूप धारण करके इलाके को बर्बाद कर देता है। सारा इलाका पानी में बह जाता है। अन्न और सिर छुपाने की जगह केलिए लोग परेशान हो जाते है। झंझारपुर स्टेशन पर खड़ी मालगाडी में ये लोग शरण लेते हैं। रेलवे बाबुओं के द्वारा इन बाढ़ पीड़ितों को बलपूर्वक गाडी से उतारा जाता है। इसके विरुद्ध मोहन माँझी तथा खुरखुन का प्रतिशोध और बाबुओं को धक्का देकर उतारे गये लोगों को गाडी में बिठाकर सांत्वना देने का वर्णन बहुत आकर्षक लगता है। सरकारी सहायता से मोहन माँझी के नेतृत्व में सहायता कैम्प खुला जाता है। मंगल, मधुरी, कन्हाई, खुरखुन आदि को सार्वजनिक कार्यों की ट्रेनिंग यहाँ से प्राप्त होती है।

मंगल-मधुरी का असफल प्रेम, तत्पश्चात् ससुराल से भागती मधुरी का समाज सेवा केलिए आत्म समर्पण आदि घटनाओं को प्रमुख कथा के साथ पिरोए रखने में नागार्जुन सफल सिद्ध हुए हैं।

गरोखर

यद्यपि नागार्जुन के प्रसिद्ध उपन्यासों के रचना काल में आँचलिकता का नारा सामने नहीं आया था और नागार्जुन के मन में ऐसा कोई, आग्रह भी नहीं था तथापि एक विशिष्ट अर्थ में वरुण के बेटे आँचलिक उपन्यास है और इसकी गिनती आँचलिक उपन्यास के रूप में ही की जाती है। आँचलिक उपन्यास की पहली शर्त के अनुरूप इस उपन्यास का नायकत्व दिया जाता है - बिहार के उत्तर पूर्वी जिला दरभंगा के मलाही-गोढियारी के गरोखर (गढपोखर) को।

"कोई मामूली तलइया या बागान के अन्दर का साधारण चभच्चा तो थी नहीं वह, वह तो अपने इलाके का प्रख्यात जलाशय" गढ-पोखर- था । अवाम की तीखी-खुरदरी जुबान पर घिसते-घिसते गढ-पोखर अब "गरोखर- हो गया था । चारों तरफ से भिंड, किनारों के बडे-बडे कछार, बीच का पानीवाला बडा हिस्सा - कुल मिलाकर पचास एकड़ ज़मीन छेके हुए था गरोखर ।[1]" यह है वरुण के बेटों का जीवनाधार । यह एक ओर मछुओं का पालन-पोषण करता है तो दूसरी ओर मछुओं के अपने अस्तित्व को बनाये रखने केलिए सामन्ती सत्ता से संघर्ष करने की शक्ति भी प्रदान करता है जीवनदायक पानी से भरा यह गढपोखर अपने में एक पूर्ण इकाई है । सम्पूर्ण प्राणिमात्र केलिए प्रस्तुत यह पोखर किसी व्यक्ति, समुदाय या सत्ता से बाँधा नहीं जा सकता । इस पोखर से मलाही-गोढियारी का संबन्ध इतना घनिष्ठ है कि बूढा गोनउ इस पोखर के पानी को खाली पानी न मानकर मछुओं का लहू ही मानता है ।

गढपोखर से डेढ-दो फर्लांग दूरी पर है मछुओं की बस्ती मलाही-गोढियारी । ये अलग-अलग होने पर भी दोनों नाम साथ साथ चलते हैं । "बाँसों का पतला-सा जंगल और पुराने जमाने की एक ऊजड सी अमराई, दोनों के बीच इतना ही व्यवधान था । गाँव के छोर पर सडक के किनारे पक्का कुआँ था और पाकड के दो जवान पेड थे, खूब सुन्दर और छतनार । वहीं ज़रा हटकर किसानों का साझा खलिहान फैला पडा था । जीमड़ के खम्भे, बाँस की केलियों के हातावार घिरावे, दम्यान उनके, छोटी-मझोली-बडी परिधिवाले अनेकों खलिहान[2] ।" यही है मछुओं की बस्ती का परिवेश ।

1· नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ·7

2· वही, पृ·11

मलाही-गोढ़ियारी के "तीस-पैंतीस" मछुए परिवारों का एक मात्र आश्रय पानी है । इनकी रोजी-रोटी का मुख्य साधन मछली का शिकार "इधर के जितने भी पोखर थे, जितनी भी ताल-तलइयाँ थीं, जितनी भी नदियां और झीलें थीं, पानी का जहाँ भी जमाव-टिकाव था-सब का सारा उनका शिकारगाह था[1] ।"

मछुओं की बाह्य एवं आन्तरिक अनुभूतियों को सहज एवं प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने में नागार्जुन सफल हुए है । "मछुओं की जीवन-चर्चा उनकी आन्तरिक अनुभूतियाँ, उनके हर्ष-विषाद एवं परिवेश का धरातल मिलकर कुछ इस तरह से व्यक्त हुए हैं कि "वरुण के बेटे" साधारण लोगों के अति साधारण कथा के स्तर तक उठने की क्षमताओं से सम्पन्न है[2] ।"

मोहन माँझी

"वरुण के बेटे" में गरोखर के बाद महत्वपूर्ण पात्र है मोहन माँझी । यह नागार्जुन का मानस पुत्र है । नागार्जुन की वादोन्मुख दृष्टि से यह पात्र पूर्ण रूप से प्रभावित है । अथवा साम्यवादी चेतनावाले मोहन माँझी का चित्रण लेखक ने पूर्वाग्रह से ही किया है ।

उपन्यास में मोहन माँझी का परिचय लेखक यों करते हैं - "राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम का एक अदना-सा सिपाही था वह । 15 अगस्त 1947 के पहले ही तीन बार जेल की सजाएँ भुगत आया था । खरी-खरी सुनाने की और सर्व-साधारण जनता का पक्ष लेकर चाहे जो-कुछ कर गुज़रने की

---

1. नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ.20
2. डॉ. नगीना जैन - आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास, पृ.147

लत पड़ गई थी । अब वह हँसिया-हथौडा-मार्का लाल झंडा वाली किसान सभा का थाना-सभापति था । इससे पहले प्रजा समाजवादी पार्टी की जिला कमेटी का सदस्य था । कम पढ़ा-लिखा होने पर भी समझ पैनी थी और ईमानदारी के तो भला क्या कहने ।[1]" उसके व्यक्तित्व और वेश-भूषा पर झलकनेवाली आँचलिकता इन शब्दों से व्यक्त होती है - "आधी बाँहों की कोकटी कमीज़ । मामूली सूतों की मटमैली धोती । खाकी थैला बाँह से लटक रहा था । पैरों के नाखून बडे-बडे और बेकाबू । चेहरा गोल, पेशानी चौड़ी । लाल-लाल छोटी आँखों में काली पुतलियाँ खूब खुल नहीं पा रही थीं[2]

उपन्यास में मोहन माँझी का प्रवेश नाटकीय ढंग से होता है । वास्तव में मोहन माँझी की सृष्टि नागार्जुन के अपने प्रतिबद्ध दृष्टिकोण के अनुसार कथा को मोडने केलिए, उस पर अपना एक विशिष्ट नियंत्रण रखने केलिए की गयी है ।

देपुरा के ज़मींदारों के द्वारा गढपोखर पर कब्जा करने के विषय पर पहले से ही चिंतित ग्रामीणों को और अधिक उत्तेजित करने का काम मोहन माँझी द्वारा किया जाता है । वह अपने जोशीले भाषण द्वारा सभी संगठनों को किसान सभा में मिलाकर शोषण के साधनों से लड़ने की शंख ध्वनि सुनाता है । उसकी ही जबानी सुनिए - "भाइयो, किसान सभा देहातों में रहनेवाले कुल मेहनतकश लोगों का एकमात्र मिला-जुला सुदृढ संगठन है । हम लोग मछुआ हैं, निषाद भाई हैं । महनी, मुखिया, खुनौट, सोरहिया, बाँतर, तीयर, जलुआ, माँझी, खानदानी उपाधि किसी की कुछ है तो किसी की कुछ । मगर है फिर भी सभी निषाद ।

---

1. नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ.32

2. वही, पृ.37

मैथिली महासभा, राजपूत महासभा, यादव महासभा, दुसाध महासभा आदि जो भी साम्प्रदायिक संगठन हैं सभी का बायकाट होना चाहिए । इन महासभाओं के नेता आम लोगों की एकता में दरार डालने का ही एक मात्र काम करते हैं । देहातों में रहनेवाली सारी जनता का खेती-किसानी से थोड़ा-बहुत लगाव रहता ही है, तो कैसे कोई किसान सभा की मेम्बरी से इन्कार करेगा ?"[1] पन्द्रह मिनट के अपने भाषण के पश्चात् अंचल में जितने संगठन है सबको एक जुट करके किसान सभा के हंसिया-हथौड़ा-मार्का लाल झण्डे के नीचे पाँति बाँधने का आह्वान देता है । मोहन-माँझी का इस तरह झट से प्रवेश कुछ आरोपित सा लगता है । मोहन माँझी के अवतरण के पहले ही यहाँ के मछुए सामन्ती शोषण के खिलाफ संघर्षरत दीखते हैं । मानसिक रूप से परिपक्व मछुओं की सभा से मोहन माँझी भली-भाँति परिचित भी हो जाता है । यह तो सच है कि राख से ढके कोयले को फूँक कर आग निकालने का काम मोहन माँझी ही करता है । ज़मीन्दारी सभ्यता की हरकतों को बनाये रखने में सहायक सिद्ध होनेवाले शासकों के चक्रव्यूह से मुक्त होने की छटपटाहट मोहन माँझी ही इन लोगों में पैदा करता है । पुरानी पीढ़ी के होते हुए भी इसका प्रभाव केवल पुरानी पीढ़ी के खुरखुन, भोला जैसे लोगों पर सीमित न रहकर मंगल, मधुरी आदि पर भी व्याप्त हो जाता है । गाँव में किसान सभा की कमेटी की स्थापना और मंगल, मधुरी आदि को कमेटी के सदस्य बनाने तक में वह सफल हो जाता है ।

एक आदर्श राष्ट्रीय नेता के अतिरिक्त वह एक आदर्श समाज सेवक भी है । बाढ़ पीड़ितों की सेवा में सरकारी सहायता से कैम्प लगाने का कार्य मोहन माँझी के द्वारा ही किया जाता है । झंझारपुर स्टेशन वाले प्रकरण में परिवेश के अनुरूप निर्णय लेने की उसकी क्षमता व्यक्त होती है ।

---

1. नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ.38-39

माल गाडियों में डेरा डाले बाढ-पीडितों को बाहर धकेलनेवाले स्टेशन मास्टर से क्रुद्ध होकर स्टेशन को आग लगाने की बात करनेवाले युवक को संयमित होकर मोहन माँझी समझा देता है - "पगलाई से काम नहीं चलेगा बेटा । गरम लोहे को ठंडा हथौडा पीट-पाटकर रख देता है । ठंडे दिमाग से सोचना-समझना और तब आगे कदम बढाना बबुआ हम तुम्हारा साथ देंगे, घबडाने की क्या बात है इसमें । .....[1] बाढ पीडितों को ठीक जगह पर बसाकर उनके खान-पान का प्रबन्ध भी किया जाता है ।

आज के स्वार्थी राजनीतिक नेताओं केलिए एक आदर्श रूप है मोहन माँझी का । परिस्थितियों को ठीक तरह समझकर संयमित रूप से उसका सामना करनेवाला, कैम्प में सरकारी सहायता से पीडितों की सेवा करने वाला मोहन माँझी का चरित्र पाठक को विशेष रूप से प्रभावित करता है । नागार्जुन ने मोहन माँझी के रूप में एक आदर्श चरित्र बल्कि कहा जाये कि एक राष्ट्रीय चरित्र को उभारने की कोशिश की है[2] ।"

एक आदर्श पात्र की रचना लेखक ज़रूर कर सके हैं किन्तु उसका पूर्ण विकास नहीं हो पाया है । "विचारधारा के दबाव ने मोहन माँझी के चरित्र विकास की कई संभावनाओं को सीमित कर दिया है[3] ।" उपन्यास में इस पात्र के प्रवेश से लेकर अंत तक लेखक की दृष्टि इसका पीछा करती हुई दिखाई पडती है । लेखक के हाथों से कभी भी फिसलने का मौका मोहन माँझी को नहीं दिया गया है । लेखक का निरंतर हस्तक्षेप या अंगुली निर्देश इस पात्र के विकास को मुर्झा देता है ।

---

1. नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ.94

2. धर्मेन्द्र गुप्त - लेख - वरुण के बेटे - मानव संघर्ष की कथा (हिन्दी के आंचलिक उपन्यास सं.डॉ.रामदरश मिश्र) पृ.122

डॉ.ज्ञानचंद्र गुप्त (

... आंचलिक उपन्यास - सिद्धान्त और समीक्षा, पृ.120

खुरखुन

उपन्यास की प्रमुख भूमिका निभानेवाले प्रधान पात्रों में खुरखुन का महत्वपूर्ण स्थान है । मोहन माँझी इसका परिचय यों देता है - "भाइयो, इनको आप लोग पहचानते हैं ? नहीं ? अरे यह मलाही - गोंठियारी के बहादुर मछुआ खुरखुन तीयर हैं ।[1]" मगर को पछाडनेवाले के रूप में खुरखुन इलाके में प्रसिद्ध हैं ।

अभाव और रोग से सताया हुआ है उसका पारिवारिक जीवन । "सात-आठ खानेवाले, खुरखुन अकेला कमानेवाला । औरत हमेशा की पिलपिली । कौन सी बीमारी उसे नहीं हुई थी मलेरिया का शिकार वह । कालाजार की पचासों सुइयाँ उसको लगी । पेचिश और संग्रहणी की मिताई उससे ? और अब दमा ने दर्शन दिए थे[2] ।"

परिवार के एक मात्र कमानेवाले खुरखुन को रात भर हड्डीतोड मेहनत के बाद भी कभी कभी मुट्ठी भर चावल से अपनी भूख मिटानी पड़ती है ।

मोहन माँझी के प्रभाव स्वरूप साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित खुरखुन समाज के शोषणों के खिलाफ आवाज़ उठाने लगता है । शासक वर्ग कांग्रेस के द्वारा गरीब मज़दूरों के ठगे जाने की बात कोसी-बाँध के सन्दर्भ में टुन्नी से सुनकर खुरखुन अपना प्रतिशोध व्यक्त करता है - "हे भगवान, कैसा जमाना आया है । पच्चीस करोड पचास करोड रुपइया लगाकर दस-पन्द्रह साल में कोसी-बाँध तैयार होगा, हजारों का माहवारी वारा पानेवाले पचासों आफीसर बहाल हुए हैं फिर गरीब मज़दूरों के साथ ही सुराजी बाबू लोग इस तरह का खिलवाड क्यों कर रहे हैं ? ऐसा अनर्थ तो न कभी सुना, न देखा । हे भगवान, सृष्टि के इन्हीं तौर - तरीकों में तुम्हें अपने विधातापन का स्वाद

1· नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ·99-100

2· वही. पृ·77

मिलता है ? हिन्द-हितकारी समाज नहीं, पेट-हितकारी समाज ।[1] " समाज में प्रचलित भ्रष्टाचारों के विरुद्ध नागार्जुन अपना आक्रोश खुरखुन के माध्यम से व्यक्त करते हैं । यह केवल आक्रोश मात्र न रह कर प्रजातंत्रीय शासन के दुष्परिणामों के सम्बन्ध में लोगों के मन में उमडी प्रतिक्रिया ही माननी चाहिए ।

बाढ पीडितों केलिए लगाये जानेवाले कैम्प से खुरखुन का सेवा भाव व्यक्त होता है । पुत्री मधुरी के प्रति वात्सल्य पाठक को इस पात्र की ओर आकर्षित करनेवाली बात है ।

उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक खुरखुन का चरित्र उभरकर सामने आता है । लेकिन उपन्यास के अन्य पात्रों के समान खुरखुन पर भी नागार्जुन की प्रतिबद्धतावाली दृष्टिकोण छायी रहती है "खुरखुन का चरित्र यद्यपि आंचलिक परिवेश की उपज होने का आभास देता है, तथापि वाद-मुक्त दृष्टि से उसे और भी अधिक यथार्थ एवं सहज बनाया जा सकता था ।[2] " उपन्यास के प्रारंभ में आंचलिकता के रंग में रंगा यह पात्र पाठक के मन में मछुए जीवन की व्यथा-कथा का जीता जागता रूप प्रस्तुत करता है । लेकिन उपन्यास के अंत में आकर लेखक इसके व्यक्तित्व पर ऐसा धक्का लगा देता है कि उसका व्यक्तित्व और आंचलिक रंग किसान सभा के झण्डे के लाल रंग में विलीन हो जाता है ।

मंगल

साम्यवादी विचारधारा से बोझिल, अविकसित पात्र है मंगल । मधुरी की ओर अपने प्रेम को लेखक के हस्तक्षेप के कारण और एक दिशा में मोड देने केलिए यह विवश हो जाता है । मधुरी भी इसे चाहती है लेकिन प्रतिबद्धतावादी दृष्टिकोण के कारण उपदेश देकर मंगल के भीतर भभकती प्रेम की

---

1. नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ.43
2. डा. बंसीधर - हिन्दी के आंचलिक उपन्यास,: सिद्धांत और समीक्षा,

आग बुझाई जाती है । पूर्वनिर्धारित दिशा की ओर कथा को अग्रसर करने हेतु लेखक द्वारा किया गया यह कार्य आरोपित सा लगता है ।

मोहन माँझी के प्रभाव से किसान सभा के कार्यक्रमों में सजीव रूप से भाग लेने वाला मंगल अपनी हक की रक्षा केलिए स्वयं गिरफ्तार हो जाता है ।

आंचलिक परिवेश में मंगल जैसे पात्र के विकास की सारी संभावनाएँ होते हुए भी लेखक इस पात्र को दबाकर इन संभावनाओं को मुर्झा देते हैं ।

मधुरी

"वरुण के बेटे" उपन्यास में नारी चेतना से जागृत पात्र है मधुरी । इस उपन्यास में मधुरी का चरित्र विकास दो भागों से होकर चित्रित है । पहले भाग में मधुरी का चित्रण एक आदर्शमयी ग्रामीण कन्या के रूप में होता है और दूसरे भाग में प्रगतिशील प्रभाव से जागृत नारी के रूप में ।

उपन्यास में मंगल-मधुरी की प्रेमकथा आकर्षक लगती है । रात दिन मंगल की स्मृति में खोई रहनेवाली मधुरी यह चाहती है कि "........ बैठे जाएऔर बैठी-बैठी मंगल के बारे में सोचती रहे, बस सोचती ही रहे ।"[1] पाँच महीने बाद किसुन भोग के नीचे एकांत में दोनों मिलते हैं । "बेताबी से अपनी बलिष्ट बाँहों में कसकर" चूमनेवाले मंगल को शांत करके मधुरी कहती है - "देखो मंगल, अब हम छोकरा-छोकरी नहीं रहे ! धूल-मिट्टी के बचकाने खेल काफी खेल चुके । सयाने-समझकर माँ-बाप और सास-ससुर ने तुम पर जो

---

1. नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ.22

जिम्मेदारी सौंपी है उससे जी चुराना कायरता होगी । तुम्हें अपनी घरवाली के प्रति वफादार होना है, मुझे अपने घरवाले के प्रति ।
मैं तुम्हारा घर बर्बाद नहीं करना चाहती मंगल, मैं नहीं चाहती कि एक औरत की सिन्दूरी माँग पर कालिख पोतती रहूँ । ।[1] मधुरी की इस प्रवृत्ति में नागार्जुन का हस्तक्षेप स्पष्ट हो जाता है । इस सन्दर्भ में डॉ॰ ज्ञान चन्द गुप्त का वक्तव्य समीचीन लगता है - "मंगल और मधुरी का रोमानी प्रसंग मधुरी को "ओवर मैच्योर" का सा चेहरा प्रदान करता है जो बहुत कुछ किताबी है वास्तविक नहीं, अन्यथा बाहों में बंधी महकती चाँदनी रात के एकान्त क्षणों में वह मंगल की गृहस्थी सुधार से चिन्तित न होती । दरअसल नागार्जुन फार्मूलाबद्ध चरित्र निर्माण करते हैं, जीवन की भँवरों के बीच छोड नायक और नायिका को उभरने नहीं देते । प्रतिबद्धता ही इसका मूल कारण है ।[2]"

शराबी ससुर की हरकतों से तंग आकर मधुरी अपने घर भाग आती है । यहाँ से मधुरी के चरित्र का विकास दिखाई पडता है । साम्यवादी विचारधारा वाले मोहन माँझी के प्रभाव से मधुरी में छिपी चेतना जागृत हो उठती है । उसका समाज सेवी रूप बाढ पीडितों के प्रसंग में व्यक्त होने लगता है । कैंप में चलनेवाली दूध की चोरी उसके कारण खुलती है । चिकित्सा कार्य केलिए पटना मेडिकल कालेज से आयी पंजाबी लडकी कुसुम कक्कड से उसका परिचय होता है । जिससे उसकी नारी चेतना जागती है और उसे अपने ससुराल में भोगे कष्ट हल्के लगता है ।

मोहन माँझी द्वारा बुलाये गये किसान प्रतिनिधियों के सम्मेलन में वह सजीव रूप से भाग लेती है । गढपोखर में मछुओं के प्रवेश को रोकने केलिए आये डिप्टी मजिस्ट्रेट मधुरी से कहते हैं - "मोहन माँझी ने आखिर तुम्हें भी कम्यूनिज्म का पाठ पढा ही दिया ।

1• नागार्जुन - वरूण के बेटे, पृ॰52-53

2• डॉ॰ ज्ञानचन्द गुप्त - आँचलिक उपन्यास सम्वेदना और शिल्प, पृ॰46

अच्छा तो है ! राजनीति ही तो एक चीज़ थी, जिसे गाँवों की हमारी बहू-बेटियों ने अब तक अपने पास फटकने नहीं दिया था, लेकिन तुम तो देखता हूँ ।[1]" इसका जवाब अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में भी क्यों न हो बड़ी ओज से देती है - "तो इसमें क्या हर्ज है हजूर । जिनगी और जहान औरतों केलिए नहीं है क्या ?[2]" आत्मविश्वास भरे उसके इन शब्दों में अपनी दृष्टि की व्यापकता भी उभर कर सामने आती है । गढ़पोखर के मामले में कोई समाधान न होने से मधुरी स्वयं गिरफ्तार होने को तैयार हो जाती है ।

"मधुरी का चरित्र कुछ महत्वपूर्ण है । उसके द्वारा नारी-जाति की राजनैतिक चेतना और स्त्री-पुरुषों का प्रगतिशील ढंग से विचार करने का लेखक ने प्रयत्न किया है[3] ।"

स्वातंत्र्योत्तर भारत के जागृत नारी का रूप मधुरी में ठीक तरह उभर कर आता है । ग्राम-जीवन में नारी का साक्षात्कार नये सन्दर्भों में हुआ है, अब वह अपनी परंपरागत विसंगतियों के कोहरे को धीरे-धीरे हटा कर राजनीतिक क्षेत्र में भी पदार्पण करने लगती है ।

अन्य पात्र

लोक कथा गायक के रूप में आये गंगा साहनी को ज़मींदारों के हाथ में बिका हुआ कांग्रेसी के रूप में चित्रित करके इस पात्र को अप्रगतिशीलता के रंग में रंगा जाता है । चुल्हाई, नकछेदी, जलसेर, नीरस, जिलेबिया, भोला आदि पात्रों में भी आंचलिकता की गतिशीलता का अभाव है । इन पात्रों को लाल झण्डे के नीचे खड़ा करने में लेखक ने काफी जल्दबाजी दिखाई है ।

---

1. नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ. 115
2. वही, पृ. 115

आंचलिक उपन्यास की विशेषता पात्रों की बहुलता "वरुण के बेटे" में भी दिखाई पड़ती है । एक-दो पात्रों को छोड़कर सभी पात्र मछुआ समाज के ही हैं । उपन्यास के सभी पात्र एक ही निर्धारित दिशा की ओर बढ़ने केलिए विवश हैं इसलिए पात्र का चरित्र विकास चाहे वह प्रमुख हो या अप्रमुख उसका सहज विकास नहीं हो पाया है ।

वादोन्मुख अपनी विचारधारा के परिणाम स्वरूप उपन्यास के प्रारंभ से अन्त तक पात्रों से सम्बन्धित सभी घटनाओं को अपनी इच्छा के अनुसार काटते-छाँटते रहते हैं । सहज विकास के अभाव में पात्रों की स्थिति लगाम लगाये हुए घोड़े के समान व्यक्तित्वहीन लगती हैं ।

विविध आयाम

सामाजिक

"वरुण के बेटे" का सामाजिक जीवन सामन्ती व्यवस्था के अन्त और पूँजीवादी व्यवस्था के विकास कालीन का रहा है । स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही जन मानस में भविष्य के रंग-बिरंगी सपने पनपने लगते हैं - जैसे शोषकों और पूँजीपतियों का प्रभाव समाप्त हो जायेगा, शासकीय सत्ता का रूख जन कल्याणकारी होगा, समाज के प्रत्येक अंग को वर्ग और जाति भेद की भावना के बिना अपनी उन्नति के अवसर प्राप्त होंगे आदि । ये सारी आशा-आकांक्षाएँ सपना होकर रह जाती हैं । समाज का आम आदमी आज भी शोषण और उत्पीड़न की कथा-व्यथा को उसी प्रकार लिये हुए है जिस प्रकार आज़ादी के पूर्व था ।

जीने केलिए प्रकृति से संघर्ष करने केलिए विवश "वरुण के बेटे" का सामाजिक जीवन ज़मीन्दारी उन्मूलन के उपरान्त भी ज़मीन्दारों के शोषण का अंग बन जाता है । ज़मीन्दारों का रिक्त स्थान सरकारी नौकरशाह लेते हैं । सरकारी नौकरशाही, भ्रष्टाचार और कानूनी असंगतियों के कारण इनका जीवन दुस्सह बन जाता है । बाढ पीडितों की रक्षा केलिए तार पर तार भेजने पर भी सरकारी मशीनरी अपनी सुषुप्तावस्था से जागती नहीं । चुनाव के दिनों में तकावी बाँट कर उसके पश्चात् निर्ममता से वसूलने के पीछे राजनीतिज्ञों की अवसरवादिता ही स्पष्ट झलकती है । इन्हीं अवसरवादियों का समाज पर बुरा असर पडता है ।

मलाही गोंढियारी समाज की सबसे बडी विशेषता है वहाँ की एकता । समाज की विषमताओं और विसंगतियों से हिल्लोलित मछुए अपनी हक की रक्षा केलिए पूंजीवादी साजिशों के विरुद्ध कटिबद्ध हो जाते हैं ।

जाति या वर्ग के संकुचित दायरों से ऊपर उठा हुआ समाज ही इस उपन्यास में दृष्टिगत होता है । मोहन माँझी मलाही-गोंढियारी के मछुओं को साम्प्रदायिक संगठनों की सीमित जिन्दगी को ठुकराने का आह्वान करता है "मैथिली महासभा, राजपूत महासभा, यादव महासभा, दुसाध महासभा आदि जो भी साम्प्रदायिक संगठन है सभी का बायकाट होना चाहिए । इन महा सभाओं के नेता आम लोगों की एकता में दरार डालने का ही एक मात्र काम करते हैं[1] ।" जातिगत-संगठनों के द्वारा आजकल राष्ट्रीय एकता में जो दरारें बढती जाती है उसे नागार्जुन ने वर्षों पहले ही देखा है और उसके विरुद्ध लडने की प्रेरणा भी देते हैं ।

---

1. नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ.38-39

मंगल और मधुरी के यौन महज आकर्षण द्वारा परिवर्तित सन्दर्भ में बदले नैतिक मूल्यों का वर्णन चित्रित है । चाँदनी रात में अपने प्रेमी से मिलने केलिए अमराईयों के बीच निर्धारित समय पर मधुरी आ जाती है । ये दोनों अपनी शादी के बाद भी पूर्व सम्बन्ध का निर्वाह करते हैं । "बेताबी अपनी बलिष्ठ बाँहों में कसकर मधुरी को उसने चूम लिया । फिर चूमा और फिर चूमा ।[1]"

मलाही-गोढ़ियारी का सामाजिक जीवन उसके यथार्थ के साथ उतारने में वे सफल हुए हैं ।

आर्थिक आयाम

ज़मींदार और सरकारी नौकरशाही के शोषण एक ओर और दूसरी ओर अभावग्रस्तता से मलाही-गोढियारी की आर्थिक स्थिति दयनीय है ।

अभावग्रस्त परिवार का यह चित्र देखिए - "दुआल बिछे थे कोने में, उन पर फटी-पुरानी बोरी बिछी थी । एक जवान लड़की और नंग-धड़ंग बच्चे बेतरतीब सोए पड़े थे । ओढ़ना के नाम पर कथरी गुदड़ी के दो-तीन छोटे-बडे टुकडे उन शरीरों को जहाँ-तहाँ से ढक रहे थे । खुरखुन का समूचा संसार ही मानो तेरह फुट लम्बे और नौ फुट चौडे घर में अटा पडा था । भीतें बीस साल पुरानी, फिर भी मजबूत थीं[2] ।" गाँव के एक दो अपवाद को छोड़कर तीस-पैंतीस परिवारों की स्थिति ऐसी ही रह जाती है । आबादी तो बढ़ती जाती है लेकिन उसी के अनुसार आमदनी में कुछ वृद्धि नहीं होती ।

1· नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ·49

2· वही, पृ·13-14

स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण किसानों का शहरी मज़दूरों में परिवर्तित हो जाना एक युगीन सच्चाई है । नौकरी की खोज में शहर जानेवाला टुन्नी धोखा खा कर वापस लौट आता है । ग्रामीण भारत की उन्नति और विकास केलिए पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत अनेक विकास कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है । गाँव तक आकर इन योजनाओं का रूप ठेकेदारों और शासकीय पार्टी वालों की जेब विकसित करने तक ही सीमित हो जाता है । पोटली बाँधकर कोसी योजना में मज़दूरी करने केलिए निकले टुन्नी का अपना कपडा तक नष्ट हो जाता है । कई दिन कई बाबुओं के द्वारा नाम लिखा जाता है लेकिन इन बाबुओं मे टुन्नी की मुलाकात फिर कभी भी नहीं होती । "मिट्टी काटते ढोते बारह दिन बीत गए, छदाम का भी दरसन नहीं हुआ । उधार खाते चावल-दाल-नमक-हल्दी-मिर्ची-ईंधन देनेवाला दूकानदार भला क्यों छोडने लगा ? कुदाल रख ली, टोकरा रख लिया, धोती तक उतरना थी । कमर से गमछा लपेटे दो दिन, दो रात का भूखा मैं घर लौट आया हूँ ....."
यों मलाही गोढियारी की आर्थिक स्थिति एक हद तक सरकारी भ्रष्टाचार का परिणाम है ।

रात दिन मेहनत के पश्चात् भी भर पेट अन्न केलिए तरसने वाली ग्रामीण जनता की नियति नागार्जुन ने "वरुण के बेटे" में उतारी है ।

राजनीतिक आयाम

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ जुडे सपनों को मिट्टी में मिलाकर शोषण जैसा का तैसा रह जाता है । ज़मीन्दारी उन्मूलन के साथ दी गई छूट की आड में शोषण जीवित रहता है ।

गढ़पोखर, जो अब तक देपुरा के ज़मीन्दारों के हाथ में रहा है, को वे सतधारा के ज़मीन्दारों को बेच देते हैं। ज़मींदार पुलीस और अंचलाधिकारी की सहायता से गढ़पोखर को अपने कब्जे में कर लेना चाहते हैं। पहले से ही अपनी हक की लडाई लडने केलिए तैयार मलाही-गोढियारी के लोग साम्यवादी चेतनावाले मोहन माँझी को अगुआ बनाते हैं। हँसिया-हथौडा-मार्का लाल झण्डेवाली किसान सभा का थाना सभापति मोहन माँझी मछुए संघ को किसान सभा से मिलाकर राष्ट्र की एकता केलिए जातिगत और वर्गगत संगठनों से मुक्त होने की प्रेरणा देता है। गाँव के सभी लोगों को लाल झण्डे के नीचे पांति बाँधने की बात वह बहुत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है।

नयी पीढ़ी की मधुरी और मंगल ही नहीं पुराने पीढी के खुरखुन, भोला, नकछेदी आदि भी साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होते हैं। मधुरी की किसान सभा में सदस्यता नारियों में जागृत राजनीतिक चेतना का संकेत दिलाता है।

गंगा साहनी के द्वारा पैसों के लालच में गरीब लोगों को धोखा देनेवाले राजनीतिक नेताओं पर खिल्ली उडाई गई हैं। काग्रेस से प्रभावित यह मछुआ बाद में ज़मीन्दारों के वश में आ जाता है।

स्वतंत्रता भारत के भ्रष्ट नौकरशाहों का खुलकर वर्णन "वरुण के बेटे" में है। पंचायत राजों के द्वारा भारतीय गाँवों की उन्नति और विकास का सपना गाँधीजी देखा करते थे। वही पंचायत आज निरीह अभावग्रस्त ग्रामीणों के शोषण का साधन बन जाती है। पैसे और ताकत के बल पर गरीब मछुओं के स्पष्ट अधिकारों को छीनने केलिए ज़मींदारों के साथ अंचलाधिकारी, दारोगा, पुलिस आदि भी सहायक सिद्ध होते हैं।

श्रम दान द्वारा योजनाओं का कार्यान्वयन करने का मोह अब भी हो जाता है। अब श्रमदान "बैठे ठाले का अच्छा-खासा मनोरंजन"[1] मात्र रह जाता है। राजनीतिक नेताओं और ठेकेदारों के भ्रष्टाचार यहाँ कोई नई बात नहीं है। टुन्नी इसका विवरण यों देता है - "खाते-पीते परिवारों के शौकिया श्रमदानी भज्जनों की बात ही और थी। उनकी सुविधा के अनेक साधन कोसी-किनारे जुट गए थे। चाय-बिस्कुट, पान सिगरेट, शर्बत-मिठाई, पूड़ी कचौड़ी, चूड़ा-दही, रेडियो-सिनेमा रिकार्ड, माइक लाउड स्पीकर, अखबार और पत्र-पत्रिकाएँ कैमरावालों की भरमार थी ही, पास-पड़ोस के परिचित कांग्रेसी नेताओं की सिफारिश से वे पटना या दिल्ली से आए हुए ऊँचे पदाधिकारी के साथ भीड़ में खड़े हो जाते और फोटो खिंच जाती।"[2] श्रमदान के नाम पर चलनेवाला खोखलापन इससे स्पष्ट हो जाता है। आधुनिक जीवन की प्रचारवादिता और कृत्रिमता पर नागार्जुन स्पष्ट रूप से व्यंग्य कसते हैं।

आज़ाद भारत में हर कहीं समाजवाद की दुहाई सुनाई पड़ती है। लेकिन निकट भविष्य में ही नहीं हज़ारों वर्षों के बाद भी यहाँ समाजवाद की स्थापना नहीं होनेवाली है। ज़मींदारी उन्मूलन कानून के साथ दी गयी छूट के कारण जमींदारी प्रथा आज भी कायम है। जब तक इनके साथ सरकारी नौकरशाहों की सहायता होगी तब तक इनका शोषण चलता रहेगा। इस तरह की सरकार पर निर्धन ग्रामीणों की पुकार का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

सांस्कृतिक आयाम

मछुओं के सांस्कृतिक जीवन से संबन्धित आचार-विचार जैसे गौने अर्थात् शिशु विवाह के बाद यौवनावस्था पहुँचने पर ससुराल भेजने का आचार, बच्चों की छठी, उससे संबन्धित भोज-भात, नाच-गाना, हँसी खुशी[3] आदि का वर्णन भी "वरुण के बेटे" में है।

---

1. नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ.4।
2. वही, पृ.4।

लोकगीत

उपन्यास को आंचलिकता के रंग में रंगा देने में लोकगीतों का महत्वपूर्ण स्थान है । उस स्थान विशेष के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश को उभारने के साथ ही साथ वहाँ के लोगों के भाव-सौंदर्य, उनकी आस्था और परंपरा का भी उद्‌घाटन लोकगीतों के माध्यम से संभव होता है । "वरुण के बेटे" में कई प्रकार के गीतों का प्रयोग दिखाई पड़ते हैं । जैसे मधुरी द्वारा गुन न बाला प्रेम व्यंजक गीत -

"जिनगी भेल पहाड, उमिर भेल काल !

आओ, आओ देख जाओ हाल !!
जीना हुआ दूभर, जवानी हुई काल ![1]"

गंगा साहनी द्वारा गाये जानेवाला जयसिंह और रन्नू सरदार के गीत -

"बउआ खेइयउ ने !
आव ने खेइयउ बउआ जे मिड मोतीचूर मिठाइ हओ ![2]"

महाजाल फैलाते समय गाये जानेवाला श्रम-गीत -

ऊपर टान
हु इ यो !
बाएँ दबके,
हुइ यो !

कमला मैया का वन्दना गीत जिसके द्वारा कमला नदी के प्रति अंचल के लोग अपनी श्रद्धा और भक्ति को व्यंजित करते हैं -

---

1· नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ·17
2· वही, पृ·53

"ओ कोयला देवता,
कमला नदी के बीचो-बीच
तैयार हो गया बाँध।"[1]

बारह मासा के पद -

"सावन हे सखि अति भयावन
निठुर पिया नहिं पास, यो।"[2]

भाषा और शैली

कथांचल से अंतरंग परिचय होने के कारण नागार्जुन ने सामान्य हिन्दी के साथ स्थानीय बोली के शब्दों के प्रयोग द्वारा एक मिली जुली भाषा का प्रयोग किया है। तथापि ठीक ढंग से भाषा में आंचलिकता लाने में वे सफल नहीं हुए। यह शायद इसलिए होगा कि अपने उपन्यासों को आंचलिक नहीं कहा और उसका मोह भी उनको नहीं रहा।

उपन्यास के प्रकृति वर्णन के सन्दर्भ में नागार्जुन के संवेदनशील कवि हृदय का दर्शन होता है। उदाहरण केलिए "धौली तेरस की गाढ़ी-दुधिया चाँदनी किसुनभोग की घनी छतनार डालों के तले आ नहीं पा रही थी किन्तु अपनी दमकती परछाई से अन्धकार की गहन कालिमा पर हल्की-हल्की-सी पोची वह अवश्य फेर रही थी।"[3]

---

1. नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ.49
2. वही, पृ.79
3. वही, पृ.41

वर्णनात्मक शैली के साथ चित्रात्मक शैली का भी प्रयोग उपन्यास में है । चित्रात्मक शैली द्वारा वर्णित वस्तु का चित्र पाठक के सम्मुख उभारने में वे सफल निकले हैं । उदाहरण केलिए " "मलाही-गोंढियारी गो कि अलग-अलग दो आबादियाँ थीं मगर दोनों नाम साथ चलते थे । बाँसों का पतला-सा एक जंगल और पुराने जमाने की एक ऊजड-सी अमराई, मलाही और गोढियारी के बीच बस इतना ही व्यवधान था । गाँव के छोर पर सड़क के किनारे पक्का कुआँ था और पाकड के दो जवान पेड थे, खूब सुन्दर और छतनार । वहीं ज़रा हटकर किसानों का साझा खलिहान फैला पड़ा था । जीमड के खम्भे, बाँस की केलियों के हातावार घिरावे, दर्म्यानउनके, छोटी-मझोली बड़ी परिधिवाले अनेकों खलिहान[1] ।"

बिम्ब योजना का सुन्दर समन्वयन "वरुण के बेटे" में है ।
ध्वनि बिम्ब - टिटहरी की बोली - ट्टिट-ट्टिट - टिट्ट्-टिट् - टिट्-टिट्....
हुक्का पीने की ध्वनि "गुड-गुड-गुड-गुड-गुड...[2] ।"

अभाव ग्रस्त ग्रामीणों के चित्रण के सन्दर्भ में दृश्यबिम्ब का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत हो जाता है । "जाल बुनते हुए या धागा बाटते हुए अर्ध-नग्न बूढे । हुक्का गुड़गुड़ाती या टिकिया सुलगाती हुई बूढियाँ । यह साधारण झाँकी की इस दुनिया की[3] ।"

उपन्यास का शीर्षक "वरुण के बेटे" समुद्र पुत्र मछुओं के प्रतीक के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है ।

---

1. नागार्जुन - वरुण के बेटे, पृ.8-9
●. वही, पृ.7
2. वही, पृ.24
3. वही, पृ.17

उपन्यास की सीमाएँ

इस उपन्यास की आँचलिकता के बारे में विद्वानों के बीच मत भेद हैं। "वरुण के बेटे" नागार्जुन "मलाही-गोढ़ियारी" बस्ती की समग्र अन्तरिकता को नहीं उभार पाये हैं[1]।" सम्बन्धों के तादात्म्य का "वरुण के बेटे" में सर्वथा अभाव है। आँचलिक कथाकार अपने अंचल की अंतरंग यात्रा द्वारा उसकी रग-रग को पहचान लेता है उसकी छोटी-से-छोटी हलचल को बड़ी संवेदना के साथ अपने उपन्यास में उतार देता है। सारा उपन्यास आँचलिकता के रंग में रंगा रहता है। इन सब का सर्वथा अभाव "वरुण के बेटे" में है।

इस उपन्यास को आँचलिक रंग से वंचित करने का प्रमुख कारण नागार्जुन की वाद सापेक्ष्य दृष्टि है। यद्यपि उन्होंने मछली पकड़ने के जाल, मछलियों के विविध नाम, मछुओं का खान-पान, दैनिक जीवन की विभीषिकाएं आदि का वर्णन किया है तथापि यह एक जाति विशेष के सामाजिक जीवन का अंकन मात्र रह जाता है। उनकी दृष्टि साम्यवादी चेतना से बोझिल रहने के कारण उनका रचनाकार प्रचारोन्मुख बन गया है। कथा-संयोजन से लेकर सन्देश तक उनकी इस दृष्टि का प्रत्यक्ष प्रमाण रह जाता है। उस अंचल के रीति-रि त्योहार और अन्य समस्याएँ अछूत सी रह जाती है।

इस तरह अंचल के समूचे चित्रण के अभाव के बावजूद भी इस बात को खुले मन से स्वीकारना होगा कि "वरुण के बेटे" उपन्यास हिन्दी उपन्यास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है[2]।"

1· डॉ· ज्ञानचन्द गुप्त - आँचलिक उपन्यास सम्वेदना और शिल्प, पृ·47

2 ·डॉ·रामदरश मिश्र: - हिन्दी के आँचलिक उपन्यास, पृ·127
(?)
·डॉ·ज्ञानचंद गुप्त :

दु:खमोचन (1957)

इस उपन्यास का नामकरण उपन्यास के नायक के नाम पर ही किया गया है। दु:खमोचन टमका कोइली ग्राम के पुनर्निर्माण की कथा है। *दु:खमोचन* जिसमें दु:खमोचन अपने नाम के शाब्दिक अर्थ को सार्थक बनाकर दूसरों को अपने दु:खों से मुक्त कर देता है। यह उपन्यास पूर्णत: आंचलिक नहीं है। "नागार्जुन आंचलिक उपन्यासों के ब्रह्म एवं विष्णु दोनों रूपों में आते हैं। उनके प्राय: सभी उपन्यास आंचलिकता से ग्रसित हैं, किन्तु "दु:खमोचन" में उनका वह प्रभावशाली रूप स्पष्ट नहीं हो पाया है जो अन्य आंचलिक उपन्यासों में दिखाई पड़ता है।[1]"

टमका कोइली जो कि इस उपन्यास की पृष्ठभूमि है, का वर्णन नागार्जुन यों प्रस्तुत करते हैं "टमका कोइली कोई छोटा गांव नहीं था, पांच हज़ार से ऊपर की जनसंख्यावाली यह एक भारी बस्ती थी। दरअसल यह छोटी-छोटी कई बस्तियों का एक समूह था। बीच-बीच में खेत और बाग फैले हुए थे। उत्तर-पूरब तरफ से कन्नी काटकर एक नदी निकल गई थी। इधर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की पक्की सड़क, उधर मीटरगेज की रेलवे लाइन।[2]"

आस-पास के पांचों गांवों केलिए एक ही पंचायत है। उसके दस नामित मेम्बरों में टमका कोइली के दो प्रतिनिधियों में एक है दु:खमोचन। गांव में किसी समस्या के घटित होने पर पंचायत जुटती है तो इसकी रिपोर्ट अंचलाधिकारी को पहुंचानी पड़ती है।

---

1. तहसीलदार दुबे - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्प विधि का विकास, पृ.170
2. नागार्जुन - दु:खमोचन, पृ.8

इस उपन्यास की घटनाएँ दुखमोचन के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि "दुखमोचन" उपन्यास की कथा दुखमोचन की निस्वार्थ सेवा भाव की कथा है। गाँव में किसी की मृत्यु की बात हो या खेतों और फसलों पर आक्रमण सभी का समाधान दुखमोचन की बुद्धि की उपज ही होती है। टमका कोइली गाँव की अनेक समस्याओं का चित्रण उतारकर एक गाँव की झाँकी मात्र ही नागार्जुन उपस्थित करते हैं।

पात्र चित्रण

दुखमोचन

इस उपन्यास का केन्द्र बिन्दु टमका कोइली न रह कर दुःखमोचन है। निस्वार्थ सेवाभाव और उदात्त भावनाओं से युक्त सुशिक्षित ग्रामीण हैं दुखमोचन। टमका कोइली की सार्वजनिक उन्नति केलिए यह कटिबद्ध है। इस रास्ते पर आयी सारी मुसीबतों को टुकराकर वह आगे बढ़ता है।

उपन्यास का प्रारंभ ही दुखमोचन की परोपकार प्रियता के द्रष्टव्य से होता है। बाढ़ पीड़ितों के सहायार्थ गया दुखमोचन कई दिनों से घर लौटता है। तभी रामसागर की माँ की मृत्यु की खबर सुनकर वहाँ पहुँच जाता है। दाह संस्कार केलिए कहीं से सूखी-लकडी नहीं मिलने से अपने घर में तख्त बनवाने केलिए रखी अच्छी किस्म की लकडी इस भावना से दे देता है कि "निश्चय ही यह लकडी अच्छी किस्म की थी, मगर रामसागर की माँ का अग्निसंस्कार भी होना ही था।"[1]

---

1. नागार्जुन - दुखमोचन, पृ.12

वर्तमान समाज-सेवकों से भिन्न होकर दुखमोचन के चरित्र की सबसे बडी विशेषता है उसकी ईमानदारी । गाँव में फैले चर्मरोग की चिकित्सा केलिए दरभंगा के चर्मरोग विशेषज्ञ से मिलने पर इसकी एक मात्र चिकित्सा गन्धक के तेल, मलहम और टिकिया बताया जाता है । इसी के अनुसार गाँववालों केलिए मेडिकल कालेज और जिला अधिकारियों से तेल, गन्धक के पैकट आदि प्राप्त करने में समर्थ बन जाता है । लेकिन इसमें से एक भी इसी रोग से पीडित अपनी भाभी या भाई केलिए नहीं रखता है ।

बाढ़ के दिनों में क्षुधीपीडित ग्रामीणों की रक्षा केलिए उनके द्वारा गाँव और शहर से गेहूँ जमा कर वितरित किया जाता है । परिवारवालों के अनुपात में वितरित किये जाने पर भी टेकनाथ जैसे लोग उनकी आलोचना करने लगते हैं । इसी अवसर पर दुखमोचन गाँववालों से एक जुट होकर गाँव के उद्धार केलिए कर्मरत होने पर जोर देता है - "भाइयो, इस अनाज को खैरात न समझना और न गुलामी का चारा‍चोगा ही समझना इसको । आगे हम बाँध तैयार करेंगे, पोखरों की मरम्मत करेंगे, कुओं की खुदाई होगी, गाँव की तरक्की के दसों काम होंगे । एक जूट होकर हमें यह सब करना होगा ।"[1]

गाँव में आग लगने पर दुःखमोचन के नेतृत्व में ही सभी लोग पुनर्निर्माण के कार्य में लग जाते हैं । इसी वजह से राजनीतिक पार्टियों और आस-पास के गाँववालों से सहायता की अपीलें भेजने के परिणाम स्वरूप "पास-पडोस के देहातोंने बाँस-काठ-फूस- अनाज और श्रम-शक्ति द्वारा इसका कोइली के दुर्दशाग्रस्त लोगों की खुलकर सहायता की ।"[2] सदियों पुरानी ग्रामीण भूमि के जीवन में आमूल परिवर्तन वह नहीं चाहता । अपनी निवास भूमि से गाँववालों के मन में जो मोह होगा उसे कुचल देना वह नहीं चाहता ।

---

1 नागार्जुन - दुखमोचन - पृ.46

2. वही, पृ.147

इसी कारण से वह सोचने लगता है - "सदियों पुरानी अपनी निवास-भूमि के नक्शे में फेर-फार गाँव को भला कौन बाशिन्दा कबूल करेगा ? नई बस्ती का नया ढाँचा नई ज़मीन पर ही तैयार होगा । यहाँ नव निर्माण नहीं, पुनर्निर्माण कराना है । पुराने नक्शे में मामूली हेर-फेर ही सम्भव होगा ....[1]"

समाज सेवा की उदात्त भावना से युक्त दुःखमोचन में सामाजिक रूढियों और अन्धविश्वासों के विरुद्ध वार करने की हिम्मत भी है । विधवा माया की शादी राजपूत विधुर से करवाकर वह सामाजिक रूढियों की जड़ें हिला देता है । लेकिन इसी वजह से उसे पण्डित के द्वारा छड़ी से मार सहनी पड़ती है । इसके प्रतिशोध स्वरूप वह कहता है - "बस ताऊजी, बाकी यह बचा था ? आपने आखिर आशीष दे ही डाली .... बुज़ुर्गों की दुआ के बिना दुनिया का कोई काम आज तक पूरा नहीं हुआ है बड़ा अच्छा किया है आपने[2] ।" दुखमोचन का प्रतिशोध उसे मानवेतर चरित्रों में ले जाता है । स्वतंत्र्योत्तर भारत में ऐसे चरित्रों का चित्रण अस्वाभाविक सा लगता है । दुखमोचन के पात्र पर नागार्जुन ने जितना ज़ोर दिया है उतना वह व्यक्ति न हो कर वर्ग प्रतिनिधि बन जाता है ।

गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित दुखमोचन चमारों के मुखिया बोधू चौधरी से राष्ट्रीय ध्वजा का आरोहण करवाते हुए कहता है - "भाइयो, मेरी लालसा थी कि कभी बोधू चाचा को राष्ट्रीय पताका उत्तोलित करते हुए देखूँ आप के ही आशीर्वादों का नतीजा है कि मेरी वह लालसा आज पूर्ण हो रही है[3] ।"

1· नागार्जुन - दुखमोचन, पृ·170

2· डॉ· ज्ञान अस्थाना - हिन्दी उपन्यासों में ग्राम समस्याएँ, पृ·219

3· नागार्जुन - दुःखमोचन, पृ·170

इस उपन्यास के द्वारा दुःखमोचन के आदर्शात्मक पात्र की सृष्टि ही नागार्जुन का मुख्य उद्देश्य है । इस पात्र के प्रस्तुतीकरण द्वारा "उपन्यासकार ने बताना चाहा है कि ग्रामों के उद्धार मार्ग में कठिनाइयाँ और विपत्तियाँ तो आती है, किन्तु जो व्यक्ति सत्य और अहिंसा के मार्ग का अवलम्बन कर ग्राम सेवा को ईश्वर सेवा के समान समझेगा वही सफल होगा ।

वैसे "दुःखमोचन" में नागार्जुन की दृष्टि में काफी अन्तर दिखाई देता है । अन्य उपन्यासों में मार्क्सवादी विचारों को प्रस्तुत करनेवाला उपन्यासकार "दुःखमोचन" में आते-आते गाँधीवाद की ओर झुकता हुआ दिखाई पडता है । सेवा धर्म को परम धर्म समझकर अहिंसा, शान्ति और समझौते के रास्ते पर निकल पड़नेवाला दुःखमोचन हमारे सामने एक ऐसे आदर्श मानव को प्रस्तुत करता है जो गाँधीवादी विचारों से रंगा हुआ लगता है । देश के प्रत्येक टम्का कोइली गाँव में यदि एक दुःखमोचन होता तो भारत केलिए दुःख भोगने की नौबत ही नहीं आती ।[1]

मास्टर टेकनाथ

गाँव की भलाई केलिए किए जानेवाले कार्यों पर नुक्ताचीनी करनेवाला है मास्टर टेकनाथ । रूढिग्रस्त समाज का टेकनाथ दुखमोचन द्वारा किये जानेवाले हर कार्य की आलोचना करता हुआ दिखाई पडता है । गाँव गाँव में घूमकर दुखमोचन द्वारा इक्कट्ठे गेहूँ के वितरण पर वह सन्तुष्ट नहीं । उसकी राय वेणीमाधव यों प्रकट करता है - "मास्टर टेकनाथ की राय में ऊँची जातवालों के प्रति हमने अन्याय किया है । अनाज का ज्यादा हिस्सा छोटी जातवालों को मिला है । दूसरा एतराज मास्टर को यह भी है कि आँखें मूँदकर सभी को गेहूँ देना समझदारी का काम नहीं है[2] ।"

1. डॉ. ज्ञान अस्थान - हिन्दी उपन्यासों में ग्राम समस्याएँ, पृ.219

2. नागार्जुन - दुखमोचन, पृ.45

नित्या बाबू को माया और कपिल की शादी के विरुद्ध खड़ा करने का काम टेकनाथ द्वारा ही किया जाता है । रूढ़िग्रस्त गाँववालों को दुखमोचन के खिलाफ इकट्ठा करनेवाले इसी टेकनाथ पर जब गोवध का पाप लगाया जाता है तब वह दुखमोचन का पाँव पकड़ता है ।

इस तरह के अवसरवादियों के कारण ही भारत में अन्धविश्वास और अनाचार आज भी जीवित हैं । समाज की प्रगति में रोड़े लगाना इनकी आदत सी बन गई है । भारतीय गाँव जिस दिन इन अवसरवादियों के हाथ से मुक्त होगा उसी दिन से ही उसकी प्रगति संभव होगी ।

नित्या बाबू

नित्या बाबू ग्रामीण समाज के शोषक का प्रतिनिधि बनकर आता है । नित्या बाबू का चित्रण नागार्जुन यों प्रस्तुत करते हैं - "नित्यबाबू गाँव के सबसे धनी व्यक्ति थे । उम्र पचपन और साठ के अन्दर थी । आधुनिक ढंग का पक्का दुमंजिला मकान पहले उन्होंने तैयार करवाया था । लोगों ने ग्रामोफोन पहले उन्हीं के दालान पर सुना था, पिछले वर्ष से रेडियो भी बज रहा था ।"[1]

बेगुनाहों को गुनाहगार बनाने की चाल उसे खूब मालूम है । दु:खमोचन के साथी रामसागर को गाँजे के केस में फँसाने के पीछे इसी का हाथ है । इसमें रामनाथ और नवल किशोर से सहायता ली जाती है ।

दु:खमोचन की कटु आलोचना करनेवाला नित्याबाबू गाँव में आग लगने पर अपनी सन्दूक की रक्षा केलिए दु:खमोचन से विनती करता है । पश्चाताप भरे स्वर में वह दुखमोचन से कहता है - "मैं तो पुराना पापी हूँ,

---

1. नागार्जुन - दुखमोचन, पृ.3।

रात-दिन तुम्हारा बुरा चाहता रहा हूँ ······[1]।" गाँव के पुनर्निर्माण के समय अपने घर का निर्माण मुफ्त में करवाने की उसकी आशा पूर्ण नहीं हो पाती ।

उच्च वर्ग के नित्याबाबू जैसे लोग गाँव में शोषण के प्रतिमूर्ति है। सूद पर सूद लगाकर निर्धन ग्रामीणों का गला घोटनेवाले ये लोग अपनी कार्य सिद्धि केलिए कोई भी तरीका बिना हिचक चाहर के अपनाने को तैयार रहते हैं यहां तक कि किसी के पाँव पकड़ने में भी उन्हें कोई एतराज नहीं होता

दु:खमोचन का भाई सुखदेव, विधवा विवाह द्वारा सामाजिक रूढियों पर आघात करनेवाला कपिल, समाज के उद्धार में दुखमोचन का साथ देनेवाले मधुकान्त, राम्सागर, वेणी माधव, दु:खमोचन के द्वारा सीमेंट खरीदने की चाह प्रकट करनेवाला पुलकित दास मामी का देवर लीलाधर जिस पर कन्यापाठशाला का भार सौंपा जाता है आदि दु:खमोचन के अन्य पुरुष पात्र है ।

मामी

"दुखमोचन" उपन्यास के स्त्री पात्रों में सबसे आकर्षक और सशक्त पात्र है मामी का । अपना जीवन दूसरों की भलाई केलिए अर्पित करनेवाला यह नारी पात्र भारतीय नारी का सच्चा रूप प्रस्तुत करता है । दु:खमोचन को दुखमोचन बनाने के पीछे मामी का प्रभाव ही कार्य करता है । क्योंकि दोनों एक ही स्तर के दु:ख के भोगी है । "विधवा-जीवन की कठिन और लम्बी तपस्या[2]" लिये हुए हैं मामी का जीवन ।

---

1 नागार्जुन - दु:खमोचन, पृ·13।

2· वही, पृ·16

इसी जीवन से प्रभावित होकर ही दुखमोचन अपनी पत्नी की असामयिक मृत्यु के दुःख को परदुःखों के प्रति अतीव संवेदनशील बनाकर भूल जाता है ।

दुःखमोचन को सही दृष्टि से पहचाननेवाली है मामी । इसलिए टेकनाथ द्वारा दिये गए साबुन और नारियल के तेल को स्वीकारने में वह तैयार नहीं होती । वैसे ही मामी ही केवल ऐसी पात्रा है जिसके आगे दुःखमोचन को झुकना पड़ता है । जब कभी वह दुःखमोचन को उदास पाती है तो उसका हृदय हाहाकार उठता है । उस उदासी को दूर करने का कार्य भी मामी करती है । दुखमोचन के खिलाफ लिखी गयी गुमनाम चिट्ठी से उदास दुखमोचन को सांत्वना देनेवाली मामी का रूप आकर्षक लगता है ।

सभी को अपने स्नेह पाश से बाँधने में मामी चतुर निकलती है । घुमक्कड बनकर गाँव गाँव घूमनेवाले अपने देवर लीलाधर को उसका कोठली में ही रहने केलिए मामी बाध्य करती है । दुःखमोचन ठीक ही कहता है - "मेरा नहीं तुम्हारा ही मधुमय अंकुश लीलाधर को आदमी बना सकता है ।"[1]

बदलती परिस्थितियों का सही ज्ञान रखनेवाली मामी महरियों के द्वारा पानी भरने के काम बन्द करनेवाली बात का समर्थन करती है । कीमतों की बढ़ती देखते हुए मज़दूरी की बढ़ोतरी पर वह ज़ोर देती है ।

परनिन्दा, नुक्ताचीनी आदि स्त्री सुलभ वृत्तियों से मामी का पात्र मुक्त है । माया और कपिल के बारे में झूठी बातें करनेवाली चमकी के विरुद्ध वह फफकार उठती है ।

---

1. नागार्जुन - दुखमोचन, पृ.146

विश्वविख्यात हर एक महान पुरुषों के पीछे एक एक नारी का प्रभाव ज़रूर रहता है । दुखमोचन के सन्दर्भ में भी यह सही लगता है । दुखमोचन को दुखमोचन बनाने के पीछे मामी ही कार्य करती है ।

नागार्जुन ने मामी के माध्यम से एक आदर्श को स्थिर किया है जो विधवाओं केलिए स्वीकार्य बन सकता है । वैसे "दुखमोचन" उपन्यास एक आदर्शात्मक रचना है जिसमें आनेवाला प्रधान पात्र गाँधीवाद का सहारा लेकर सेवा पथ पर अग्रसर हो जाता है । उसी सेवा मार्ग को जन समक्ष प्रस्तुत करनेवाली नारी पात्र है मामी । आदर्श के पुट से लैस होने के कारण कभी कभी हमें यह सन्देह होने लगता है कि मामी की जीवंतता उपन्यासकार की लेखनी के अंकुश के नीचे तिलमिला उठती है । ऐसा लगता है कि मामी के हाथों सिर्फ महान् मूल्यों की ऐसी चाबियाँ रख दी गयी है जिनका उपयोग वह जब चाहे कर लेती है और तिजोरियों को खोलकर नये नये उदाहरण प्रस्तुत करती जाती है ।

माया

विधवा माया की कपिल के साथ दूसरी शादी मुर्झाए हुए जीवन को पुन: जीवन्तता प्रदान करनेवाली घटना है । गाँव के पुनर्निर्माण में अपने पति के साथ वह भी सेवारत दिखाई पड़ती है ।

इस तरह दु:खमोचन के चरित्र को उज्वल करने हेतु उसके ग्रामीण उद्धार {दलित-पतित उद्धार, विधवा पुनर्विवाह} कार्य में सहायता पहुँचाने हेतु निर्मित पात्र अपना कार्य निपुणता से कर सके हैं । इस उपन्यास के सभी पात्र दुखमोचन से किसी-न-किसी तरह संबन्ध रखनेवाले हैं ।

"दु:खमोचन" की पात्र सृष्टि कथानक के अनुसार है । इसमें पात्रों की बहुलता दिखाई पड़ती है । लेकिन कथा की रचना मात्र ही नागार्जुन का लक्ष्य नहीं रहा । अत: अंचल विशेष की वास्तविकता, परिस्थिति उनकी समस्याओं और परस्पर नीतियों के उद्घाटन हेतु सभी प्रकार के पात्रों का चयन एक स्वाभाविक प्रवृत्ति सी लगती है ।

ग्राम चेतना के विविध आयाम

टमका कोइली के ग्रामीण समाज की उन्नति में रुकावटें डालनेवाले विविध पहलुओं पर नागार्जुन प्रकाश डालते हैं । चौधरी - टाइप के लोग स्वार्थ - साधन की अपनी पुरानी लत छोड़ने को तैयार नहीं थे । जात-पांत का टंटा, खानदानी घमण्ड, दौलत की धौंस, अशिक्षा का अन्धकार, लाठी की अकड़, नफरत का नशा, रूढि और परम्परा का बोझ जनता की सामूहिक उन्नति के मार्ग में एक नहीं अनेक रुकावटें थीं[1] । गाँव की जागृत जनता गाँव को प्रगति पथ पर आगे ले जाती है । प्रगति पथ की रुकावटों और बाधाओं को हटाने का कार्य भी वे करते हैं ।

दु:खमोचन के संयुक्त परिवार का चित्रण आकर्षक लगता है । "दुखमोचन की छ: वर्षीय बेटी के अबोध भोलेपन और "मामी" की स्नेह, संवेदना गर्भित नारी सुलभ कोमलता, सेवा और कर्तव्यपरायणता ने उपन्यास को सजीव बनाया है[2] ।"

समाज में दुखमोचन जैसे प्रगतिशील विचारवाले लोगों के कारण विधवा विवाह के प्रति लोगों की गलत फहमी दूर होने लगती है ।

---

1 नागार्जुन - दुखमोचन, पृ॰21-22

2॰ प्रकाश वाजपेयी - हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, पृ॰76

निम्न जाति के लोगों में शोषण के विरुद्ध जागृति का चित्रण करके बदलते सामाजिक सन्दर्भों से लोगों की प्रतिक्रिया दिखाई है। निम्न जाति के लोग पंचायत में यह निर्णय लेते हैं कि "ऊंची जातवालों के यहाँ अब वे अपमानजनक तरीकों से न कोई काम ही करेंगी, न कुछ इनाम इकराम ही लेंगी, जूठन में चाहे अमृत ही क्यों न रह गया हो, उसे कोई नहीं उठाएगा[1]।" यों सामाजिक शोषण के विरुद्ध जागृत जनता ही टमका कोइली में है।

अब तक आर्थिक शोषण की शिकार बनी मजदूरिनें काम ठप्प करके अपना असन्तोष व्यक्त करती हैं। दुःखमोचन की मामी इसके पीछे के आर्थिक पहलू को व्यक्त करती हुई कहती है - "बबुअन, शहर का हाल तो तुम्हें ही मालूम है, मगर देहात में भी अब चीज़-बस्त के दर-भाव खूब ऊँचे चढ़ गए हैं। पुराने जमाने की महरियाँ नहीं हैं ये कि चार-छःआने महिनवारी पर तुम लोगों के तलवे सहलाती रहेंगी नारियल का खुशबूदार तेल और प्लास्टिक की लम्बी कंघी इनके घरों में भी पहुँच चुकी है बबुअन[2]।"

धार्मिक अन्धविश्वासों की चंगुल से टमका कोइली गाँव मुक्त नहीं है। गाँव में जब अग्नि अपना संहार रूप दिखाती है तब चीनी और दही मिलाया चिउडा मामी सुखदेव के हाथ में देती है। सुखदेव उसे "ओं अग्नये स्वाहा[3]" कहकर अग्नि की तरफ फेंक देता है। अग्नि को ईश्वर मानने वाले गाँववाले इस अग्निपात को ईश्वर का कोप ही मानते हैं।

---

1. नागार्जुन - दुखमोचन, पृ.78-79
2. वही, पृ.78
3. वही, पृ.127

टेकनाथ के अपने घर के साथ अपना बैल भी जल कर मर जाता है। बैल के मरने में टेकनाथ का कोई हाथ न रहने पर भी गाँववाले उसे भ्रष्ट कर देते हैं।

अपने घर के कुत्ते के गरदन से पीठ तक के बाल आग से झुलसे देखकर मामी बहुत दुःखी होती है। आँचल फैलाकर वह सूर्य भगवान से यों प्रार्थना करती है - "दुहाई दीनानाथ दिनकर की ! "करिया" की पीठ पर बाल ज़रूर उगा देना दयानिधान। छठ की अरघ के अवसर पर प्रतिवर्ष में आपको इस कुत्ते की तरफ से पकवानों की एक डाली नवेद चढ़ाऊँगी हे सूर्य भगवान[1]।"

गाँव की प्रगति में रुकावटें डालनेवाले अन्धविश्वासों का वर्णन ठीक ढंग से हुआ है।

गाँव में मनाये जानेवाले त्योहारों का उल्लेख उपन्यास में हैं। दुर्गा पूजा के दिनों में गाँव के नौजवान अपने विविध कार्यक्रम चलाते हैं। अगहन शुक्ल पंचमी के दिन जनकपुर-धाम में बड़े उत्साह से "रामजी का ब्याह"[2] मनाया जाता है। इसके अतिरिक्त "तिल संक्रान्ति"[3] छठ[4] और "रामनवमी"[5] का उल्लेख भी है।

राजनीतिक कुचक्रों का बहुत कम उल्लेख ही उपन्यास में मिलता है और राजनीतिक विचारधाराओं से उतना प्रभावित नहीं लगता।

---

1. नागार्जुन - दुःखमोचन, पृ.153
2. वही, पृ.51
3. वही, पृ.63
4. वही, पृ.153
5. वही, पृ.149

इस उपन्यास की आंचलिकता के बारे में विद्वानों के बीच मतभेद है । डॉ॰ कान्तिवर्मा के अनुसार "दुःखमोचन उपन्यास (1956) में गाँव के जीवन का बड़ा सजीव चित्रण हुआ है । वहाँ के रीति-रिवाज़ों से हम भली-भाँति परिचित हो जाते हैं । लेकिन फिर भी इसमें आंचलिकता नहीं आ पाई है जो इनके और उपन्यासों में है ।"[1]

डॉ॰ एस॰एन॰ गणेशन की राय में - "नागार्जुन के कुछ उपन्यास परिवेश के आधार पर तो आंचलिक हैं किन्तु ~~उपन्यास परिवेश के आधार पर तो आंचलिक हैं किन्तु~~ उनमें समस्या प्रधानता मुख्य है, जिनमें "दुखमोचन" भी आया है ।"[2]

एक आदर्श पात्र की सृष्टि के द्वारा एक आदर्श गाँव की स्थापना करने का सफल प्रयत्न नागार्जुन ने किया है । इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य टमका कोइली गाँव का वर्णन करना नहीं रह गया । यह गाँव प्रतीकात्मक है । इसी कारण से दुखमोचन को शुद्ध आंचलिक बनाने में नागार्जुन सफल नहीं बनते हैं ।

आंचलिकता कम होते हुए भी प्रसंगानुकूल यथार्थवादी भाषा के प्रयोग पर नागार्जुन ने ज़ोर दिया है । विकृत शब्दों के साथ ही साथ अंग्रेज़ी और उर्दू के शब्दों के प्रयोग द्वारा भाषा में सहजता लाने में वे सफल निकले हैं । विकृत शब्दों के प्रयोग के उदाहरण "भरस्ट"[3], "नबेद"[4] आदि। अंग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग के उदाहरण - "डिस्टिक्ट बोर्ड", मीटर गेज,[5]

1· डॉ॰ कान्तिवर्मा - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ॰189

2· एस॰एन॰ गणेशन - हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृ॰92

3· नागार्जुन - दुखमोचन, पृ॰99

4· वही, पृ॰153

5· वही, पृ॰ 8

"टेस्ट"[1] आदि। उर्दू शब्दों के प्रयोग के उदाहरण - "हजामत"[2] "वाजिब"[3] "तोहफा"[4] आदि है।

वर्णनात्मक शैली में सृजित इस उपन्यास में कथोपकथन का भी खुलकर वर्णन हुआ है ।

दृश्य बिम्ब के साथ ही ध्वनि बिम्ब, और घ्राण बिम्बों के उदाहरण भी "दुखमोचन" में द्रष्टव्य है । दृश्य बिम्ब के उदाहरण - राम सागर की माँ के दाह संस्कार का दृश्य[5] ।
ध्वनिबिम्ब - पानी बरसने की ध्वनि "टिपटिप टिप.....[6]"
नाचने की ध्वनि - ढब्बर ढब्बर थइया थइया.....[7]"

घ्राण बिम्ब - "टिकिया और मलहम सूँघे, तो उनसे गन्धक की बू भभक उठी ।[8]"

"हरसिंगार की हँसती-खेलती टहनियों ने अपनी ताजा खुशबू से उन्हें मस्त कर दिया ।[9]"

वैसे ही प्रतीक और संकेतों के द्वारा उपन्यास का कलात्मक मूल्य बढ़ाने का कार्य भी नागार्जुन ने किया है ।

---

1. नागार्जुन - दुःखमोचन, पृ.21
2. वही, पृ.30
3. वही, पृ.46
4. वही, पृ.121
5. वही, पृ.11
6. वही, पृ. 7
7. वही, पृ.29-30
8. वही, पृ.26
9. वही, पृ.28

कुम्भीपाक {1960}

पटना एवं बंगाल के परिसर में चलनेवाले नारियों के व्यापार को आधार बनाकर रचा गया उपन्यास है "कुम्भीपाक"। कुम्भीपाक एक नरक है। समाज में व्याप्त नारी व्यापार में पिसनेवाली नारियों का जीवन नरक के जीवन से भी गया गुज़रा है। पटना की एक चाल में रहनेवाले किरायेदार ही इस उपन्यास के पात्र हैं। इसका कथा क्षेत्र ग्रामीण अंचल न होकर शहरी अंचल है। तथापि इसे आंचलिक उपन्यास के रूप में स्वीकार किया जाता है। नारी जीवन को आधार बनाकर लेखक द्वारा रचे गये उपन्यासों में "कुम्भीपाक" अपना अलग स्थान रखता है।

उपन्यास की प्रमुख कथा स्त्री-पुरुषों के बीच अनैतिक सम्बन्धों पर आधारित है। उपन्यास के प्रमुख पात्र भुवन अर्थात् इन्दिरा, चम्पा अर्थात् बुआ, कम्पाउंडर की बीवी अर्थात् निर्मला और अन्य पात्रों के जीवन ही उपन्यास की कथावस्तु है।

इस उपन्यास की प्रमुख कथा इन्दिरा की है। "उम्र है उन्नीस की। जिला मुंगेर की किसी मशहूर बस्ती में पैदा हुई थी, घराना ऊँची नाकवालों का। पन्द्रह की उम्र में शादी हुई। दूल्हा पाइलट था, उसी वर्ष हवाई दुर्घटना में जान गँवा दी। इन्दिरा का फिर वही हाल हुआ, छूटी हुई तबीयत के युवकों और आदर्शहीन अधेडों के बीच एक विधवा तरुणी का जो हाल होता है।"[1] चार महीने का गर्भ होने पर एक रिश्तेदार डाक्टरी इलाज के बहाने से उसे एक धर्मशाला में छोड देता है।

---

1. नागार्जुन - कुम्भीपाक, पृ.58

तब से दो साल तक धर्मशाला में उसके जीवन के बारे में "धरती जानती होगी कि आसमान जानता होगा [1]।" लडकियों और औरतों के व्यापार करनेवाले शर्माजी के चंगुल मे कम्पाउण्डर की बीवी निर्मला, इन्दिरा को मुक्त कराती है और अपने भाई के पास भेज देती हैं।

चम्पा की कहानी और एक है। विवाह के दो वर्ष बाद उसे वैधव्य का अभिशाप ढोना पड़ता है। विवाह के पूर्व ही उसके जीजा ने एक बार उसे अपने बाँहों में समेट लिया था। जीजी की मृत्यू के बाद वह जीजा से शादी का अनुरोध करती हैं। लेकिन माँ को ईश्वर से भी अधिक माननेवाला जीजा उसके इस अनुरोध को ठुकरा देता है। इस तरह अपनी छुती माँग में फिर सिन्दूर डालने[2] का सपना चकनाचूर होने से वह एक मुसलमान नौजवान सफदर के साथ पाकिस्तान भाग जाती है। दो बच्चों के जन्म के बाद भारत आते वक्त सफ्दर की मारपीट से परेशान वह भाग जाती है सतवंत कौर के नाम से होटल चलानेवाली चम्पा तीन सरदारों से सम्बन्ध रखने लगती है। वह अपने साथ तीन बंगाली लड़कियों को भी रख लेती है जिससे उसे जेल जाना पडता है। जेल मुक्त चम्पा औरतों का व्यापार चलानेवाले शर्माजी से मिलती है। वहाँ वह मनोरमा, मन्नो आदि लडकियों को बेच डालती है। इस कुम्भीपाक नरक से मुक्ति हिन्दी टाइपराइटर पर काम चलाकर और गृह - शिल्प कुटीर चलाते हुए वह करती है। वह एक ऐसी दुनिया की कामना करने लगती है "जहाँ के नर-नारी मिल-जुलकर आ बढ़ते हैं', जहाँ कोई किसी की बेबसी का फायदा नहीं उठाता, कोई किसी को चकमा नहीं देता, जहाँ पुरुष बल होगा तो स्त्री बुद्धि होगी, स्त्री शक्ति होगी तो पुरुष ज्ञान[3]।"

1· नागार्जुन - कुम्भीपाक, पृ·58

2· वही, पृ·89

3· वही, पृ·100

कुम्भीपाक नरक की यंत्रणाएँ सहनेवाली और एक पात्रा है उम्मी की माँ । वह अपने पति केलिए मात्र "वंश वर्धक यंत्र"[1] रह जाती है । उम्मी की शादी पिता की इच्छा के खिलाफ महिम से करानेवाली उम्मी की माँ अपनी बेटी के साथ रहने लगती है । उम्मी और महिम के साथ-साथ घूमने से जलनेवाली उम्मी की माँ अपनी अतृप्त वासना की पूर्ति महिम से कर लेती है । महिम से आठ वर्ष बड़ी उम्मी की माँ केलिए वासना की कोई उम्र नहीं रह जाती । एक रात "अतृप्त लालसा की ताण्डव लीला"[2] देखनेवाली उम्मी अपने पति को छोड़कर जाती है । इस घटना के बाद उम्मी की माँ महिम के साथ जीने लगती है । वह सोचने लगती है - "तुम्हारे बिना मैं कैसे जिन्दा रहती ? दुनियाँ जो चाहे कह ले, मैं नहीं छोड़ती तुम्हें ! ना ! सास-दामाद का रिश्ता तो महज़ दिखाने का रिश्ता था हमारा, दरअसल हम पिछले जन्म के पति-पत्नी थे[3] ।" बीमार महिम की जान बचाने केलिए उम्मी की माँ उसे अपने घर जाने देती है ।

न चाहने पर भी बार-बार बच्चों को जन्म देनेवाली है प्रति-भामा, जबकि चाहकर भी कम्पाउडर की पत्नी निर्मला की गोद सूनी रह जाती है ।

उपन्यास का पात्र चित्रण नागार्जुन एक विशेष दृष्टिकोण से करते हैं । समाज में स्त्री सुधार के लक्ष्य से रचित इस उपन्यास की प्रमुख कथा स्त्री पात्रों से ही आगे बढ़ती है । जिन पुरुष पात्रों का उपन्यास में चित्रण हुआ है वह निष्प्रभ सा दीखता है । इस उपन्यास में कई नामों में आनेवाली स्त्रीयाँ सिर्फ "स्त्रियाँ" मात्र है उनका कोई व्यक्तित्व नहीं

---

1. नागार्जुन - कुम्भीपाक, पृ.69
2. वही, पृ.71
3. वही, पृ.

रह जाता । हर स्त्री अपने शरीर से पहचान जाती है । इन पात्रों केलिए सिर्फ एक ही नियति निर्धारित की गयी है - विधवा बनना, वेश्या बनना शरीर का सौदा करना और समाज में कुम्भीपाक की सृष्टि करना । इस कारण पात्रों के व्यक्तित्व का नहीं कार्य का विशेष महत्त्व है । न उनमें अपने व्यक्तित्व के प्रति कोई आस्था है न उनमें अस्मिता की तलाश ।

विविध आयाम

युग युगों से भारतीय नारी का जीवन अनेक विभीषिकाओं को सहने केलिए अभिशप्त है । एक ओर वेदों और पुराणों में स्त्री को पुरुष के समान महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है तो दूसरी ओर यथार्थ के धरातल पर स्त्री का जीवन पारिवारिक जीवन के छोटे से दायरे के अंदर सीमित रह जाता है । आर्थिक दृष्टि से पुरुषों पर आश्रित समाज में नारी का जीवन पशु जैसा बन जाता है । अपनी इच्छा के अनुसार जीवन को रूपायित करने में असमर्थ नारी का जीवन मुर्झा कर सदा केलिए नष्ट हो जाता है । भारतीय समाज में एक कलंक के रूप में सदा अखरनेवाली बात है विधवा नारी का जीवन । उसे न सामाजिक मान्यता प्राप्त होती है न उसे दुबारा अपने जीवन को प्रफुल्लित करने की सुविधा दी जाती है । ऐसी स्थिति में अतृप्त वासना की पूर्ति हेतु वह अन्य मार्गों की खोज में लग जाती है ।

"कुम्भीपाक" उपन्यास में चित्रित समाज में मुख्य रूप से स्त्री-पुरुष के अनैतिक आचरणों का चित्रण है । कहीं स्त्री खरीदी जाती है, तो कहीं वह खुद किसी के पीछे भाग जाती है ।

वासना के आगे रिश्ते नाते महत्वहीन बन जाते हैं । चम्पा अपने जीजा से प्रेम करने लगती है । विधुर जीजा से विधवा चम्पा जब विवाह की प्रार्थना करती है तो वहाँ सामाजिक कट्टरता का सवाल उठ खड़ा होता है । इसी के परिणाम स्वरूप उसे अनैतिक आचरण द्वारा वासना पूर्ति और जीवन-यापन करना पड़ता है । समाज में विधवा नारी के यातनापूर्ण जीवन का और एक उदाहरण है इन्दिरा का जीवन । जब तक विधवा विवाह को मान्यता प्राप्त नहीं होगी तब तक भारतीय समाज में नारी की यही स्थिति कायम रहेगी जो "कुम्भीपाक" समाज की है ।

समाज में स्त्री-कल्याण हेतु स्थापित आश्रमों की आड में चलनेवाले अनैतिक आचरणों का पर्दाफाश किया जाता है । "संजीवनी" जैसे आश्रमों के द्वारा औरतों की बिक्री की जाती है । समाज द्वारा तिरस्कृत औरतों के बारे में आश्रम का स्वार्थी मैनेजर अपनी राय यों व्यक्त करता है - "समाज जिनको वापस लेने केलिए तैयार नहीं होता उन लडकियों केलिए दुनियाँ गेंद का मैदान है, सौ ठोकरों के बाद भी निश्चय नहीं कि गोल पर पहुँच ही जाएँगी[1] ।" समाज द्वारा तिरस्कृत मनोरमा, मन्नो, चम्पा आदि औरतों की जिन्दगी इन आश्रमों के कारण सचमुच मैदान में डाल दिये जाने वाले गेंद की बन जाती है जिसको कोई भी ठोकर मार सकता है ।

सामाजिक स्तर पर इस दु:स्थिति से मुक्ति की राह लेखक यह प्रस्तुत करते हैं कि "...पति की मृत्यु के बाद युवती का ब्याह फिर से करवा देना समाज के चौधरियों का काम है । शिक्षा, चिकित्सा आदि कई विभाग हैं, जिनमें स्त्रियाँ अपनी योग्यता के प्रमाण पेश कर चुकी हैं[2] ।"

---

1. नागार्जुन - कुम्भीपाक, पृ.86
2. वही, पृ.115

उपन्यास में आर्थिक आयाम उतना उभरकर नहीं आया है। फिर भी यह स्पष्ट रूप से झलकता है कि समाज में नारी की विभीषिकाओं का प्रमुख कारण आर्थिक पराधीनता है। समाज में स्त्री सुधार का प्रमुख कार्य लेखक आर्थिक स्वाधीनता ही समझते हैं। चम्पा के द्वारा नागार्जुन अपनी राय यों प्रकट करते हैं "आगे उद्योग-धन्धे बढ़ेंगे, खेती-बाड़ी बढ़ेगी, जहालत और गरीबी हटेगी, साधारण जनता का जीवन सुखमय होगा.. तब स्त्रियाँ भी इस दुर्दशा से छुटकारा पाएँगी।"[1]

राजनीतिक नेताओं पर इस उपन्यास में करारा व्यंग्य कसा जाता है। जानकी बाबू जैसे मंत्री महोदय दूसरों के द्वारा रचित साहित्यिक सृष्टियों को अपने नाम पर प्रकाशित करने लगते हैं। आज के समाज में इस तरह के घिनौने कार्य बिलकुल साधारण से बन गये हैं।

धार्मिक और सांस्कृतिक पहलू इस उपन्यास में उपेक्षित से लगते हैं। उपन्यासकार का लक्ष्य नारी जीवन की विभीषिकाओं को चित्रित करना मात्र रहने के कारण अन्य पहलुओं पर लेखक ने ध्यान नहीं दिया है।

"कुम्भीपाक" में असम्बद्ध घटनाओं को तर्क संगत ढंग से प्रस्तुत करना नागार्जुन जैसे उपन्यासकार की सर्जनात्मक क्षमता का सशक्त उदाहरण है जो इस उपन्यास में परिलक्षित होता है। वैसे इसको आंचलिक उपन्यास इसलिए मान सकते हैं कि इसमें एक वर्ग विशेष पथभ्रष्ट नारियों का समूह अपनी दारुण कथा के साथ अवतीर्ण हुआ है।

---

1. नागार्जुन - कुम्भीपाक, पृ. 116

वर्णनात्मक शैली में सृजित इस उपन्यास में पूर्वदीप्ती शैली के द्वारा पात्रों के गत जीवन पर प्रकाश डाला गया है । कथोपकथन के द्वारा उपन्यास में सजीवता लायी गयी है । शहरी वातावरण पर आधारित होने के कारण उपन्यास में साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया गया है ।

हीरक - जयन्ती (1961)

अपने अन्य उपन्यासों से भिन्न होकर "हीरक-जयन्ती" नागार्जुन की व्यंग्य-प्रधान-कृति है । वर्तमान राजनीतिक नेताओं पर केन्द्रित इस उपन्यास को आंचलिक उपन्यास नहीं माना जा सकता । "यह आंचलिक उपन्यास नहीं है[1] ।"

मंत्री महोदय नरपत नारायण सिंह की इकहत्तरवीं वर्षगांठ हीरक-जयंती के रूप में आयोजित की जाती है । इस घटना पर केन्द्रित उपन्यास में भ्रष्ट राजनीतिक आचरणों के समस्त पहलुओं को उपन्यासकार प्रस्तुत करते हैं । नरपत नारायण सिंह, राम सागर राय, धामीराम और धर्मराज आदि कांग्रेसी नेताओं के द्वारा ही यह चित्रित किया जाता है । अपने आदर्शों और आचरणों से गिर कर स्वार्थलाभ हेतु कार्य करनेवाले बाबू नरपत नारायण का यह कथन ही देखिए - "जिनके जीवन का दीप हमेशा औरों केलिए जलता रहा, ऐसे कार्यकर्ता निर्लिप्त भाव से यदि सार्वजनिक निधि में से सौ-पचास लेते चले तो इसमें बुराई कैसी[2] ?" सार्वजनिक निधी को अपने प्रयोग में लाने की उसकी वृत्ति इससे स्पष्ट हो जाती है ।

---

1. डॉ. ह.के. कडवे - हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति, पृ.149
2. नागार्जुन - हीरक जयन्ती, पृ.117

मंत्री नरपत नारायण जब सार्वजनिक निधि को हड़पता है तो उसका पुत्र नगेन्द्र तस्करी जैसे अवैध धंधों से लाखों कमाता हुआ दिखाई पड़ता है। बीस मन तम्बाकू के पत्तों के बीच पच्चीस मन गांजे के साथ जब नगेन्द्र को पकड़ा जाता है तो मंत्री नरपति सिंह उसे अपने अधिकार द्वारा छुड़वा देता है।

यह नागार्जुन का अटूट विश्वास सा लगता है कि लगभग सभी कांग्रेसी नेता भ्रष्ट हैं। भारत के जन साधारण को झूठे आश्वासन देकर चुनाव जीतना और उसके बाद धन कमाना ही इसका एक मात्र लक्ष्य रह जाता है। लेकिन ये जन सेवक के रूप में अपने को दिखाने का प्रयत्न करते हैं। हीरक जयंती के अवसर पर आयोजित स्वागत समारोह में नरपत नारायण सिंह द्वारा कहे गये शब्दों से यह बात स्पष्ट हो जाती है - "शासन और सत्ता की ज़रा भी लालसा हमारे अंदर नहीं है। हाँ, एक लालसा जरूर है कि जनता जनार्दन की सेवा केलिए अंतिम क्षण तक अपने तन मन का उपयोग कर सकें।[1]" असल में अंतिम क्षण तक ये लोग कुर्सी की चिन्ता से ग्रसित रहते हैं। जब इकहत्तर रुपये की थैली उसे भेंट की जाती है तो नरपत नारायण कहता है "मैं नहीं समझता कि इसकी कोई आवश्यकता थी। मगर मैं इस निधि को अपने लिए आपकी ओर से श्रद्धापूर्ण नैवेद्य समझता हूँ।[2]" दोनों कथनों से उनके चरित्र का विरोधाभास स्पष्ट झलकता है। एक ओर जन साधारण एक वक्त रोटी केलिए तरसते हैं तो दूसरी ओर नेतागण हीरक जयंती समारोह आयोजित करके अपनी धन संपदा को बढ़ाते रहते हैं।

1· नागार्जुन - हीरक जयंती, पृ·129

2· वही, पृ·134

शासकीय मशीनरी को भी ये लोग अपने कब्जे में कर देते हैं। किसी विभाग के डायरेक्टर से मतभेद पैदा होने की शंका होने पर "बाबू जी ने विभागीय सेक्रेटेरीपर ज़ोर डालकर एडिशनल डायरेक्टर का पद कायम करवा दिया और पीछे उस पद पर नगेन्दर का एक सहपाठी बैठाया गया।"[1]

उपन्यास के पात्रों का प्रस्तुतीकरण यथार्थ और स्वाभाविक है। आज के राजनीतिज्ञ नेताओं के सन्दर्भ में भी यह सौ फीसदी सही ही लगता है। यद्यपि यह उपन्यास आंचलिक नहीं है तथापि समसामयिक सच्चाईयों को स्वरबद्ध करने के कारण इस कृति का अपना महत्व है।

---

1. नागार्जुन - हीरक जयंती, पृ.66

उग्रतारा {1963}

जिला रतनपुर के जेलखाने को केन्द्र बनाकर सृजित उपन्यास है "उग्रतारा"। जेल खाने का समूचा चित्रण होने के कारण डॉ. लक्ष्मीकान्त सिन्हा इसे आंचलिक उपन्यास के रूप में स्वीकार करते हैं।[1] जेल के कैदियों का जीवन, जेल क्वार्टर के परिवारों का पारिवारिक जीवन, सिपाहियों का व्यक्तिगत जीवन और उनकी विशिष्ट संस्कृति आदि का चित्रण "उग्रतारा" में है।

कामेश्वर राजपूत नौजवान है। बीस वर्ष की उम्र में उसकी शादी हुई थी और छ: महीने बाद ही वह विधुर हो गया। पत्नी की मृत्यु उसे अपनी पढ़ाई से विमुख कर देती है। उसके बाद चार छ: साल तक कोई लड़की उसका हृदय जीत नहीं सकी। इसी बीच विधवा उगनी, जिसके पति का देहान्त स्टीमर दुर्घटना में हो गया था की ओर कामेश्वर आकर्षित हो जाता है। अपने रूप और यौवन के कारण विधवा उगनी का जीवन दु:सह है। नर्मदेश्वर की प्रगतिशील भाभी दोनों को परस्पर मिलाने का कार्य करती है। सामाजिक रूढ़ियों की परवाह किए बिना दोनों गाँव से भाग जाते हैं। गाँव के परंपरावादी लोग इस घटना को अपनी मूँछों का सवाल" बना लेते हैं जिससे दोनों पकड़े जाते हैं। उगनी को एक महीना सादी कैद और कामेश्वर को नौ महीने की सजा भोगनी पड़ती है। जेल से रिहा होने के बाद आश्रयहीन उगनी पचास साल के कुंआरे भभीखनसिंह की पत्नी बनने को विवश हो जाती है। वैद्यजी की सलाह से भंगवाली बर्फी और पेड़े खिलाकर भभीखन सिंह उगनी से शारीरिक संबन्ध स्थापित करता है जिसके परिणाम स्वरूप उसे गर्भ रह जाता है। जेल मुक्त कामेश्वर

---

1. डॉ. लक्ष्मीकान्त सिन्हा - हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्भव और विकास, पृ.311

फेरीवाले के रूप में उगनी को ढूँढ लेता है और उसे भगाकर ले जाता है ।

प्रगतिशील कामेश्वर गर्भवती उगनी के सीमन्त में सिन्दूर भर देता है । बाद में उगनी भभीखन सिंह को पत्र लिखकर आश्वासन देती है कि बच्चे के जन्म के बाद उसे पाल पोसकर अपने पिता से मिलने को भेज देगी ।

इस उपन्यास का केन्द्र बिन्दु विधवा विवाह या अनमेल विवाह नहीं है । इसका केन्द्र बिन्दु नर्मदेश्वर की भाभी यों व्यक्त करती है - "स्त्री-पुरुषों में समान रूप से समझदारी पैदा होगी और मनोरंजन के कई और साधन निकल आएँगे तभी व्यभिचार घटेगा । देहात में खाते-पीते परिवारों के अधेड़, भारी मुसीबत पैदा करते हैं । उगनी जैसी लड़कियों केलिए ज्यादा संकट उन्हीं की तरफ से आता है । दूसरा संकट है डरपोक नौजवानों की छिछली सहानुभूति ।[1]" पराये गर्भ को ढोनेवाली अपनी प्रेमिका को स्वीकारने का महान कार्यकर कामेश्वर युवा पीढ़ी में जागृत चेतना का परिचय देता है ।

अपने अन्य उपन्यासों से भिन्न होकर नागार्जुन आदर्शवादी दृष्टिकोण को ही "उग्रतारा" में अपनाते हैं । जेल में एक विकट समस्या का रूप धारण करनेवाला उगनी का जीवन नागार्जुन के हाथों में उलट पलटकर एक नई करवट बदलने लगता है ।

पात्र चित्रण

उगनी

"उग्रतारा" उपन्यास का प्रमुख पात्र है "उगनी" अथवा "उग्रतारा" । अल्पायु में ही वैधव्य का बोझ ढोने को विवश इस अभागिन नारी का जीवन अपने सौन्दर्य और आयु के कारण और भी नारकीय बन

---

1. नागार्जुन - उग्रतारा, पृ.36

जाता है । कामेश्वर की जीवन संगिनी बनने की इच्छा से वह उसके साथ भाग जाती है । दुर्भाग्य से पकड़े जानेवाली उगनी को एक महीने की सादी कैद भोगनी पड़ती है । जेल से रिहा लेकर उगनी "किसी बदरुद्दीन या फखरुद्दीन का बिस्तर गरमाने"[1] से बेहत्तर सोचकर पचास साल के कुंआरे सिपाही भभीखनसिंह की पत्नी बनने को विवश हो जाती है । लेकिन शादी के बाद महीनों तक वह भभीखनसिंह के काबू में नहीं आती । भंगवाली बर्फी और पेड़े से बेहोश बनी उगनी पर भभीखन द्वारा किये गये बलात्कार परिणाम स्वरूप वह गर्भवती बन जाती है ।

परिस्थितियों के अनुरूप अपने को "एडजस्ट" करनेवाली उगनी भभीखनसिंह की इच्छा के अनुसार घर का कार्य संभालती है । उसे भभीखन में ज़रूर एक घरवाला मिलता है लेकिन पति नहीं । अपनी ओर से वह कभी भी भभीखन से कुछ बोलती बतियाती नहीं । उसकी आदत पड़ जाती है - "बटन दबाओ तभी मशीन के अन्दर हरकत पैदा होती है । उगनी भी तभी जुबान खोलती है जब उससे कुछ पूछो । जनाना न हुई, मशीन हुई ।"[2] स्वयं सिपाही ही अनुभव करता है कि उसके हृदय के अनेक फाटकों में केवल एक दो फाटक ही अपने लिए खुले हैं बाकी अभी भी बन्द है ।

जब कामेश्वर फेरीवाले के रूप में उगनी का पता लगाने केलिए जेल क्वार्टर में आ जाता है तो वह उसे पहचान लेती है । नज़दीक के हनुमानजी के मन्दिर में वे एक दूसरे से मिलते रहते हैं । नये जीवन के सामने पूर्ण रूप से आत्मसमर्पित उगनी के अंदर कामेश्वर से मिलने में कुछ अपराध की भावना रहती है । धीरे धीरे यह भाव उसके मन से निकल जाता है । अपने मन की अपूर्ण आशा (कामेश्वर से शादी करने की) वह भभीखनसिंह के घर से कामेश्वर के साथ भाग कर पूर्ण कर लेती है ।

---

1. नागार्जुन - उग्रतारा, पृ.43
2. वही, पृ.50

उगनी के जीवन में चिरकाल तक याद रहनेवाली है नर्मदेश्वर की भाभी। भाभी की याद मात्र से ही उसकी आँखें भर आती हैं और वह दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करने लगती है। "ककहरा भी मुश्किल से पहचानने वाली" उगनी को भाभी लिखने पढ़ने की शिक्षा देती है।

भभीखनसिंह से अपना कोई गहरा संबन्ध स्थापित नहीं कर पाने पर भी उगनी के भीतर ही भीतर एक कृतज्ञता भाव अवश्य है। इसी कारण वह सोचती है - "भभीखन सिंह की घरवाली न बनी होती तो कामेश्वर किसको लेने आते ? यह विकल्प कबूल न किया होता तो ढाका या लाहौर पहुँच गयी होती, किसी बदरूद्दीन या फखरूद्दीन का बिस्तर गरमाती होती। फिर तुम या कामेश्वर सर पटक के रह जाते, उगनी का पता न चलता। ।"[2] कामेश्वर के साथ भाग जाने के पश्चात् भभीखनसिंह को पत्र लिखकर बच्चे के जनम के बाद उसे पाल पोसकर उन्हें सुपुर्द करने का आश्वासन देने के पीछे भी उसका यही भाव कार्य करता है।

भभीखन सिंह की ओर उगनी का द्वेष एक सीमा तक ठीक लगता है। आश्रयहीन उगनी भभीखन से शादी करने की अपनी विवशता को स्वीकार करती है लेकिन उससे कोई संबन्ध स्थापित करना वह पसन्द नहीं करती और शादी के सही अर्थ को भी वह मानने केलिए तैयार नहीं होती। उस केलिए तो वह एक विवशता का बन्धन मात्र रह जाता है जिसे तोड़कर स्वतंत्र होने की छटपटाहट हर क्षण वह महसूस करती है। कामेश्वर को प्राप्त कर उस बंधन से मुक्त हो जाती है और अपनी माँग को "असली सिन्दूर" से रंग लेती है।

---

1. नागार्जुन - उग्रतारा, पृ.37
2. वही, पृ.43

इस उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक एक उज्वल तारे के समान प्रकाशित व्यक्तित्व है उग्रतारा का । एक सीमा तक यह तारा उग्र नहीं, जितना इस नाम से प्रतीत होता है । अवश्य ही अपनी परिस्थितियों से टक्कर लेने की क्षमता उसमें है और जीवन का हर कदम वह साहस बटोरकर रखती है । जितने साहस और आत्मविश्वास से वह कामेश्वर के साथ जीने केलिए भागती है उसी भाव से वह भभीखन के आश्रय में आठ महीने तक जीती है । अन्धकारमय जीवन में फिर से आशा की किरण के समान आये कामेश्वर के साथ हिम्मत से भागनेवाली उगनी का चरित्र एक हद तक विद्रोही है ।

नर्मदेश्वर की भाभी

समाज में नारी के प्रति होनेवाले अत्याचारों के खिलाफ आवाज़ उठानेवाली प्रगतिशील महिला है नर्मदेश्वर की भाभी । मेट्रिक तक पढ़ी भाभी राजनीतिक पार्टी के कार्यकर्ता चाचा से बहुत प्रभावित है । युवा पीढ़ी में नये उद्गार लाने केलिए वह साफ-साफ कह देती है - "सुन्दरपुर - मढ़िया के नौजवान गोबर हैं, ऐसा गोबर जिसपर उंगलियाँ रखो तो काठ बनेंगे, कंडे नहीं[1] ।"

समाज में पुरुष के तुल्य नारी का स्थान चाहनेवाली भाभी समाज में प्रचलित नारी शोषण को फटकारती है और उसका एक मात्र समाधान स्त्री-पुरुष की समझदारी एवं मनोरंजन के कई साधनों की प्राप्ति से संभव समझती है । ग्रामीण समाज के धनिक अधेड़ पुरुषों को ही वह व्यभिचार का मूल हेतु मानती है ।

1· नागार्जुन - उग्रतारा, पृ·36

अशिक्षित ग्रामीण स्त्रीयों को शिक्षा की नई दीप्ती से उजाले में लाने का कार्य भी भाभी करती है । समाज की जर्जर रूढियों को ठुकरानेवाली "स्वप्नदर्शी, भावुक किशोर मन को संकल्पशील, दृढ युवक-मन में बदल" देनेवाली भाभी कभी भी अपने आदर्शों को दूसरों पर थोपती नहीं । इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है - वह कभी भी कामेश्वर से उगनी को ब्याहने की बात नहीं करती ।[1]

भाभी का चरित्र सामाजिक रूढियों और नारी शोषण के विरुद्ध जागृत नारी का रूप उभारता है । समाज में धनिक लोगों के द्वारा किये जानेवाले काले करतूतों की ओर नई पीढ़ी का ध्यान आकर्षित करके उन्हें नये रास्ते पर ले जाने का महान कार्य भाभी करती है ।

कामेश्वर

बीस वर्ष की आयु में शादी करके छः महीने पश्चात् विधुर बना राजपूत नौजवान है कामेश्वर । पत्नी की मृत्यु के बाद पढ़ाई में भी मन्दु पडा कामेश्वर अपने को "परिवार के बूढ़ों का बोझा उठाने लायक"[2] बनाने का संकल्प लेता है ।

पत्नी की मृत्यु के बाद कोई भी लडकी उसका हृदय जीत नहीं सकी । इसी समय सामाजिक अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष करने का नर्मदेश्वर की भाभी का आह्वान उसे जागृत कर देता है । विधवा उगनी की ओर वह आकर्षित हो जाता है । सामाजिक रूढियों में उलझी ग्रामीण जनता की आँखों में धूल फेंककर नव यौवना विधवा उगनी को अपनी पत्नी बनाने हेतु

1· नागार्जुन - उग्रतारा, पृ·38

2· वही, पृ·34

वह भगाकर ले जाता है । इसी अपराध मे पकडे जानेवाले कामेश्वर को नौ महीने की सजा भोगनी पड़ती है ।

जेल मुक्त कामेश्वर अपनी प्रेमिका का पता लगाने हेतु फेरीवाले का नाटक खेलता है । उगनी के प्रति अपने अदम्य प्रेम से प्रेरित होकर वह उसे भभीखनसिंह के घर से भगाकर ले जाता है और उसके सीमन्त में सिन्दूर भर देता है ।

कामेश्वर का चरित्र आदर्शात्मक है । एक सीमा तक यह आदर्शपरता अविश्वसनीय भी लगती है । पराये गर्भ को स्वीकारने का कामेश्वर का कार्य कुछ अखरता है । निन्यानब्बे पुरुष जिनके मन में प्रेम की अजस्र धारा ही क्यों न हो, अपनी प्रेमिका को एक पराये पुरुष द्वारा गर्भवती जानकर उसे अपनाने में कभी भी तैयार नहीं होंगे । स्त्री और पुरुष के चरित्रों का यह अंतर है कि जब स्त्री अपने पुरुष द्वारा किये गये सौ-सौ अपराधों को अनदेखा करती है तब पुरुष अपनी पत्नी के एक अपराध को भी क्षम्य नहीं मान सकता । इसी बिन्दु पर कामेश्वर का आदर्शवाद उस पर थोपा गया सा लगता है ।

भभीखन सिंह

जेल के सिपाहियों का प्रतिनिधि पात्र है भभीखन सिंह । जिला रतनपुर के जेल खाने का पचास साल का यह कुआरा सिपाही महिला कैदी वार्डर से ही उगनी की जानकारी प्राप्त करता है । इसी की प्रेरणा से ही वह उगनी को ब्याहता है । महीनों तक काबू में नहीं आनेवाली उगनी पर सात्विक और धर्माचरणों पर आस्था रखनेवाला भभीखन सिंह जेल के बुरे प्रभाव और वैद्यजी की सलाह से भावाली बर्फी और पेडे खिलाकर "बलात्कार" करता है ।

अपनी पत्नी के मुँह से एक शब्द सुनने को वह तरसता है। घर में हँसी-मज़ाक का एक माहौल ही उसके सपने में है। उसे इस की जानकारी है कि उगनी उससे मीलों दूर है। इन सब के बावजूद सिपाही के मन में आशा की किरण है। बच्चे के पैदा होने के पश्चात् उगनी में परिवर्तन का सपना वह देखने लगता है। लेकिन उसके सारे सपनों को चकनाचूर करके उगनी कामेश्वर के साथ भाग जाती है।

सिपाहियों की कर्कशता और गांभीर्य से युक्त है भभीखनसिंह का चरित्र। अपनी अतृप्त वासना की पूर्ति हेतु वह केवल एक बार ही उगनी पर हमला करता है। उसके बाद केवल पत्नी के बाहरी सौन्दर्य को देखकर ही वह तृप्त हो जाता है।

भांग पिलाकर अपनी वासना को तृप्त करनेवाले भभीखन को कभी भी दोषी नहीं कह सकते। पचास वर्ष तक कुंआरा रहा यह सिपाही आश्रयहीन उगनी को वैदिक विधि से ही पत्नी बनाता है। उसी से अपनी संतान परंपरा की आशा अगर वह करता है तो उसे हम बुरा नहीं कह सकते। किसी भी तरह न माननेवाली उगनी को अपने वश में करने का एक मात्र रास्ता वह भांग ही देखता है।

अन्य पात्र

तिवारी की बीवी गाँव में रहनेवाली अशिक्षित और उद्दण्ड नारी का प्रतीक है। बिना सोचे समझे सभी की निन्दा करनेवाली यह औरत उगनी के सम्बन्ध में कहती है - "सचमुच उसे रंडी ही होना था। ऊपर से बड़ी भोली बनती है, लेकिन अन्दर डूबकर पानी पीनेवाले भगतिन

लगती है मुझे तो । यह टिकेगी नहीं, भाग खड़ी होगी । भभीखन सिंह सर पीटते रहेंगे ।"[1]

तिवारी की बेटी गीता उगनी के भभीखनसिंह के साथ नीरस जीवन में एक मात्र सहारा है । भावुक और सात्विक गीता का चरित्र टाइप बन जाता है । इन पात्रों के अतिरिक्त जनाना वार्ड की वार्डर, उगनी की माँ, जिन्दगी भर पारिवारिक स्नेह से वंचित हनुमानजी के मन्दिर का पुजारी, जेल का छोटा बाबू, नर्मदेश्वर आदि पात्र भी कथा तन्तु को बुनने में सहायक सिद्ध होते हैं ।

इस उपन्यास का प्रमुख पहलू समाज में नारी शोषण का है इसलिए ग्रामीण जीवन के विविध आयामों पर प्रकाश डालने का मौका ही नागार्जुन को नहीं मिला है ।

समाज में विधवा नारी का जीवन दुस्सह हो जाता है । मढ़िया-सुन्दरपुर के गुण्डों के द्वारा मुँह के अन्दर कपड़े ठूँसकर बलात्कार का अनुभव उगनी को है । अशिक्षा और अन्धविश्वास में बुरी तरह जकड़े समाज की लड़की के जीवन के बारे में उगनी यों सोचती है - "लड़की न हो तो अच्छा । लड़की होगी तो अपनी माँ की सारी मुसीबतें लेकर डोलती फिरेगी । इसी तरह अंधेरी रात में उस पर भी गाँव के भले आदमी अपनी आशीष छिड़केंगे ।"[2] अशिक्षित स्त्रीयों में आत्मसत्ता-हेतु संघर्ष के स्वर नहीं है । ऐसी ग्रामीण स्त्रियों में नया उद्गार लाने हेतु नर्मदेश्वर की भाभी जैसी महिलाएँ कर्मरत रहती हैं । जब तक स्त्री और पुरुष को समान अधिकार प्राप्त नहीं होगा तब तक समाज में नारी का जीवन दुःख की गाथा ही रह जाएगी ।

---

1. नागार्जुन - उग्रतारा, पृ.72-73
2. वही, पृ.41

जाति-पाँति की संकीर्णता में जकड़े हुए ग्रामीण जीवन की स्थिति का परिचय "बापू राष्ट्रीय भोजनालय" के माध्यम से नागार्जुन प्रस्तुत करते हैं। उस भोजनालय के साइन बोर्ड पर लिखा है - केवल हिन्दुओं केलिए।

बदलते हुए परिवेश में गाँव में नैतिकता टूट रही है और गुण्डा गर्दी बढ़ रही है। इसका उदाहरण स्वयं उग्रतारा के मुँह से लेखक प्रस्तुत करते हैं - "देहात में रहना हो तो गुंडा बनो कामेश्वर। गुंडों से दोस्ती करो, उन्हें खिलाओ-पिलाओ। तुम उनका काम करो, वे भी तुम्हारा काम करेंगे।"[1]

गाँव की रीति-रिवाज़ और अन्धविश्वास के सम्बन्ध में सीमित वर्णन ही उपन्यासकार ने किया है। उगनी के साथ शादी करनेवाले सिपाही के आचरणों से ही इसकी झलक मिलती है। "बलात्कार" के पश्चात् कुछ खाये-पिये बिना दो दिनों केलिए रोती रही उगनी केलिए भभीखन सिंह तरह तरह की पूजाएँ करवाता है। "जजमानिन के ग्रहों की शान्ति केलिए रामायण का "नवाह पाठ" और आसिन की "नवरात्र" में दसों दिन चंडी का पारायण करवाता है। हवन के अंत में भभीखन और उसकी घरवाली मिलकर अग्निकुण्ड में पूर्णाहूति देते हैं।

जेल का शासक वर्ग पैसेवालों के हाथों में नाचनेवाला है। पोस्ट आफिस से बहुत बड़ी रकम गबन करके जेल भोगने केलिए आये बाबू को सारी सुख-सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। यहाँ तक कि पति-पत्नी मिलन की सुविधा भी जेल के भीतर ही उसे प्राप्त होती है।

---

1. नागार्जुन - उग्रतारा, पृ. 104

पूर्ण रूप से किसी न किसी पहलू का चित्रण इस उपन्यास में विकास उभर कर नहीं आया है । किसी गाँव विशेष का समूचा चित्रण करना नागार्जुन का लक्ष्य नहीं रहा । उगनी के चरित्र द्वारा समाज में विधवा नारी के जीवन का चित्रण करना और कामेश्वर के चित्रण द्वारा एक आदर्श की स्थापना करना ही उनका लक्ष्य रहा है । जेल के वातावरण में समूची कहानी को घटते हुए दिखाकर थोड़ी बहुत नवीनता का विधान उपन्यासकार ने किया है । लेकिन जेल जीवन की गहराईयों में प्रवेश करके वहाँ के जीवन की बारीकियों को नहीं खोज निकाला है । इसलिए एक अंचल विशेष का स्थान तो हम जेल को पूर्णतया नहीं दे पा रहे हैं । क्योंकि आँचलिकता में जिन बारीकियों का विधान होना चाहिए उनका तो अभाव जेल के चित्रण में दिखाई पड़ता है ।

चरित्र एवं उपन्यास की असफलताएँ

"उग्रतारा" को नागार्जुन का एक श्रेष्ठ उपन्यास नहीं माना जा सकता । कथा की दुर्बलता, स्थितियों की अविश्वसनीयता और चरित्र-चित्रण की कमज़ोरियाँ उपन्यासकार का पीछा करती हुई लगती हैं । ऐसा लगता है कि अपनी लक्ष्य प्राप्ति के लिए उपन्यासकार विवेक और तार्किकता को तिलांजलि देकर रचना में संलग्न हो गये थे ।

सबसे पहले कथा तंतु की दुर्बल स्थितियों को उसकी सहायता करनेवाली भाभी भी तो है । इन दोनों के होते हुए यदि उग्रतारा में वही व्यक्तित्व होता (जैसे उपन्यासकार दावा करते हैं) तो वह आदर्शवादी कामेश्वर के साथ शादी करके जीवन बिता लेगी । (ऐसी स्थिति में उपन्यास कैसे बनता ।) यह कहानी घटने के लिए उपन्यासकार ने उसे भगाया है ।

पुलिस से पकड़वाया है । जेल में बंद करवाया है । इतना ही नहीं उगनी की शादी जेल के सिपाही बनकर पचास वर्ष तक "सात्विक जीवन" बिताने वाले सिपाही से करवायी । लगता है इस सात्विक सिपाही को गाँव की ओर कोई लड़की नहीं मिली और उगनी के इन्तज़ार में वह पचास वर्ष तक कुंआरा रहा । फिर जब सिपाही द्वारा शादी का प्रस्ताव रखा जाता है तब तक "उग्रतारा" उगनी का विरोध करना या अपने विचारों का प्रकट करना तक न हो पाया । ‡ऐसी कोई स्थिति का विवरण उपन्यास में नहीं है‡ । वैसे उग्रतारा तो अपनी माँ के पास लौट सकती थी और अपने गाँव में जी सकती थी । यह भी नहीं, शादी के बाद सिपाहीजी की सात्विकता कई दिन के इंतज़ार के बाद टूट जाती है और अधार्मिक और असात्विक ढंग से भांग पिलाकर पत्नी से शारीरिक संबन्ध जोड़ना पता नहीं कहाँ तक संभव है । एक बार संबन्ध जोडने के बाद वह गर्भवती बन जाती है और फिर उसकी बाहरी सौन्दर्य मात्र से सिपाही तृप्त रह जाता है मानों उपन्यासकार ने उगनी को गर्भवती बनाने केलिए इस पात्र की सृष्टि की है और इस काम के हो जाने के बाद फिर वह "सात्विक" हो जाता है । अब उपन्यास का अंत करवाने केलिए कामेश्वर को फिर से फेरीवाला बनाना और उगनी से मिलाना सब ऐसी अस्वाभाविक घटनाएँ लगती है जो गले से उतर नहीं पाती । अब फिर एक वैध समस्या खड़ी होती है कि विधिवत् विवाहित उगनी को अगर भगा ले जाता है तो पुलिस का सिपाही पति क्या हाथों में हाथ धरकर बैठा रहेगा ? पहले भी तो भगाने के आरोप में कामेश्वर पकड़ा जा चुका था ।

इन सवालों का कोई जवाब नहीं मिल पाता । उपन्यासकार अपनी इच्छा के अनुसार लगता है कुछ लिखे गये हैं जो बे सिर-पैर का निकला है । "उग्रतारा" को घटनाओं के सांकेतिक और तार्किक दृष्टि से एक सफल उपन्यास कहना कठिन है ।

इस उपन्यास का लक्ष्य पात्र चित्रण की सफलता या घटनाओं की सार्थकता नहीं है अपितु एक आदर्शात्मक परिवर्तन का चित्रण मात्र है । जो कथा की दुर्बलता एवं पात्रों की असफलता के कारण हास्यास्पद बन गया है । स्थितियों को समझाने में और उन्हें पूरक बनाने में उपन्यासकार का ध्यान नहीं गया है और इस कारण उपन्यास में बिखराव भी आ गया है ।

वर्णनात्मक शैली में लिखे "उग्रतारा" में पूर्वदीप्ती और चेतनाप्रवाह के अतिरिक्त स्वप्निल शैली का प्रयोग भी किया गया है । पूर्वदीप्ती शैली के सहारे कामेश्वर और उगनी के गाँव से भागने तत्पश्चात् गिरफ्तार किये जाने[1] एवं उगनी की पहली शादी की कथा[2] चित्रित है ।

अंग्रेजी शब्द जैसे "क्वारटर"[3], "चलैंज"[4], "पब्लिक"[5], "ग्राउण्ड"[0] आदि के साथ "रिहायशी"[6], "शिगूफा"[7], "इत्मीनान"[8], "जुर्माना"[9], "इन्सार्स"[10] आदि उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी किया गया है ।

उपन्यास में जहाँ-तहाँ प्रतीक, संकेत और बिम्ब योजनाओं का अंकन भी हुआ है ।

1· नागार्जुन - उग्रतारा, पृ·103
2· वही, पृ·108
3· वही, पृ·1
4· वही, पृ·35
5· वही, पृ·82
0· वही, पृ·83
6· वही,पृ·39
7· वही,पृ·51
8· वही,पृ·54
9· वही,पृ·57
10· वही,पृ·97

इमरतिया [1968]

धर्म के नाम पर मठों और मन्दिरों में व्याप्त भ्रष्टाचार का चित्रण अनेक उपन्यासों में जहाँ-तहाँ मिलता है, लेकिन इस विषय के आधार पर सृजित पहला उपन्यास है - "इमरतिया"। उग्रतारा" के समान इस उपन्यास में भी किसी अंचल विशेष का समूचा चित्रण नहीं है। नारायणी नदी के किनारे स्थित जमनिया मठ में प्रचलित भ्रष्टाचार ही इस रचना का केन्द्र है।

जमनिया मठ का इतिहास नागार्जुन यों प्रस्तुत करते हैं - "जमनिया का मठ कोई परम्परागत प्रामाणिक मठ नहीं है। आज से दस-बारह वर्ष पहले वहाँ कुछ नहीं था, वीरान था। ज़मींदारी-ताल्लुकदारी प्रथा के उन्मूलन का कानून पास हुआ तो जमनिया और लखनौली के दो-तीन भू-स्वामियों ने ज्यादा ज़मीन हड़पने केलिए रातों-रात "ज़मनिया मठ" की स्थापना कर डाली। नारायणी नदी जहाँ नेपाल की तराई से नीचे उतरती है वहीं उत्तर प्रदेश और बिहार प्रान्त भी आपस में मिलते हैं, उस कछार भूमि से वे एक जटाधारी औघड़ बाबा को लिवा ले आए। ज़मीन्दारों ने उसी विचित्र व्यक्ति को अपने मठ का महन्त घोषित किया।"[1] इस उपन्यास के मुख्य चार पात्र हैं - भाई इमरतीदास, जमनिया का बाबा, साधु मस्तराम और ज़मीन्दार भगौती प्रसाद। इन चार पात्रों के आत्म-सम्भाषणों द्वारा मठ से सम्बन्धित सारी बातें स्पष्ट होने लगती हैं।

---

1. नागार्जुन - इमरतिया, पृ.88

छोटी छोटी अनेक घटनाओं का गूँथा हुआ रूप है "इमरतिया" । भ्रष्टाचार के अड्डे जमनिया मठ के बाबा की सिद्धई-वृद्धि केलिए दुर्गाष्टमी के दिन साधुआइन लक्ष्मी के बच्चे की बलि दी जाती है और इसी दुःख को सह न सकनेवाली लक्ष्मी पागल हो जाती है और शंकास्पद परिस्थितियों में उसकी मृत्यु हो जाती है । पुलिस केस होने पर गौरी नामक साधुआइन को बाबा के परम भक्त भागौती के साथ थानेदार तक पहुँचाया जाता है । गौरी वहाँ चार दिन रहकर थानेदार की "सेवा" शुश्रूषा करती है जिससे केस का रेकार्ड ही बदल जाता है ।

एक दिन अभयानन्द नामक एक शिक्षित एवं समाज सेवी साधु मठ में आ जाता है । मस्तराम के द्वारा कई बार "महन्ती दरबार कीजय" बोलने पर ज़ोर देने से भी वह इसका अनुकरण नहीं करता । जिसकी सजा के रूप में मस्तराम बुरी तरह उसे पीटता है । अभयानन्द की शिकायत पर बाबा, मस्तराम और साई इमरतीदास पुलिस द्वारा पकड़े जाते हैं । इमरतिया का छुटकारा जमानत पर हो जाता है । पारसी हाकिम की आज्ञा से बाबा की जादुई जटाओं को उतार दिया जाता है । जेल के पुलिस अधिकारी भी बाबा से प्रभावित हो जाते हैं । जिससे बाबा केलिए गाँजा, चरस आदि का प्रबन्ध बिना किसी रुकावट से किया जाता है । बड़े जमादार अपनी पतोहू पर सवार भूत को भगाने केलिए बाबा से प्रार्थना करता है ।

जेल में सारी सुविधाएँ प्राप्त बाबा एवं जमनिया मठ के बारे में फैली हुई जनश्रुतियों को एकत्र करने में संवाददाता लगे रहते हैं । जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जमनिया का बाबा असल में करीम बख्श नामक मुसलमान है । जवान करीमबख्श अपने गम्भीर अपराध की सजा से बचने केलिए नेपाल भागा था और वहाँ भी अपने कुकृत्यों केलिए उसे बहुत मार पीट

---

1. इमरतिया-नागार्जुन, पृ.28

खानी पड़ी थी । वही करीमबख्श "बाबा" बनकर लोगों को धोखा दे रहा है । इस समाचार के फैलते ही बाबा के समर्थक लाला प्रसाद, राम जनम, सुखदेव, सेठ विशंचन्द, ठाकुर शिवपूजन सिंह, शिवनगर की रानी आदि मठ से अपना सम्बन्ध ठुकरा देते हैं । जेल में बाबा की सुख सुविधाएँ कम होने लगती है । भक्त बनकर बाबाके पीछे पड़े जेल के सिपाहियों और अधिकारियों के मन में अब बाबा केलिए कोई श्रद्धा नहीं रह जाती । वैभव मे रहनेवाले बाबा को एक ग्लास छाछ भी अप्राप्य लगने लगती है और उसकेलिए वह मिन्नतें करने तक की सोच लेता है । मस्तराम काल्पनिक दुनिया से मुक्त हो जाता है । इमरतीदास जेल में मस्तराम से मिलती है । मस्तराम के साथ अपना जीवन बिताने की प्रतीक्षा करनेवाली इमरतिया मस्तराम की सजा काट चुकने के बाद हरद्वार में मिलने की सूचना देती है । यहाँ आकर उपन्यास की समाप्ति हो जाती है ।

पात्र चित्रण

माई इमरतीदास

भाई इमरतीदास का चित्रण स्त्री के अनाकर्षक स्वरूप का चित्रण उतारनेवाला है । जमनिया मठ के साधु मस्तराम को मन ही मन प्रेम करनेवाली यह मधुआइन बाबा, भगौती आदि काम पिपासु लोगों की नज़रों पर चढ़ी हुई है । वासना पीड़ित इमरतिया यहाँ तक कि रसोइया महाराज की जाँघ देखकर रात देर तक सो भी नहीं सकती । वासना के साथ ही भांग, चरस, अफीम आदि का भी वह शिकार है ।
वह सोचती है "बिना भांग के माथा नहीं फट जाएगा ? चरस ने क्या कसूर किया है ? उसे क्यों छोड़ देगी ? गांजे की लपट जितनी ऊंची उठेगी, ज्ञान का इस्पाती लोहा उतना ही लाल होगा ।

किसी ने कोई कसूर नहीं किया है । यहाँ सब का स्वागत है ।

अफीम और मार्फिया का भी ?

मठ के नारकीय जीवन से मुक्ति चाहनेवाली इमरतिया मस्तराम के साथ अपना बाकी जीवन बिताने का निश्चय करती है ।

मठ और महंतों के पीछे पागल बनकर जानेवाली स्त्री की स्थिति अंततोगत्वा इमरतिया की तरह ही हो जाती है ।

इस उपन्यास के नारी पात्रों में केवल इमरतिया का चित्रण ही प्रमुख है । वह भी ठीक तरह उभर कर नहीं आता । इसके अतिरिक्त लक्ष्मी, जिसके बच्चे की बलि महाष्टमी के दिन दी जाती है, इस उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पात्र है । बच्चे की हत्या से पागल बनी लक्ष्मी शंकास्पद स्थितियों में मर जाती है । अन्य पात्रों में गौरी जैसी पात्राएँ भी वासना की शिकार बनकर बिना किसी रोक टोक के समाज में घूमने [illegible] का हिम्मत रखती है ।

बाबा

जमनिया मठ के सर्वाधिकारी बाबा के बारे में यह कहा जाता है कि वह मुसलमान है । जवानी में किये किसी अपराध के बाद घर से भागा वह आदमी उस मठ का बाबा बनाकर लाया जाता है । गाँजा, अफीम तस्करी और अनैतिक आचरणों के अड्डे जमनिया मठ में बाबा को किसी की कमी नहीं होती ।

मठ की गौरी, लक्ष्मी, इमरतिया आदि स्त्रीयों को अपनी इच्छा के अनुसार उपयोग करने में वह कभी हिचकता नहीं। मठ में एक दो स्त्रियों के बिना उदासी महसूस करनेवाला बाबा स्त्रियों को "नरक का द्वार"[1] कहने के खिलाफ है। उसकी राय है "चलेगा संसार औरतों के बिना ?"[2]

शिक्षित, समाज सुधारक स्वामी अभयानन्द को मस्तराम के द्वारा पीटने के मामले में बाबा को जेल भोगना पड़ता है। जेलवास के पहले दिनों में सारी सुख-सुविधाएँ प्राप्त बाबा धीरे धीरे इन सुविधाओं से वंचित हो जाता है। भक्तों के रूपधारी भगौती, लालता जैसे लोग अपना पैंतरा बदल देते हैं। तभी बाबा को समझ आता है कि अब तक वह पैसा कमाने का एक माध्यम मात्र रहा था।

बाबा जैसे "रंगे सियारों" के कारण ही भारत का विकास अवरुद्ध रह जाता है। इन धोखेबाज़ महंतों और उनके इर्द गिर्द अमरबेल के समान पनपनेवाले भक्तों के कारण अपढ़ ग्रामीण लूटे जाते हैं। इस तरह के मठ औरमहंतों के खिलाफ भारतीय जन मानस को जागृत करने केलिए ही प्रगतिवादी लेखक नागार्जुन ने इमरतिया की रचना की है।

मस्तराम

इमरतिया उपन्यास का सशक्त पात्र है मस्तराम का। सदा बाबा की सेवा शुश्रूषा में लगे रहनेवाले मस्तराम के कारण बाबा और स्वयं मस्तराम को जेल भोगनी पड़ती है। मठ में आये स्वामी अभयानन्द जब महन्ती दरबार की जय बोलने से इनकार करते हैं तो "जटाधारी बाबा की इज्जत और प्रतिष्ठा के आडम्बर की रक्षा के लिए"[3] उन्हें बुरी तरह पीटता है। इसी प्रसंग को लेकर इमरतिया, बाबा और मस्तराम को पुलिस ले जाती है।

---

1 नागार्जुन - इमरतिया, पृ.7।

2. वही

3. वही, पृ.10

इमरतिया की राय में भी "मस्तराम का अन्दर-बाहर साफ है । लेकिन कंडे की आंच भी है उसमें । उसमें घमंड का धुआं निकलता रहता है । उस आग में लोहा गलाकर बाबा "लोह भस्म" तैयार करते हैं । भभोती और लालता स्वर्ण भस्म[1] ।" घमंडी और मर्दानगी मस्तराम के कारण ही बाबा अपना स्थान बनाए रखता है । स्वयं बाबा उसके बारे में सोचता है - "मुझे लगा कि मस्तराम के आगे मैं कुछ नहीं हूं । वह मुझसे कहीं ऊंचा है, कहीं आगे है वह मुझसे । बेचारे के अन्दर ज़रा-सी हिकमत होती तो संसार उसकी पूजा करता[2] ।"

बाबा का परम भक्त मस्तराम जेल में बाबा की जटाओं को उतारने से बहुत दुःखी रहता है । वह नहीं चाहता कि बाबा के पवित्र बालों का अपमान हो । इसलिए हज्जाम को एक रुपया देकर उतरी जटाओं को किसी नदी में बहा देने का प्रबंध करता है । बाबा की इस स्थिति का कारण भक्तों का पाप समझनेवाला मस्तराम बाबा से कहता है - "बाबा, यह हमारे पाप का फल है कि आप की जटाओं पर उस म्लेच्छ की दृष्टि पड़ी । हम सोच ही नहीं सकते थे कि हमारे देवता का तेज-हरण होगा । आप तो हमारे लिए सब कुछ ठहरे[3] ।"

मस्तराम कभी नहीं चाहता कि गांव के लोग पढ़े-लिखे हों । क्योंकि उससे लोगों में बाबा केलिए कोई श्रद्धा नहीं रह जाएगी ।

वह कभी-कभी अपने काबू में नहीं रह पाता । इस कमज़ोरी को वह "चरस, गांजा और भांग के नशे में गर्क"[4] कर देता है । उसकी दृष्टि में "जो न पीवे गांजे की कली, उस लड़के से लड़की भली[5] ।"

1· नागार्जुन - इमरतिया, पृ·20
2· वही, पृ·75
3· वही, पृ·59
4· वही, पृ·49
5· वही, पृ·32

हिन्दू धर्म के समान दूसरे धर्म को भी माननेवाला मस्तराम यह जानकर ज़रा भी परेशान नहीं होता कि बाबा असल में मुसलमान हैं। लेकिन वह कभी यह नहीं चाहता कि जेल मुक्ति के बाद बाबा फिर से लोगों को ठगा दें। मस्तराम हिन्दू समाज की इस दुर्दशा पर दुःखी है। जिसके अन्दर ठौर-ठौर पर कूड़ों के अम्बार इक्कट्ठे हैं इस तरह के छंटे हुए बाबा लोग वहीं अपना आसन जमाते हैं। और रातों-रात नये-नये मठ खड़े हो जाते हैं। फिर वहाँ ढाका-काठमांडू होकर गुप-चुप कीमती माल पहूँचने लगते हैं छोकरियाँ आती हैं, छैले आते हैं, उनके साथ टेपरिकार्डिंग मशीन होती है, ट्रांसमीटर होता है[1]!"

इमरतिया को भोगती से बचानेवाला मस्तराम फक्कड किस्म का आदमी होने के नाते अपने को किसी संबन्ध से बाँधना नहीं चाहता।

मस्तराम "इमरतिया" का उज्ज्वल पात्र है। धोखेबाज महंतों से आकर्षित होकर अपने भविष्य की तिलांजलि देनेवाले लोगों का प्रतीक है मस्तराम। जब वह बाबा से संबन्धित असली बात जान लेता है तो अपने को सुधारने का निर्णय लेता है।

भोगती प्रसाद

जमनिया के बाबा का प्रिय चेला है भोगती प्रसाद। बेंत लगाकर आशीर्वादा देने की प्रथा भोगती की बुद्धि की उपज है। निःसन्तान औरतों की पीठ पर बेंत लगाने के बाद "ठूँठ की कोख से पौधा पैदा करने की विद्या"[2] यह जानता है।

---

1 नागार्जुन - इमरतिया, पृ.119

2. वही, पृ.117

दर्जे दस तक पढ़ा भगौती अपनी स्वार्थ सिद्धि केलिए बाबा के पीछे लगा रहता है । लक्ष्मी के बच्चे की हत्या की जांच पुलिस द्वारा किये जाने पर गौरी को लेकर भगौती ही थानेदार के यहाँ पहुँचता है । दो चार दिन थानेदार की 'सेवा' में गौरी को लगाने से पुलिस की रिपोर्ट भी बदलने में वह सफल होता है ।

अफीम के आदी भगौती वासना ग्रस्त भी हैं । मठ में आई निःसन्तान स्त्रियों को भोगनेवाले भगौती की कुदृष्टि इमरतिया पर भी रहती है । एक बार मस्तराम ही इमरतिया को भगौती से बचाता है । मस्तराम के जेल जाने के बाद उसका विचार यही रहता है - "इमरतिया इस वक्त मेरी हिरासत में है .... फिलहाल इस औरत पर मेरा काबू है"[1]।

मस्तराम से क्रुद्ध भगौती मठ के पतन का कारण मस्तराम को ही समझता है । मठ के बारे में समाचार पत्रों में आई विविध रिपोर्टों से भगवती परेशान रहता है वह सोचता है "मुझे पता था, एक न एक दिन इस गुब्बारे में पिन चुभो दी जाएगी .... तो रंगीन गुब्बारा पिचक गया । रबड़ का भद्दा छिछड़ा धूल में पड़ा है .... साला मस्तराम[1]।"

अपनी चारों लड़कियों की शादी में लाखों रुपये बाबा की जटाओं के जादू से ही वह दे सका है । बाबा की जेल मुक्ति केलिए वकील से सलाह लेने केलिए गये भगौती को बाबा से दूर रहने की सलाह ही मिलती है । जिससे वह बाबा से धीरे धीरे दूर हो जाता है ।

---

1 नागार्जुन - इमरतिया, पृ.७१

2 वही- पृ९०

भगौती अपनी स्वार्थ सिद्धि केलिए कपटी बाबाओं के पीछे पड़नेवालों का सशक्त प्रतीक है । सुख-सम्पत्ति के समय अपनी स्वार्थ पूर्ति करनेवाले ये लोग इन बाबाओं के कापट्य का पोल खोलने पर स्वरक्षा हेतु दूर हट जाते हैं ।

अन्य पात्रों में बाबा का समर्थक सेठ विशेश्वरचंद ध्यान देने लायक है । लोक सभा की उम्मीदवारी केलिए लड़नेवाले अपने खानदानी गुरु महाराज के बेटे केलिए विशेश्वरचंद मठ की रकम समर्पित करता है । मठ के अनैतिक आचरणों में इसका भी हाथ है । भगौती के समान यह भी आत्मरक्षा हेतु बाबा से दूर हटजाता है ।

बाबा का समर्थक लालता प्रसाद, बाबा से अपनी पतोहू के भूत को भगाने केलिए प्रार्थना करनेवाला बड़ा जमादार, बाबा की सेवामें पहले जिज्ञासु रहनेवाला राम सुभग सुकुल, पारसी हाकिम आदि पात्रों का भी इस उपन्यास में उल्लेख हैं जो गौण होने पर भी उपन्यास में अपनी छोटी परन्तु उचित भूमिका निभाते हैं । एवं इनके सहारे ही कहानी आगे बढ़ती है ।

इमरतिया में चित्रित विविध आयाम

इस उपन्यास में तत्कालीन समाज का पूरा चित्रण नहीं है । मठ के जीवन पर आधारित होने के कारण अधिकांश रूप से वहाँ के भ्रष्टाचार, अनैतिक आचरण आदि का वर्णन ही हुआ है ।

नारायणी नदी के किनारे स्थित जमनिया मठ अनाचारों का केन्द्र है । उस इलाके के शिक्षित लोग इस मठ के विरुद्ध हैं । मठ के बाबा पर सिर्फ उच्च वर्ग के कुछ स्वार्थी लोगों की ही आस्था है । इस उपन्यास में

नागार्जुन ने हिन्दू धर्म को दीमकों के समान चाटनेवाले मठों के अंदर व्याप्त भ्रष्टाचार के घिनौने रूप का पर्दाफाश किया है । अशिक्षित लोग अधिकांशतः अन्धविश्वासी होते हैं । ये ही स्वार्थी लालची बाबाओं के द्वारा ठगे जाते हैं । इसी कारण से बाबा पिछड़े हुए जमनिया में अपना आसन जमा लेता है । "साधुओं का जितना आदर वे करती हैं उतना और कोई नहीं करता । ऊंची जातियों के बड़े लोग मूर्ख साधुओं का मखौल उड़ाते हैं ।...... हमारे जैसों केलिए अनपढ़ भगत ही काम का साबित होता है । जमनिया के इर्द-गिर्द लाखों की तादाद में गरीब और अनपढ़ लोग फैले हुए हैं ।"[1] अपनी मेहनत की कमाई का एक हिस्सा वे धार्मिक कार्यों केलिए व्यय करते हैं जिसमें भले ही ठगे ही जाते हैं । बाबा सोचता है "लोग कहते हैं कि गरीबों के पास पैसे नहीं होते । मैं नहीं मानता हूं यह बात । सावन, कार्तिक, फागुन और बैसाख के महीने हमारे लिए जमनिया के अन्दर आमदनी के महीने थे ।"[2] अशिक्षित निर्धन लोगों के धार्मिक विश्वासों पर यहां प्रकाश डाला जाता है ।

बाबा की सिद्धई को मशहूर बनाने केलिए महाष्टमी के दिन सधुआइन लक्ष्मी के नन्हे से बच्चे की बलि चढ़ायी जाती है । हिन्दू धर्म में प्रचलित नर बलि जैसे अनाचारों के विरुद्ध पाठकीय संवेदना को उजागर करने का लक्ष्य रहा लेखक का ।

साधुओं का वेष पहनकर गरीब अशिक्षित ग्रामीणों को धोखा देनेवाले इस तरह के रंगे सियारों की भारत में कोई कमी नहीं है । इन का साथ देने केलिए समाज में उच्च स्थान प्राप्त कुछ स्वार्थी लोग भी जुड़े रहते हैं । स्वार्थी धन लोलुप भगत लोग इससे लाभान्वित भी होते हैं । बाबा ठीक ही सोचने लगता है - "यह क्या मेरी जटाओं का ही जादू नहीं था कि भगौती ने

---

1. नागार्जुन - इमरतिया, पृ.64-65

2. वही, पृ.65

अपने चारों लड़कियों की शादी में लाखों रुपये खर्च किए ?
रामजनम और सुखदेव की क्या हैसियत थी दस वर्ष पहले"[1] इस तरह अमरबेल बनकर जीनेवाला समाज का उच्च वर्ग भी मठ और महंतों के शोषण को बढ़ावा देता है । हिन्दू धर्म में प्रचलित आचारों और बाह्याडम्बरों के आड़ में अनेक धोखेबाज़ सारी सुख सुविधाओं युक्त चैन से जीवन बिताते हैं । हिन्दू धर्म की स्थिति अब यों बन गयी है - "हिन्दू जाति सचमुच गाय होती है । बार-बार दुहते जाओ, बूंद-बूंद निचोड लो । फिर भी लात नहीं मारेगी, सींग नहीं चलाएगी[2] ।"

गाँव के निम्न वर्ग के लोग ही क्या जेल के पुलिस अधिकारी भी अन्धविश्वास के पंजों से मुक्त नहीं हो पाये हैं । जेल के अन्दर भी बडे जमादार और अन्य चार शिक्षित लोग अपनी पीठ पर बेंत लगवाकर आशीर्वाद लेते हैं । अपनी पतोहू पर सवार भूत को भगाने केलिए बड़ा जमादार बाबा से मंत्र-तंत्र करवाता है ।

भाँग, चरस और अफीम के आदी बाबा लोग अन्धविश्वासों में बुरी तरह जकड़े गरीब लोगों के शोषण में लगे रहते हैं । ये मठ जासूसी एजन्टों के केन्द्र का काम भी करता है साथ ही साथ गांजा, चरस आदि का तस्करी व्यापार भी ।

जमनिया का यह मठ अनैतिक आचरणों का अड्डा है । मठ की लक्ष्मी, गौरी आदि मधुआइनें बाबा और अन्य साधुओं की वासनापूर्ति के साधन मात्र ही है । गौरी साल में दो-दो मर्द बदलती है । "वह उन मर्दों का बुरी तरह पीछा करती थी जो डील-डौल के तगडे होते थे[3] ।"

---

1. नागार्जुन - इमरतिया, पृ.111
2. वही, पृ.
3. वही, पृ.27

अतृप्त वासना से पीड़ित गौरी खुलकर कहती है - "मैं डायन हूँ, कच्चा चबाने केलिए मुझे आदमी ही चाहिए और हमेशा चाहिए दस वर्ष का लड़का हो तो भी चलेगा, सत्तर साल का बुड्ढा हो तो भी चलेगा "।[1] बाबा के साथ हर कहीं घूमने की उसे छूट है । बाबा से लेकर वहाँ आने वाले अधिकतर भक्त भी वासना से पीड़ित हैं । बेंत की पिटाई से नि:सन्तान स्त्रियों को सन्तान प्राप्ति करवाने की सिद्धि इस मठ के साधुओं को है, ऐसा कहा जाता है । बेंत से पीटने का काम मस्तराम का है । इसके बाद की "चिकित्सा" का काम लालता प्रसाद, रामजनम, भगौती आदि का है । चार-पाँच दिन मठ में रह कर जानेवाली औरतें अगले साल अपने बच्चे को लेकर बाबा के दर्शन केलिए आती हैं ।[2] इन अनैतिक आचरणों के खिलाफ गरीब अशिक्षित लोग कुछ नहीं कर पाते । इसी वजह से निम्न जाति के लोगों से बाबा का विशेष प्रेम है ।

राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार का नागार्जुन ने खुलकर वर्णन किया है । शिशु हत्या के सन्दर्भ में पुलिस केस होने पर भरतपुरा के थानेदार को प्रसन्न कराने केलिए गौरी चार दिनों केलिए वहाँ रहती है । परिणाम स्वरूप पुलिस का रिकोर्ड ही बदल जाता है । "पूजा की आठवीं रात में जाने किधर से एक पगली आई । सरकार बहादुर से अर्ज है कि वह जमनिया मठ के सन्त शिरोमणि बाबाजी महाराज की प्रतिष्ठा और इज्जत को ध्यान में रखें ।"[3] जेल के अंदर भाँग, चरस आदि का व्यापार खुलकर चलता है । नियम पालकों के केन्द्र में ही इस तरह के आचरण चलते हैं तो अन्य जगहों का कहना ही क्या है ?

1· नागार्जुन - इमरतिया, पृ·28

2· वही

3· वही, पृ·29

एक सीमित दायरे के अंदर जीनेवाले इने-गिने लोगों का ~~सीमित~~ जीवन चित्रित करने में लगे नागार्जुन उस दायरे से बाहर आने का प्रयास नहीं करते हैं। इसी वजह से जीवन के सभी धरातलों को समेट कर एक पूरा चित्रण उपस्थित करने में वे सफल नहीं हुए है। लगता है लेखक का प्रधान लक्ष्य ही धर्म के नाम पर चलने वाले शोषणों की पोल खोलना है। यह उपन्यास लेखक की वादोन्मुखता से पूर्णत: मुक्त है।

लोकोक्ति और मुहावरों के साथ शब्दगत प्रयोगों से भी भाषा सहज और सुन्दर लगती है। उपन्यास में "खरबूजे को देख कर खरबूजा रंग बदलता है" जैसी लोकोक्ति और ~~प्रकट्ता है~~ "आँखों से आँख मिलना"[2] "बाल भी बाँका नहीं करना"[3] आदि मुहावरों का सहज प्रयोग किया गया है। "उत्ती"[4] (उतनी) भेस[5] (वेष) आदि शब्द विकारों के साथ "कैफियत"[6], हिकमत[7], तहकीकात[8], अर्जीनामा[9] आदि उर्दू के शब्द और स्टोर, आॅन, लाइन[10], कटिंग्स[11], आदि अंग्रेज़ी शब्द भी उचित रूप से प्रयुक्त हैं।

---

1. नागार्जुन - इमरतिया, पृ.53
2. वही, पृ.19
3. वही, पृ.91
4. वही, पृ.35
5. वही, पृ.59
6. वही, पृ.13
7. वही, पृ.27
8. वही, पृ.28
9. वही, पृ.121
10. वही, पृ.21
11. वही, पृ.82

आत्मकथनात्मक शैली का एक विशिष्ट उपन्यास है इमरतिया। इसके चार प्रमुख पात्र हैं - माई इमरतीदास, जमनिया महन्ती दरबार का बाबा, साधू मस्तराम और भौती प्रसाद। उपन्यास के प्रथम तीन अध्यायों (प्रकरणों) में क्रमश: माई इमरतीदास, मस्तराम और बाबा तथा अन्तिम तीन अध्यायों में क्रमश: बाबा, मस्तराम और इमरतिया अपनी अपनी बात आत्म सम्भाषण द्वारा स्पष्ट करते हैं।[1] वर्णनात्मक शैली के साथ ही पूर्वदीप्ति शैली (उदा - लक्ष्मी के बेटे की हत्या) चेतना प्रवाह शैली (उद - आज कई रोज़ बाद मुझे लक्ष्मी की याद आई है। ....)[2] अखबारी रिपोर्ट शैली[3] आदि शैलियों के द्वारा उपन्यास की रचना की गयी है प्रतीक[4] और संकेतों के द्वारा भी उपन्यास की कलात्मकता को बढ़ाने का कार्य नागार्जुन ने किया है।

प्रतीक के उदाहरण - "आसमान में अलग-अलग उड़ते हुए दो पंछी कुछ देर के लिए पेड़ की एक डाल पर आ बैठे। दोनों ने एक-दूसरे को देखा, परखा, महसूस किया। उन्होंने अपनी रुचियाँ एक-दूसरे पर लादने की कोशिश नहीं की।[4]" ये दो पंछी मस्तराम और इमरतिया के प्रेम का प्रतीक है

गौरी का यह कथन कि दस वर्ष का लड़का हो तो भी चलेगा, सत्तर साल का बुड्ढा हो तो भी चलेगा ....[5]।" उसकी अतृप्त वासनों की ओर संकेत करता है। बिम्ब योजना द्वारा उपन्यास में सहजता लाने का कार्य भी नागार्जुन ने किया है।

---

1. नागार्जुन - इमरतिया, पृ.24
2. वही, पृ.27
3. वही, पृ.86
4. वही, पृ.124
5. वही, पृ.28

हिन्दी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में समाजवादी यथार्थवाद और आंचलिकता के स्रष्टा के रूप में नागार्जुन का सबसे प्रमुख स्थान है । सामाजिक यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद प्रेमचन्दोत्तर युग में विकसित दो सामाजिक धाराएं हैं । इन दो धाराओं में दृष्टिगत प्रमुख भिन्नता यह है कि जब कि सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासकार किसी विशिष्ट विचारधारा से अप्रभावित रहता है तो समाजवादी उपन्यासकार प्रगतिवादी विचारधारा से आकर्षित और प्रभावित रहता है । वह तत्कालीन समाज की विभीषिकाओं का चित्रण करके उसका समाधान मार्क्सवादी दृष्टि से ढूंढने लगता है ।

नागार्जुन समाजवादी यथार्थवाद के सशक्त प्रवक्ता है । मार्क्सवाद से प्रभावित होकर अनेक साहित्यकारों ने साहित्य सृष्टि की है परन्तु उनमें अनुभव की प्रामाणिकता नहीं के बराबर है । नागार्जुन की रचनाओं की महत्ता इस में है कि उन्होंने अनुभूत सत्य को अपनी रचना में वाणी दी हैं । उनकी महत्वपूर्ण रचना "बलचनमा" के बारे में स्वयं नागार्जुन के वक्तव्य से यह स्पष्ट होने लगता है । वे कहते हैं - "बलचनमा के बारे में मैं यह स्वीकार करूं कि बलचनमा जिस वर्ग का है, भूमिहीन वर्ग का, मैं कदापि उस वर्ग का नहीं हूं । हमारे गांव के जो भूमिहीन परिवार हैं मैं ने उनकी कहानी निकटता से महसूस करके लिखी है । हां, उसमें समाजवादियों और कांग्रेसियों के जो चित्र दिए गए हैं, उनमें मेरे विचार दिखाई पड़ सकते हैं ।" उन्होंने उच्च वर्ग के हथियार शोषण के खिलाफ निम्नवर्ग के शोषितों को संगठित होकर अपने हक की लड़ाई लड़ने केलिए कृत संकल्प किया है और मुक्ति का मूल मंत्र वे साम्यवाद ही मानते हैं । कांग्रेस पार्टी पर विश्वास न रखनेवाले नागार्जुन की राय में असल वामपंथी अभी पैदा नहीं हुआ है । वह अनागत है और उस असल वामपंथी से ही क्रांतिकारी परिवर्तन संभव है । "मुझे लगता है कि असल वामपंथी अभी पैदा नहीं हुआ अनागत है । मेरे मन में यह निश्चित है कि अहिंसा से पूरा फायदा शोषक वर्ग ही उठाता है और हिंसा से पूरा फायदा शोषक वर्ग को ही पहुंचता है । मेरे मन में ज़रा भी दुविधा नहीं है कि

इतना ज्यादा कूड़ा-कचरा जो सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र में पूंजीभूत हो गया है सदाचार का प्रचार करने से उसका कुछ नहीं होनेवाला है । विराट क्रांतिकारी शक्ति से ही यह स्थिति आ सकती है ।"[1] इसी कारण से उनके उपन्यासों के पात्र अभावग्रस्तता और शोषक वर्ग के शिकंजे में बुरी तरह जकड़े हुए हैं और इसका विरोध मार्क्सवाद से प्रभावित निम्नवर्ग के पात्रों द्वारा किया गया है । निम्नवर्ग के सच्चे चितेरे नागार्जुन अपने उपन्यासों में शोषित वर्ग की अभावग्रस्तता का स्वाभाविक चित्रण करने में सफल हुए हैं ।

आंचलिक उपन्यास विधा के क्षेत्र में उनका योगदान महत्वपूर्ण है । उन्होंने अपने उपन्यासों में मिथिला के पिछड़े हुए अंचलों को कथा केन्द्र बनाकर साहित्य क्षेत्र में क्रान्ति का कार्य किया है । मिथिला के जन-जीवन के सारे पहलुओं - सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक को उसके बनते बिगड़ते मूल्यों को, उस क्षेत्र विशेष की प्रकृति के परिवेश में नदियों की कलकलारव और चिड़ियों की चहचहाहट के साथ प्रस्तुत करने वाले नागार्जुन का उस अंचल विशेष की ओर लगाव स्पष्ट झलकता है । आज़ाद भारत की अशिक्षित अभावग्रस्त ग्रामीण जनता शोषण के शिकंजे में अभी भी किस प्रकार बुरी तरह जकड़ी हुई है और राजनीतिक छल-कपटी नेता किस तरह इसका लाभ उठाते हैं इससे बाहरी दुनिया को अवगत कराना ही इन उपन्यासों के ज़रिये नागार्जुन का लक्ष्य रहता है । उपन्यासों की आंचलिकता कहीं कहीं गाँव विशेष की सीमाओं के अंदर इतनी आबद्ध हो जाती है कि कभी कभी लेखक को बाहरी दुनिया की याद ही नहीं रह जाती । पाठक को लगता है कि घंटे भर केलिए वह किसी प्रेक्षक गृह में बैठा है जहाँ उस अंचल के सिवा और वहाँ के जन-जीवन की विसंगतियों के सिवा और कुछ नहीं दर्शाया जाता । पुस्तक के पन्नों के बाहर आँख फेरते ही पता लगता है कि पुस्तक के पन्नों के बाहर भी एक दुनिया है ।

---

1. डॉ. रणवीर रांग्रा - साहित्य साक्षात्कार, पृ.167

नागार्जुन की आंचलिक दृष्टि की गहराई में इस ग्राम्य चेतना की लहरें तरंगायित दिखाई पड़ती हैं जिसके आधार पर शोषणमुक्त ग्राम्य जीवन की स्वतंत्र कल्पना साकार हो सकती है । इस कारण नागार्जुन की आंचलिकता ग्राम्यचेतना के उदय और विकास की परिकल्पना करती है जिसके आधार पर भारतीय अंचलों की मुक्ति संभव है । अंचल पूरी तरह से इस चेतना के प्रभाव से घिरा हुआ है । नव जागरण के उन्मेष को यह चेतना इतने अधिक लक्षीभूत करती है कि कथानक की स्वाभाविकता में दिखाई पड़नेवाली दरारें भी क्षम्य बन जाती हैं । लेखक की सामाजिक प्रतिबद्धता कहीं इतनी अधिक वेगवती हो जाती है कि कथा की स्वाभाविकता और विश्वसनीयता कभी कभी प्रश्न चिह्नों से मुक्त नहीं हो पाती ।

वस्तुत: ग्राम चेतना के विकास के माध्यम से आंचलिक बिन्दुओं को नये आयामों में विकसित ~~बिन्दुओं को नये आयामों में~~ विकसित करने का श्रेय सबसे पहले नागार्जुन को ही प्राप्त हुआ है । यह उनकी आंचलिक दृष्टि की सर्वोच्च उपलब्धि है ।

कथानक और परियोजना

नागार्जुन के समूचे आंचलिक उपन्यास लक्ष्यबोध से प्रभावित हैं । सोद्देश्यपूर्ण रचना की सीमाएं और संभावनाएं नागार्जुन के कथानक को सभी दृष्टियों से घेरे रहती हैं । अधिकतर अछूते अंचलों को ही उन्होंने अपना प्रतिपाद्य बनाया है । इन भूखण्डों में घटित होनेवाली घटनाएं अपनी सारी विशेषताओं के साथ उन भूखण्डों की मातृ लगती है । इस कारण मिथिला की भौगोलिक परिस्थितियों में जीवन की विसंगतियों का, उसकी गहराई में बसी विद्रूपताओं का स्वर नागार्जुन ने मुखरित किया है । वह अपने में

संपूर्ण है क्योंकि इस प्रकार की समानान्तर स्थितियों के दर्शन अन्य अंचलों में शायद ही हो सकते हैं। फिर, किस दृष्टि और वैचारिक बिन्दुओं के आधार पर उन समस्याओं को आंकने का प्रयास किया गया है वह भी नागार्जुन की अपनी ही शैली का परिचायक है। उनके समानान्तर दूसरा कोई आंचलिक उपन्यासकार खड़ा नहीं हो सकता। क्योंकि अन्य आंचलिक उपन्यासकारों में कथानक को आंचलिकता से जोड़ते समय भी प्रगतिशीलता से आबद्ध रहने की कोशिश और वैचारिक सिद्धान्तों के माध्यम से उनके समाधान ढूंढने की कोशिश केवल नागार्जुन में ही मिल सकती है। इन्हीं कारणों से नागार्जुन के कथानक जहाँ सोद्देश्यपूर्ण बन जाते हैं वहाँ स्वाभाविकता से वंचित भी होने लगते हैं। "रतिनाथ की चाची" में आयी हुई परिस्थितियाँ इसके उदाहरण हैं।

जहाँ तक "बलचनमा" और "वरुण के बेटे" जैसे उपन्यासों का सवाल है वहाँ कथानक में स्वाभाविकता को अधिक प्रधानता देने का प्रयास किया गया है। जब कि "बाबा बटेसरनाथ" में एक प्रकार की प्रयोगात्मक दृष्टि अपनायी गयी है जो कहानी कहने की पुरानी परम्परा के अनुरूप है। "उग्रतारा" में जहाँ एक ओर प्रगतिशील विचारधारा प्रमुख हुई है तो "दुखमोचन" में गाँधीवादी विचारधारा को महत्त्व प्रदान किया गया है। "नई पौध" में आगामी पीढ़ी से परिवर्तन का दायित्व उठाने का परोक्ष अनुरोध लक्षित होता है।

जहाँ तक पात्रों के चयन और योगदान का सवाल है हम यह कह सकते हैं कि नागार्जुन के सभी प्रमुख पात्र किसी न किसी उद्देश्य से अनुप्रेरित लगते हैं। इनके जीवन और कार्यकलापों का एक विशिष्ट अर्थ होता है। ये पात्र जिन्दगी के क्षणों को अविस्मरणीय अनुभूतियों में परिवर्तित करने के साथ साथ अंचल को भी एक नया जीवन देते हैं। उत्पीडन और अत्याचार से फटी हुई धरती की दरारों में प्रतीक्षा की नयी बूंदों को भरने की कोशिश करते हैं।

लेकिन यह प्रतीक्षा भी दूर-दूर कहीं बादलों में बसी हुई है, जिसको लाकर बरसाने का भागीरथ यज्ञ नई पीढ़ी को करना है । इस कारण "वरुण के बेटे" के मोहन माँझ को जो अथक प्रयत्न करना पड़ता है, "बाबा बटेसरनाथ" के जैकिसुन को जो अटूट व्रत धारण करना पड़ता है, बलचनमा को जो उत्पीडन सहना पड़ता है, ये सब आनेवाले प्रतीक्षा के बादलों को बरसाने के प्रयत्न के प्रतीक बन जाते हैं ।

नारी पात्रों में "रतिनाथ की चाची" नारी की उस परम्परागत पीडा को आत्मसात् करती है तो "उग्रतारा" परम्परा को रौंदकर नयी राहों की खोज करती है । "वरुण के बेटे" की मधुरी में स्त्री के जागरण और प्रतिशोध का नया स्वर सुनाई पड़ता है । "नई पौध" की भाभी, "उग्रतारा" की भाभी और "दुखमोचन" की मौसी ये तीनों पात्र नयी परिवर्तन की प्रतीक्षा केलिए पर्दे के पीछे खड़े होकर नई प्रेरणा को प्रवाहित करते रहते हैं । संक्षेप में नागार्जुन के कथानक और पात्र योजना उनके आंचलिक दायरों को पुष्ट करने की अपेक्षा मानवीय जागरण के और मुक्ति के स्वर को मुखरित करनेवाली रचनात्मक प्रेरणाएँ बन जाती हैं ।

जहाँ तक भाषा शैल्पिक प्रयोगों का प्रश्न है, हम निश्चित रूप में यह कह सकते हैं कि आविष्करण की आवश्यकता के अनुसार नागार्जुन ने चयन की सुविधा को स्वीकारा है । मिथिलांचल के जीवन को वाणी देते समय उनकी भाषा अंचल विशेष के स्पन्दनों को सुनानेवाली बन जाती है । पात्रों के वार्तालापों में जिन भाषाई प्रयोगों का चयन किया गया है वे कहीं सभ्यता की कसौटी के बाहर भी होने लगते हैं । पात्रों की स्वाभाविकता को बनाये रखने केलिए किये जानेवाले ये ग्रामीण प्रयोग एक ओर अंचल की जिन्दगी के निम्न स्तर को और गंवार लोगों की बोलचाल की भाषा को समझने में सहायक होते हैं तो दूसरी ओर अशिष्टता के नमूने को भी प्रस्तुत करने में आगे निकलते हैं । गाली-गलौज वैसे ग्रामीणों की भाषा-शैली का एक अभिन्न अंग है जिसे नागार्जुन ने प्रस्तुत किया है ।

उसी तरह प्रतिपादन की आवश्यकताओं के अनुसार भाषा को साहित्यिक, भाव-गुंफित, प्रतीकात्मक और बिम्बों से भरपूर बनाये रखने का भी प्रयास उपन्यासकार ने यत्र-तत्र किया है । उपन्यासों के शीर्षक ही उस प्रतीकात्मक अर्थ के द्योतक बन जाते हैं ।

भाषा में आनेवाले प्रयोगों में मैथिली के शब्द और अंचल विशेष के गंवारू शब्दों के साथ खड़ी बोली के प्रयोग भी उपलब्ध होते हैं ।

आंचलिकता से भरपूर होते समय भी भाषा सरल और बोधगम्य बनी रहती है । रेणु की रचना में दिखाई पड़नेवाली भाषाई क्लिष्टता और प्रयोगों का अजनबीपन नागार्जुन में कम ही दिखाई पड़ता है । इन्हीं कारणों से नागार्जुन की भाषा साधारण खड़ीबोली के पाठक के बस के बाहर नहीं जाती । इस सन्दर्भ में स्वयं नागार्जुन का कथन है - "हाँ भाषा के बारे में मैं यह ज़रूर मानता हूँ कि हम उसमें अगर अत्यधिक स्थानीय रंग भर दें तो यह पाठकों पर अत्याचार है । इससे बचना चाहिए । इससे अखिल भारतीय पाठक केलिए बोरियत पैदा हो सकती है । बेचारा त्रिवेन्द्रम का या बैंगलूर का पाठक डिक्शनरी छान मारेगा और उसे शब्द नहीं मिलेगी ।"[1]

उपन्यासों में काव्यात्मक भाषा का प्रयोग परिलक्षित होता है । विशेषकर जहाँ प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन होने लगता है तब नागार्जुन का कवि मन अपनी सभी विशेषताओं के साथ प्रकट होने लगता है । वहाँ प्रकृति के अछूते सौन्दर्य को और मिट्टी के रंग-बिरंगीपन को आसमान के साथ जोड़कर देखनेवाला उपन्यासकार स्वतंत्र कवि बनने लगता है और भाषा भी थिरकती हुई उंगलियों पर नाचने लगती है ।

---

1. डॉ. रणवीर रांग्रा - साहित्य साक्षात्कार, पृ. 170

पंचम अध्याय

फणीश्वरनाथ "रेणु" के उपन्यासों में ग्राम चेतना का स्वरूप

पंचम अध्याय

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में ग्राम चेतना का स्वरूप

ग्राम चेतना के बदलते हुए परिप्रेक्ष्य में आयामित करते समय ऐसे कई रंगों से परिचित होना पड़ता है जो धरती के रंग और वहाँ जीनेवाले लोगों के चेहरों के बेरंग आदि से जुड़ने लगते हैं। फणीश्वरनाथ रेणु एक ऐसे प्रतिभाशाली उपन्यासकार हैं जिन्होंने "मैला आँचल" के माध्यम से समूचे हिन्दी उपन्यास को एक नया मोड़ दिया है। धरती की धड़कन की कहानी को वहाँ के लोगों के जीवन के स्पन्दनों से जोड़कर खण्डित भू - भागों के अखण्डित सत्य को उभारने का परिणाम है आँचलिक उपन्यास। अंचल विशेष के जीवन की विविधता और वैयक्तिकता इतनी जुड़ी हुई है कि वह किसी भी भारतीय भू-खण्ड के जीवन का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती।

अंचल अपने में जीर्ण लगता है किन्तु वह अपनी जीर्णता में संपूर्ण भी है । इस कारण अंचल विशेष की ज़िन्दगी का सम्यक चित्रण और उसकी संकीर्णता का विरोधात्मक प्रतिपादन एक ऐसा तथ्य है जो केवल आंचलिक उपन्यासकार ही प्रस्तुत कर सकता है ।

फणीश्वरनाथ रेणु ने सीमित दायरे में घटित होनेवाली जीवन की संकीर्ण परिस्थितियों का और घटनाओं का इतना गहरा चित्रण प्रस्तुत किया है कि कभी कभी वह अतिशयोक्तिपरक भी होने लगता है । लेकिन आंचलिकता की अतिशयात्मकता एक सहज यथार्थ है जो उस व्यक्ति को ही विदित होती है जो वहाँ की जिन्दगी का अंश होता है । इसलिए सुन्दरता की अपेक्षा कुरूपता और स्वाभाविकता की अपेक्षा जटिलता और सीधेपन की अपेक्षा कुटिलता इस तरह उभरकर आने लगते हैं कि कभी कभी लगता है कि आंचलिक जीवन यथार्थ बोध से दूर हट गया है । परन्तु और भी गहराई से देखने पर आँखों को एक कैमरे की भांति परिवर्तित करने से ऐसे "क्लोसप" दृश्य मिलते हैं जो जीवन के अस्तित्व को ही चुनौती देने केलिए पर्याप्त है ।

सबसे पहली बार आंचलिकता अपनी सही मायनों में रेणु के उपन्य में ही उभर आयी है । धरती की प्राकृतिक सीमाएँ जनजीवन के विश्वास-अविश्व और अन्धविश्वासों से जुड़कर राजनीतिक धांधली के चक्रों से पिसकर नैतिक अराजकता के बोध को उभारती है । हर दृष्टि से मैल से लदे हुए धरती के एक टुकड़े की कहानी इस तरह कह जाती है कि वहाँ कोई नायक ही नहीं होता न कोई नायिका । अंचल का नायक स्वयं अंचल होता है और उपन्यासकार केवल "फोटोग्राफर" । फणीश्वरनाथ रेणु ने ग्रामचेतना के एक ऐसे पक्ष को आंचलिक उपन्यासों के माध्यम से उभारकर रखा है जो प्रेमचन्द के बाद, स्वाधीनता प्राप्ि के बाद रूपायित होकर मैलेपन को अपनी आत्म में बसाने केलिए विवश है ।

मैला आँचल §1954§

"मैला आँचल" स्वतंत्रता प्राप्ति की वेला में प्रकाशित बहु-चर्चित और बहुख्याति प्राप्त आँचलिक उपन्यास है । अपनी नई शिल्प विधि के कारण हिन्दी के ही नहीं हिन्दीतर क्षेत्र के समीक्षकों और पाठकों को भी अपनी ओर आकर्षित करने की अद्भुत सिद्धी इस उपन्यास को थी । ग्रामवासिनी भारत माता की आँसुओं से भीगी करुणगाथा को उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है । भारत के एक पिछड़े हुए गाँव पूर्णिया जिले के "मेरीगंज" को कथा केन्द्र बनाकर आज़ाद भारत के जन जीवन का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक स्वरूप को चित्रित करने का सफल प्रयत्न रेणु ने किया है । "प्रभाव और शिल्प की दृष्टि से रेणु की यह कृति इतनी अप्रतिम सिद्ध हुई कि उसने हिन्दी उपन्यास परंपरा के ठहराव या गतिरोध को भंग करके उसे एक अभिनव पथ पर बढ़ने केलिए प्रेरित किया । यही वह पथ है जिस पर अग्रसर होकर हिन्दी उपन्यास "आँचलिक" विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ [1] ।" आँचलिक उपन्यास के क्षेत्र में रेणु के साथ ही "मैला आँचल" का नाम सदा अमर रहेगा ।

उपन्यास की भूमिका में कथा क्षेत्र का परिचय वे यों प्रस्तुत करते हैं - "यह है मैला आँचल, एक आँचलिक उपन्यास । कथानक है पूर्णिया । पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है, इसके एक ओर है नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिमी बंगाल । मैं ने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को - पिछड़े गाँव का प्रतीक मानकर - इस उपन्यास का कथा क्षेत्र बनाया है [2] ।" अत: मेरीगंज को समस्त भारतीय गाँवों का प्रतीक मानकर पूरे भारत की महागाथा ही "मैला आँचल में गायी जाती है ।

---

1. डॉ. बंसीधर - हिन्दी के आँचलिक उपन्यास सिद्धांत और समीक्षा, पृ.83
2. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल की भूमिका

अंचल की समग्रता को उसकी अच्छाइयों और बुराइयों के साथ प्रस्तुत करनेवाले रेणु द्वारा यह घोषित किया जाता है कि "इसमें फूल भी है शूल भी, धूल भी है गुलाल भी, कीचड़ भी है चन्दन भी, सुन्दरता भी है कुरूपता भी - मैं किसी से भी दामन बचाकर निकल नहीं पाया ।"[1] उपन्यास का शीर्षक "मैला आँचल" गाँव के अज्ञान, दारिद्र्य, अंधविश्वास आदि की ओर संकेत करता है ।

उपन्यास का नायक मेरीगंज

उपन्यास का नायक कोई जीवित पात्र नहीं होकर एक ग्रामांचल मेरीगंज है । मेरीगंज का भूगोल रेणु यों चित्रित करते हैं - "रौतहट स्टेशन से सात कोस पूरब, बूढ़ी कोशी को पार करके जाना होता है । बूढ़ी कोशी के किनारे - किनारे बहुत दूर तक ताड़ और खजूर के पेड़ों से भरा हुआ जंगल है । इस अंचल के लोग इसे "नवाबी तड़बन्ना" कहते हैं । तड़बन्ना के बाद ही एक बड़ा मैदान है, जो नेपाल की तराई से शुरू होकर गंगाजी के किनारे खत्म हुआ है । लाखों एकड़ ज़मीन । वन्ध्या धरती का विशाल अंचल । इसमें दूब भी नहीं पनपती है । बीच-बीच में बालूचर और कहीं कहीं बेर की झाड़ियाँ । कोस-भर मैदान पार करने के बाद, पूरब की ओर काला जंगल दिखाई पड़ता है, वही है मेरीगंज कोठी ।"[2] इस स्थान का नाम मेरीगंज रखने का भी एक इतिहास है ।

आज से पैंतीस साल पूर्व डब्ल्यू.जी. मार्टिन द्वारा एक कोठी बनवाई गयी थी और अपनी पत्नी "मेरी" के नाम पर इसका गाँव का नाम

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल की भूमिका
2. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ.13-14

"मेरीगंज" किया गया है । इसकी घोषणा ढोल पिटवाकर ही किया गया था । इस नाम के प्रचलन में वे इतने सख्त रहे कि गाँव के लोग गाँव का पुराना नाम भूल ही गये हैं ।[1]

मेरीगंज के समाज का वर्णन करते हुए रेणु लिखते हैं - "अब गाँव में तीन प्रमुख दल हैं - कायस्थ, राजपूत और यादव । ब्राह्मण अभी भी तृतीय शक्ति है । गाँव के अन्य जाति के लोग भी सुविधानुसार इन्हीं तीनों में बँटे हुए हैं ।"[1] इस गाँव में शिक्षित लोगों की संख्या बहुत कम है । "सारे मेरीगंज में दस आदमी पढ़े-लिखे हैं - पढ़े-लिखे का मतलब हुआ अपना दस्तखत करने से लेकर तहसीलदारी करने तक की पढ़ाई । नये पढ़नेवालों की संख्या है पन्द्रह ।"[2] गाँव में अनेक छोटी-छोटी जातियाँ हैं जो अलग-अलग टोलियों जैसे तंत्रिमा टोली, पोलिया टोली, गहलोत टोली आदि नामों से जानी जाती हैं ।

मेरीगंज के सभी वर्गों के लोगों के साथ वहाँ के मठ, महंत और राजनीतिक दलों के लोगों से वहाँ के ग्रामीण समाज का चयन किया जाता है । यही समाज "मैला आँचल" का केन्द्र बनाया जाता है । मेरीगंज ग्रामीण समाज के अलावा इसी के आसपास के अनेक छोटे छोटे स्थानों का भी चित्रण उपन्यास में हुआ है।

उपन्यास का कथानक

दो भागों में बँटी उपन्यास की कथा अतीत और वर्तमान के सूत्रों से बुनी हुई है । पहले खंड में राष्ट्रीय आन्दोलन की व्याख्या, धार्मिक मठों के आडम्बर, ग्रामीण उत्सव, रीति-रिवाज, राजनैतिक उथल-पुथल आदि का

1· फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ·17-18

2· वही, पृ·19

वर्ण्य है । दूसरा खंड आज़ाद भारत की कथा से संबन्धित है । सारे गाँव को अपनी पूर्णता के साथ प्रस्तुत करने के प्रयास होने के नाते कथानक में बिखराव ज़रूर दृष्टिगत होता है । एक साथ अनेक कथाएँ आरम्भ और अंत विहीन लहरें जैसी एक दूसरे से जुडी रहती हैं । इस कारण एक कथा दूसरी से उलझकर नये चित्र बनाती है और पाठक के मन में अधिक समय ठहरती भी नहीं ।

मेरीगंज के सभी वर्गों के जीवन की झांकियाँ उपस्थित करने के उद्देश्य से एक ओर गरीब शोषित किसानों का वर्ग है तो दूसरी ओर शिक्षित मध्यवर्ग के प्रशान्त जैसे पात्र है । मेरीगंज का न होकर भी वहाँ की मिट्टी से बेहद प्यार करनेवाले डॉ॰ प्रशान्त, बालदेव आदि मेरीगंज के आंचलिक जीवन में सुधार लाने का प्रयत्न करते हैं । वहाँ के जीवन में अप्रत्याशित परिवर्तन लाने का कार्य राजनीतिक दलों के द्वारा किया जाता है ।

विदेश जाने की स्कालरशिप अस्वीकार करके मलेरिया संशोधन केलिए मेरीगंज में डॉ॰ प्रशान्त के आगमन से एक नया मोड शुरू होता है । उसके इस निश्चय का मेडिकल कालेज के अध्यापक और विद्यार्थी पागलपन समझते हैं । लेकिन ममता की प्रेरणा तथा मेडिकल कालेज के प्रिंसिपल की शुभकामनाएँ उसके साथ रहती हैं । परिणाम स्वरूप मेरीगंज को एक मलेरिया सेंटर और प्रतिभा संपन्न डॉक्टर मिलते हैं । विज्ञान की सेवा केलिए गाँव आये डॉ॰ प्रशान्त के अनुसंधान का क्षेत्र बदल जाता है । वहाँ की धरती का गन्ध उसके प्राणों में समा जाता है । डॉक्टर अनुभव करता है कि भूमिहीन आदमी आदमी नहीं है सिर्फ जानवर है । उसका पहला कार्य रहा जानवर को आदमी बनाना । प्यार की खेती करने का प्रयत्न करनेवाले डॉ॰प्रशान्त का परिचय तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद से हो जाता है । "हिस्टिरिया" से ग्रस्त उनकी बेटी कमला की रोग मुक्ति डॉ॰ प्रशान्त से संभव होता है । अब दोनों का रिश्ता डाक्टर और रोगी का न होकर प्रेमी-प्रेमिका का हो जाता है ।

उपन्यास की प्रमुख घटना खेतिहर मज़दूर संथालों में उभरी जागृति है बिहार सरकार द्वारा ज़मीन्दारी प्रथा की समाप्ति के दृढ संकल्प का समाचार गाँवों तक फैलती है। सुना जाता है कि तीन साल तक लगातार ज़मीन को जोतनेवालों की उस ज़मीन पर हक होगी। पराई ज़मीन पर झोंपडियाँ बनाकर रहनेवाले संथालों में यह बात नयी स्फूर्ति भर देती है। सत्तारूढ़ कांग्रेस दल ज़मीन्दारी प्रथा को बनाये रखने केलिए प्रयत्नशील रहते हैं। संथालों और ग्रामीणों के बीच मार-पीट होती है। फलस्वरूप सन्थालों के मर्द पकडे जाते हैं।

स्वराज्य प्राप्ति के दिन ये भूमिहीन सन्थाल लोग जेल में रह जाते हैं। फिर भी इनकी स्त्रियाँ स्वतंत्रता प्राप्ति का उत्सव मनाने में पीछे नहीं हटती। उत्सव के दिन भी खून की नदी बहती है। कांग्रेस पार्टी से संबन्ध तोडकर कालीचरण सोशलिस्ट पार्टी शुरू कर देता है। खूनी डकैती के साथ सम्बन्ध रखनेवाले लोग पकड लिये जाते हैं। नया दरोगा डॉ. प्रशान्त को कम्यूनिस्ट मानता है। सन्थालों को उकसा देने के आरोप से डॉक्टर भी पकडा जाता है। अपनी प्रेरणा की मूर्ति ममता की सहायता से डॉक्टर प्रशान्त जेल से मुक्त हो जाता है। डॉक्टर प्रशान्त द्वारा गर्भवती बनी तहसीलदार की बेटी कमला एक पुत्र को जन्म देती है। डॉक्टर और कमला का पुनःसंगम जेल मुक्ति के बाद संभव हो जाता है। प्रसन्न तहसीलदार अपनी सात सौ बीघे ज़मीन गाँव के प्रत्येक परिवार को पाँच बीघे की दर से बाँट देता है। जिससे सन्थाल भी ज़मीन प्राप्त करते हैं।

इन केन्द्रीय घटनाओं के अलावा मेरीगंज के मठ की लक्ष्मी कोठारिन की जीवन गाथा, फुलिया की कथा आदि भी है।

कथानक-परिवेश की पृष्ठभूमि में

कथानक का एक दूसरा पक्ष भी है जो मेरीगंज गाँव के परिवेश को पूर्ण रूप से प्रतिबिंबित कराने में सफल निकलता है । राजनीतिक पहलुओं से और नेता वर्ग के आचरणों से जुड़ा हुआ यह पहलू बदलती हुई राजनीतिक व्यवस्था के प्रति हमारा ध्यान आकर्षित करने में सफल हुआ है । (यद्यपि कथानक से इसका सीधा संबन्ध नहीं है, फिर भी कुछ संबन्ध है) ।

पात्र चित्रण

"मैला आँचल" की पात्र सृष्टि में नवीनता है । उपन्यास में लगभग दो सौ पात्र हैं । अर्थात् पूरा गाँव पात्रों का रूप धारण कर लेता है । जिस तरह समुद्र के हरेक तरंग का अपना महत्व है चाहे वह जितना भी छोटा क्यों न हो, उसी तरह इस उपन्यास के अगणित पात्रों में छोटे से छोटे पात्र भी अपना अलग अस्तित्व रखता है । किसी पात्र के प्रति लेखक का कोई विशेष लगाव या आग्रह नहीं है । वे अपना लक्ष्य पात्रों के व्यक्तित्व उद्घाटन न रखकर सारे मेरीगंज के यथार्थ को xxxxxxxx उजागर करना मानते हैं । इसलिए उपन्यास के मानव पात्रों में न कोई नायक का रूप धारण कर लेता है और न खल नायक का । "चरित्रांकन की दृष्टि से "मैला आँचल" नायक विहीन उपन्यास का प्रारंभ करता है ।"[1] उपन्यास में रूप और रंग धारण करके आनेवाले नामधारी पात्र सिर्फ उपकरण मात्र रह जाते हैं । गाँव की स्थितियाँ, वातावरण आदि ही नायक का रूप धारण कर लेते हैं । समूचे गाँव को नायक के पद पर आसीन करने का

---

1. डॉ. नगीना जैन - आँचलिकता और हिन्दी उपन्यास, पृ. 158

सबसे पहला श्रेय रेणु को जाता है । यों "मैला आँचल" का नायक बनता है "मेरीगंज गाँव" ।

पात्रों की इस भीड़ में भी उपन्यास का प्रत्येक पात्र जीवन्त है और अपने अंचल की मिट्टी की गन्ध से महक-महक रहा है ।

प्रमुख पुरुष पात्र

डॉ॰ प्रशान्त

पात्रों की भीड़ भरी दुनिया में कुछ पात्र ऐसे भी हैं जो अपनी चारित्रिक विशेषताओं के कारण आदि से अंत तक पाठक को बाँधे रखते हैं । इनमें सबसे पहला नाम आता है डॉ॰ प्रशान्त का । उपन्यास में डॉ॰ प्रशान्त का चित्रण आदर्शवादी, देश भक्त, नयी चेतना से युक्त, मानवीय करुणा से द्रवित अंतःकरणवाला, आशा और आस्था के भावों से भरा एक स्वप्नदर्शी पात्र के रूप में हुआ है ।

"अज्ञात कुलशील"[1] पैदा हुए प्रशान्त का पालन-पोषण उपाध्याय दम्पति द्वारा किया जाता है । पटना मेडिकल कालेज से डॉक्टरी परीक्षा उत्तीर्ण करनेवाला डॉ॰ प्रशान्त विदेश जाने की स्कॉलरशिप अस्वीकार करके पूर्णिया जिले में मलेरिया और काला आज़ार पर रिसर्च करने केलिए तैयार हो जाता है । डॉ॰ प्रशान्त के इस निर्णय पर मेडिसिन के डाक्टर तरफदार की राय रही - "भावुकता का दौरा भी एक खतरनाक रोग है[2] ।" और लोग इस निर्णय को बेवकूफी समझते हैं । लेकिन मेडिकल कालेज के

1· फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ·64

2· वही, पृ·67

प्रिंसिपल और प्रशान्त की महत्वाकांक्षिणी ममता उसके इस निर्णय की प्रशंसा ही करते हैं ।

पूर्णिया जिले तो गरीबी के अड्डे है यहाँ शोषण और व्यभिचार है, जाति-पाँति और उच्चनीच की भावना है और कमीनेपन की एक भी पहलू ऐसा नहीं जो वहाँ देखने को नहीं मिलता । लेकिन प्रतिकूल और जुगुप्सित वातावरण उसे अपने निर्णय से हटाने में असफल ही सिद्ध होते हैं । वह पलायन का शिकार न बनकर बदलती परिस्थितियों में अपने लक्ष्य को यहाँ के जीवन का कायाकल्प करने का प्राप्त करने में क्रियाशील रहता है । ममता को लिखे जानेवाले पत्रों में उसका यह संकल्प व्यक्त हो जाता है - "यहाँ इन्सान है कहाँ ? अभी पहला काम है, जानवर को इन्सान बनाना ।[1]" वह ममता से कहता है - "ममता ! मैं फिर काम शुरू करूँगा - यहीं, इसी गाँव में । मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ । आँसू से भीगी हुई धरती पर प्यार के पौधे लहलहाएँगे । मैं साधना करूँगा, ग्रामवासिनी भारतमाता के मैले आँचल तले ![2]" वह आगे कहता है - "कम-से-कम एक ही गाँव के कुछ प्राणियों के मुरझाए ओठों पर मुस्कराहट लौटा सकूँ, उनके हृदय में आशा और विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूँ..... ।[3]" इस विचार को क्रियान्वित करने हेतु डॉ॰ प्रशान्त ग्रामीणों से मेल-मिलाप करने लगता है । अज्ञान और अन्धविश्वास के अन्धकार में पड़े ग्रामीण लोगों के जीवन में नयी रोशनी का संचार डाक्टर के द्वारा किया जाता है ।

तहसीलदार की बेटी कमला को बेहोशी के दौरे से मुक्त करनेवाले डॉक्टर को अब दिल का रोग लग जाता है । बचपन से ही स्नेह केलिए भूखे पड़े प्रशान्त का मन कमला का प्यार पाकर खिल उठता है । प्रेम, प्यार और स्नेह को बायोलॉजी के सिद्धांतों से मापनेवाला डाक्टर अब समझ जाता है कि

1· फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ·179-180
2· वही, पृ·230
3· वही, पृ·401

आदमी का दिल होता है, शरीर को चीर-फाड़कर जिसे हम नहीं पा सकते ।
दिल वह मन्दिर है जिसमें आदमी के अन्दर का देवता वास करता है[1] ।

अपने अनुसन्धान द्वारा डॉक्टर प्रशान्त गाँव में फैले रोग की जड़ें पकड़ लेता है "गरीबी और जहालत-इस रोग के दो कीटाणु हैं । एनोफिलीज़ से भी ज्यादा खतरनाक, सैण्डफ्लाई से भी ज्यादा जहरीले हैं[2] ।" उनकी खोज की प्रशंसा भी की जाती है । ममता कहती है "कोई रिसर्च कभी असफल नहीं होता है डॉक्टर ! तुमने कम से कम मिट्टी को तो पहचाना है । मिट्टी और मनुष्य से मुहब्बत । छोटी बात नहीं[3] ।" डॉ॰ प्रशान्त में रेणु के विचारों की झलक स्पष्ट हो जाती है । उनका विचार यह है कि पिछड़े हुए ग्रामीण जीवन में परिवर्तन मार्क्सवाद या समाजवाद से नहीं हो सकता बल्कि गाँधीवाद से प्रभावित नेहरू के वैज्ञानिक मानवतावाद से ही यह संभव हो सकेगा ।

डॉ॰ प्रशान्त के पात्र को पूर्ण रूप से आदर्शात्मक होने से बचाने हेतु एक मानवोचित कमज़ोरी भी इसमें दिखाई पड़ती है । विवाह पूर्व डॉ॰ प्रशान्त द्वारा कमला का गर्भवती बन जाना । लेकिन इस पात्र को कलंकित करना रेणु नहीं चाहते । पुत्र के जन्म के बाद भी सही, प्रशान्त कमला को जीवन संगिनी के रूप में स्वीकार करते हुए दिखाया जाता है ।

डॉक्टर प्रशान्त के चित्रण में रेणु ने अतिरंजना को अपनाया है । उपन्यास को आशावादी तत्वों से सुसज्जित करने के लक्ष्य से ही प्रशान्त का चित्रण हुआ है । नहीं तो विदेश जाने की स्कॉलरशिप अस्वीकार करके सभी दृष्टियों से पिछड़े हुए पूर्णिया जिले में जाने को तैयार नहीं होता ।

---

1 फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ॰179-180

2॰ वही, पृ॰230

3॰ वही, पृ॰401

"प्रशान्त टिपिकल पात्र नहीं है जो साधारणतः जीवन में प्राप्त हो जाते हैं, जिनकी विशेषताएँ किसी विशेष प्रकार के पात्रों का प्रतिनिधित्व करती हैं। प्रत्युत वह एक टिपिकल पात्र है जो लेखक के विषयगत उद्देश्य की पूर्ति करता है।[1]

आदर्श और अतिरंजना का सहारा लेखक ने ज़रूर लिया है लेकिन प्रशान्त को एक अस्वाभाविक पात्र नहीं कह सकते। डॉ॰ प्रशान्त ज़रूर एक असाधारण व्यक्तित्ववाला है जो भारत माता के मैले आँचल को साफ करने केलिए क्रियाशील रहता है। लेकिन पाठक पर प्रभाव छोडने लायक कोई कार्य प्रशान्त द्वारा नहीं किया जाता। गाँववालों को हैजा की सूई देने के सिवा समाज को कोई मार्ग दर्शन देने का कार्य वह नहीं करता।

बालदेव

डॉ॰ प्रशान्त के बाद उपन्यास का दूसरा महत्वपूर्ण पात्र है बालदेव। मेरीगंज में राजनीतिक गतिविधियों का प्रारंभ करने का श्रेय बालदेव का है। गाँधीवादी काँग्रेसी कार्यकर्ता के रूप में गाँव में वह जाना जाता है। गाँव की जातीय राजनीति से सदेव दूर रहनेवाला बालदेव निष्पक्ष रूप से गाँव की भलाई चाहनेवाला आदमी है।

गाँधीजी के भक्त बालदेव को अहिंसा, अनशन और शांतिपूर्ण नीति पर दृढ विश्वास है। निस्वार्थ सेवा भाव से युक्त बालदेव गाँवमें मलेरिया केन्द्र खुलवाने में सहायता पहुँचाता है। ईमानदार व्यक्ति के रूप में मशहूर है बालदेव। इसी कारण से लक्ष्मी कोठारिन भण्डारे का प्रबंध बालदेव को सौंप देती है। इसी गुण के कारण ही गाँव में चीनी और कपडे वितरित करने का काम भी उसे प्राप्त होता है। बेसहारा बनी लक्ष्मी को वह अपनी स्त्री के रूप में स्वीकार कर लेता है।

---

1. डॉ॰ इन्द्रप्रकाश पाण्डेय - हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में जीवन-सत्य,

इन्हीं सद्गुणों से युक्त बालदेव को लेखक कमज़ोरियों और बेवकूफियों से भरे हुए पात्र के रूप में चित्रित करके हास्यास्पद स्थितियाँ उत्पन्न कर देते हैं। गाँव का यह नेता गाँधी के जीवन से संबन्ध रखनेवाले अनशन, आन्दोलन आदि शब्दों का ठीक उच्चारण भी नहीं जानता। फिर भी ग्रामीण लोग उसकी प्रशंसा आदमी हैं बालदेवजी। अन्दोलन, अनसन, और और क्या ? हिंसाबात ! किसी ने समझा ? गियान की बोली समझना सभी के बूते की बात नहीं [1]।" गाँववालों का यह ज्ञानी आदमी अपना परिचय यों करता है - "हम तो सबों का सेवक हैं। हम कोई बिदमान नहीं हैं, सास्तर-पुरान नहीं पढ़े हैं। गरीब आदमी हैं, मूरख हैं। मगर महतमाजी के परताप से, भारथ माता के परताप से, मन में सेवाभाव जन्म हुआ और हम सेवा का बाना ले लिया [2]।" गाँधीजी के कुछ शब्दों और आचरणों को अपनाकर अशिक्षित ग्रामीणों में अपना प्रभाव डालनेवाले मूर्ख लोगों का चित्रण प्रस्तुत करना लेखक का ध्येय लगता है। "बालदेव का यह पात्र उपन्यास में इस बात का सशक्त प्रतीक बन जाता है कि नेतृत्व केलिए शिक्षा, ज्ञान, समझ जैसी बातों की कतई आवश्यकता नहीं है [3]।

इस तरह के मूर्ख नेता जहाँ कहीं भी है वहाँ उन्नति के स्थान पर अवनति ही संभव होती है। भारत के पिछड़े हुए गाँवों को और भी पिछड़ेपन की ओर ये ढकेलते हैं। विकासोन्मुख भारतीय जनता को प्रगतिपथ पर अग्रसर कराने केलिए सदैव शिक्षित नेताओं की ज़रूरत है लेकिन भारत पर यह अभिशाप जैसा लगता है कि यहाँ के राजनीतिक नेता अशिक्षित और अधिकांश मूर्ख ही दिखाई पड़ते हैं।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ.25
2. वही, पृ.37
3. डॉ. बंसीधर - हिन्दी के आँचलिक उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा, पृ.90

बावनदास

कद में तीन बित्ते के वामन होकर भी उपन्यास के पात्रों में सबसे आकर्षक पात्र है बावनदास का । बालदेव के साथी होकर भी बावनदास कुछ अलग किस्म के आदमी है । राजनीतिक नेताओं के द्वारा किये जानेवाले काला बाज़ार, दलबंदी आदि के विरुद्ध लड़कर अपने जीवन को समर्पित करनेवाला बावनदास "मैला आँचल" का सबसे प्रभावशाली पात्र है । लेखक बावनदास के माध्यम से समाज में फैले अत्याचार का चित्रण करता है । सत्य और धर्म का राजनीतिक क्षेत्र में कोई स्थान नहीं है । बावनदास अपने साथी बालदेव से कहता है - "चानमल मड़बारी के बेटा सागरमल ने अपने हाथों सभी भोलंटियरों को पीटा था; जेहल में भोलटियरों को रखने केलिए सरकार को खर्चा दिया था । वही सागरमल आज नरपत नगर थाना कांग्रेस का सभापति है । दुलारचन्द कापरा वही जुआ कम्पनीवाला, एक बार नेपाली लड़कियों को भगाकर लाते समय जो जोगबनी में पकड़ा गया था । वह कटहा थाना का सिकरेटरी है । भारथमाता और भी जार-बेजार रो रही है ।"[1]

बावनदास की दृष्टि में सभी पार्टी के नेता एक समान स्वार्थी होते हैं । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद होनेवाले अत्याचारों से दु:खी हुए बावनदास गाँधीजी की हत्या के बाद और भी व्याकुल हो जाता है । गाँधीजी से प्राप्त चिट्ठियों को बालदेव को सौंपकर वह निकल पड़ता है । गाँधीजी के श्राद्ध के दिन कपड़े, चीनी आदि पाकिस्तान पहुँचाने की कांग्रेसी नेताओं की योजना के खिलाफ खड़े बावनदास के शरीर पर से गाड़ियाँ चलायी जाती है । गाड़ियों के पहियों से चिथी-चिथी हुए शरीर पाकिस्तान की

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ.167

सीमा पर फेंक दिया जाता है । पाकिस्तानी सैनिक इस लाश को भारत-पाकिस्तान की सीमा पर बहनेवाली नागर नदी में बहा देते हैं और उसकी झोली को भारत की सीमा में एक पेड पर टांग भी देते हैं । झोली को कोई पहचान न लेने के उद्देश्य से एक नेता उस झोली को वहाँ से हटाता है । एक सफेद चिट्ठी उस पर चिपकी रहती है । भोले-भाले ग्रामीण लोग मनोकामना पूर्ण करने के हेतु मनौती लेकर वहाँ चीथडे चढाते हैं ।

"बावनदास उपन्यास में अल्पकाल के लिए ही मंच पर आता है, किन्तु अपनी अलौकिक आभा से सभी पात्रों को मात कर जाता है[1] ।" निस्वार्थ भाव से देश सेवा करने केलिए उतारू बावनदास की मृत्यु राजनैतिक नेताओं के रूप धारण किये देशद्रोहियों के द्वारा किया जाता है ।

कालीचरन

गाँव में समाजवादी दल की स्थापना बालदेव का चेला कालीचरन द्वारा ही किया जाता है । सदैव अहिंसा पर विश्वास करनेवाले बालदेव के इस चेले को अहिंसा बेकार लगती है । लोगों में जागरण लाने हेतु जो भाषण देकर कालीचरन कहने लगता है "मैं आप लोगों के दिल में आग लगाना चाहता हूँ । सोये हुए को जगाना चाहता हूँ । सोशलिस्ट पार्टी आपकी पार्टी है, गरीबों की, मज़दूरों की पार्टी है । सोशलिस्ट पार्टी चाहती है कि आप अपने हकों को पहचानें[2] ।"

डकैती के झूठे आरोप से पकडा जानेवाला कालीचरन को पार्टी की बदनामी होने की बात सताती है । बदनामी से पार्टी को बचाने हेतु

---

1. डॉ. चन्द्रभानु सोनवणे - कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.44
2. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ.194

वह जेल से भाग जाता है । मार्ग में गोली से उसके जाँघ का माँस उधेड जाता है पार्टी आफिस जाकर अपनी सफाई देने केलिए अग्रसित जानेवाले कालीचरन को वहाँ शरण देने केलिए सेक्रेटरी तैयार नहीं होता । उसकी ईमानदारी पर विश्वास नहीं किया जाता । अपने आदर्श केलिए मरनेवाला कालीचरन एक आदर्श देशभक्त एवं समाज सेवक है।[1] ।"

कालीचरन के उग्र चरित्र में प्रेम का कोमल अंश भी विद्यमान है । लक्ष्मी को नागा साधु से रक्षा करनेवाला कालीचरन बाद में चर्खा केन्द्र की मंगला देवी के साथ सुख की नींद लेता है ।

तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद

शोषक वर्ग से संबन्धित पात्रों में विश्वनाथ प्रसाद का पात्र सर्वप्रमुख है । तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद सत्ता और शक्ति के सहारे निर्धन ग्रामीणों को चूसता रहता है । गाँव के बडे लोगों से इनका जो संबन्ध है वह भी उसकी शोषक वृत्ति में सहायता पहुँचाती है । तहसीलदारी को "पाप की गठरी" कहकर त्याग देनेवाला विश्वनाथ प्रसाद काँग्रेसी बन जाता है । लेकिन वह अपनी शोषक वृत्ति को कभी त्याग नहीं देता । छल-कपटी से हज़ारों बीघा ज़मीन अपने नाम पर कर लेता है । सारे गाँववालों को भडका कर संथालों के विरुद्ध कर देने में भी वह समर्थ सिद्ध होता है । इससे उसे लाभ भी होता है । यों तहसीलदार का घृणित शोषक रूप स्पष्ट होता है ।

दो विरोधी भावों के मिश्रण से ही विश्वनाथ प्रसाद की पात्र सृष्टि हुई है । एक ओर क्रूरता और दूसरी ओर मानवीयता । अपनी पुत्री से बेहद प्यार करनेवाला पिता विश्वनाथ प्रसाद पुत्री कमला को

---

1. डॉ॰ ह॰के॰ कडवे - हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति, पृ॰248

2. [illegible]

गर्भवती जानकर बेचैन हो उठता है । कमला को खत्म करने का विचार भी उसके मन में उभरता है । लेकिन जेलमुक्त डॉक्टर प्रशान्त जब दामाद के नाते विश्वनाथ प्रसाद का चरण छू लेता है तो वह सब कुछ भूल जाता है । अपने नातिन कुमार नीलोत्पल के जन्मोत्सव के दिन वह अपनी सौ बीघे जमीन गरीब किसानों में बाँट देता है । और अपने मन में छिपे रहे मानवीय गुणों का परिचय देता है ।

यों विरोधी भावों के सामंजस्य से विश्वनाथ प्रसाद का पात्र आकर्षक हुआ है । वह शोषक अवश्य है, किन्तु बदलती हुई परिस्थितियों से वह भली-भाँति परिचित है ।

अन्य पुरुष पात्र

विश्वनाथ प्रसाद के समान रामकिरपाल सिंह भी एक टोली का प्रमुख है । सादे दिलवाले रामकिरपाल को राजपूत होने पर गर्व है । इसी कारण से कानून कचहरी की शरण में जाना वह कमजोरी समझता है ।

अपनी स्वार्थ सिद्धी केलिए बालदेव को अपने घर में रखनेवाला खेलावन यादव बाद में बालदेव को घर से इसलिए निकाल देता है कि वह अपने प्रयोजन केलिए सिद्ध नहीं होता ।

एक अन्य पात्र जोतखी है, जो राजपूतों को यादव लोगों का अहंकार झाड़ डालने केलिए उकसाता है । इसी की सलाह पर ही हीरू पारबतिया की माँ को डाइन समझकर मार डालता है ।

अंधा सेवादास अपनी आयु की परवाह किये बिना लक्ष्मी कोठारिन से आकृष्ट हो जाता है । उसकी मृत्यु के बाद उसका चेला रामदास भी लक्ष्मी से आकृष्ट होकर महंथ बनना चाहता है ।

इसके अतिरिक्त वासुदेव, नागा बाबा सुमरितदास, प्यारू, हीरू आदि अनेक छोटे-छोटे पात्रों का चयन करके रेणु ने मैला आँचल को एक सच्चे गाँव का रूप प्रदान किया है । जिस तरह छोटी-छोटी लहरों से एक बडी लहर उत्पन्न हो जाती है और किनारों को प्रभावित करती है उसी तरह ये छोटे छोटे पात्र किसी महान उद्देश्य को सामने रखकर गढ़े गये लगते हैं । इनके कार्यकर्ता बाहरी दृष्टि से यद्यपि गौण और अप्रमुख लगते हैं फिर भी समूचे उपन्यास की घटनाओं को रूपायित करने में और समस्याओं को सही सयानों में उद्घाटित करने में इनका बड़ा योगदान है । जैसे छुटपुटे रंगों से एक व्यापक रंग परिवेश की परिकल्पना की जाती है उसी तरह इन पात्रों का अस्तित्व इस उपन्यास को सार्थक बनाने में सहायक होते हैं ।

मैला आँचल के प्रमुख स्त्री पात्र

जैसे प्रत्येक पुरुष पात्र किसी न किसी स्वभाव या वर्ग विशेष का प्रतिनिधि बनकर आते हैं वैसे ही स्त्री पात्रों का चयन भी हुआ है । रेणु ने इसमें ममता को छोड़करअन्य पात्रों को ग्रामीण वातावरण में विकसित दिखाया है । प्रत्येक पात्र को स्त्री सहज बुद्धि और कमज़ोरियों से चित्रित किया जाता है । अशिक्षित होने के कारण ये ग्रामीण स्त्रियाँ पुरुषों के अधीन में जीवन बिताने केलिए बाध्य किये जाते हैं । हर पात्र अपनी परिस्थितियों में बुरी तरह जकडे हुए हैं ।

लक्ष्मी कोठारिन

लक्ष्मी कोठारिन का चित्रण मुख्यत: मेरीगंज के सामाजिक अध:पतन को दर्शाने केलिए किया जाता है । अनैतिकता और व्यभिचार से भरपूर मेरीगंज गाँव के मठ की दासिन है लक्ष्मी ।

वसुमतिया मठ के सेवक की पुत्री लक्ष्मी पिता की मृत्यु पर लड़ाई और मुकद्दमे के बाद महंत सेवादास के अधीन हो जाती है । उस वक्त महंत, वकील को यह विश्वास दिलाता है कि "वकील साहब, लछमी हमारी बेटी की तरह रहेगी[1] ।" लेकिन मठ में आते ही लक्ष्मी महंत सेवादास की वासना पूर्ति की साधना मात्र बन जाती है । "कहाँ वह बच्ची और कहाँ पचास बरस का बूढ़ा गिद्ध । रोज़ रात में लछमी रोती थी - ऐसा रोना कि जिसे सुनकर पत्थर भी पिघल जाय[2] ।" कभी सेवादास किसी दूसरे गाँव जाता, तो सेवादास का चेला रामदास उसे चैन से सोने नहीं देता । उसकी दशा बाघ के मुँह से छूटकर बिलार के मुँह में पड़नेवाले की सी हो जाती । परिणाम स्वरूप वह इतनी बीमार पड़ी कि मरते-मरते बची ।

मठ में आये प्रत्येक व्यक्ति लक्ष्मी से आकर्षित होता है । महंत सेवादास की मृत्यु के बाद नये महंत को चादर-टीका देने केलिए आये आचार्य गुरु और उसके साथ आये नागा बाबा भी लक्ष्मी को देखकर ललचाता है बाद में महंत बने रामदास लक्ष्मी को अपने कब्जे में करना चाहता है लेकिन असफल ही बनता है ।

बालदेव से असीम प्यार करनेवाली लक्ष्मी अपने बाग में कुटिया बनाकर बालदेव के साथ रहने लगती है ।

मन में आई बात को साफ-साफ प्रकट करने का धैर्य उसमें है । एक हद तक बदलती परिस्थितियों से उसे भली-भाँति जानकारी भी है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ 32
2. वही

अस्पताल खोलने के बारे में जब पंचायत बैठती है और जोतखीजी द्वारा इसका विरोध किया जाता है तो वह कहती है "जहाँ छोटी-छोटी बातों को लेकर इस तरह झगडे होते हैं, जहाँ आपस में मेल-मिलाप नहीं, वहाँ जो कुछ न हो वह थोड़ा है । गाँव के मुखिया लोग ही इसकेलिए सब से दोषी हैं । सतगुरु साहेब कहिन हैं - "जहाँ मेल तहाँ सरग है"।[1]

यों एक अशिक्षित ग्रामीण स्त्री की सारी कमज़ोरियों और गुणों से युक्त लक्ष्मी कोठारिन का चित्रण "मैला आँचल" के आरम्भ से अंत तक हुआ है । प्रमुख पात्र होने के नाते हर एक पाठक के मन में लक्ष्मी कोठारिन एक अच्छा स्थान प्राप्त कर लेती है । छोटी आयु में ही अपनी पवित्रता की बली देने केलिए वह मजबूर बन जाती है । फिर भी वह दूसरों को कभी दोषी नहीं समझती । सभी दोषों का कारण वह अपने ऊपर उठा लेती है । ऐसे एक पात्र के प्रति पाठक के मन में करुणा की भावना उत्पन्न होना स्वाभावि है । वह विद्रोह करना ज़रूर चाहती है लेकिन परिस्थितियों से गुलाम बनकर वह कुछ भी नहीं कर पाती । जब उसको जीवन साथीके रूप में बालदेव की सहायता प्राप्त होती है तब वह सब छोडकर उसके साथ जीवन शुरू कर लेती है ।

इस तरह लक्ष्मी कोठारिन का जीवन महंत की दासी के रूप में शुरू होकर सभी प्रकार की गन्दगियों से गुज़रते हुए अंत में वैवाहिक सूत्र के बंधन में सार्थकता का अनुभव करता है ।

मंगला देवी

मंगलादेवी के चित्रण मे लेखक का उद्देश्य राजनीतिक नेताओं का विशेषकर कांग्रेसी नेताओं का खोखलापन स्पष्ट कर देना होता है । वे यह भी

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आंचल, पृ.36

दिखाना चाहते हैं कि रूपहीन और रंगहीन होने पर भी अगर स्त्री है तो पुरुष की वासना से वह सदा पीड़ित ही रहेगी ।

पटना से आयी मंगलादेवी द्वारा चर्खा केन्द्र खोला जाता है । मनुष्य के पशुत्व का रूप समीप से देखी गयी मंगलादेवी अपनी राय यों प्रकट करती है "अबला नारी हर जगह अबला ही है । रूप और जवानी ? नहीं, यह भी गलत । औरत होना चाहिए, रूप और उम्र की कोई कैद नहीं । एक असहाय औरत देवता के संरक्षण में भी सुख चैन से नहीं सो सकती।"[1]

सामाजिक और अन्य परिवर्तनों के बावजूद भी समाज में अबला नारी का जीवन पहले का जैसा ही हुआ करता है । करघा मास्टर टुनटुन जब अपनी इच्छा पूर्ण नहीं कर पाता तो मंगलादेवी का एक दर्जन मर्दों से संबन्ध की झूठी कहानी का प्रचार करता है ।

मंगला देवी की बीमारी के साथ ही कालीचरन से उसका लगाव भी गहरा बन जाता है । पहले सोशलिस्ट पार्टी के कार्यालय में रही मंगला देवी बाद में कालीचरन के घर की आंगन में रहने लगती है । डकैती के झूठे आरोप से गिरफ्तार बनकर कालीचरन के जेल जाने के साथ ही मंगलादेवी के सपने का महल धराशयी बन जाता है ।

आदि से अंत तक मंगलादेवी का जीवन दुःख से भरा हुआ दिखाई पड़ता है । न वह अबलाश्रम में शांति से जी सकी न उसके साथ देने केलिए तैयार कालीचरन के साथ । यहाँ एक अबला नारी का दुःख से पूर्ण जीवनगाथा ही रेणु ने प्रस्तुत की है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ.206

कमला

उपन्यास का प्रमुख पात्र डॉ॰ प्रशान्त की प्रेयसी होते हुए भी कमला का उपन्यास में महत्वपूर्ण स्थान नहीं है ।

तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद की दुलारी बेटी कमला "हिस्टीरिया से पीड़ित थी । डाक्टर की चिकित्सा से रोगमुक्त बनी कमला और डाक्टर का सम्बन्ध अब डाक्टर और रोगी का न होकर प्रेमी-प्रेमिका का बन जाता है यह संबन्ध इतना तीव्र बन जाता है कि आधी रात तक वे एक साथ बैठकर बातें करते रहते हैं । कमला की माँ बाप कभी इस मेल-मिलाप का विरोध भी नहीं करते । हेल-मेल इतना बढ़ जाता है कि कमला गर्भवती बन जाती है । चलित्तर कर्मकार के दल से सम्बन्ध के बहाने डॉक्टर पकड़ा जाता है । कमला एक पुत्र को जन्म देती है । डॉक्टर की जेल मुक्ति के बाद दोनों का मिलन भी संभव हो जाता है ।

उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक "मैला आँचल" में कमला का चित्रण बिखेर पड़ा है । यह एक आदर्श रूप नहीं हो सकता । स्त्री-सहज लज्जा और मर्यादा के बिना डाक्टर के साथ घूमती कमला का चित्रण "मैला आंचल" जैसे ग्राम जीवन प्रधान उपन्यास में अतिरंजना पूर्ण लगता है ।

ममता

उपन्यास के मंच पर अल्पकाल केलिए आकर पाठक को अपनी ओर आकर्षित करनेवाली है ममता । डॉ॰ प्रशान्त के मेरीगंज में मलेरिया पर शोध करने के निश्चय का स्रोत ममता है ।

प्रशांत के प्रति नि:स्वार्थ प्रेम रखनेवाली ममता के मन में हमेशा यही शंका रहती है कि कहीं प्रशांत देहाती वातावरण से अपने को ढाल सके या नहीं । डॉ• प्रशान्त के मन में ग्रामीण वातावरण से मोह बढ़ाने हेतु वह शहर की कुत्सित पहलू पर प्रकाश डालते हुए लिखती रहती है ।

प्रशांत जब यह कहता है कि वह अपने रिसर्च को असफल होने की घोषणा करनेवाले हैं तो ममता अपनी राय यों प्रकट करती हैं "कोई रिसर्च कभी असफल नहीं होता है डॉक्टर । तुमने कम-से-कम मिट्टी को तो पहचाना है । मिट्टी और मनुष्य से मुहब्बत ! छोटी बात नहीं ।"[1] लेखक ममता के इस रूप में "शरत बाबू के उपन्यासों की नारी"[2] ही पाते हैं । "ममता के द्वारा प्रकट होनेवाला मूल्य, जो समग्र कथा को तेजोबलियत कर देता है, न तो पूर्व का है न केवल पश्चिम का, वह समस्त मानव जाति का है, सार्वत्रिक है[3] ।"

डॉ• प्रशान्त के वैयक्तिक जीवन की भिन्न भिन्न कड़ियों को क्रमबद्ध करने हेतु सृजित पात्र है ममता का ।

भावना के लोक में जीने पर भी धरती की सच्चाइयों का ज्ञान रखनेवाली ममता जैसे पात्र की सृष्टि रेणु जैसे महान लेखक की कुशलता से ही संभव हो सकती है ।

<u>अन्य स्त्री पात्र</u>

"मैला आँचल" के अन्य स्त्री पात्रों में पार्वती की माँ, फुलिया,

---

1• फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ•401

2• वही, पृ•408

3• डॉ• रामदरशमिश्र तथा डॉ•ज्ञानचंद गुप्त(सं)-हिन्दी के आंचलिक उपन्यास,पृ

राम पियरिया आदि हैं ।

पार्वती की माँ को गाँववाले डाइन ही समझते हैं । लेकिन प्यार की मूर्ति पार्वती की माँ डॉ• प्रशान्त और लक्ष्मी बहुत प्यार करती है । अंत में हीरू द्वारा उसकी मृत्यु की जाती है ।

जवान बेवा फुलिया गाँव के अनेक लोगों से अनैतिक सम्बन्ध रखनेवाली है । सहदेव मिसर के गुप्त सम्बन्ध रखनेवाली फुलिया खेलावन और उसके बाद पेटमानजी के साथ भी रास रचाती है । गाँव के स्वच्छन्द वातावरण को प्रदूषित करनेवाली के रूप में ही फुलिया का चित्रण हुआ है ।

लक्ष्मी के बाद कोठारिन बननेवाली है रामपियरिया । रंजूदास की स्त्री अपने वाक् वैभव के कारण सभी का ध्यान आकर्षित करने में सफल निकलती है ।

इन पात्रों के माध्यम से "रेणु" ने विशेष भूमिकाओं को निभाने की कोशिश की है जो अंततोगत्वा उपन्यास के स्वरूप को संपूर्णता प्रदान करती है हल्के रंगों से चित्रित किये जाने पर भी इन पात्रों का महत्व प्रमुख पात्रों से कम नहीं लगता । "मैला आँचल" जैसे उपन्यास केलिए ये अप्रमुख पात्र भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने इसके महत्वपूर्ण पात्र । ग्राम जीवन की विविधता और उसकी बहुमुखता इन्हीं पात्रों के द्वारा अभिव्यक्त होती है ।

उपन्यास के विविध आयाम

सामाजिक आयाम

"मैला आँचल" में चित्रित समाज परम्परागत मूल्यों के स्थान पर नवीन मूल्यों को आत्मसात करनेवाला दृष्टिगत होता है ।

परंपरागत जीर्ण समाज की "दरार पड़ी दीवार । यह गिरेगी । इसे गिरने दो । यह कब तक टिका रह सकेगा ?" आज़ाद भारत के प्रारंभ में ही लोगों के चिंतन में ऐसा परिवर्तन आने लगा है । सामाजिक परिप्रेक्ष्य में आये परिवर्तनों ने ग्राम-जीवन की मूल्यवत्ता को तोडा मरोडा है ।

प्रेम और सौहार्द, वैमनस्य और शत्रुता में बदलता है । जाति-पाँति की भावना से पीडित समाज के लोग अनेक टोलियों में विभक्त है । यादव, राजपूत और ब्राह्मण टोली के लोग अपने को एक दूसरे के ऊपर दिखाने का प्रयत्न करते रहते हैं । बालदेव जैसे सुराजी के गाँव में रहनेवाले यादवों को अपनी जाति की इज्जत बढ़ती हुई प्रतीत होती है । ग्वाला होकर लीडरी करनेवाले बालदेव से ब्राह्मण और यादव हमेशा असन्तुष्ट रहते हैं ।

समाजवाद से प्रभावित कालीचरन जैसे आधुनिक पीढ़ी के युवा लोग जाति-पाँत की अवहेलना करना शुरू कर देते हैं । यादवकुल में जन्म लेकर भी वह चमार टोली में जा कर भात भी खा लेता है ।

औरों से अपनी जातियों को अधिक श्रेष्ठ समझनेवाले ब्राह्मण और राजपूतों के बीच भी मतभेद हैं । ब्राह्मण लोग राजपूतों को अपने अनुकूल बनाए रखने केलिए उन्हें धमकी देते रहते हैं कि अगर राजपूतों ने अपना साथ न दिया, तो ग्वालों को राजपूत मान लेंगे । इसके पीछे और एक घटना भी घटित हुई थी कि स्वाधीनता के पूर्व काल में यादव, गहलोत आदि जातियों ने जनेऊ धारण करके अपने को क्षत्रिय घोषित किया था । लेकिन इन लोगों को क्षत्रीय मानने केलिए राजपूत तैयार नहीं होते हैं ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ.230

मेरीगंज में कायस्थों का भी महत्व है । राजपूतों और कायस्थों में पुश्तैनी झगड़ा चलता रहता है । राजपूत कहते हैं कि "मरा हुआ कायस्थ भी बिसाता है ।" इसी प्रकार कायस्थ भी राजपूतों पर विश्वास करने केलिए तैयार नहीं होते ।

यों आपसी शत्रुता और मतभेद के कारण मेरीगंज का समाज प्रदूषित रहता है ।

समाज में नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय रही है । "जब जिसका मन हुआ किसी की रखेलिन बन गई, दासिन बन गई, रंडी बन गई । खेल है ?[2]" उस समाज में नारी केवल भोग का साधन मात्र रह जाती है । लड़की की दवा-दारू केलिए एक पैसा भी खर्च करने केलिए लोग तैयार नहीं होते । "लड़की की जात बिना दवा-दारू के ही आराम हो जाती है[3]।"

गरीबों की जवान बेटियाँ आजीविका केलिए व्यभिचार को पेशा बनाने में कभी हिचकते नहीं। अज्ञान के अन्धकार में पड़े समाज में नारी की इस दीन स्थिति का कारण आर्थिक स्वावलम्बन का अभाव भी है । गाँव की भोली-भाली स्त्रियाँ दूसरों से ठग भी जाती है ।

गरीबी के गर्त में पड़े मेरीगंज "गाँव के लोग बड़े सीधे दीखते हैं, सीधे का अर्थ यदि अपढ़, अज्ञानी और अन्धविश्वासी हो तो वास्तव में सीधे हैं वे । जहाँ तक सांसारिक बुद्धि का सवाल है, वे लोगों को दिन में पाँच बार ठग लेंगे[4]।"

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ.30
2. वही, पृ.306
3. वही, पृ.184
4. वही, पृ. 69

इस प्रकार यहाँ के लोग अपढ़, मूर्ख, ईर्ष्या द्वेष से संग्रथित, कुंठाओं और ग्रंथियों में उलझे हुए तथा कामुकता और भ्रष्टाचार के सबल पंजों में बुरी तरह जकड़े हुए हैं। स्वार्थ-लाभ हेतु दूसरों को हानि पहुँचाना ये कभी बुरा नहीं समझते।

नैतिक आयाम

स्वाधीन भारत में परम्पराओं के विरोध और मूल्यों के अवमूल्यन के फलस्वरूप गाँव की नैतिक मान्यताओं में भी परिवर्तन लक्षित होता है। "आज का युवा-वर्ग मुक्त संभोग की छूट नहीं वरन् मुक्त सम्बन्धों की छूट चाहता है। सेक्स को लेकर मन में कुण्ठाएँ पालना एवं सतीत्व या कौमार्य का नष्ट जाने जैसी बात सोचना निरर्थक मानता है।[1]" गाँव में तहसीलदार की पुत्री कमला से लेकर मठ के साधुओं तक की दशा यही रहती है।

मेरीगंज गाँव का जीवन अनैतिकता और व्यभिचार से भरपूर दिखाया गया है। वहाँ का मठ अनैतिकता का अड्डा ही बनकर रह जाता है और मठ की कोठारिन लक्ष्मी पर एक नहीं तीन-तीन महंत अपनी महंती का अधिकार जताते हैं। पुराने महंत के स्थान पर आये नये महंत रामदास रात के वक्त चुपचाप लक्ष्मी के पास जाता है और धक्कों से गिर जाता हैं। उसके खीझ भरे वाक्य में उसकी अनैतिकता स्पष्ट झलकती है "कैसी गुरुमाई ? तुम मठ की दासिन हो। महंत के मरने के बाद नये महंत की दासी बन कर तुम्हें रहना होगा। तू मेरी दासिन है।[2]" हिन्दुओं के धार्मिक केन्द्र, मठों की ही दशा ऐसी घृणित है तो गाँव के सामान्य लोगों से, जो

1· डॉ· हेमन्द कुमार पानेरी - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण, पृ·185

2· फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ·150

अज्ञानता के अंधकार में बुरी तरह फंसे हुए हैं, से किस सदाचार की आशा की जा सकती है ? गाँव की नैतिकता का रूप बहुत कुछ मटमैला बन जाता है और परिणाम स्वरूप "...... तहसीलदार साहब की बेटी चाँदनी रात में कोठी के बगीचे में डागडर के हाथ-में-हाथ डालकर घूमती है । तहसीलदार हरगौरीसिंह अपनी गाम मौसेरी बहन से फंसा हुआ है बालदेवजी कोठारिन से लटपटा गए हैं । कालीचरन ने चर्खा स्कूल की मास्टरानी को अपने घर में रख लिया है[1] ।"

ततमा टोली की फुलिया का सहदेव मिश्र से अनैतिक सम्बन्ध है । होली के दिन मायके आई हुई विवाहिता फुलिया के साथ वह रात बिताता है

तहसीलदार की पुत्री कमला और डाक्टर एक दूसरे से इतने हेल-मेल करते हैं कि कमला विवाह के पूर्व ही गर्भवती बन जाती है । विवाह जैसे कार्यों में अपने संस्कार को अधिक प्रमुखता देनेवाले लोगों के बीच अब उसकी च्युति ही दृष्टिगत होती है । विवाह पूर्व गर्भधारण को पाप समझेवाले समाज में अब ऐसा कार्य साधारण सा बन जाता है ।

महंत वर्ग के बीच या उच्च वर्ग के बीच में ही नहीं समाज के नेता लोगों के बीच में भी यह उच्छृंखलता उतनी ही सीमा में व्याप्त है । बालदेव गाँधी विचारधारा से प्रभावित होकर भी लक्ष्मी से आकृष्ट है और कालीचरण मंगलादेवी से । बावनदास भी कभी कभी अपनी वासना का शिकार बन जाता है । चन्दनपट्टी के आश्रम में सोती हुई तारादेवी को देखकर "वह इस औरत के कपडे को फाडकर चित्थी-चित्थी कर देना चाहता है । वह अपने तेज नाखूनों से उसके देह को चीर-फाड डालेगा । वह चीखें सुनना चाहता है[2] ।" लेकिन उसकी वासना पर बुद्धि जीत लेती है ।

1· फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ·221

2· वही, पृ·174

इन्हीं चित्रणों के माध्यम से रेणु पतनोन्मुख नैतिकता का चित्रण करते हैं। उपन्यास के पात्रों को देखकर पाठक के मन में यह सन्देह उत्पन्न होता है कि क्या मेरीगंज में केवल ऐसे लोग ही रहते हैं जिनके जीवन में नैतिक सभ्यता रंज मात्र केलिए भी नहीं है ?

उपन्यास में लेखक मठ की कलंकपूर्ण गाथा पर विशेष महत्व देते हैं। यह सच ही है कि सुविधा पूर्वक जीवन बितानेवाले ऐसे मठों के महंत प्राय: व्यभिचार के शिकार बन जाते हैं। लेकिन समाज ऐसे नैतिक और धार्मिक पतन को कभी माफी नहीं देता। "मैला आंचल" में लेखक मठ के व्यभिचार का अतिरंजना पूर्ण वर्णन करते हैं। जहाँ एक ओर कालीचरण के साथी मिलकर लारसिंहदास और नागा बाबा को भगाते हैं तो दूसरी ओर ततमा टोली की पंचायत की अनुज्ञा पर रामपियारी को रखैलिन के रूप में रखता है। जिससे लगता है कि पंचायत ही व्यभिचार का मौका प्रदान कर देता है। "लेखक ने धार्मिक व्यभिचार ~~व्यभिचार~~ एवं भ्रष्टाचार की "टाइपोलौजी" को मनमाना विस्तार दे दिया है जो उपन्यास के एक आवश्यक परिप्रेक्ष्य के रूप में महत्वपूर्ण है परन्तु यथार्थ की दृष्टि से बहुत कमज़ोर है।[1]"

वैसे ही निम्न वर्ग की नारियों के प्रति आँख बंद करके चारित्रिक पतन का दोष लगाना समीचीन नहीं लगता। ऐसा एक ज़माना ज़रूर था कि ज़मीन्दार छोटी जाति के इज्जत का कोई ख्याल नहीं रखते थे। लेकिन आज़ादी के आस-पास इस स्थिति में परिवर्तन आ गया है। निम्न जाति के लोग धन-दौलत से भी अधिक महत्व अपनी इज्जत को ही देते हैं। इसी वजह से "मैला आंचल" में चित्रित नैतिक पतन का वर्णन अविश्वसनीय बन जाता है।

---

1 डॉ॰ इन्द्रप्रकाश पाण्डेय - हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन-सत्य, - पृ॰154

आर्थिक आयाम

"मैला आँचल" का कथानक-काल आज़ादी के केवल आठ-नौ महीने बाद तक का है । इस समय देश के सामने पुनर्निर्माण का प्रश्न एक भीषण चुनौती के रूप में प्रस्तुत था । देश विभाजन और परिणाम स्वरूप हुए सामाजिक और आर्थिक विभीषिकाओं की लपेट में देश बुरी तरह जकडा हुआ था ।

"मैला आँचल" का गाँव आर्थिक दृष्टि से बहुत पिछडा हुआ रहा है । रोग और अभाव से ग्रस्त ग्रामीणों की दशा बहुत दयनीय रही । गाँव में आये डॉ॰ प्रशान्त इस दर्दनाक स्थिति को देखकर दुःखी बन जाता है । "आम से लदे हुए पेड़ों को देखने के पहले उसकी आँखें इन्सान के उन टिकोलों पर पड़ती है, जिन्हें आम की गुठलियों के सूखे गूदे की रोटी पर जिन्दा रहना है ....।"[1] बेकारी की इस स्थिति में सिसकने के सिवाय लोगों के समक्ष और कोई राह ही नहीं होती ।

भारत सरकार द्वारा विशिष्ट योजनाओं की रूपरेखा भी तैयार नहीं की गयी होगी । लेकिन भारतीय गाँवों की ओर गाँधीजी का विशेष रूप से आकर्षण रहा । मेरीगंज में भी चर्खा सेण्टर खुला जाता है । यह कुटीर उद्योग का प्रथम चरण है । गाँव से गरीबी हटाने केलिए ऐसी आर्थिक योजनाओं की शुरुआत होती है ।

कृषि के क्षेत्र में ज़रूर यन्त्रीकरण की प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती है । गाँव में सबसे पहले तहसीलदार ही पम्पिंग सेट और ट्रैक्टर खरीदनेवाले हैं ।

1· फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ॰228

पम्पिंग सेट के प्रयोग से गाँव की सिंचाई और फलस्वरूप कृषि के क्षेत्र में विकास का सपना देखनेवाला सुमरितदास बेतार यों कहने लगता है "पानी का पम्पू आवेगा । इन्दर भगवान की खुशामद की ज़रूरत नहीं । कमला नदी में पम्पू लगा दिया, मिसिन इस्टाट कर दिया और हथिया सूँड की तरह सब पानी सोखकर खेत पटर देगा[1] ।" सारे गाँव में तहसीलदार के जैसे एक दो व्यक्तियों को ही इस तरह की मशीनें खरीदने की आर्थिक स्थिति रहती है । साधारण जनता केलिए यह अपनी सोच की परे की बात रहती है । इसका कारण आर्थिक अभाव ही है ।

कानून से "ज़मीन्दारी प्रथा खतम हो गई । अब ज़मीन्दार ज़मीन से बेदखल नहीं कर सकता । जो जोतेगा ज़मीन उसकी है[2] ।" अब बड़े बड़े किसान अपने को ज़मीन्दार न कहला कर किसान कहलाना अधिक पसन्द करते हैं । "जिला का सबसे बड़ा किसान है भोला बाबू,। तीस हज़ार बीघा ज़मीन है[3] ।" लेकिन ये लोग अब भी शोषण करते हुए दिखाई पड़ते हैं । "सैकड़ों बीघे ज़मीन वाले किसानों के पास पैसे हैं, पैसे से गरीबों को खरीदकर, गरीबों के गले पर गरीबों के ज़रिये ही छुरी चलाते हैं[4] ।" बैलों की तरह दिन रात काम करनेवाले निरीह लोग इस शोषण को अपनी भाग्य की बात सोचकर आश्वस्त हो जाते हैं ।

लेकिन आज़ादी के समय हुए राजनीतिक हलचलों के फलस्वरूप ग्रामीण मानसिकता में परिवर्तन लक्षित हो जाता है । अब वे शोषण को सह नहीं पाते । अब यह बिरादरी या धर्म का प्रश्न नहीं होकर गरीब और

1· फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ·390

2· वही, पृ·227

3· वही, पृ· 94

4· वही, पृ·222

धनी के बीच आर्थिक संघर्ष की प्रक्रिया रह जाती है । समाजवादी अर्थ-व्यवस्था से प्रभावित ग्रामीण लोगों में एक नई स्फूर्ति का संचार होता है । "जिस तरह सूरज का डूबना एक महान् सच है, पूँजीवाद का नाश होना भी उतना ही सच है । मिलों की चिमनियाँ आग उगलेंगी और उन पर मज़दूरों का कब्ज़ा होगा । चारों तरफ लाल धुँआ मँडरा रहा है । उठो, किसानों के सच्चे सपूतो । धरती के सच्चे मालिकों, उठो ! क्रान्ति का मशाल लेकर आगे बढ़ो[1] ।" "मैला आँचल" में पूँजीवाद के पतन की शंख ध्वनि फूँकी जाती है । कालीचरन लोगों को समझा रहा है कि "ज़मीन किसकी? जोतनेवालों की ! जो जोतेगा वह बोयेगा, जो बोयेगा वह काटेगा । कमानेवाला खायेगा, इसके चलते जो कुछ हो[2] ।" खेतिहर-मज़दूर भी अपनी हक की ओर जागृत होकर शोषण के खिलाफ वार करने लगता है रामकिरपाल सिंह को उसका हलवाहा कह देता है कि मज़दूरी के बिना वह काम नहीं करेगा यों ग्रामीणों का अधिकार बोध और भी जागरूक हो जाता है ।

आज़ादी के पश्चात् नगरोन्मुखता खूब उभर कर आने लगती है । अपनी रोजी-रोटी केलिए गाँव से मज़दूरी की खोज में लोग शहर की ओर प्रस्थान करने लगते हैं । सुमरितदास गाँववालों को एक जूट का मिल खुलने का समाचार देता है "कटिहार में एक जूट मिल और खुला है । तीन जूट मिल ? चलो दो रुपया मज़दूरी मिलती है । गाँव में अब क्या रखा है[3] ।" भूख के मारे छटपटानेवाले लोगों के आगे किसी न किसी तरह दो पैसे कमाने की चिन्ता प्रमुख रहती है । बेकारी की समस्या से पीड़ित ग्रामीण जनता के आगे गाँव छोड कर नगर जाने की इच्छा इसलिए रूढ़मूल बन जाती है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ.134
2. वही, पृ.130
3. वही, पृ.390

"मेरीगंज" गाँव की आर्थिक स्थिति को यों ठीक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है ।

राजनीतिक आयाम

स्वाधीनता पूर्व गाँव राजनीतिक हलचल से अछूता नहीं रह जाता है । प्राय: सभी राजनीतिक दलों का उद्भव और विकास ग्रामीण वातावरण में ही होता है । साहित्य और इतिहास के पृष्ट गाँव के महत्वपूर्ण योगदान और बलिदान की कहानियों से अलंकृत है ।

"मैला आँचल" के मेरीगंज गाँव स्वाधीनता के संग्राम-स्वर-से बडे मुखर है । वहाँ के शिक्षित और अशिक्षित स्वाधीनता के महत्व से अनभिज्ञ नहीं है । सारा गाँव विभिन्न पार्टियों में विभक्त होकर स्वाधीनता प्राप्ति केलिए प्रयत्नरत रहते हैं ।

गाँधीवादी विचारधारावाला चन्नन पट्टी का बालदेव विभिन्न सभाओं और जुलूसों के आयोजन से ग्रामीण जन जीवन को राजनीतिक गतिशीलता प्रदान कर देता है । काँग्रेस पार्टी की 'फील्ड आर्गेनाइज़र' बननेवाला बालदेव को कई बार जेल भी जाना पड़ता है । "..... लेकिन पियारे भाइयो, हमने भारत माता का नाम, महतमाजी का नाम लेना बन्द नहीं किया । आखिर हारकर जेलखाना में डाल दिया । आप लोग तो जानते ही है कि सुराजी लोग जेहल को क्या समझते हैं - "जेहल नहीं ससुराल यार हम बिहा करन को जायेंगे ।" जेल में भी अंग्रेज़ सरकार के द्वारा तरह तरह की पीडाएँ उसे सहनी पडती है ।

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ.38

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् बालदेव का शिष्य कालीचरण द्वारा गाँव में सोशलिस्ट पार्टी की नींव डाली जाती है । युगों से पीड़ित, दलित और उपेक्षित लोगों का नेता कालीचरण लोगों के दिलों में आग जगा कर उन्हें अपनी हक की लडाई लडने केलिए उजागर कर देता है । वह गाँव में इंकलाब का स्वर गूँजा देता है।¹ "यह जो लाल झंडा है, आपका झंडा है, जनता का झण्डा है, अवाम का झण्डा है, इन्कलाब का झण्डा है । इसकी लाली उगते हुए आफताब की लाली है, यह खुद आफताब है । इसकी लाली, इसका लाल रंग क्या है ? रंग नहीं । यह गरीबों, महरूमों, मज़लूमों, मज़बूरों, मज़दूरों के खून में रंगा हुआ झंडा है ।" यों निम्न वर्ग के लोग लाल झण्डे की ओर आकर्षित हो जाते हैं । गाँव में किसान-सभा का आयोजन करने में कालीचरण सफल सिद्ध होता है । संथाल लोगों में नई चेतना जगाने का कार्य भी इससे संभव होता है । फलस्वरूप सरकार द्वारा वैधानिक तौर पर ज़मीन्दारी उन्मूलन घोषित किया जाता है । दलगत स्वार्थों से प्रभावित कालीचरण आम किसानों को सोचने की एक दिशा प्रदान करने के सिवा भूमिहीन किसानों केलिए कुछ नहीं कर पाता है ।

धर्म और संस्कृति के नारे लगाकर काली टोपीवाले लाठी-भाला चलाने की शिक्षा दे रहे हैं । हर गौरी सिंध उच्च वर्ग के लोगों की हित की सुरक्षा केलिए गाँव में जनसंघ की आवश्यकता अधिक ज़रूर समझनेवाला है

कम्यूनिस्ट पार्टी का प्रतिनिधित्व करनेवाले वलित्तर कर्मकार का चित्रण भी उपन्यास में है । वे संख्या में इतने कम हैं कि वे क्रियात्मक रूप से कुछ कर नहीं सके ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ.133

लेखक को किसी भी पार्टी पर भरोसा नहीं है । बावनदास की मृत्यु के चित्रण द्वारा रेणु का लक्ष्य यह रहा है कि गाँधीजी के प्रभाव स्वरूप जो जागरूकता लोगों में उत्पन्न हुई थी वह भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के कारण लोक मंगल के स्थान पर लोक विनाश का कारण बन गया है । बावनदास के ये वाक्य रेणु के अपने लगते हैं कि "सोसलिस ? सोसलिस ? क्या कहेगा सोसलिस हमको ? सभी पार्टी समान । उस पार्टी में भी जितने बडे लोग हैं, मंतरी बनने केलिए मार कर रहे हैं।[1]" सभी राजनीतिक पार्टी के लोग अब स्वार्थ-साधना से प्रभावित है और सभी सत्ता केलिए तरस रहे हैं ।

स्वाधीन भारत में एक अभिशाप के समान राजनीति में जातीयता और साम्प्रदायिकता का विकास दृष्टिगत होता है । मेरीगंज गाँव में जातिवाद की भावना का विकास राजनीतिक प्रभाव के परिणाम स्वरूप ही हुआ है । बावनदास इस जातिवाद की भावना के बारे में यों कहता है "यह बेमारी ऊपर से आई है । यह पटनियाँ रोग है । अब तो और धूम-धाम से फैलेगा । भूमिहार, रजपूत, कैथ, जादव, हरिजन, सब लड रहे हैं ।..... अगले चुनाव में तिगुना मेले चुने जायेंगे । किसका आदमी ज्यादे चुना जाय, इसी की लडाई है । यदि राजपूत पार्टी के लोग ज्यादा आये तो सबसे बडा मंतरी भी रजपूत होगा परसों बात हो रही थी आसरम में । छोटन बाबू और अमीन बाबू बतिया रहे थे, गाँधीजी का भसम लेकर ससांक जी आवेंगे । छोटन बाबू बोले, जिला का कोटा भसम जिला सभापति को ही लाना चाहिए । ...... संसांकजी क्यों ला रहे हैं । इसमें बहुत बडा रहस है । हा हा हा हा[2] ।"

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ.379
2. वही, पृ.378

यहाँ राजनीतिक नेताओं की कथनी और तो करनी और भी बात स्पष्ट झलकती है । अपने जोशीले भाषणों में जातिवाद, साम्प्रदायिकता आदि को विष बतानेवाले नेतागण हमेशा उसी विष में जिन्दा रहते हैं । ग्रामीण समाज का रग-रग जातिवाद की भावना से प्रभावित है ।

सभी पार्टी के लोग अपना निर्णय जाति के आधार पर ही लेते हैं । अपने को प्रगतिशील शक्तियों का पुंज कहलानेवाली सोशलिस्ट पार्टी के लोग भी कभी इसका अपवाद नहीं बनते हैं, गाँव की जाति विषयक जानकारी प्राप्त कर पूर्णिया जिले के सोशलिस्ट नेता वासुदेव, गंगाप्रसाद सिंह यादव को ही मेरीगंज में पार्टी के प्रचार हेतु भेज देता है क्योंकि वहाँ रहनेवालों में सबसे अधिक लोग यादव ही है ।

इस प्रकार स्वाधीन भारत की सभी राजनीतिक हलचलों से प्रभावित मेरीगंज गाँव का चित्रण रेणु ने प्रस्तुत किया है ।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयाम

विज्ञान और शिक्षा तथा परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था के परिणाम स्वरूप ग्रामीणों के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आ जाता है । अब धार्मिकता का ज्यों-के-त्यों बचे रहना असंभव सा हो जाता है । मठ और महंत धार्मिक अनैतिकता, बाह्याडम्बर आदि के अड्डे बन जाते हैं । "मैला आँचल" के मेरीगंज गाँव की स्थिति इसी का उदाहरण प्रस्तुत करती है ।

मेरीगंज गाँव में स्थित मठ बाह्याचार का उत्स है । महन्त सेवादास, लारसिंह दास, महन्त रामदास आदि बाह्याचार और अनैतिकता से जुड़े हैं । आन्तरिक भक्ति के स्थान पर इनके पास ठगई, झूठा प्रचार और

धार्मिक दिखावे के सिवा और कुछ नहीं है । महन्त सेवादास अन्धा होते हुए भी रखेलिन रखता है । लक्ष्मी के बिना उसका जीना दुष्कर हो जाता है । मुजफ्फरपुर के पुपड़े मठ से आये साधु रामसिंघदास और उसके गुरू नागा बाबा लक्ष्मी को पाने की फिराक में रहते हैं । सेवादास की मृत्यु के बाद मठ की गद्दी मिलने के झगडे के पीछे लक्ष्मी को पाने की लालसा ही कार्य करती है इस प्रकार ईश्वर-पूजा का स्थान गन्दगी का नरक बन जाता है । रामदास महन्त बनने के बाद रमपियरिया को अपनी रखैलिन के रूप में रखता है । "साला, इन्हीं लोगों के पाप से धरती डुलमला रही है भरस्ट कर दिया । अब वह मठ है ? लाल बाग मेला की मीना बाज़ार हो गया है । दस-दस कोस का लुच्चा-लफंगा सब आकर जमा होता है ।[1]" धार्मिक मठ-मन्दिर अब बाह्याडम्बर और भ्रष्ट नैतिकता के केन्द्र बन जाते हैं और धर्म की आड में व्यभिचार, गाँजा और शराब भी चलता है । जहाँ इस प्रकार के मठ और महन्त होंगे उस गाँव की ईश्वरीय आस्था और धार्मिकता की तो बात ही क्या है ।

मेरीगंज गाँव कदम-कदम पर भूतप्रेत सम्बन्धी कल्पनाओं और आधारहीन अन्धविश्वासों में फंसा हुआ है । डब्ल्यू. जी. मार्टिन की पत्नी मेरी की कब्र के पास से दिन के वक्त भी जाने का धैर्य आज भी वहाँ के लोगों में नहीं है । ततमाटोले के नन्दलाल का अनुभव ये लोग जानते हैं । "ततमा टोले का नन्दलाल एक बार ईंट लाने गया था; ईंट में हाथ लगाते ही खत्म हो गया था । जंगल से एक प्रेतनी निकली और नन्दलाल को कोडे से पीटने लगी - साँप के कोडे से । नन्दलाल वहीं ढेर हो गया । बगुले की तरह उजली प्रेतनी[2] ।"

1· फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ·391

2· वही, पृ·16

अन्धविश्वासों में बुरी तरह जकड़े ये लोग पार्वती की माँ को डाइन समझते हैं और कहा करते हैं कि "वह राच्छसनी किसी को छोड़ेगी ? जिसको प्यार किया, उसको जरूर खायेगी ।"[1] इसी विश्वास के फलस्वरूप ही हीरू द्वारा पार्वती की माँ की मृत्यु की जाती है ।

मलेरिया और कालाज़ार से पीड़ित लोग इतने अन्धविश्वासी है कि गाँव में मलेरिया सेण्डर का खुलना, अस्पताल खुलना आदि कार्यों को वे शंका की दृष्टि से देखने लगते हैं । ब्राह्मण टोली का जोतखीजी यहाँ तक विश्वास करता है कि "डाक्टर लोग ही रोग फैलाते हैं, सुई भोंककर देह में जहर दे देते हैं, आदमी हमेशा केलिए कमज़ोर हो जाता है, हैजा के समय कूपों में दवा डाल देते हैं । गाँव का गाँव हैजा से समाप्त हो जाता है ।"[2] अज्ञान और अशिक्षा के कारण इनकी मानसिकता दूषित हो गयी है । इन अन्धविश्वासों और आधारहीन मान्यताओं के कारण ग्रामीण समाज टूट रहा है और विकासोन्मुख योजनाएं कार्यान्वित करने में बाधा भी पड़ती हैं ।

मेरीगंज अंचल के सांस्कृतिक जीवन को अभिव्यक्ति देने हेतु स्थानीय जीवन के अनेक लोक-उपादानों का प्रयोग "मैला आंचल" में किया जाता है । इस दृष्टि से उपन्यास में चित्रित लोक-कथाएं सबसे महत्वपूर्ण लगती है सुरंग-सदा-ब्रिज की कथा, कुमर विज्जेमान की कथा, लोरिका की कथा, कमला मैया की कथा, कौआ केथ की कथा आदि कथाएं विशेष महत्त्व रखती है । ये कथाएं युग-युगों से स्थानीय जीवन की मौज-मस्ती को मुखरित करती हुई आ रही है । सुरंगा-सदा-ब्रिज कथा के प्रसंग में सदा ब्रिज पर आसक्त स्त्री का कथन रेणु यों प्रस्तुत करते हैं -

---

1· फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आंचल, पृ·137
2· वही, पृ·21

सासु मोरा मरे हो, मरे मोरा बहिनी से,
मरे ननद जेठ मोर जी ।
मरे हमार सब कुल पलिबरवा से,
फसी गइली परेम के डोर जी ।

इतना कहकर वह सदाब्रिज के पास आई और पानी पिलाकर प्रेम की बातें करने लगी ।   आजु के रतिया हो प्यारे, यहीं बिताओ जी ।[1]" महंथूदास के घुर के पास इकट्ठे नर-नारी बड़े शौक से सुरंगा - सदाब्रिज की कथा का श्रवण करते हैं ।

लोकगीतों का सम्यक् प्रयोग "मैला आँचल" में किया जाता है । लोकगीतों का सम्बन्ध प्राय: किसी घटना या विशिष्ट अवसर से जुड़ा होता है । गाँवों में मनाये जानेवाले त्योहारों से लोक गीतों का अविच्छिन्न सम्बन्ध है ।

मेरीगंज के मुर्दा दिलों में गुदगुदी पैदा करनेवाला त्योहार है होली । आसिन कातिक के मलेरिया और कालाजार से टूटे हुए शरीर में फागुन की हवा संजीवनी फूंक देती है । ग्यारह महीने के दु:ख-दर्दों की पूर्ति एक महीने के रंग भरे महीने से वे कर लेते हैं । गाँव के नेता कालीचरण के साथ सुन्दरलाल, मंजीलाल, देवीदयाल और जोगीड़ा कहनेवाला महञ्आ आदि मिलकर गाने लगते हैं । गाँव के छोटे-छोटे दल भी कालीचरण के साथ मिल जाते हैं । वे होली के गीत गाते हैं -

"होली है । कोई बुरा न माने होली है !
बरसा में गड्ढे जब जाते हैं भर
बेंग हजारों उसमें करते हैं टर्र
वैसे ही राज आज कांग्रेस का है

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ.74

लीडर बने हैं सभी कल के गीदड
जोगीजी सर र र
जोगीजी, ताल न टूटे
जोगीजी, तीन ताल पर ढोलक बाजे
जोगीजी, नाक छिना छिन !
चर्खा कातो, खद्दर पहनो, रहे हाथ में झोली
दिन दहाडे करो डकैती बोलसराजी बोली
जोगिनी सर र र ।[1]"

इस गीत के माध्यम से तत्कालीन युग-बोध की अभिव्यक्ति प्रस्तुत की जाती है ।

होली के अलावा यहाँ मनाये जानेवाले अनेक पर्व है । सतुआनी का पर्व चैत सक्रान्ति के दिन मनाया जाता है । वैशाख में मनाये जानेवाला सिरवा पर्व के दिन घरों में चूल्हे नहीं जलाये जाते और गाँव के लोग एक साथ मिलकर मछली का शिकार करते हैं । गाँव का एक भी उत्सव ऐसा नहीं है जिसमें गीत-नृत्य का आयोजन न हो । "गीत और लोकजीवन के सम्बन्धों की गहराई को रेणु की पारखी आँखों ने भली प्रकार समझ लिया था और यही कारण है कि "मैला आँचल" में वे गीतों के इतने सार्थक प्रयोग कर सके[2] ।" उत्सव पर्वों से सम्बन्धित गीतों के अतिरिक्त विभिन्न नृत्य-गीत, ऋतु-गीत, पूजा-गीत और वैयक्तिक सुख-दुखात्मक गीतों की अभिव्यक्ति भी हुई है । एक ऋतु-गीत यह है -

"चढ़ली जवानी मोरा अंग अंग फडके से
कब होइहैं गवना हमार रे भउजिया ऽऽऽ[3] ।"

1· फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ·164
2· डाॅ· बंसीधर - हिन्दी के आँचलिक उपन्यास: सिद्धांत और समीक्षा, पृ·93
3· फणीश्वनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ·90

लोक-नृत्यों का सुन्दर चित्रण भी मैला आँचल में किया जाता है । वहाँ के विविध नृत्य हैं - जालिमसिंघ नाच, विदापत-नाच, ठेठर कंपनी-नाच, विदेसिया-नाच, बलचाही-नाच, संथाली-नाच आदि। विदापत-नाच में ग्रामीण समाज बडे उत्साह से भाग लेते हैं ।

"धिनागि धिन्ना, तिरनागि तिन्ना
धिनक धिनता तिटकत ग-द-धा !
आहे चलहु सखि मुख धाम, चलहु ।
आहे कन्हैया जहाँ सखि हे,
राम रचाओल हे ! चलहु हे चलहु ।
धिन्ना तिन्ना ना त्रि धिन्ना ।
आहे सिर बिरनाबन कुंज गलिन में
कान्हु चरावत धेनु,

आहे ! अब घिहे रहलो नि जाये, चलहु हे चलहु ।[1]"

मेरीगंज गाँव प्राचीन एवं नवीन संस्कृति का अद्भुत संगम-स्थल सा दृष्टिगत होता है । कालीचरन, बालदेव जैसे लोग नवीन दृष्टि के परिचायक हैं । मानवतावादी डॉक्टर प्रशान्त ग्रामीण वातावरण में सुधार लाने केलिए प्रयत्नरत रहता है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ.204

नये और पुराने विचारों का टकराहट भी मेरीगंज में दृष्टव्य है। शहरी वेशभूषा और खानपान का प्रभाव गाँव पर भी पड़ता है। शहरी प्रभाव के फलस्वरूप फुलिया के पहनने-ओढ़ने में परिवर्तन होता है। "साड़ी पहनने का ढंग, बोलने-बतियाने का ढंग, सब-कुछ बदल गया है। तहसीलदार साहब की बेटी कमली अँगिया के नीचे जैसी छोटी चोली पहनती है, वैसी वह भी पहनती है। कान में पीतल के फूल है। फूल नहीं फुलिया कहती है - कानपासा। आँचल में चाबी का गुच्छा बाँधती है, पैर में शीशी का रंग लगती है।[1]" शहरी सभ्यता का प्रभाव ग्रामीण जीवन के विविध स्तरों पर पड़ता है जिसके कारण प्राचीन संस्कृति में परिवर्तन होने लगता है।

मैला आँचल की भाषा

आँचलिक उपन्यासों में स्थानीय भाषा और बोली का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। मेरीगंज गाँव मैथिली भाषा का अंचल है और उपन्यास में प्रयुक्त भाषा उनके अनुसार कचराही बोली है। यह उपन्यास रेणु का पहला प्रयोग होने के कारण शैली की दृष्टि से इस उपन्यास को किसी उपन्यास परम्परा में नहीं रख सकते हैं। अभी तक अपरिचित बहुत कुछ इस उपन्यास में हैं और इस सर्वथा नये प्रयोग के कारण "मैला आँचल" को आँचलिक उपन्यास के रूप में प्रतिष्ठा भी प्राप्त होती है। भाषा का प्रयोग ही वह नवीनता है जिसके कारण "मैला आँचल" उस विशेषण का पात्र बन जाता है। "मैला आँचल" के साथ ही इस उपन्यास की भाषा सम्बन्धी वाद-विवादों का जन्म भी होता है मेरीगंज के ग्रामीण यथार्थ को उसकी संपूर्णता के साथ चित्रित करने पर रेणु विशेष ध्यान देते हैं फलस्वरूप "वे सर्जनात्मक अनिवार्यता की लक्ष्मण रेखा को

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ.218

लांध चमत्कारी-प्रदर्शन प्रवृत्ति तक पहुंच गये हैं ।[1]" भाषा को अंचल के अनुरूप बनाने हेतु रेणु शब्दों को तोड-मरोड कर रख देते हैं । स्थानीय शब्दों के साथ उर्दू और अंग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग भी किया गया है । अनेक स्थानीय शब्दों के अर्थ पाद-टिप्पणियों में दिये गये हैं । उदाहरण केलिए -
आगिनवाली-पत्नी §पृ·43§ गोर - समाधि §पृ·58§ बिलटा - आवारा §पृ·81§ रमना - चरागाह §पृ·396§ आदि ।
उपन्यास में प्रयुक्त उर्दू शब्दों के कुछ उदाहरण ये हैं जाफरा §41§, शामियाना आवाम §133§ आफताब §133§ दस्तारख़ §157§ आदि ।
अंग्रेज़ी के कई शब्दों का ठीक प्रयोग है साथ ही साथ विकृत प्रयोग भी है ।
जैसे - रेट §20§ टेबल §50§ ब्राइट §70§ लेट §103§ कम्पौड §224§ स्टाक§231 आदि ।
विकृत प्रयोग जैसे - मलेटरी §9§ डिस्टीबोट §31§ मोमेंट §48§ रिचरब §110§ इसपारमिन §246§ इसमिट §283§ आदि । अंग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग के सन्दर्भ में यह विशेष ध्यान देने योग्य है कि पहले इतने अंग्रेज़ी शब्द ग्रामीण जीवन में प्रचलित ही नहीं थे । कहीं कहीं लेखक द्वारा किये जानेवाले भाषिक प्रयोग ऊपर से थोपे हुए से लगते हैं और इसमें स्वाभाविकता का स्पर्श भी नहीं रह जाता ।

भाषा के स्तर को जन भाषा के निकट लाने के लक्ष्य से अनेक मुहावरों और कहावतों का प्रयोग भी किया गया है । जैसे - उल्लू बोलना §31§, काठ का उल्लू §80§ गधे के सिर पर सींग होना §132§ दांतों तले उंगली दबाना §247§ अन्धों में काना राजा §23§ जवान बेवा बेटी दुधार गाय के बराबर है §76§ आदि ।

1· डॉ· ज्ञानचन्द गुप्त - आंचलिक उपन्यास सम्वेदना और शिल्प, पृ·39

"मैला आँचल" में रेणु ध्वनियों, प्रतीकों एवं बिम्बों के संयोजन बड़े कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं । ध्वनि-संसार की उनकी पकड़ को देखकर डॉ॰ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ठीक ही कहते हैं "रेणु" के पास तो ध्वनि यंत्र है, जिनके माध्यम से उन्होंने इस अंचल की गायों की आवाज़, पेड़-पत्तों के हिलने की ध्वनि, नाक सिड़कने और छींकने की आवाज़ें, हंसुलियों और झांझनों के बजने, कंगनों की खनक तक मूर्त कर दी है ।[1]" कभी कभी लगता है कि लेखक इन ध्वनियों को पकड़ने केलिए टेप-रिकार्डर लेकर घूमते हैं । मृदंग की ध्वनि "धिन्ना धिन्ना धिन्ना तिन्ना तिन्ना"[2] सीटी की ध्वनि टू टू.... टू टू"[3] कोड़े बरसने की ध्वनि "शपाक ! शपाक् ! शपाक्"[4] जैसी अनेक ध्वनियों के माध्यम से उसका मूर्त रूप प्रस्तुत किया जाता है ।

उनकी लेखनी की और एक विशेषता है बिम्बों का चयन । प्रकृति वर्णन के वक्त उनका कवि हृदय जागृत हो उठता है और एक से एक काव्यात्मक चित्र से उपन्यास सजाया जाता है । इन वर्णनों की यही विशेषता है कि जिससे वर्ण्य-वस्तु का चित्र-बिम्ब प्रस्तुत हो जाता है । "मैला आँचल ! लेकिन धरती माता अभी स्वर्णांचल है । गेहूँ की सुनहली बालियों से भरे हुए खेतों में पुरवैया हवा लहरें पैदा करती हैं । सारे गाँव के लोग खेतों में हैं । मानों सोने की नदी में, कमर-भर सुनहले पानी में सारे गाँव के लोग क्रीड़ा कर रहे हैं[5] ।"

"मैला आँचल" के शैली के कई रूप देखने को मिलती है । प्रमुख रूप से वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग किया जाता है । इसके अतिरिक्त पत्रात्मक शैली, चेतना प्रवाह शैली, फोटोग्राफिक शैली आदि का भी सहारा लिया जाता है । "भाषा शैलियों के प्रयोगों, पात्रों की एवं कहीं कहीं

1· उद्धृतकर्ता - कुसुम सोफट: फणीश्वरनाथ रेणु की उपन्यास कला, पृ·32
2· फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ·99
3· वही, पृ·146
4· वही, पृ·178
5· वही, पृ·181

अपनी ही भाषा के लोकोच्चरित स्वरूप, तथा अंचलीय शब्दों के प्रयोग से लेखक यथार्थवाद का कलात्मक पुट दे कर विभिन्न प्रसंगों, चित्रणीय अंचल तथा पात्रों का जीवन्त चित्र उरेहित कर सकता है।[1]"

"मैला आँचल" में रेणु के सामने मेरीगंज गाँव का अंचल ही प्रधान रहा है। वहाँ के जीवन-व्यापार में बेहद रुचि के साथ ही साथ समूची मानवीयता के प्रति भी उनके मन में सहानुभूति की भावना लक्षित होती है। उपन्यास के हर तत्व में आंचलिकता लाने में उनकी यह दृष्टि सहायक भी सिद्ध होती है। मेरीगंज की मिट्टी मे रेणु के आत्मीय लगाव के कारण ही यह संभव हुआ है।

मैला आँचल उपन्यास पर कई तरह के दोष लगाये जाते हैं जैसे आंचलिकता के आग्रह से भाषा की तोड मरोड, अन्तहीन और असम्बन्ध कथा रचना आदि। फिर भी हिन्दी आंचलिक उपन्यास के क्षेत्र में रेणु का यह प्रयास सर्वथा प्रशंसनीय है और "मैला आँचल" श्रेष्ठ आंचलिक उपन्यास है

परती परिकथा (1957)

हिन्दी आंचलिक औपन्यासिक धारा के एक मोड के रूप में "परती परिकथा" का महत्वपूर्ण स्थान है। "यहाँ उनकी यथार्थ-दृष्टि अपने पिछले उपन्यास की अपेक्षा अधिक संतुलित तथा निरपेक्ष और उनकी चयन दृष्टि में भी अपेक्षाकृत अधिक कलात्मक प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं।[2]"

---

1. डॉ॰ सत्यपाल चुघ - प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि, पृ॰60।
2. डॉ॰ नगीना जैन - आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास, पृ॰159

"मैला आँचल" से भिन्न होकर लेखक की आँचलिक दृष्टि अधिक सम्पन्न और विकसित हो गई है । अभी तक क्षीण रही आँचलिक धारा को सजीव एवं सशक्त बनाने का कार्य "परती परिकथा" की रचना से संभव हुआ है ।

उपकथाओं के योग से बनी संयोजित बृहत् कथा ही परिकथा है । अर्थात् परिकथा केलिए उपकथाओं का होना आवश्यक माना जाता है । "परती परिकथा" में परानपुर परती की कथा अपनी समग्रता के साथ चित्रित है । इस परती की भूत, वर्तन और भविष्य की कथा इसमें समाहित है । कथानक की तीन भूमिकाएँ भी हैं । पृष्ठभूमि के रूप में लोक-गीतों का संगीत भरा कथानक अजीब सा प्रभाव पैदा करता है । दूसरी कथा जितेन्द्र मिश्र की कथा है । जितेन्द्र मिश्र के पिता शिवेन्द्र मिश्र की डायरी के पन्ने तृतीय धारा की भूमिका अदा करती है ।

अनेक उपकथाओं के बीचों बीच परानपुर गाँव की अनेक टोलियों की अपनी परम्पराओं, रूढ़ियों, राजनीतिक एवं सामाजिक ईर्ष्या-द्वेष, कुत्सित एवं संकुचित जीवन के चित्रणों के द्वारा परानपुर का चित्रण सजीव रूप मे उपस्थित हुआ है ।

धरती की कथा

"परती परिकथा" का आधार एक छोटे अछूते अंचल परानपुर है । यहाँ का जीवन इतना अस्थ-व्यस्थ है कि विध्वंस के साथ निर्माण के भी कई परिदृश्य एकदम उभारने लगते हैं ।

कथा सूत्र का उद्घाटन परती धरती के वर्णन से होता है । "धूसर, वीरान, अन्तहीन प्रान्तर । पतिता भूमि, परती ज़मीन, वन्ध्या धरती । " इस धरती को शायद कोसी मैया की बाढ़ ने ही परती बनाया होगा । "जिसकी बाढ़ में ग्राम की धरती ही नहीं सम्पूर्ण ग्रामीण जीवन समाप्त हो जाता है । पारस्परिक स्नेह, प्यार, अपनापन, तीज त्योहार की उमंगे, लोकगीतों की मधुर ध्वनि सब कुछ डूब जाता है । निराश मन, टूटे दिल और बुझे हृदय मानों जीवन में भी चारों ओर परती फैल जाती है[2] । " कोसी विकास योजना के साथ परानपुर गाँव में जीवन्तता का नयी स्फुरण उझलने लगती है ।

परती धरती की दुःख भरी गाथा गीत कथा के माध्यम से प्रस्तुत है । कोस की मैया का नैहर पच्छिम तिरहोत राज और ससुराल पूरब । मैया की झगड़ाही सास और ननदें गुणमन्ती और जोगमन्ती ने मिलकर उन्हें अपार कष्ट दिया । एक दिन बड़ी ननद ने बाप लगाकर गाली दी और दूसरी ने भाई से अनुचित सम्बन्ध जोड़कर कुछ कहा भी । मैया इसे सह नहीं सकी । वे अपने नैहर को भागी । उनके पीछे सास और ननद भी भागी । इस भाग-दौड़ में गाँव वीरान हो गए । असंख्य लोगों की मृत्यु हुई और सम्पूर्ण वातावरण अर्द्ध मृतकों की चीख से प्रकम्पित हो उठा । हरियाली नहीं के बार बर हो गयी और धरती परती हो गयी ।

परानपुर गाँव का परिचय रेणु यों देते हैं - "ग्राम-परानपुर, थाना रानीगंज, परगाना हवेली । परानपुर की प्रतिष्ठा सारे जिले में है । सबसे उन्नत गाँव समझा जाता है ।
किन्तु, जिस तरह बाँस बढ़ते-बढ़ते अन्त में झुक जाता है, उसी तरह यह गाँव भी झुका है । अब इस सब-डिविज़न भर के लोग यहाँ के

दस वर्ष के लड़के से भी बात करते समय अपना पाकेट एक बार टटोलकर देख लेते हैं । फारबिसगंज बाज़ार की किसी दुकान में चले जाइए, ज्यों ही मालूम हुआ कि परानपुर का ग्राहक आया है, दुकानदार अपनी बिखरी हुई चीज़ों को समेटना शुरू कर देता है । ट्रेन के चेकर जानते हैं, परानपुर के लोग टिकट लेकर गाडी में नहीं चलते । चार्ज करनेवाले चेकर को रोड़े और पत्थरों से भाडा चुकाते हैं ये[1] । परानपुरवालों की चारित्रिक विशेषताएँ इससे स्पष्ट झलकने लगती है ।

गाँव के विकासोन्मुख वातावरण का चित्रांकन भी परती परिकथा में है । परानपुर गाँव में सामंती वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाला एक उच्च वर्ग है । और सभी दृष्टि से इन पर आश्रित ग्रामीण वर्ग और नाम मात्र की खेती करनेवाला निम्न वर्ग ।

उपन्यास की प्रमुख कथावस्तु परानपुर भूमि से सम्बन्धित है । भारतीय ग्रामीण जनता के जीवन सम्बन्धी सारी पहलुएँ भूमि पर आधारित है । उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, मानसिक आदि समस्याएँ भूमि के चारों ओर घूमती है । इसी वजह से भूमि सम्बन्धी घटनायें जैसे ज़मीन्दारी उन्मूलन, लैंड सर्वे सेटिलमेंट आदि ग्रामीणों के जीवन में उथल-पुथल मचाती है । ज़मीन्दारी उन्मूलन के पश्चात् भी निर्धन भूमिहीन ग्रामीणों की दशा जैसे की तैसी रह जाती है । हिन्दुस्तान में, सम्भवत: सबसे पहले पूर्णिया जिले पर ही लैण्ड सर्वे ऑपरेशन का प्रयोग किया गया । जिले के ज़मीन्दार और राजाओं की जमींदारियों का विनाश अवश्य हुआ । किन्तु, हिन्दुस्तान के सबसे बडे किसान यहीं निवास करते हैं[2] ।

1· फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ·24

2· वही, पृ·31

दस हज़ार बीघे ज़मीन और दो-दो हवाई जहाज़ रखनेवाला गुरुबन्शी बाबू और पन्द्रह हज़ार बीघे ज़मीन और डेढ़ दर्जन ट्रैक्टर रखनेवाला भोल बाबू इस गाँव के ज़मीन्दार नहीं किसान सभा के सदस्य है ।

उपन्यास में भूमि संबन्धी और एक घटना है लैन्ट सर्वे सेटलमेंट । इसके साथ ही गाँव में अप्रत्याशित परिवर्तन होने लगता है । किसान और भूमिहीनों के बीच महा भारत मचता है । एक इंच भूमि केलिए लहू बहाने केलिए भी लोग कभी नहीं हिचकते । गाँव का हर बच्चा भी पक्की गवाही देना सीख लेते हैं । बाप-बेटे और भाई-भाई में दुश्मनी पैदा होती है । गाँव का वातावरण एक दम बदल जाता है । "सर्वे की आँधी में छलनी-जैसा आदमी का दिल-पीपल के सूखे पत्ते की तरह उड़ रहा है ।"[1]

उपन्यास का प्रमुख पहलू कोसी की पुनरुद्धान की गाथा है । पन्द्रह वर्षों के बाद गाँव लौटा जित्तन नवनिर्माण का कार्य शुरू करता है । परिवर्तन का पक्षधर जितेन्द्र वर्षों मे वीरान पडी परती धरती को उपजाऊ बनाना चाहता है । अभी तक अँधेरे में पडे ग्रामीणों के हृदय में नयी आशा, उमंग और आत्मबल प्रदान करने का प्रयास जित्तन करता है । इस प्रयास में उसे बहुत उल्टी-सीधी सुननी पडती है । पूरनियाँ की परती की डेढ़ सौ एकड के पाँच चक्र हैं । सैकडों वर्षों से वीरान पडी धरती पर जित्तन स्वयं ट्रैक्टर चलाता है और गुलाब का बाग लगाना चाहता है । जित्तन के इस प्रयास पर बेदखल किए गए किसान दल बाँधकर नारे लगाते और जित्तन को जालिम, मक्कार, गिरगिट आदि शब्दों से अपमानित करते हैं ।

लुत्तो, जो जित्तन के पिता द्वारा की डर गयी अपने पिता की हत्या का बदला लेने केलिए आतुर है, इस अवसर का ठीक ठीक लाभ उठाता

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.36

सभी लोगों को मुखियागिरी और भूमि का लोभ देकर जित्तन के विरुद्ध खड़ा करने में लुत्तो समर्थ निकलता है। परमादेव के प्रति लोगों की श्रद्धा को जित्तन के विरुद्ध मोड़ देने में भी वह हिचकता नहीं।

इन धमकियों से न हिलनेवाला जित्तन डेढ़ सौ एकड़ ज़मीन के एक चक्र को तोड़ देता है और जंगल लगाने में सफल होता है। और चारों कुण्डों में भी जंगल लगाने की संभावना पर जित्तन सरकार का ध्यान खींचने का प्रयास करता है।

जित्तन द्वारा संगठित लोकमंच "पंच चक्र" नामक नाटक से उपन्यास का अंत होता है। परती धरती के पुनरुद्धार के साथ साथ गाँव के लोगों के जीवन में एक नई चेतना का उदय होता है। "सेमलबनी के आकाश में अबीर-गुलाल उड़ रहा है।

आसन्नप्रसवा परती हँसकर करवट लेती है।"[1]

नायकत्व का प्रश्न

आँचलिक उपन्यासों के साथ हमेशा नायक का प्रश्न भी जुड़ा रहता है। "परती परिकथा" के सन्दर्भ में भी यही हुआ है। प्रश्न यह उठता है कि उपन्यास के नायक की पहचान किस तरह होती है ? परम्परागत रूप में जिन तत्वों के आधार पर नायक की पहचान होती है उनको लागू करने पर परती परिकथा" के नायकत्व के कई पहलू उभरकर आने लगते हैं।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.501

सामान्य रूप से जिसे केन्द्र बनाकर कथाधारा आगे बढ़तीहै, जिसके उत्थान-पतन पर उपन्यास का मर्म समाहित है, पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति जिस पात्र में अधिक है, वही नायक की उपाधि प्राप्त करता है । आंचलिक उपन्यासों में लेखक किसी अंचल विशेष को ही कथा का केन्द्र बनाता है । "परती परिकथा" में रेणु बिहार के परानपुर गाँव और वहाँ की परती धरती को केन्द्र में रखकर कथानक का संयोजन करते हैं । उपन्यास के सारे पात्र और घटनाएँ परती ज़मीन से सम्बन्धित है । अत: निस्संदेह "परती परिकथा" का नायकत्व परानपुर गाँव को ही मिलता है । परानपुर गाँव की प्रधान कथा के साथ अन्य कथाएँ माला के विविध फूलों के समान गूँथी हुई है । इसी तरह इसमें जितने पात्र हैं वे अपनी अपनी निजी विशेषताओं को लिये हुए हैं । ये सभी परानपुर गाँव को पूर्ण रूप से उभारने केलिए ही निर्मित है । इन पात्रों के चरित्र का निर्माण व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत रूप से किया गया है । इसलिए सामान्य से सामान्य पात्र भी इसमें दिखाई पड़ते हैं ।

उपन्यास के नायक के विषय पर विद्वानों के बीच मतभेद है । डॉ॰ तहसीलदार दूबे परती धरती को नायक के रूप में स्वीकार करते हैं - "यहाँ भी लेखक ने परानपुर गाँव एवं वहाँ की परती ज़मीन को ही लक्ष्य करके सम्पूर्ण कथानक का निर्माण किया है । अत: उपन्यास का नायकत्व परानपुर एवं वहाँ की परती ज़मीन को ही है ।[1]" डॉ॰ ओम प्रकाश शर्मा के अनुसार "मैला आँचल" और "परती परिकथा" उपन्यास इसलिए भी उल्लेखनीय हैं क्योंकि ये दोनों ही नायक-नायिका विहीन उपन्यास हैं । इन उपन्यासों का केन्द्र कोई एक व्यक्ति, स्त्री या पुरुष नहीं बल्कि एक समस्या, एक समग्र प्रदेश या अंचल रहा है और उसके वास्तविक एवं निर्मम चित्रण में उपन्यास

---

1. डॉ॰ बेचन - आधुनिक हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास- डॉ॰ बेचन, पृ॰219

के पात्रों, उनके जीवन की विविध घटनाओं अथवा स्थितियों का प्रयोग साधन के रूप में किया गया है[1]।"

लेकिन जितेन्द्र को उपन्यास का नायक माननेवाले विद्वान भी हैं। डॉ॰ प्रकाश वाजपेयी के अनुसार "जितेन्द्र मिश्र ऐसा पात्र है जिसमें बौद्धिक क्षमता है। नेतृत्व के गुण उसमें हैं। गाँव के नवनिर्माण में वह कार्यरत है। सामाजिक स्थिति की दृष्टि से वह सर्वोपरि है। अधिक संशय उसके स्वभाव को लेकर चलता है। अंततः वही एक सफल पात्र बनकर ग्राम का प्रतिनिधित्व करने का पद ग्रहण करता है[2]।"

नायकत्व का रंग परानपुर के संग

"परानपुर बहुत पुराना गाँव है। 1880 साल में मि॰ बुकानन ने अपनी पूर्णिया रिपोर्ट में इस गाँव के बारे में लिखा है - पुरातन ग्राम परानपुर। इस इलाके के लोग परानपुर को सारे आँचल का प्राण कहते हैं। अक्षरशः सत्य है यह कथन। गाँव से पश्चिम बहती हुई दुलारीदाय की धारा। तीन ओर विशाल प्रान्तर, तृण-तरु शून्य लाखों एकड़ बादामी रंग की धरती[3]।"

पूर्वकथित प्रमुख कथा के अतिरिक्त पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, साम्प्रदायिक और राजनीतिक पहलुओं के चित्रण से परानपुर एकदम सहज हो उठा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय गाँव काफी बदल चुके हैं।

---

1. डॉ॰ ओमप्रकाश शर्मा - साहित्य कोश, पृ॰120
2. प्रकाश वाजपेयी - हिन्दी के आँचलिक उपन्यास, पृ॰87
3. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ॰21

इस बदलाव का चित्रण 'परती परिकथा' में दृष्टव्य है ।

राजनीति की काली छाया

राजनीति के चंगुल में फंसकर परानपुर गाँव की सामाजिकता टूट रही है । "स्नेह, प्रेम, माया-ममता की मधुर धारणाएँ भी परिवर्तन की प्रचण्ड गति के आघात से विकृत हो गई हैं[1] ।" अभावग्रस्तता और अशिक्षा ने इसे और भी खतरे में डालने का कार्य किया । पन्द्रह वर्षों के बाद गाँव लौटा जित्तन अनुभव करता है "गाँव समाज में मनुष्य के साथ मनुष्य का व्यक्तिगत संघर्ष घनिष्ठ था । किन्तु अब वह नहीं रहा । एक आदमी केलिए उसके गाँव का दूसरा आदमी अज्ञात कुलशील छोड और कुछ नहीं । मनुष्य के साथ मनुष्य के प्राणों का योग-सूत्र नहीं[2] ।" परानपुर गाँव पर शहर का ज़हरीला प्रभाव भी अजनबी स्थितियों का निर्माण करने लगता है । व्यक्ति-व्यक्ति का संबन्ध इतना अजीब सा बनने लगता है कि अलगाव की स्थिति पैदा होने लगती है । इसके परिणाम स्वरूप पारिवारिक संबंध टूटने लगते हैं । गाँव में रहकर भी व्यक्ति अकेलापन का अनुभव करता है । नैतिकता और ईमानदारी की कडियाँ टूटने लगती है । इन सब के परिणाम स्वरूप समाज की इकाई परिवार भी टूटने लगा है । बाप-बेटे, भाई-भाई में झगड़ा शुरू होने लगा है ।

अंत में राजनीतिक नेताओं के हाथों से छुटकारा प्राप्त कर गाँववाले अपनी मुक्ति का एहसास करते हैं । यहाँ से एक नवीन शुभारंभ होने लगता है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.426

यों उपन्यास का नायक "परानपुर गाँव" का उतार-चढ़ाव सहज रूप से चित्रित है । उपन्यास की सारी घटनाएँ परानपुर गाँव के सीमित अंचल में घटती है । गाँव के तीज त्योहारों के वर्णन के द्वारा उसकी सांस्कृतिक छवि उतारने में भी लेखक सफल बने हैं ।

परती परिकथा के समूचे पन्ने परानपुर के रंग से इतने रंगीन बन गये हैं कि प्रत्येक अक्षर से उस महा नायक के स्वर संगीत का आलापन होने लगता है और इस महानायक के इर्द-गिर्द घूमनेवाले छोटे छोटे मनुष्यों की कथा उस रंग में आत्मीयता के, विद्रोह के, स्वार्थ के एवं संघर्ष के क्षणों को भी खोल देते हैं ।

जितेन्द्रनाथ मिश्र

'परती परिकथा' का कथानक परानपुर की धरती पर केन्द्रित होने के नाते इस अंचल बनाम नायक के विविध पहलुओं के चित्रण केलिए साधन के रूप में ही मानव पात्रों की चरित्र सृष्टि होती है । और "इसके व्यापार में एक पात्र या दो पात्रों की प्रधानता नहीं है । सामूहिक रूप से इसका कार्य विकास होता है ।"[1] इसलिए उपन्यास के सभी पात्र, चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष जैसे गीता मिश्र और शिवेन्द्र मिश्र समान रूप से आकर्षक होते हैं । तब यह शंका उत्पन्न होती है कि इसमें प्रमुख पात्र कौन है ।

परती धरती की जीवन गाथा का और जीवन की विविधता का रंग बहुत ही गहराई के साथ उपन्यास में आद्यन्त अंकित दिखाई पड़ता है । फिर भी नायकत्व के सोपान पर किसी न किसी जीवित व्यक्ति को प्रतिष्ठित करके देखने की इच्छा जब होती है तब हमारे सामने जितेन्द्रनाथ

----

1. प्रकाश वाजपेयी - हिन्दी के आंचलिक उपन्या, पृ.87

मिश्र का ही नाम सर्वप्रथम उभर कर आने लगता है ।

जितेन्द्र या जित्तन जाति से बहिष्कृत शिवेन्द्र मिश्र का बेटा है । गाँव में विशाल रूप से फैली डेढ हज़ार बीघे ज़मीन और दुलारीदाय के बीच के प्रसिद्ध कुण्डों का स्वामी वह अकेला है । गाँव के पुनरुद्धान का श्रीगणेश करनेवाले जितेन्द्र का चित्रण एक सुधारवादी ज़मीन्दार के रूप में ही हुआ है ।

राजनीति के चंगुल में फंस कर जितेन्द्र अपने जीवन का अच्छा खासा समय बरबाद कर डालता है । काशी विद्यापीठ में पढ़ते समय कुबेरसिंह के प्रभाव से वह किसान सभा का सदस्य बन जाता है । लगातार अनेक पार्टियों में डुबकी लगाने में समर्थ कुबेरसिंह को प्रगतिशील समाजपार्टी, नया झण्डा, मेनिफेस्टो, पार्टी-विधान आदि की रचना में सहायक भी बनता है । कुबेरसिंह के व्यवहार से विरक्त जितेन्द्र सुभाषचन्द्र बोस से अधिक प्रभावित होने लगता है । उस समय सुभाषचन्द्र बोस उसे जो चेतावनी देते हैं वह सच निकलता है । सुभाषचन्द्र बोस की चेतावनी यह रही "मुझे डर है, तुम्हारी हत्या न करवा दे कुबेर । सावधान ! उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं[1] ।"

कांग्रेज़ से जित्तन के बढ़ते प्रभाव को देखकर और उसे अपने हाथ से फिसलते देखकर कुबेरसिंह सह नहीं सकता । दूसरे दलों से नाता जोडने का अवसर भी कुबेर सिंह के दुष्प्रचार से जित्तन को मिलता नहीं । गिरफ्तार होकर जेल जाने पर वहाँ भी कुबेरसिंह की कुदृष्टि उसका पीछा करती है । राजनीतिक बंदियों से उसे मानसिक और शारीरिक रूप से पीडा सहनी पडती है । इन्हीं दिनों में उसकी माँ की मृत्यु भी हो जाती है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.43।

मरणासन्न माँ को देखने केलिए शर्त लिखकर रिहा होने की बात वह नामंजूर कर देता है ।

तीन साल के बाद जेल मुक्त हुए जितेन्द्र को पत्रकारिता करने का अवसर भी कुबेर सिंह के कारण नष्ट हो जाता है । यों स्वार्थ पूर्ति केलिए रचे गये कमीने षड्यन्त्रों का शिकार बनता है जित्तन । वह समझता है कि राजनीति, सांस्कृतिक मूल्यों पर आस्था रखनेवाले, ईमानदार, स्वतंत्र रूप से चिंतन करनेवाले बुद्धि जीवियों का क्षेत्र नहीं है । "लेखक ने उसे अपनी आत्मीयता इतनी मात्रा में प्रदान की है कि पाठक को यह सही आभास होता है कि जितेन्द्र रेणु का प्रतिरूप या प्रवक्ता है । अत: यह निष्कर्षित किया जाए कि जितेन्द्र को राजनीतिक रूझान रेणु का अपना मन्तव्य है तो खास गलत नहीं होगा ।"[1]

पाँच वर्षों तक गुप्त रूप से राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक लेख लिखते हुए, नवनिर्माण के तत्वों की खोज में लीन जितेन्द्र की मुलाकात इरावती से होती है । यह मुलाकात उसमें आत्मविश्वास भर देने का कार्य करती है ।

परती धरती को हरी-भरी करके अब तक सुषुप्तावस्था में पड़े ग्रामीणों में नयी स्फूर्ति लाने में लीन जित्तन को अनेक विभीषिकाओं का सामना करना पड़ता है । अपने बाप का बदला लेने केलिए आतुर लुत्तो गाँववालों को जित्तन के खिलाफ खड़ा कर देता है । कोसी प्रोजे- नं 10 के डॉ॰ राय चौधरी के रिपोर्ट के आधार पर सारी परती को तोड़कर खेती करने की योजना तथा कोसी की मुख्य धारा को मोड़कर दुलारीदाय से मिलाने की पद्धति के विरुद्ध लोगों की विलोम भावना का कारण वह सरकार को ही समझता है। "दोष हमारे विशेषज्ञों का नहीं । हमारी सरकार के

1· चन्द्रकांत बान्दिवडेकर - परती परिकथा एक विवेचन, कल्पना, मई 1974

पुराने कलपुरजे ही इसकेलिए जिम्मेवार हैं । वरना, जैसा कि मैं ने बतलाया, आप आज तोडने-फोडने के बदले गढ़ने का सपना देखते । इतना बडा काम हो रहा है, किन्तु आप इससे नावाकिफ हैं कि क्या हो रहा है, किस केलिए हो रहा है । मुझे ऐसा भी लगता है कि जान बूझकर ही आपको अन्धकार में रखा जाता है । क्योंकि आपकी दिलचस्पी से उन्हें खतरा है ।[1] सही-सही बात कर लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करने की एक शक्ति जित्तन में हैं ।

इरावती और ताजमनी जित्तन को अपने अकेलेपन से छुटकारा देने के प्रयत्न में लगी रहती है । राजनीतिक चक्रव्यूह में बुरी तरह घायल जितेन्द्र के मन में राजनीति के प्रति हमेशा एक घृणा भाव है । इसी कारण से ही इरावती के सांस्कृतिक कार्यकलापों को वह शंका की दृष्टि से देखकर पूछने लगता है "तुम्हारे इस सांस्कृतिक अनुष्ठान के पीछे कोई राजनीतिक हाथ तो नहीं ? सरकारी या गैर-सरकारी किसी किस्म की राजनीति से प्रभावित तो नहीं लोकमंच की कल्पना ?"[2] इसका उत्तर जो उपन्यास का केन्द्र तत्व है, इरावती यों प्रकट करती है - "यहाँ के सांस्कृतिक जीवन में डुबकी लगाए बिना प्रीति के छिन्न सूत्र को पकडना असम्भव है ।"[3] ताजमनी और इरावती की प्रेरणा से वे सांस्कृतिक जीवन में डुबकी लगाने को तैयार हो जाता है और परानपुर नाट्यशाला की पुनरुद्धान केलिए परानपुर के सभी नौजवानों और नाटक-प्रेमी व्यक्तियों को एकत्रित कर देता है । गाँव में सांस्कृतिक पुनरुद्धान की शुरुआत लोकमंच द्वारा खेले जानेवाले "पंच-चक्र" नाटक से होता है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.481
2. वही, पृ.457
3. वही,

ताजमनी के प्रति जित्तन के रोमानी प्रेम का चित्रण भी उपन्यास में है । ताजमनी के प्रति अपने बेहद प्रेम के बावजूद भी ताजमनी को कलंकित करना वह कभी नहीं चाहता और ताजमनी द्वारा अपनी माँ को दिए गए वचन का पालन करता है । एक प्रकार से रेणु ने इस चरित्र को स्वतंत्र संघर्ष के, व्यक्तिवादी दृष्टि के और प्रतिबद्ध जीवन चेतना के आयामों के अंदर स्थापित किया है । इस कारण यह पात्र धरती की क्षमता और धरती की बंजरता दोनों से युक्त हो जाता है ।

जित्तन के माध्यम से रेणु ने हमारे सामने ऐसे पात्र को प्रस्तुत किया है जो राजनीति की धाँधली से बचकर एक स्वतंत्र जीवन दृष्टि का निर्माण करना चाहते हैं और यह जीवन दृष्टि लोक कल्याण की चेतना से परिचालित है । जित्तन जैसे प्रतिबद्ध युवकों केलिए आज की राजनीति और नेताओं के कार्यक्रम कभी भी स्वीकार्य नहीं बन सकता । क्योंकि आज स्वार्थ की साधना के निमित्त ही राजनीति का गठन किया जाता है और निर्माण के स्थान पर विध्वंस की साधना की जाती है । इन सभी स्थितियों से परिचित होने के कारण ही जित्तन राजनीति का डट कर विरोध करता है । उसे मालूम है कि सांस्कृतिक परिवेश के अंदर भी राजनीति का सर्पमुख छिपा रहता है । एक दृष्टि से जित्तन रेणु की राजनीतिक विचारधारा से और प्रतिबद्धता के विविध मानदंडों से प्रभावित है ।

जित्तन का चरित्र पूर्ण रूप से सफल है, ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि परिस्थितिजन्य निष्क्रियता और एक बड़े समूह की दुश्मनी मोल लेने की स्थिति उसके रास्ते में रोड़े लगा देते हैं । कुछ करने की इच्छा तो है लेकिन कुछ कर पाने की असमर्थता भी ।

लुत्तो

जित्तन के बाद उपन्यास का दूसरा प्रमुख पात्र है लंगीबाज़ लुत्त रेणु द्वारा आधुनिक राजनीति पर कसा हुआ व्यंग्य बाण है लुत्तो । जित्तन

लुत्तो, जित्तन का पिता शिवेन्द्र मिश्र का दुलरुवा खवास लरेन खवास का बेटा है । शिवेन्द्र मिश्र सपने में भी अपने लरेन खवास पर सन्देह नहीं करता था । इसी बीच उसने दागाबजी की और दण्डस्वरूप मालिक ने उसकी पीठ पर तपी हुई दुअन्नी से "दागाबज़" शब्द दगवा दिया । पिता की असह्य पीडा को देखकर लुत्तो अपने बचपन में ही मन में दृढ़ संकल्प लेता है कि अपनी पिता की मृत्यु का वह बदला लेगा । इसी प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर ही वह जित्तन के विरुद्ध अनेक षड्यन्त्र रचने में लगता है ।

आंचलिक जीवन पर पडनेवाले लडैया राजनीतिक प्रभाव का सटीक वर्णन करने हेतु रेणु द्वारा रचा गया पात्र है लुत्तो । शासक पार्टी के स्थानीय कार्यकर्त्ता लुत्तो थाना कमिटी के सभापति का प्रिय है । वर्कर से लीडर बने लुत्तो अब नेता बनने का सपना संजोता रहता है । सच्चे अर्थ में राजनीतिक व्यक्ति होने के कारण उसके अंदर लोभ और स्वार्थ हमेशा उमडने लगता है । चालाक लुत्तो के बारे में थाना सभापति की राय यह है कि "लुत्तो में एक बड़ा गुण है, उसको बात बहुत जल्दी सूझती है । किसी भी समस्या की सदरी चाबी नहीं मिल रही हो तो लुत्तो से कहिए, तुरंत एक चोरचाबी तैयार कर देगा जाहिल ही है लुत्तो, लेकिन है असल राजनीतिक लंगीबाज ।"[1]

परती भूमि को हरि-भरी करने की जित्तन की तैयारियों के विरुद्ध अपने राजनीतिक प्रभाव से गाँववालों को वश में कर देता है । कोसी की मुख्यधारा को मोडकर दुलारीदाय से मिलाने की योजना के विरुद्ध खडे लोगों को सही बात समझाने में जब जित्तन समर्थ हो जाता है तो लोग उसकी स्वार्थपरता से परिचित हो जाते हैं ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.40

धन-दौलत केलिए लालायित लुत्तो यह सोचने लगता है कि सर्वोदय लोगों केलिए दान पत्र बटोर देने से "ज़मीन मांगनेवालों को परसेण्टेज के हिसाब से कुछ कमीशन ज़रूर मिलता है । लुत्तो को कुछ नहीं मिला ।"[1]

सवर्णों से उसकी दुश्मनी का और एक कारण अपनी जाति के प्रति उसकी हीन भावना है । यह होते हुए भी अपने से छोटी जातियों को अपमानित करने का अवसर वह हाथ से छोड़ता नहीं ।

वैसे इस उपन्यास में कोई विशेष खलनायक नहीं दिखाई पड़ता फिर भी उस स्थान केलिए अधिक योग्य व्यक्ति लुत्तो ही लगता है । लुत्तो के सभी कार्य आज के जाने-माने राजनेताओं के से लगते हैं । भ्रष्ट और स्वार्थ व्यक्ति जब राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो लुत्तो के समान ही व्यवहार करने लगते हैं । रेणु ने यह बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कह दिया है । लुत्तो की कुण्ठाग्रस्त मनोवृत्ति, हीनत्वग्रन्थी और नीच जाति में उत्पन्न होने की स्थिति तथा मिनिस्टर बनने की तमन्ना आदि ऐसे तथ्य हैं जो आजकल के आम राजनीतिक लोगों में पाये जाते हैं । जित्तन जहाँ सफल नहीं होता वहाँ लुत्तो विजयी निकलता है । वैसे ये दो पात्र एक धारा के दो छोरों पर खड़े हो जाते हैं । जित्तन की जहाँ पहुँच नहीं वहाँ लुत्तो झण्डा फहराता है । देवता की जहाँ पहुँच नहीं वहाँ अवश्य शैतान पहुँचता है । इसी युक्ति को हमें बार-बार लुत्तो याद दिलाता है ।

भिम्मल मामा

उपन्यास के अन्य प्रमुख पात्रों में भिम्मल मामा महत्वपूर्ण है । सारे गाँव का मामा भिम्मल का सही नाम-विजयमल्ल सिंह है । वह

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.310

महामहोपाध्याय की उपाधि स्वयं अपनाता है । इसका संक्षिप्त रूप है - वही, मल्ल·म·म । यही "भिम्मल मामा" के रूप में विकसित हो जाता है । मैट्रिक फेल मामा की इस तरह की वृत्तियाँ देखकर अशिक्षित ग्रामीण सोचने लगते हैं कि अधिक पढ़ने-लिखने से आदमी पागल हो जाता है ।

राजनीतिक क्षेत्र में भी उसकी दृष्टि निराली है । कुछ समय तक कांग्रेस का सदस्य बनकर रहनेवाला भिम्मल मामा अपनी स्वार्थ पूर्ति की रक्षा हेतु मुस्लिम लीग का सदस्य बन जाता है । उनके अनुसार कायदे आजम जिन्ना की सिफारिशों से ही यह सदस्यता प्राप्त हो जाती है । मुस्लिम लीग का सदस्य बनकर "नीली टोपी" और हाथ में चाँद-सितारा मार्क झण्डी" लेकर आनेवाले भिम्मल मामा से आर·एस·एस·वाले झगडा करने लगते हैं । पाकिस्तान बनने के पक्षवाला भिम्मल मामा आर·एस·एस·वालों की इस वृत्ति को "मुसोलिनिज़्म" कहने लगता है ।[1]

अनेक नये शब्दों का रचेयता है भिम्मल मामा जैसे -"दुखान्त" केलिए दुखदा एन्ड, सुखान्त नहीं सुखदायक, "टेलीग्राम" केलिए "ट्रा", "प्रोड्युम और प्रस्तुत को मिलाकर प्रद्युस्य" आदि ।"[2]

व्यक्ति-वैचित्र्यों से भरे इस पात्र को आंचलिक वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है । इस चरित्र की सृष्टि रेणु ने जानबूझ कर किया है । इस चरित्र में ऐसी कई विशेषताएँ हैं जिनसे पाठक का मनोरंजन होने लगता है । परती की परिकथा के कुबाहट से भरी स्थितियों के बीच पल दो पल केलिए हँसने और हसाने का काम मामा आसान कर देता है । वैसे उपन्यास के अन्य पात्रों से भिन्न व्यक्तित्व रखनेवाला है माम

1· फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ·62

2· वही, पृ·93

उसके कारनामा हास्यास्पद तो लगते हैं लेकिन रेणु ने इस पात्र के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया है कि व्यंग्य का रंग आस्वादन का अंग नहीं करता है परन्तु उसके संग चलता है ।

दिलबहादुर

परानपुर का नहीं हो कर भी जित्तन से मिलकर उस अंचल से अटूट रिश्ता स्थापित करनेवाला पात्र है दिल बहादुर । जोगबनी स्टेशन से ही जित्तन की मुलाकात उससे होती है ।

ग्रामीण अंचल की विशेषताओं से युक्त है यह पात्र । सीमित दायरे की बाहर की दुनिया से अज्ञात दिलबहादुर पहली बार मालगाड़ी देखकर सोचने लगता है - "इतना बड़ा जानवर और बोली इसकी - कू - कू ।"[1]

नेपाल की तराइयों में रहनेवाली कांछीमाया से प्रेम करनेवाला दिलबहादुर स्वार्थ की भावना से रहीत है । जित्तन को अपने प्राणों से भी प्यार करनेवाला दिलबहादुर उसे छोड़कर जाना नहीं चाहता है और इसी कारण से वह कांछीमाया को जीवन संगिनी बनाने में असफल भी हो जाता है ।

यों एक निष्कलंक आंचलिक पात्र की सृष्टि करने में रेणु अपनी दक्षता दिखाते हैं ।

सुवंश लाल

ग्रामीण अंचल में शिक्षा और अन्य प्रभावों के कारण आनेवाले परिवर्तन को रेणु सुवंशलाल के चित्रण के द्वारा प्रस्तुत करते हैं ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.77

मेट्रिक तक पढ़ा भूमिहार ब्राह्मण है सुवंशलाल । आर्थिक अभाव के कारण आगे पढ़ने की उसकी इच्छा अपूर्ण रह जाती है । परानपुर के वाचनालय का कार्यमन्त्री बना सुवंशलाल जीवन-यापन केलिए बीमा कम्पनी का एजन्ट भी बन जाता है । इसी बीच वह अपना दिल चमारिन मलारी को दे बैठता है । छुआ छूत की भावना मे अन्धे बने ग्रामीण लोगों में इस बात मे हो-हल्ला मच जाता है । इस माहोल में जीना जब दोनों केलिए दूभर हो जाता है तो दोनों गाँव छोड़कर भाग जाते हैं और रजिस्टर विवाह कर लेते हैं ।

प्रगतिशील विचारधारा से युक्त सुवंशलाल के चित्रण द्वारा शिक्षित ग्रामीण लोगों में आये परिवर्तन का दर्शन हो जाता है । जाति-पाँति का भेद-भाव और छुआ-छूत की भावना से युक्त आँचलिक जनता की आगे की पीढ़ी के सामने ये सभी तत्व अर्थहीन और मूल्यहीन बन जाते हैं ।

रोशन बिस्वाँ

ग्रामीण अंचल के शोषक वर्ग के प्रतिनिधि बनकर आनेवाला रोशन बिस्वाँ परानपुर का सबसे बडा महाजन है ।

लैंड सर्वे सेटलमेंट से लाभ उठाकर "बंधकी, सूद-रेहन जमीन के अलावा कवाला बनवाकर"[1] तीन सौ बीघे ज़मीन को वह अपने हवाले कर लेता है । लैंड सर्वे सेटलमेंट के समय महाजन की जमीन पर किसी का तनाज़ा पड ही कैसे सकता है ?

----

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.47

पत्नी की मृत्यु के बाद नट्टिन टोली की गेंदबाई ही उसे अपने सिर चढ़कर मुक्ति देनेवाली है । उसके मन में अपने पुत्र के प्रति प्यार का कण ही नहीं है । लुत्तो के संसर्ग से नेता बनने की लालसा भी यह रखता है ।

परानपुर गाँव के शोषक वर्ग का प्रतिनिधि रोशन बिस्वाँ का चरित्र महाजनी सभ्यता के सारे गुणों से युक्त हैं । उन लोगों के लिए धन ही सखा और बन्धु है । धन बटोरने की चिन्ता में जीनेवाले इन लोगों के मन में दया, माया-ममता आदि मानुषिक गुणों का वास नहीं होगा । दूसरों को धोखा देकर अपनी संपत्ति को बढ़ाने में ही ये लोग अपनी जीवन की सार्थकता समझते हैं । नैतिक-अनैतिक का परवाह नहीं करनेवाले ये लोग अपनी वासना की तृप्ति केलिए कई मार्ग भी अपनाते हैं ।

गरूडधुज झा

गरूडधुज झा या गगन चुम्बी झा के चरित्र का केन्द्र तत्व है नारदपन । लड़ने या लड़ाने की धुन फिराक में वह लग जाता है । वकालत पढ़े बिना ही मुवक्किल का काम करनेवाला गरूडधुज "बिगड़ा काम बनानेवाला आदमी है ।"[1]

सामबत्ती पीसी के साथ जब इसकी बदनामी फैलती है तो मुँह जोर झा लोगों का मुँह बन्द कर देता है ।

एक दूसरे की लड़ाई से अपनी स्वार्थ की पूर्ति करनेवाले गरूडधुजा जैसे लोगों की चाल भोले-भाले ग्रामीणों में ही चलती है । इस तरह के लोगों की गाँवों में कभी कोई कमी ही नहीं होती है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.147

परानपुर गाँव की राजनीति से संबन्ध रखनेवाले अनेक पात्रों का चरित्र चित्रण रेणु ने किया है जो राजनीतिक नेताओं की सारी विशेषताएँ लिए हुए हैं । इसमें प्रमुख है गाँव में कम्यूनिस्ट पार्टी की शाखा की स्थापना करनेवाले मनमोहन बाबू के शिष्य पीताम्बर झा । स्टालिन की मृत्यु के बाद पार्टी के कामों से दूर हुए मनमोहन के स्थान पर यूनिट का सेक्रेटरी बनता है मनमोहन झा । गाँव के मुसलमान गाड़ीवालों को कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य बनवाने के लक्ष्य से वह अपना नाम मकबूल स्वीकार करता है और नुकीली फ्रेंचकट दाढ़ी भी रख लेता है । यहाँ तक कि ब्राह्मणगत संस्कारों का तिरस्कार करने केलिए भी वह तैयार हो जाता है और गाड़ीवानों के घर जाकर मुर्गी का अंडा भी खाने लगता है । लेकिन कभी भी वह मुसलमान बनने को तैयार नहीं होता । मीर शमसुद्दीन के भड़काने के कारण मुसलमान गाड़ीवान कांग्रेस पार्टी में वापस जाते हैं । जित्तन द्वारा दिए गए ग्रामभोज का एक कम्यूनिस्ट के नाते विरोध करनेवाला मकबूल एक ग्रामवासी के नाते भोज में शामिल होने की बात स्वीकार कर लेता है

सिद्धान्त और व्यवहार का यह द्वैत आधुनिक राजनीतिक नेताओं के सन्दर्भ में लागू ही होता है । बाहर से किसी धर्म पर विश्वास न करनेवाले इन लोगों के मन में अपने धर्म पर अटूट आस्था है । दूसरे लोगों को अपनी ओर आकर्षित करना मात्र ही इनका लक्ष्य होता है । अधिकार मोह से पीडित राजनीतिक नेताओं के रूप में सोशलिस्ट पार्टीके जयदेव सिंह और रामनिहोरादास का चरित्र चित्रण रेणु ने किया है । बचपन से ही हमेशा लडनेवाले इन दोनों के बीच की खाई जयदेव सिंह के पार्टी इंचार्ज और राम निहोरा दास के आफिस सेक्रेटरी बन जाने के बाद बढ़ जाती है और यहाँ तक कि एक दिन मारामारी भी होती है । राजनीतिक क्षेत्र की कुत्सित प्रवृत्तियों का पर्दाफाश करने हेतु ही इस तरह के पात्रों की सृष्टि की गयी है ।

राजनीतिक क्षेत्र से संबंध रखनेवाला, पर उपन्यास के मंच पर प्रत्यक्ष नहीं होनेवाला पात्र है कुबेरसिंह । प्रगतिशील समाजवादी दल के प्रणेता कुबेरसिंह के कारण ही जित्तन का जीवन इतना दुष्कर बन जाता है । अपनी उंगली पर न नाचनेवाले लोगों को जितना भी हो सकें कष्ठ पहुंचाने में ये लोग कभी पीछे नहीं हटते ।

उपन्यास का और एक अप्रत्यक्ष पात्र है जितेन्द्र मिश्र के पिता शिवेन्द्र मिश्र जिसकी कथा डायरी के पन्नों से व्यक्त होती है ।

उपर्युक्त पात्रों के अतिरिक्त सभी लोगों से अपनी कानूनी बुद्धि की बात करनेवाला सुचितलाल मडर, सार्वजनिक पुस्तकालय पर हथिया लेनेवाला छित्तन, लुत्तो के कहने पर परमादेव का सवार का दिखावा करनेवाला निरसू भगता, "हुआ सविरा" का संपादक निडर पटनियाँ, कथावाचक रघू रमायनी आदि पात्र भी उपन्यास की कथावस्तु को रसीले बनाने में अपना सहयोग देते हैं ।

ताजमनी

"मैला आँचल" के रोमांटिक प्रेम के समान ही "परती परिकथा" में रेणु, जित्तन और ताजमनी के रोमांटिक प्रेम का वर्णन करते हैं । ग्रामीण परिवेश में पलनेवाली ताजमनी को उसी के अनुरूप एक ग्रामीण प्रेमिका का रूप ही रेणु ने प्रदान किया है ।

उसका रूप वर्णन रेणु यों प्रस्तुत करते हैं - "ताजमनी अद्वितीय सुन्दरी है । सुडौल शरीर और सुघड़ बनावट । चम्पई रंग और बालिका सुलभ चेहरा । मेघवर्ण कुंचित केशपाश । आँखों में परिपूर्ण प्राण की गम्भीर

छाया अजान-सुजान उसे षोडशी समझते हैं। किन्तु गाँव की सोलह वर्षीया कन्याओं से वह बीस साल बड़ी है।"[1]

बचपन में माँ की मृत्यु के बाद जित्तन की माँ ही उसे हवेली की बेटी की तरह पालती है। जित्तन और ताजमनी को एक दूसरे के प्रति लगाव बढ़ाने का अवसर इससे प्राप्त होता है। मालकिन माँ के अन्तिम दिनों में ताजमनी ही उसकी देखभाल करती है। जब शर्त लिखकर जेल से रिहा होने से जित्तन सहमत नहीं होता तो मालकिन माँ को ताजमनी ही गंगाजल पिलाती है।

जित्तन के प्रति अपने मन में उमड़ती प्रेम की तरंगों को मालकिन माँ से किये हुए सत्त के कारण ताजमनी को रोकना पड़ता है। सत्त यह था कि "....... जिद्दा से कभी एकान्त में नहीं मिलेगी, जिद्दा से कभी आँखें चार नहीं करेगी। नज़र उठाकर उसको देखेगी भी नहीं।"[2] इसमें पहले सत्त का वह बेसत्त इसलिए कर देती है कि जिससे घर छोड़कर कुबेर सिंह के साथ जाने केलिए तैयार हुए जित्तन को रोकना वह चाहती है। लेकिन वह इसमें सफल नहीं होती। जित्तन घर छोड़कर चला ही जाता है।

वर्षों के बीत जाने पर भी जित्तन के प्रति ताजमनी का प्यार पहले की तरह दृढ़ रहता है। जित्तन के खिलाफ लुत्तो के षड्यन्त्र से वह बहुत परेशान रहती है। कभी-कभी वह तीन पहर रात तक काली की मूर्ति के सामने बैठकर रोती रहती है। मालकिन माँ द्वारा सौंपी पिटारी को जिसमें पंचचक्र अंकित भोजपत्र और रुद्राक्षमणि है, देने केलिए हवेली में जाती है।

1· फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ·82

2· वही, पृ·110

जाने के पूर्व वह तारा के मन्दिर में जाकर प्रार्थना करने लगती है - "बारह साल से इस पिटारी को कलेजे से सटाकर मैं अपने जिद्दा की मंगल-कामना कर रही हूं । मेरे माथे पर भेज दो सब दुख ! साक्षी हो तुम । मालकिन-माँ के आगे सत्त करने के बाद, जिद्दा के चरन भी नहीं छू सकी हूं, आज तक । मैं आज जिद्दा की चरन धूलि लेने जा रही हूं । बारह साल के बाद सत्त तो वज्र सत्त हो जाता है ।"[1] "मंगल कामना में तन्मय नारी की प्रतिमूर्ति"[2] ताजमनी जित्तन को पिटारी सौंपती है । "पवित्र सुन्दरता की साकार प्रतिमा"[3] ताजमनी के मन में जित्तन के प्रति निर्लोभ, निष्कलंक प्रेम की धारा बहती रहती है । अशिक्षित ग्रामीण कन्या ताजमनी पर शहरी जीवन का प्रभाव रंच मात्र भी नहीं पड़ा है । हर एक कदम उठाते समय वह भय का अनुभव करती है । मालकिन माँ से किये हुए सत्त का भंग करने से पूर्व वह देवी तारा से प्रार्थना करके ही जाती है । वैसे ही स्वार्थ की भावना रहित ताजमनी मालकिन माँ द्वारा दी गई पिटारी को अपनाना नहीं चाहती ।

अपने जिद्दा को सम्पूर्ण सुखी देखने केलिए वह अपना दूसरा सत्त भी तोड देती है । पिटारी सौंपने केलिए गयी ताजमनी जित्तन के साथ जीने लगती है । अधिक संग सुख चाहनेवाला जित्तन अब केवल ताजमनी की उंगलियाँ चूमकर सन्तुष्ट नहीं होता । मालकिन माँ से किए सत्त को तोडना वह मन से मन नहीं चाहती फिर भी अपनी जित्तू केलिए नरक भी भोगने केलिए वह तैयार हो जाती है ।

स्त्री सहज सुन्दरता, ममता और कमजोरियों से ताजमनी को सजानेवाले रेणु उसके व्यक्तित्व विकास पर अधिक ध्यान नहीं देते ।

1· फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ·124

2· वही, पृ·128

3· वही, पृ·123

उपन्यास भर में उसे अधिक बोलने का अवसर नहीं दिया है । रेणु ने ताजमनी की कहानी में ठीक उसी तरह किया है "जैसे लोग सब्जी में छौंक लगाते हैं[1] ।"

मलारी

ग्रामीण अंचल में पीढ़ियों से दलित होकर जीनेवाले लोगों में शिक्षा की नई स्फूर्ति से आये परिवर्तन को दिखाने केलिए रेणु द्वारा सृजित पात्र है मलारी ।

मोची टोले में दीपक की तरह जगमगाती "हरिजन गलोरी[2]" मलारी पढ़ाई-लिखाई में होशियार है । मिडिल पास करके गाँव के स्कूल में मास्टरानी बनी मलारी किसी से डरनेवाली नहीं है । सात वर्ष की आयु से ही दुनियाँ की जहरीली निगाहों को पहचाननेवाली मलारी को भले-बुरे का ज्ञान है । अपने से कलात्मक प्रेम करनेवाले प्रेमकुमार दीवाना की आँखों में वह शैतान की हँसी देखती है । केवल सुवंशलाल ही एक आदमी ठहरा जिनकी निगाहों में जहर घुला हुआ नहीं है । किसी न किसी बहाना बनाकर उससे मिलने केलिए आनेवाले सुवंशलाल से उसका प्रेम संबन्ध घनिष्ठ बन जाता है । घरवालों की मारपीट और पंचायतवालों की गालियों को सहकर भी वह अपना प्रेम संबन्ध कायम करती है । जब गाँव में जीना दुष्कर हो जाता है तो मलारी और सुवंश दोनों रजिस्टर विवाह करके गाँव छोड देते हैं ।

शिक्षा-दीक्षा के क्षेत्र में ही नहीं खेल-कूद के क्षेत्र में भी वह मशहूर रह जाती है । "मलारी ऐसी शामा चकेवा खेलनेवाली लडकी नहीं कि शामा चराने केलिए आते ही खो बैठेगी मामा[3] ।"

---

1. राजेन्द्र यादव - अठारह उपन्यासकार, पृ.141
2. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.84
3. वही, पृ.254

शिक्षा के प्रचार प्रसार के फलस्वरूप भारत के गाँवों में काफी परिवर्तन दृष्टिगत होने लगता है । युग युगों से अज्ञान के अन्धकार में पड़कर तड़पनेवाले लोगों में अपने अस्तित्व के बोध को जगाने का श्रेय शिक्षा को ही है । इस तरह जाग कर सक्रिय बने लोगों के आगे दूसरों के द्वारा आरोपित अफवाह केलिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता ।

इरावती

अल्पकाल केलिए उपन्यास के मंच पर आकर पाठकों पर अपनी चमक छोड़ देनेवाली है इरावती । देश विभाजन के समय अनुभूत यंत्रणाओं के फलस्वरूप उसकी मानव सुलभ कोमल भावनाएँ मुर्झा जाती है । देश विभाजन के बाद सामाजिक कार्य में लगी रहने पर भी उसके अनुभव में कुछ सुधार नहीं आ पाता ।

एक के बाद एक होकर कई राजनीतिक दलों से वह रिश्ता जोड़ती-तोड़ती रहती है । अपने से दुर्व्यवहार करनेवाले नेता को, वह समझाती हैं कि "मुझे दुख है, मैं तुम्हारे काम नहीं आ सकी । असल में प्यार करने की ताकत मुझमें नहीं । मेरे प्यार को लकवा मार गया है[1] ।" हज़ारों स्त्रियों को बलात्कार होते देखकर और दर्जनों बार स्वयं बलात्कार की पीड़ा से छटपटाई इरावती "यह कल्पना भी नहीं कर सकती कि इन्सान कत्ल और बलात्कार करने के सिवा और कुछ कर सकता है[2] ।"

जित्तन से उसकी मुलाकात के बाद लोक संस्कृति मूलक समाज की स्थापना में वह भी सहयोग देती है ।

1· फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ·295

2· वही, पृ·295

सामबत्ती पीसी

ग्रामीण परिवेश को उसका रंग प्रदान करनेवाले अनेक अंग होते हैं। उसमें एक है घर-घर घूमकर एक की बात दूसरों से करनेवाली अशिक्षित औरतें। गाँव की हर बात गाँव भर में फैला देने का कार्य ये ही करती है। इस श्रेणी का पात्र है सामबत्ती पीसी।

"गाँव में, एक किस्म की औरत होती है जिसे गाँव की बोली में घर घूमनी कहते हैं। सामबत्ती पीसी भी घर घूमनी है।[1]" बचपन से ही घर घर घूमने की आदत वाली सामबत्ती पीसी को शादी के बाद इसका मौका प्राप्त नहीं होता। इस हेतु ससुराल जाने के बाद उसे गाठिया-वात हो जाता है। वैद्य की सलाह यह रही कि अगर वह न घूमती, तो गाठिया बढ़ जाता। इसलिए पति को साथ लेकर मायके लौटती है। गाँव आकर "हर घर की सास-पतोहू के मन मिलाकर रखना, माँ-बेटी के मन की बात बोलना, इस घर की बात को चतुराई से उस घर में शपथ खिलाकर खोल आना और आग लगने पर दूर खड़ी होकर तमाशा देखना सबके बूते की बात नहीं।[2]

आंचलिक गुणों से युक्त सामबत्ती पीसी का पात्र परानपुर ग्रामीण जीवन को सच्चा रूप प्रदान करने में सहायक सिद्ध होता है।

अतीत कथा से संबद्ध रखनेवाला गीता मिश्र का पात्र आंचलिकता के गुणों से रहित होकर भी आकर्षक लगता है। बूढ़े रोजवुड के साथ शादी के ब

---

1 फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ॰139

2॰ वही, पृ॰140

पूरब पगली वह मलय पहुँचती है । मलयनिवास के सात दिनों बाद बूढ़े रोजवुड की मृत्यु हो जाती है । इसके बाद कलकत्ता पहुँचनेवाली श्रीमती रोजवुड की मुलाकात शिवेंद्र मिश्र से हो जाती है । मिसेज रोजवुड से श्रीमती गीता मिश्र बनना, लरेन खवास का विश्वासघात, फलस्वरूप शिवेंद्र मिश्र द्वारा गीता मिश्र का परित्याग आदि घटनाएँ भी अतीत कथा से संबन्धित है ।

इन पात्रों के अतिरिक्त नट्टिन टोली की सरदारिन गंगा बाई, गाँव की सबसे फैशनबल युवती जयवन्ती, गीतों के टुकडों को मिलाकर बात करनेवाली गेंदा बाई, फेकनी की माँ, पद जोड़कर रोनेवाली चुन्नी, बालू गोबिन की पत्नी, लुत्तो की पत्नी, मुन्नी की मौसी आदि स्त्री पात्र भी हैं ।

आँचलिक उपन्यासों में व्यष्टि के बदले समष्टि की प्रधानता है इस समष्टि को उसकी पूर्णता के साथ उभारने के कारण आँचलिक उपन्यासों में पात्र बहुलता और घटना बहुलता दिखाई पडती है । "परती परिकथा" में भी यह पात्र बहुलता द्रष्टव्य है । समष्टि की प्रधानता होने के कारण ये पात्र जितने अप्रमुख होने पर भी अपना अपना व्यक्तित्व लिये हुए हैं । व्यक्तित्व की विशेषताएँ एक पात्र को दूसरे से अलग भी करते हैं । जैसे सामबत्ती पीसी की घर घूमने की आदत, रोशन बिस्वाँ की सदैव होंठों पर जीभ फेरने की प्रवृत्ति, चौंचवाले मुँह का गोविन्दो आदि । "पात्रों को जीवंतता तथा पृथक् व्यक्तित्व देने केलिए उनके खास व्यवहार को मद्देनज़र रखना पड़ता है । यही कारण है कि रेणु के ये छोटे पात्र महत्वहीन होते हुए भी अनपहचाने नहीं रहते ।[1]" परानपुर गाँव की पूरी मानसिकता को उतारने के लक्ष्य से रचनारत रेणु चरित्रांकन में कोई पूर्वाग्रह का सहारा नहीं लेते । साधारण जीवन जीनेवाले ये पात्र विकासशील नहीं दीखते ।

---

1. चन्द्रकांत बन्दिवडेकर - कल्पना, मई - पृ २६५

विविध आयाम

सामाजिक

'परती परिकथा' का रचना काल सन् 1952-55 के बीच का है । भारत विभाजन और उससे उद्भूत विभीषिकाओं में उलझा हुआ समाज नव निर्माण कार्य में लगा रहता है । उस समय के समाज पर पड़े स्वतंत्रता कुरुक्षेत्र के महान् नेताओं का प्रभाव ज़रूर खत्म नहीं हुआ था । यद्यपि समाज को पूर्ण रूप से औद्योगिकरण की साये में पलने की इच्छा नहीं थी तथापि यह आग्रह ज़रूर था कि औद्योगिकरण के द्वारा गाँव और शहर का अन्तर कम कर दिया जाए । आज़ादी के इतने कम समय में ही योजनाबद्ध कार्यक्रमों के ज़रिये समाजवाद की स्थापना करने के लोगों का विश्वास रहा । लेकिन अवश्य ही औद्योगिकरण की समस्याएँ और शहरी जीवन का दुष्प्रभाव गाँवों को आतंकित करता रहा । इसका प्रधान कारण यह रहा कि बाह्य विकास के साथ साथ मन की परती को उपजाऊ बनाने पर किसी ने ध्यान नहीं दिया आर्थिक, राजनीतिक आदि कारणों ने मानव मन की परती को उपजाऊ बनाने रोडे लगा दिये हैं । समूचे परिवर्तन की नींव जीवन दृष्टि के परिवर्तन पर ही निर्भर है । जीवन दृष्टि के परिवर्तन से ही सामाजिक परिवर्तन और विकास संभव होता है । लेकिन भारतीय समाज का अभिशाप यह है कि हमेशा राजनीतिक कार्यकर्ताओं के द्वारा विकास की गति रोकी जाती है । ऐसे विकास अवरुद्ध एक ग्रामीण समाज के जीवन को ही रेणु परानपुर के माध्यम से "परती परिकथा" में स्वरबद्ध करते हैं ।

परानपुर का समाज सच्चे अर्थ में आज़ाद भारत के परिवर्तनशील ग्रामीण समाज का रूप प्रस्तुत करता है । यथार्थवादी उपन्यासकार रेणु परती धरती की अपनी विसंगतियाँ, टूटन, संघर्ष, नैतिकता आदि का वर्णन सटीक ढंग से करने की कोशिश करते हैं ।

आज़ाद भारत के टूटते हुए समाज का चित्रण परानपुर के ज़रिये रेणु यों प्रस्तुत करते हैं - "परानपुर ही नहीं, सभी गाँव टूट रहे हैं । गाँव के परिवार टूट रहे हैं, व्यक्ति टूट रहा है - रोज़-रोज़, काँच के बर्तनों की तरह । नहीं । ...... निर्माण भी हो रहा है । नया गाँव, नये परिवार और नये लोग ।"[1] यह निर्माण बाह्य दुष्प्रभावों के कारण हुए परिवर्तन के फलस्वरूप ही हो रहा है । टूटे फूटे खण्डहरों की जगह नई इमारतें खडे किये जाते हैं जिसकेलिए "..... नई ईंट के साथ पुरानी किन्तु काम के योग्य ईंटों को मिलाकर दीवाल बना रहा है ।"[2]

आधुनिक समाज में धन ही सब से उन्नत स्थान प्राप्त कर लेता है । उसके आगे रिश्ते नाते का कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता । गाँव में लैन्ट सर्वे सेटलमेन्ट का प्रभाव इतने ज़ोरों से पडा है कि ग्रामीण परिवार झगडे का अड्डा बन जाता है । "छः महीने में ही गाँव एकदम बदल गया है । बाप-बेटे में, भाई-भाई में अपने हक को लेकर ऐसी लड़ाई कभी नहीं हुई । अजीब-अजीब घटनाएँ घटने लगीं ।"[3]

गाँव के सम्मान प्राप्त सरबन बाबू और उसके भाई लालचन बाबू के बीच ज़मीन को लेकर मारपीट होती है । भरी कचहरी में सरबन यहाँ तक कह देता है कि - "लालचन मेरा कोई नहीं । इसके बाप का ठिकाना नहीं । मेरे बाबूजी के मरने के तीन बरस बाद . ।"[4] ऐसी घटनाओं के फलस्वरूप सम्मिलित परिवार टूट रहे हैं । "परिवार का एक प्राणी दूसरे को निगलने की तैयारी कर रहा है । लड़के ने अरजी दी है - विधवा माँ परिवार को नेस्तनाबूद करने पर तुली हुई है । पारिवारिक

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.23
2. वही
3. वही, पृ.33
4. वही

सम्पत्ति को बरबाद कर रही है । बाप ने प्रार्थना की है, वह सम्मिलित परिवार का कर्ता होकर अभी भीजीवित है । सम्मिलित परिवार की आमदनी के पैसे से उसके लड़के ने ज़मीन खरीदी सब अपने नाम से । अब, एक धूर ज़मीन भी नहीं देना चाहता उसका बेटा । गुज़ारिश है ।[1]"

यों स्वतंत्रता परवर्ती ग्रामीणों की मानसिकता में आये परिवर्तन के फलस्वरूप व्यक्ति और परिवार तथा परिवार और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों में एक प्रकार की खाई दिखाई पड़ती है । सम्बन्धों के इस टूटन ने, इस तनाव ने नये सम्बन्धों का नींव डाला है । माँ-बाप, भाई-बहन, पति-पत्नी के पवित्र रिश्ते काँच के बर्तन के समान टूटने लगते हैं । ग्राम जीवन में आये इस परिवर्तन को आंचलिक उपन्यासकारों ने स्वरबद्ध किया है ।

जातीयता

भारतीय सामाजिक संगठन में जातीयता का प्रबल प्रभाव है । औद्योगीकरण और शहरी जीवन के प्रभाव से गाँव की जातीयता में ज़रूर परिवर्तन आया है । लेकिन जहाँ एक ओर वह दृढ़ और अपरिवर्तनशील रहती है वहाँ दूसरी ओर वह ढीली और खोखली सी दीख पड़ती है ।

"पिछले आठ-दस वर्षों से जातिवाद ने काफी ज़ोर पकड़ा है । राजनीतिक पार्टियाँ भी जातिवाद की सहायता से संगठन करना जायज समझती है ।[2]" "आठ वर्षों से जातिवाद के दीमकों का मुख्य आहार रहा है मनुष्य का हृदय । सर्वे की आँधी में छलनी-जैसा आदमी का दिल-पीपल के

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.419
2. वही पृ.27

सूखे पत्ते की तरह उड रहा है।[1]" जातीयता की भावना इतनी ज़ोरों पकड़ी हुई है कि राजपूत लोग अपनी इलाज केलिए कायस्थ डाक्टर के पास भी नहीं जाते। परानपुर अस्पताल के भूमिहार डाक्टर को राजपूत मिलकर धमकी देते हैं और उसके खिलाफ कायस्थों को मुफ्त में दवा और सूई देकर इलाज" करने का झूठा आरोप लगाकर पाँच साल पहले अस्पताल बन्द करवाते हैं। यहाँ तक कि सवर्ण और अवर्ण लोगों के लिए अलग अलग देवता भी है। "परमा तो छोटी जातिवालों का देवता है।[2]" इसलिए सवर्ण टोले के लोग परमा को नहीं मानते हैं।

छोटी-बड़ी जातियों को अपने कर्म से मापनेवाले इन लोगों की लहू में छुआ-छूत की भावना जमी हुई है। चमारिन मलारी के हाथ की चाय सुवंश पीता है तो जातिगत संस्कार टूटता है। अवर्ण टोली के कलाकारों से अभिनीत "प्यार का बाज़ार" नामक नाटक देखने केलिए सवर्ण टोली का एक बच्चा भी नहीं जाता। जाति के बिना किसी का अस्तित्व भी नहीं मानते हैं। गंगा नट्टिन कहती है - "जो जात की बात काटेगी, जात भी उसको सहस्सर टुकड़ा काटेगी।[3]"

स्वार्थपूर्ति हेतु जाति के कट्टर नियमों को ढ़ीला करना भी इन लोगों केलिए कोई कठिन कार्य नहीं है। गरुडधुज झा, रोशन बिस्वाँ और सुबंश लुत्तो की मित्रता इसका उदाहरण प्रस्तुत करती है। वैसे ही नीची जातिवालों से दान लेकर सार्वजनिक भोज में भाग लेते वक्त जाति की दीवार दरारों से विकृत रूप में प्रकट होती है। जाति के नाम पर कुहराम मचानेवालो के बीच पीताम्बर झा अपना नाम मकबूल रखकर मुसलमान गाडीवालों के घर जाकर मुर्गी अण्डा खाने लगता है तो उससे पूछनेवाला कोई नहीं रहता।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.36
2. वही, पृ.114
3. वही, पृ.173

नैतिक आयाम

नैतिकता की दृष्टि से "मैला आँचल" के मेरीगंज से भी परती परिकथा का "परानपुर गाँव" काफी सुधरा हुआ सा दीखाई पड़ता है। फिर भी मनुष्य सहज कमज़ोरियों से परानपुर ग्रामवासी बचते नहीं।

ग्रामीण समाज में नामी रोशन बिस्वाँ अपनी अतृप्त वासना की पुष्टी हेतु नट्टिन टोली की गेंदाबाई से गुलरोगन मालिश करवाता है, तो ठाकुरबाडी का चौबेजी जातीय संस्कारों को तिलांजलि देकर मलारी से मिलना चाहता है।

गाँव के सीधे-साधे मनुष्य ही नहीं बड़े बड़े राजनीतिक नेता भी अनैतिक जीवन में शरीख दिखाई देते हैं। आदिवासियों के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने केलिए पार्टी के प्रमुख नेता के साथ छोटा नागपुर से रेलगाडी में जाती इरावती का अनुभव इसका प्रमाण है। रात के सन्नाटे में नेता अपनी शारीरिक भूख इरावती से मिटाना चाहता है।

वैसे "परती परिकथा" में नैतिक जीवन के दरारों को खुल्लम खुल्ला दिखाने का प्रयास नहीं किया गया है। यह प्रयास तो "मैला आँचल" में पहले हो चुका है। यहाँ उपन्यासकार का लक्ष्य परती धरती की कथा को राजनैतिक पहलुओं से जोड़कर कहने का रहा है। फिर भी आनुषंगिक रूप में जीवन की अनैतिकता जो राजनीतिक का अंश बनकर उभर आयी है उपन्यास में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है।

आर्थिक आयाम

गाँव में फैली समस्याएँ एक हद तक आर्थिक स्थिति की उपज होती है। विकासशील देश का नींव संतुलित अर्थ-व्यवस्था पर निर्भर है।

जो देश मनुष्य की प्राथमिक ज़रूरतों की पूर्ति करने में सफल होता है उस देश में आशा-निराशा, जटिलताओं और समस्याओं का कोई स्थान ही नहीं रह जाता । भारत की बढ़ती आबादी, अशिक्षा, राजनीतिक दलबाज़ी आदि के कारण योजनाओं के द्वारा विकास अवरुद्ध सा लगता है ।

यद्यपि परानपुर गाँव की आर्थिक स्थिति का स्पष्ट रूप नहीं उतारा गया है तथापि अनेक झाँकियों के द्वारा यहाँ की आर्थिक स्थिति उभर कर सामने आती है ।

हिन्दुस्तान में, सम्भवत: सबसे पहले पूर्णिया जिले पर ही लैण्ड सर्वे आपरेशन का प्रयोग किया गया । जिले के जमींदार और राजाओं की ज़मीन्दारियों का विनाश अवश्य हुआ । किन्तु हिन्दुस्तान के सबसे बड़े किसान यहीं निवास करते हैं[1] ।" अर्थात् भूमिहीनों की समस्या वैसे की वैसी रह जाती है । भूमि के बंटवारे के माध्यम से समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की स्थापना का लक्ष्य पूर्णतया पराजित सा लगता है । इस कारण से अर्थव्यवस्था के सुधार के अवसर कम नज़र आते हैं ।

पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा राष्ट्र निर्माण का कार्य सन् 1950 से शुरू हुआ है । ग्राम विकास, राष्ट्र विकास केलिए परम आवश्यक है । परानपुर में भी योजनाओं के द्वारा ग्राम विकास का शुरुआत होने लगता है । यद्यपि राजनीतिक नेताओं द्वारा अपनी स्वार्थ की पूर्ति हेतु इसमें रोड़े लगाए जाते हैं तथापि कोसी बाँध की योजना जनजागरण केलिए लोगों को प्रभावित करती है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.3।

विकास कार्य में लगे रहे मज़दूरों के अभाव की करुण गाथा परानपुर गाँव की है । अभाव और व्यथा भरी अपनी जीवनगाथा गाकर ये तट-बाँधने की अपनी साधना में लगे रहते हैं । आर्थिक विकास का कार्यक्रम द्रुतगति से चलने पर भी इनकी मानसिक स्थिति मोहभंग से ऊपर नहीं उठती । हज़ारों वर्ष पुरानी परती को तोड़ने के बाद भी इनके मन की परती ज्यों की त्यों पड़ी हुई है । आर्थिक रूप से लाभदायक योजनाओं का फल आज तक गाँववालों को प्राप्त नहीं हुआ है इसलिए उनकी आशा - आकांक्षाएँ अब मुर्झाए रहती हैं ।

कोसी प्रो•10 के अनुसार कोसी की मुख्य धारा को मोड़कर दुलारीदाय से मिलाकर 500 वर्षों से वीरान पड़ी परती की सिंचाई करके वहाँ गुलाब की खेती करने की योजना प्रतीकात्मक है । श्रम के फल का प्रतीक । "वीरान धरती का रंग बदल रहा है धीरे-धीरे हरा, लाल, पीला, बैंगनी । हरे भरे खेत । परती पर रंग की लहरें । अमृत हास्य परती पर अंकित हो रहा । पाँच चक्र नाच रहे हैं । छन-छन, छन-छन । पंडुकी का जित्तू उठ गया । पंडुकी का जित्तू उठ गया । पंडुकी नाच नाच कर पुकार रही है तु तु - तुत्त, तुरा तुत्त ।"[1]

उपन्यासकार ने कोसी योजना और प्रो•न•10 के द्वारा धरती में नव जीवन की लहर को स्पन्दित कर उसे सुनहरे खेतों में भरपुर करने का सपना देखा है । लेकिन स्वयं उसे यह सन्देह होता है कि यह सपना कभी पूरा नहीं होगा जो धरती के बंटवारे से और उसको उपजाऊ बनाकर फसल की वृद्धि से आर्थिक दशा को ठीक बनाना शायद एक सपना मात्र है । परती परिकथा इस सपने के अधूरेपन को अपनी धरती से जोडना चाहता है ।

1• फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ•500

परती अंचल में राजनीतिक प्रभाव - पात्रों के चरित्र पर

आज़ाद पूर्व भारतीय गाँव की स्थिति आज से भिन्न थी । वहाँ राजनीतिक धाँधली का प्रभाव नहीं था । आज़ाद भारत की स्थिति में परिवर्तन आ गया । विकास की गति के साथ चलने में कई गाँव असमर्थ रहे । इसका प्रमुख कारण राजनीतिक दलबाज़ी रही । भारतीय गाँव को राजनीति ने अपनी शतरंजी चाल से बुरी तरह बिगाडा है ।

आँचलिक उपन्यास के लेखक की दृष्टि गाँव के हर पहलू पर पड़ती है । उनकी दृष्टि से राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक कोई आदि कोई भी पहलू बचती नहीं ।

रेणु परानपुर गाँव के राजनीतिक दलों के सिद्धान्त और प्रवृत्ति की बडी आलोचना करते हैं । कोई भी पार्टी हो, काँग्रेस हो या कम्यूनिस्ट या सोशलिस्ट गाँव तक पहूँचते पहूँचते उसकी नीति बदल जाती है । गाँव में राजनीति केवल वैयक्तिक स्वार्थ पूर्ति का साधन मात्र रह जाती है ।

"परती परिकथा" का प्रधान पात्र जित्तन बारह वर्षों में राजनीतिक षड्यन्त्रों से बुरी तरह घायल होकर गाँव लौटता है । वैयक्तिक मतभेदों में जकडे राजनीतिक षड्यन्त्रों का वह हमेशा शिकार बना है । भारतीय गाँव जो अपनी आत्मीयता, ममता, सहजता आदि केलिए मशहूर थे अब स्वार्थता और राजनीतिक "दाव पेंच के अड्डे बन जाते हैं । प्रत्येक पार्टी के अपने अपने विचार हैं और गाँव का जीवन उनकी इच्छा के अनुसार मुडता रहता है । परानपुर को ही देखिए - "बहुत उन्नत गाँव है परानपुर । सात आठ हज़ार की आबादी है । प्रत्येक राजनीतिक पार्टी की शाखा है यहाँ । धार्मिक संस्थाओं के कई धुरंधर धर्म-ध्वजी इस गाँव में विराजते हैं

पिछले आम चुनाव में सोलिड वोट कांग्रेस को नहीं मिला, इसलिए इस बार सोलिड वोट प्राप्त करने केलिए हर पार्टी की शाखा प्रत्येक मास अपनी बैठक में महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास करती है[1]।"

"परानपुर के छोटे गाँव पर स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक वातावरण का जो प्रभाव पड़ा उसका यथावत् चित्रण प्रस्तुत करते हुए भी रेणु ने अपनी कम्यूनिस्ट विरोधी भूमिका को कम तीखे ढंग से व्यक्त नहीं किया है[2]।"

लंगीबाज़ कार्यकर्ताओं के कारण शासक पार्टी का रूप और ढंग गाँव में आते आते विकृत हो जाता है। वैयक्तिक प्रतिहिंसा भाव से ओतप्रोत नेता लोग पार्टी को अपनी स्वार्थपूर्ति का साधन मानते हैं। गाँव में शासक पार्टी का लंगीबाज़ नेता लुत्तो वर्कर के बल पर लीडर बनता है। राजनीतिक नेताओं की सेवा के पीछे कोई न कोई लक्ष्य ज़रूर रहता है। गाँव में किसी विशेष घटना के घटने से राजनीतिक नेताओं की सेवावृत्ति भी बढ़ती है और नेताओं की कीमती भी। सर्वे के समय लुत्तो की कीमत और बढ़ गई है। सभी धीरे-धीरे जान गए हैं, सोशलिस्ट और कम्यूनिस्ट पार्टीवाले जिनकी मदद करेंगे, उन्हें ज़मीन हर्गिज नहीं मिल सकती, ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी उठकर आवें, तब भी नहीं। इसमें बहुत बड़ा रहस्य है, जिसे लुत्तो ही जानता है[3]।'सर्वे सेटल-मेण्ड, सर्वोदय का भूमिदान कार्यक्रम, जित्तन द्वारा अपनी ही परती की जोत, कोसी योजना द्वारा परती की सिंचाई आदि को लुत्तो अपने दुश्मन जित्तन की पीठ दागने के विभिन्न साधन मात्र समझता है।

सभापति और सरपंच का लोभ दिखाकर लोगों को अपने वश में करनेवाले लुत्तो के द्वारा राजनीतिक नेताओं के असली रूप रेणु उतारते हैं।

---

1 फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.27

2. कल्पना - 264, मई 1974

3. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.35

ग्रामीण लोगों को अज्ञान के अंधकार से बाहर लाने केलिए किये जानेवाले प्रयत्नों का लुत्तो जैसे स्वार्थी नेताओं के कारण अवरुद्ध रखना पड़ता है । जित्तन लोगों को समझाने लगता है .... " मुझे ऐसा भी लगता है कि जान-बूझकर ही आपको अन्धकार में रखा जाता है । क्योंकि आपकी दिलचस्पी से उन्हें खतरा है[1] ।"

वैयक्तिक विद्रोह को राजनीतिक रंग में रंगाकर अशिक्षित ग्रामीणों को भड़कानेवाले राजनीतिक नेताओं को रेणु जित्तन के माध्यम से प्रहार करते हैं । जुलूस में भाग लेनेवाले लोगों से जित्तन यों कहता है - "राजनीतिक पार्टी के कार्यकर्ताओं से मैं कहूँगा । जनता की सरलता का दुरुपयोग अपने स्वार्थ केलिए न करें । क्षतिपूर्ति, पुनर्वास तथा ज़मीन-वितरण आदि मसले ऐसे हैं जिससे सरकारी लाल फीता और घूसखोरी से आप ही बचा सकते हैं, जनता को । जागरूक[2]" यह रेणु की अपनी जबान ही है । ग्रामीण जनता के भोलेपन को अपने स्वार्थ लाभ केलिए प्रयुक्त करनेवाले राजनीतिक नेताओं के कारण ही आज भी ग्रामीण लोग अंधकारमय जीवन जीने को अभिशप्त रह जाते हैं । शिक्षा और विज्ञान से प्रभावित नवीन चेतना से युक्त नई पीढ़ी ही ग्रामीण जनता को ज्ञान की नई स्फूर्ति प्रदान कर सकती है ।

स्वार्थ-लाभ केलिए कोई भी रूप धारण करने केलिए पीताम्बर झा जैसा नेता हिचकता नहीं है । कम्यूनिस्ट पार्टी का 'कन्फर्म्ड मेम्बर' पीताम्बर झा किसान सभा का सेक्रेटरी भी है । मन्दिर और मस्जीद को अफीम की दूकान घोषित करके अपना नाम मकबूल रखकर गाडीवालों को प्रभावित करने में प्रयत्नरत "कम्यूनिस्ट मकबूल कम्यूनिस्ट भाई से आगे नहीं चलता[3] ।" उसके भीतर ब्राह्मण संस्कार इतना रूढ़मूल होकर रहा है कि वह कभी धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बनने को तैयार नहीं होता ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.481
2. वही, पृ.482
3. कल्पना - 264, 1974

गाँव की सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता जयदेव पार्टी संगठन का उपयोग अपने रिश्ते-नातों केलिए करता है ।

आज़ाद भारत में नेतागिरी का हौसला बढ गया है । इन लोगों का रिश्ता-नाता वोट तक सीमित है ।

'परती परिकथा' के चरित्रों के विकास में राजनैतिक पक्ष इतना प्रबल भूमिका अदा कर गया है कि राजनीति को उसके चरित्र से निकालने पर वे अधूरे से हो जाते हैं । चरित्र को बल देनेवाला पक्ष इस कारण राजनीतिक गतिविधियों से जुडकर रह जाता है । किसी भी चरित्र को समझने केलिए उसके राजनैतिक विश्वास और पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक बात बन जाती है । इसी कारण परती परिकथा के पात्र एक राजनैतिक दायरे में घूमनेवाले विभिन्न बिन्दु से लगते हैं जिनको घुमाने की क्षमता स्थितियों पर ही नहीं उपन्यासकार की लेखनी पर भी आधारित है ।

<u>राजनीतिक स्थितियाँ और जीवन के आयाम</u>

परती परिकथा उपन्यास में राजनैतिक स्थितियाँ प्रमुख भूमिका अदा करती है । उपन्यासकार ने राजनैतिक बल्लेबाज़ी के चक्कर में फँसे हुए गाँवों का स्वरूप यहाँ पर अंकित किया है । इस कारण गाँव का जीवन राजनीतिक स्थितियों से उलझा हुआ लगता है । विकास की प्रत्येक योजना कहीं न कहीं राजनीति के चंगुल में आकर फँस जाती है जहाँ से मुक्ति प्राप्त करना असफल सा लगता है । विकास एवं कल्याणकारी योजनाओं को इस तरह दल दल में फँसा देना राजनीतिक कार्यकर्ताओं का कार्य लगता है ।

क्योंकि इसी के आधार पर ही वे लूटपाट कर सकते हैं और अपनी प्रभुता को कायम कर सकते हैं ।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयाम

मनुष्य के जीवन-क्रम को निर्धारित करने में धर्म का अद्वितीय स्थान है । विज्ञान और शिक्षा के प्रचार-प्रसार के फलस्वरूप धर्म का रूप भी बदलने लगा है । फिर भी धार्मिक आचार अनुष्ठान ग्रामीण जनता के जीवन के अंग बनकर रह जाते हैं । देवी-देवताओं की पूजा, जादू-टोना आदि ग्रामीण धर्म के अन्य उत्स हैं ।

हर गाँव की अपनी कुलदेवता और स्थानीय देवता होती है । परानपुर गाँव के लोग परमादेव और ब्रह्म पिशाच पर भरोसा रखनेवाले हैं । कभी कभी यह विश्वास विकास केलिए बाधा भी सिद्ध हो जाते हैं । लोगों का ब्रह्मपिशाच पर भरोसा परती धरती के विकास मार्ग में रोडे लगानेवाली बात बन जाती है । जब परती को उपजाऊ बनाने के लक्ष्य से जित्तन कार्यरत रहता है तो लोग इसका यह कह कर विरोध करने लगते हैं कि "डेढ सौ एकड की पाँच परिधियों में ब्रह्म पिशाच का राज्य था ।"[1] इस विश्वास को लुत्तो अपनी स्वार्थ पूर्ति का साधन बनाता है । निरसू पर परमा देव की असवारी भी उसकी बुद्धि की उपज ही है । देवी-देवताओं की असवारी पर विश्वास करनेवाले ग्रामीण लोग अपनी मनोकामना की पूर्ति हेतु पूजा प्रसाद चढ़ाने केलिए आ जाते हैं । लोगों का विश्वास है कि देवताओं की असवारी पर ठिठोली करने से भगवान रुष्ट हो कर कभी असवार नहीं होगा । धर्म भीरुता ही इसका कारण है ।

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.29

धर्म का और एक प्रबल अंग है अन्धविश्वास । परानपुर के लोग इतने अन्धविश्वासी हैं कि टिटही कीबोली को ये अशुभ मानते हैं । यह बोली सुनते ही "मातायें घर घर में अपने नवजात शिशु को छाती से छिपकाकर बड बडाती होंगी - छिनाल । टिटही कहाँ से कहाँ मरने आयी है । तुझे तीर लगे, कीरबा बनजारे का । टी टी राकसनी ।" नज़र लगने से बचाने केलिए ये जन्त्र मन्त्रों का प्रयोग भी करते हैं ।

आधुनिक शिक्षा-दीक्षा के फलस्वरूप समूचे भारत में परिवर्तन तो ज़रूर दिखाई पड़ता है । लेकिन आज भी ऐसे अनेक गाँव हैं जो इन परिवर्तनों से अज्ञात हैं । आज़ाद भारत के उपन्यासकारों ने इन गाँवों को अपनी लेखनी द्वारा रूप प्रदान किया है ।

ग्रामीण संस्कृति

रेणु ने 'परती परिकथा' में सांस्कृतिक जीवन के पुनरुद्धान से भारतीय जनजीवन को एक नया मोड देने का प्रयास किया है । रेणु का यह विचार है कि देश में होनेवाले परिवर्तन तब तक खोखले ही रहेंगे जब तक उनकी नींव सुव्यवस्थित सांस्कृतिक परम्पराओं पर आधारित नहीं होगी । जीवन के संकेत में विभिन्न जन मानस के संगीत को बहाकर समूचे राष्ट्र के अन्तश्चेतना को तरंगायित किया जा सकता है और इन्हीं तरंगों में रास रचती हुई एक नई मानव चेतना का विकास संभव हो सकता है । सांस्कृतिक परिवेश के माध्यम से और उसकी गहराई में विद्यमान संकेतों के माध्यम से यही इशारा किया है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.389

नवीन वैचारिक जगत् के प्रभाव स्वरूप आज़ाद भारत का ग्रामीण परिवेश भी बदलने लगा । प्राचीन और नवीन मूल्यों के संघर्ष स्वरूप नये सांस्कृतिक मूल्यों का उद्घाटन हुआ है, जिसका प्रभाव सारे जीवन में परिलक्षित होने लगता है । गाँव की सामूहिकता और एकता आज शेष नहीं है । संयुक्त परिवार टूटने लगा है । गाँव का हर व्यक्ति अपने-अपने अलग रास्ते ढूँढने लगते हैं । उत्सव और त्योहारों का रंग फीका पड़ने लगा है । गाँव का एक आदमी दूसरे को शंका की दृष्टि से देखने लगता है । "पिछले डेढ़ साल से गाँव में न कोई पर्व ही धूमधाम से मनाये गए हैं और न किसी त्योहार में बाजे ही बजे हैं । इस दरम्यान, संसार में आनेवाले नये मेहमानों के स्वागत में - सोहर का गीत, सो भी नहीं गाया गया । लड़के - लड़कियों के ब्याह रुके हुए हैं । गीत के नाम पर किसी के पास एक शब्द भी नहीं रह गया है मानो । मधुमक्खी के सूखे मधुचक्र सी बन गई है यह दुनिया ।"[1] जितेन्द्र अनुभव करता है - परमादेव की सवारी के दिन, गाँव में चांचल्य । रघु रामायनी की गीत-कथा के समय, शामा-चकेवा की रातों में, बन्द मन के झरोखे जरा खुले थे । जात्रा, संकीर्तन, नाटक के अवसरों पर आनन्द से सारा गाँव फूल रहता । और अब ?"[2] नवीन मूल्यों के प्रभाव स्वरूप सम्बन्धों में तनाव आ जाता है ।

'परती परिकथा' में रेणु एक ओर वैज्ञानिक आविष्कारों से गाँव की उन्नति चाहते हैं तो दूसरी ओर मनुष्यमन की उन्नति सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से चाहते हैं । वैज्ञानिक उन्नति और सांस्कृतिक उन्नति के संतुलन से ही मन की परती को मुर्झाने से बचा सकते हैं । अन्यथा मनुष्य यांत्रिक सभ्यता के हाथ का खिलौना मात्र रह जाएगा । मनोरंजक कार्यक्रमों के माध्यम से मनुष्य मन को उर्वर रखना आवश्यक है । जिसके फलस्वरूप जाति-पाति,

---

1· फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ·36

2· वही, पृ·447

रीति-रिवाज़, उच्च-नीच आदि भावनाओं से बने दयरों को तोडने में मनुष्य सफल बनता है । नट्टिन टोली की ताजमनी और बाबू टोली के जित्तन के बीच का प्रेम और रैदास टोली की मलारी और भूमिहार टोली के सुवंश का रजिस्टर विवाह रेणु की इस विचारधारा को प्रतिबिम्बित करता है ।

लोककथाओं, लोकगीतों का ग्रामीण संस्कृति से अटूट सम्बन्ध है । इन लोककथाओं का आंचलिक उपन्यासों में वर्णन हुआ है । परानपुर गाँव की व्यथा भरी वंध्या परती धरती की अपनी एक कथा है । "इस पाँतरी की छोटी-मोटी, दुबली-पतली नदियाँ आज भी चार महीने तक भरे गले से, कलकल सुर में गाकर सुना जाती हैं, जिसे हम नहीं समझ पाते ।"[1] परानपुर में रानी-डूबी घाट, दुलारीदाय, परमना हवेली धाना, सुन्नरि-नैका, शाम-चकेवा आदि लोक कथाएँ भी प्रचलित हैं । अनेक गीत कथाएँ जैसे - सुरंगा-सदा-ब्रिज, होरिल सिंह, धुधुली घटवार, कुमर विज्जेमान, टोला-मास, चन्ननियाँ आदि भी वहाँ प्रचलित हैं ।

परानपुर गाँव भर में सुन्नरि नैका की कथा जाननेवाला केवल रम्घू रमायनी ही है । "कुंड सुदाई की असली कथा है - सुन्नरि नैका ।

गाँव के दक्खिन-पूरब कोने में सुन्नरि नैका की डीह है । नैका डीह सुन्नरि नैका की गीतों-भरी कहानी तो रघु को सपने में मिली है । कोई नहीं जानता । जानेगा कैसे ? पूरी गीत-कथा किसी ने सुनी ही नहीं ।"[2] कथा वाचन के प्रारंभ के पूर्व विविध संस्कारों का अनुष्ठान है । सहस्र राक्षसों के आगमन से पृथ्वी और आकाश की स्थिति का वर्णन इस कथा वाचन के वक्त यों करते हैं -

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.9
2. वही, पृ.181

"धरती डोल गई भाइयो   घर - घर - पट - पट,
धडिंग धडिंगा गिडपत गाम्:
कुहाँ - कुक्काँ
जी, धड-धड धड़के धरती माय,
धड़क-धड़ा-धड - हाय रे बाप
थरक-थरा - थर थारिया जैसन -
थर - थर काँपे चान,
कि, पातालपुरी में लुकानियाँ पनियाँ रे - ए - ए,
कि रे रबुआ रे - ए - ए, जगहो खोजि न पावे ।
कुक्काँ - कुहाँ [1]

लोक कथाओं को अद्भुत सौन्दर्य के साथ अभिव्यक्त करने की क्षमता अन्य आँचलिक उपन्यासकारों की अपेक्षा रेणु में अधिक है ।

विविध त्योहारों और विशिष्ट अवसरों में गाये जानेवाले लोक-गीतों का भी "परती परिकथा" में वर्णन है । परानपुर गाँव में शामा-चकेवा, करमा-धरमा, हाक-डाक जैसे त्योहारों पर गाये जानेवाले गीत है । परानपुर में शामा-चकेवा की रातें बडी सन्तोषजनक होती है । पूर्णिमा के दो दिन पहले ही शामा-चराई की रात शुरू होती है घर-घर की लडकियाँ, पंछियों के पुतले के साथ डलियों में चावल, फल फूल आदि लेकर जाती हैं । "धान, दही, दूब और मिट्टी के ढेले मिलाकर" [2] लडकियाँ शामा-चकेवा को विदा करती हैं । यह मुख्यत: स्त्रियों का त्योहार हैं । इस वक्त मलारी एक पुराने गीत को नई तर्ज देकर गाती है -

---

1· फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ·189

2· वही, पृ·250

गैहरी-ई-ई नदिया-या अगम बहेधारा-आ कि रामरे,
हंसा मोरा डुबियो नि जाये
रोई-रोई मरली-ई-ई चकेवा-वा, कि रामरे,
आ रे हंसा लौटी के आव । "[1]

मलारी द्वारा गानेवाला और एक गीत यह है :-

हाँ रे पन-कउवा..........
सावन-भादव केर उमडल नदिया
भाँसि गेल भैया केर बेडवा रे, पन-कउवा ।
हाँ रे, पन - कउवा, मचिया बैसली मैया मने-मने गुनैछे ।
भैया गदले बहिनी बुलावेले रे, पनकउवा । "[2]

आधुनिक विचारधारा के प्रभाव स्वरूप सांस्कृतिक मूल्यों में आये परिवर्तनों के बावजूद आज भी शामा-चकेवा, होली जैसे त्योहार ग्रामीण परिवेश में जीवित हैं। सांस्कृतिक क्रांति के माध्यम से सामाजिक क्रांति पर ज़ोर देना रेणु जैसे आंचलिक उपन्यासकारों का लक्ष्य रहा है ।

भाषा-शैली

परानपुर गाँव के जीवन्त परिवेश को उसकी सम्पूर्णता में उभारने हेतु रेणु ने सक्षम प्रयत्न किया है । अंचलिक उपन्यास क्षेत्र के "पहले यात्री"[3] होने के कारण 'मैला आँचल' की रचना के वक्त वे चमत्कारी वृत्ति के आदी बने थे । लेकिन 'परती परिकथा' में आकर उनकी चमत्कारी वृत्ति में बहुत कुछ सुझाव आ जाता है । अंचल विशेष की बोली-उपबोली के साथ

1. फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ.259
2. वही, पृ.259
3. डॉ. ज्ञानचन्द गुप्त - आंचलिक उपन्यास सम्वेदना और शिल्प, पृ.57

उर्दू और अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भी उपन्यास में दृष्टिगत होता है । इसके अतिरिक्त शब्दों का विकृत रूप भी प्रस्तुत किया जाता है । पात्रानुकूल भाषिक रचाव रेणु की अपनी विशेषता है । उपन्यास में प्रयुक्त स्थानीय बोली के शब्दों का कुछ उदाहरण ये हैं झोंटा (14) करहा बात (42) छाडेर (88) दीहिस (97) कम अकिल (132) आदि ।

उर्दू के शब्द

कोरस (26) मिकदार (226) बरखिलाफ (272) फर्ज (355) खिदमत आदि ।

अंग्रेज़ी के शब्द

आइ कांट स्टेंड (22) नामीनेशन (27) बारबर (35) वर्कर (35) माइंड (219) आदि ।

शब्द विकार

जरूड (66) टिकाट (95) कोमप्लिस्ट (94) मिटिन (175) सुन्नर (195) कंटरोल (212) जोजना (219) किस्सिम (340) आदि ।

इन शब्दों के अतिरिक्त उपन्यास में ग्रामीण लोगों के द्वारा गढ़े जानेवाले अनेक शब्द भी हैं जैसे - पगलवा (60) बतियाना (84) अरजंटी (197) कोलेजिया (235) गलियाना (437) आदि ।

भाषा में सहजता लाने के हेतु रेणु ने मुहवारों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया है । जैसे कोल्हू को बैल होना {34}, कलेजा डेढ़ हाथ का होना {41} कलेजा कांपना {65} किए पर पानी फेरना {150} सांप भी मर जाये और लाठी न टूटे {375} हाथ धोकर पीछे पड़ना {151} हाथ की कठपुतली होना {421} आदि ।

स्थानीय शब्दों के प्रयोग तथा उर्दू, अंग्रेज़ी तथा नए गढ़े शब्दों के प्रयोग द्वारा परानपुर का सच्चा चित्रण पाठक के सम्मुख प्रस्तुत किया गया है । "आंचलिक भाषा में होने के कारण भाषा की स्वाभाविकता, माधुर्य, स्थानीय बोली का रंग यहाँ अधिक उभरा है[1] ।"

रिपोर्ताज शैली में लिखा उपन्यास वास्तव में डायरी के पन्नों में उलझ पड़ा है ।

ध्वनि बिम्ब के द्वारा वातावरण को सजीव बनाने की कुशलता रेणु में है । डा॰ सत्यपाल चुघ के अनुसार "रेणु के शब्द चित्रों की यह विशेषता है कि इनमें ऐन्द्रिय विषयों - ध्वनि, वर्ण, गंध का परिपूर्ण समावेश हुआ है[2] ।" कई विशिष्ट ध्वनियों को रेणु शब्दों में बांध देते हैं । आंधी और पहाड़िया पानी के बरसने की ध्वनि

"ह-ह-ह-र-र-र ! गड गुड़ुम-आॅ-आॅ-
मि-ई-ई-ई- आॅ-गर-गर-गुड़ुम[3] ।"
ट्रेक्टर चलाने की ध्वनि- "भट-ट-ट-ट-भड भड-
भड़भड़-सर्र-र-र[4] ।"

1· डा॰ प्रकाश वाजपेयी - हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, पृ॰72
2· डा॰ सत्यपाल चुघ - प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि, पृ॰581-58
3· फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ॰15
4· वही, पृ॰58

"ट्रिप-टि-रि-रि-रि-रि । सुरपति ने टेप-रिकार्डर का बटन आन किया । ट्रि -रि-रि-रि-रि;······।"[1]

इस प्रकार का चित्रण रेणु की कलात्मक क्षमता की विशेषता है ।

"स्वाधीनता परवर्ती गाँव की बहु आयामी समाजशास्त्रीय पहचान तो इस उपन्यास का एक वैशिष्ट्य है ही, साथ ही साहित्य सन्दर्भ में आँचलिक उपन्यासों में भावुकता या दृष्टि विशेष से गाँव को न देखकर गाँव को गाँव की दृष्टि से या मानवीय दृष्टि से देखने का आग्रह भी यहाँ उपलब्ध है, ताकि वहाँ की मानसिकता अपनी समग्रता में सामने आये।"[2]

"परती परिकथा" में रेणु की लेखनी की कलात्मक अभिव्यंजना के स्पर्श मात्र से ग्रामीण जीवन का सौन्दर्य एवं कुरूपता भी एक अजीब आभा से चमक उठता है । स्थानीय वातावरण, विविध घटनाएं, प्राकृतिक सौन्दर्य चित्र, लोक कथाएँ, लोकगीत, पर्व-उत्सव आदि का आंचलिक भाषा के माध्यम से सजीव चित्रण हुआ है । "मैला आँचल" की तुलना में यह अधिक परिष्कृत औ सशक्त लगता है ।

1· फणीश्वरनाथ रेणु - परती परिकथा, पृ·84

2· डॉ· ज्ञानचन्द्र गुप्त - आंचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प, पृ·57

दीर्घतपा (1963)

रेणु का तीसरा उपन्यास "दीर्घतपा" की भूमिका में स्वयं वे लिखते हैं - "यह उपन्यास नहीं, आंचलिक नहीं हाँ, आंचलिक ही किन्तु अर्थात् यह उपन्यास, उपन्यास है।[1]" उनके इस वक्तव्य से पाठक के मन में शंका उत्पन्न होती है क्या यह आंचलिक उपन्यास है ? यह आंचलिक उपन्यास ज़रूर है किन्तु इसका कथांचल कोई ग्रामीण अंचल, जैसे कि उनके सारे उपन्यासों में हुआ करता है, न होकर "बाँकीपुर की समाज सेवी संस्थाओं" में प्रतिष्ठित" विमेन्स वेल्फेयर बोर्ड[2]" है

"दीर्घतपा" उपन्यास रचना के संबंध में रेणु लिखते हैं - "वर्षों से दिन-रात सिर पर सवार पाँच (प्रेतनियों ?) देवियों को अलग-अलग रूपायित करके एक अलबमनुमा उपन्यास - संक्षिप्त वक्तव्यों से (कमेंट्री) गूंथ-गूंथ कर "पंच कन्या" के नाम से प्रस्तुत किया जाय। अंततः वह योजना अनेकानेक कारणों से सफल नहीं हो सकी। अब इन्हें अलग-अलग ही पेश करने के क्रम में यह पहली दीर्घतपा नारी।[3]" बाकी चार प्रेतनियों की कहानी का संकेत उनकी अन्य रचनाओं में कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता।

कथांचल-विमेन्स वेल्फेयर बोर्ड

सभी दृष्टियों से दूषित "बाँकीपुर के "विमेन्स वेल्फेयर बोर्ड" को "दीर्घतपा" के केन्द्र बिन्दु का रूप देकर रेणु अपने में एक जागरूक कलाकार का परिचय देते हैं।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - दीर्घतपा- लेखकीय वक्तव्य
2. वही, पृ.12
3. वही, लेखकीय वक्तव्य

"वेल्फेयर बोर्ड का प्रेसिडेंट राज्य का मुख्य मंत्री है । वाइस-प्रेसिडेट तथा अन्य बारह स्त्री सदस्यों के अलावा 'अन्य पुरुष सदस्यों' से बनी एक कमिटी भी इस बोर्ड की है । वेलफेयर बोर्ड द्वारा संचालित संस्थाएँ हैं - "वर्किंग विमेन्स होस्टल, मेटेर्निटी सेंटर, शिल्प-केन्द्र और मिल्क सेंटर ।"[1] उपन्यास वर्किंग विमेन्स होस्टल के कार्यकलापों पर केन्द्रित है । होस्टल की "केयर टेकर" है मिस बेला गुप्त। वह होस्टल के नियम के विरुद्ध किसी को कोई छुट्टी नहीं देती ।

होस्टल की सीमित जगह इस तरह हैं - "जिधर ट्रेनी-लडकियाँ रहती हैं, उसे यहाँ पिछवाडा कहा जाता है । इधर होस्टल की महिलाओं ने इस हिस्से का नाम "दाईकित्ता" चला दिया है । "दाईकित्ता बाद दीवार है । दीवार के उस पार है मेटेर्निटी सेण्टर, शिल्प-केन्द्र । यहाँ उस हिस्से को सिर्फ सेण्टर कहते हैं,[2] यही उपन्यास का कथांचल बना है ।

कथावस्तु

दीर्घतपा मिस बेला गुप्त की तपस्या की कहानी है । आज़ादी की मंगल कामना से प्रेरित होकर बाँके बिहारी के साथ भागी बेला को बाँके की कायरता के कारण अपना "सब कुछ" बलिदान करना पडता है । वहाँ से मुक्त बेला "मातृ कल्याण संघ" की सहायता से बाँकीपुर कालेज में नर्स का प्रशिक्षण लेती है । जहाँ उसका मिलन एक प्रिजनर पेशेंट क्रांतिकारी रमाकांत से होता है और वह रमाकांत पर मोहित हो जाती है । रमाकांत के अस्पताल से भागने और मृत्यु हो जाने की सिलसिले में पुलिस बेला पर शंकित होते हैं । अपने चार साथियों से कालेज छोडनेवाली बेला की मुलाकात रमला बानर्जी से होती है जो उसे एक नया जीवन प्रदान करती है । रमला उसे

1· फणीश्वरनाथ रेणु - दीर्घतपा, पृ·12-13

2· वही, पृ·32

"विमेन्स वेल्फयर बोर्ड में डेढ़ सौ रूपये मासिक पारिश्रमिक पर फील्ड आर्गेनाइज़र की नौकरी दिलवाती है । दैनिक काम में व्यस्त होकर अपने अतीत दु:ख को भूलने की चेष्टा करनेवाली बेला को कभी कभी स्मृतियाँ सताती रहती हैं ।

श्रीमती रमला बनर्जी की मृत्यु के बाद श्रीमती ज्योत्सना आनन्द वेल्फेयर बोर्ड की सेक्रेटरी बनती है जिससे बोर्ड का स्वच्छ वातावरण बिगड जाता है । होस्टल के नियम को धूल में मिलाकर वह अपनी इच्छानुसार कार्य करती है । होस्टल में रहनेवाली लडकियों को अपने मेहमानों के बिस्तर बिछाने केलिए भी वह आदेश देती है । होस्टल के नियमों के अनुपालन में ज़ोर देनेवाली मिस बेला को भी ज्योत्स्ना आनन्द से गालियाँ सुननी पडती हैं । यहाँ तक कि "ग्रामोद्योगी माल" में अंजु-मंजु के अतिरिक्त मिस बेला को भी फंसाने का प्रयत्न वह करती है लेकिन असफल निकलती है ।

क्लिफ्टन हाल में सुखराम द्वारा आयोजित कार्यक्रम के दौरान श्रीमती आनंद के मार्ग निदेशन में दाई किस्से की कुंती देवी और तारादेवी विभावती और गौरी को भगाकर श्रीमती आनन्द के चहेतों के द्वारा बलात्कार में सहायता पहुँचाती है । इसी से अपमानित होकर गौरी आत्महत्या कर लेती है । इस समय मिस बेला गुप्त अनाम शिशु रोग की इलाज की खोज में घूमती रहती है ।

विमेन्स वेल्फेयर बोर्ड की संस्थाओं में हुए कुकृत्यों की जिम्मेदारी मिस बेला को लेनी पड़ती है । पुलिस द्वारा जाँच के समय बेला के क्वाटर से "एफ पाक" के कई पैकेट मिलते हैं । होस्टल की नौकरानी रामरति स्वीकार करती है कि श्रीमती आनन्द के निदेशानुसार स्वयं उसीने ये पैकेट वहाँ रखे हैं मिस बेला चाहे तो सफाई देकर बाहर आ सकती है । लेकिन "भरी कचहरी में चार वकीलों से जिरह करवाना" वह नहीं चाहती । उसके साथ ही

1· फणीश्वरनाथ रेणु - दीर्घतपा, पृ·127

माता-पिता से किए गए व्यवहार का {बाके बिहारी के साथ भागना} जो "पाप बोध" एक युग से उसे सताता रहा है उससे मुक्ति केलिए यह सजा भोगने का वह निश्चय करती है ।

सरकारी चपरासियों के द्वारा होस्टल के फाटक पर एक बड़ा ताला लगाया जाता है । भीड़ में से कोई कहने लगता है - "चिड़ियाखाना बन्द हो गइल ?"[1] बाद में ग्यारह वर्षीय एक बालक कोयले के टुकड़े से उस फाटक पर एक अश्लील वाक्य लिख देता है ।

प्रमुख पात्र

चरित्र चित्रण के संबन्ध में रेणु की अपनी विशेष मान्यताएँ हैं । पात्र काल्पनिक होते हुए भी विशेष व्यक्तित्व से ये भरपूर हैं । इस कारण अनेक लोग इन पात्रों में अपनी प्रति छाया देखने लगते हैं । दीर्घतपा की भूमिका में स्वयं रेणु लिखते हैं - "मेरे उपन्यासों में कुछ लोगों ने "भ्रमवश" अपनी सूरतें देखीं और कुछ प्रसन्न और कुछ दुखी हुए । कुछ लोगों ने प्रचुर पीड़ा भी पहुँचाई । और आशा है पहुँचाते रहेंगे । इसके बावजूद - ऐसी घोषणा अथवा वक्तव्य अथवा सफाई को मैं हिमाकत मानता हूँ ।[2] क्योंकि, उपन्यास, उपन्यास है और उपन्यास होता है ·········।"

उपन्यास का प्रमुख पात्र है मिस बेला गुप्त । उसकी लम्बी तपस्या की कथा ही "दीर्घतपा" में चित्रित है । वह पूर्णिया जिले के किशनगंज के इस्लामपुर गाँव की है । गाँव के स्कूल के व्यायाम-शिक्षक की पुत्री बेला

1· फणीश्वरनाथ रेणु - दीर्घतपा, पृ·128

2· वही, लेखकीय वक्तव्य

बचपन में पढ़ने लिखने में ही नहीं खेल-कूद के क्षेत्र में भी होशियार रहती है। सभी प्रतियोगिताओं में वह सर्वप्रथम निकलती है। क्रांतिकारी कहानियाँ सुनाने और जागरण गीत गाने की उसकी होशियारी देखकर अब्दुल वदूद साहब उसके पिता से कह देता है - "मास्टर साहब, अपनी बेटी को अब ज़रा संभालिए। "बम-बम" खेल खेलती है और वही कफनियावाला गीत गाती है स्कूल में। लड़की को संभालिए वर्ना मामला एक दिन बे सम्हाल भी हो जा सकता है[1]" उसकी भविष्य वाणी सच्च निकलती है। एक दिन वह अपने पिता के "संभाल" से बाहर हो जाती है।

"बिहार-क्रान्तिकारी पार्टी के बांके बिहारी जब पार्टी केलिए महिला कार्यकर्ता की आवश्यकता के बारे में बेला से कहता है तब आज़ाद भारत की आशा रखनेवाली बेला बिना किसी तर्क-वितर्क से बांके बिहारी के साथ काशी के पार्टी कार्यालय में भाग जाती है।

क्रांतिकारी पार्टी केलिए 'आर्म्स' भेजनेवाला सरफराज खाँ पेशावार होटल के सोलह नम्बर कमरे में "कुमारी" बेला रानी की हत्या कर देता है। बेला के पिता पुत्री की करनी से दुःखी होकर महानन्दी में डूब कर आत्महत्या करता है और अब पगली माँ गाँव छोड़कर न जाने कहीं चली जाती है। जब बेला को यह खबर मिलती है "उस दिन बेला रो नहीं पाई थी। उस दिन के जमे हुए आँसू कलेजे पर लदे हैं। जीवन-भर समय असमय इसी तरह झरेंगे, ढरेंगे। बे-मोल ....!![2]"

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - दीर्घतपा, पृ.40
2. वही, पृ.43

पार्टी क्रांतिकारियों से मुक्त बेला गुप्त के पीछे उसकी दुर्गति भी पीछा करती है । बांकीपुर मेडिकल कालेज में नर्सिंग ट्रेनिंग केलिए गयी बेला लेफ्टिस्ट-क्रांतिकारी रमाकांत से प्यार करने लगती है । अस्पताल से भागे रमाकांत को पकड़कर नाव पर लाते समय वह "ऐसा भागा कि सभी छड़ पकड़ से बाहर । मुक्ति !!"[1] इस घटना से अनजान बेला को परिस्थिति वश नर्सेस क्वार्टर छोड़ना पड़ता है । वह अपनी चार सहेलियों के साथ मौसिनियाँ-कुआँ के मुनिया के घर में जा कर रहने लगती है।

ये पंच कन्याएँ पुलिस और बदमाशों से सताई जाती हैं । हताश बेला का रमला बनर्जी की सहायता से "विमेन्स वेल्फेयर बोर्ड" में फील्ड आर्गेनाइज़र का काम मिल जाता है । यह रहा बेला का कालिमा से भरपूर भूतकाल ।

"विमेन्स वेल्फेयर बोर्ड" के वर्किंग विमेन्स होस्टल की केयर टेकर बनी बेला को मानसिक धैर्य प्रदान करने में रमला मौसी ही कार्य करती है । सिस्टर निवेदिता के आदर्शों को स्वीकार करके सभी कष्टों को सहने की शक्ति उसे रमला मौसी से ही प्राप्त होता है ।

होस्टल सेक्रेटरी बनकर आयी श्रीमती ज्योत्सना आनन्द से उसकी नहीं पटती । ज्योत्सना की फुसलाहट से बेला प्रभावित नहीं होती । होस्टल के नियमों के अनुसार कार्य करनेवाली बेला अंजु-मंजु की छुट्टी के संबंध में ज्योत्सना से साफ-साफ कह देती है - "मैं होस्टल के नियम के विरुद्ध कोई छुट्टी नहीं दे सकती किसी को । आप नियम में संशोधन कर दीजिए । फिर, जिसको जब कहिए छुट्टी दे दूँगी ।"[2] होस्टल से संबन्धित सारी समस्याओं को सुलझाने में वह समर्थ निकलती है । निडर होकर ज्योत्सना से बातें करनेवाली बेला का रूप आकर्षक लगता है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - दीर्घतपा, पृ.67
2. वही, पृ.3

होस्टल के केयर टेकर के रूप में काम करते समय ही उसका समाज सेवा कार्य भी दृष्टिगत होता है । हेल्थ विजिटर और मिडवाइफ के साथ परिवार नियोजन की बातें गली के लोगों तक पहुँचाने में वह भी कार्यरत रहती है । इस हेतु उसे लोगों की गलियाँ भी सुननी पडती है । अनजान शिशु-रोग से जब बारह बच्चों की मृत्यु हो जाती है तब उस रोग के बारे में अधिक जानने और उस केलिए जड़ी-बूटियाँ ढूँढने में वह व्यस्थ रहती है ।

वर्किंग विमेन्स होस्टल में हुई दुर्घटनाएँ जैसे विभावती और गौरी पर बलात्कार, गौरी की आत्महत्या आदि कारणों से बेला की गिरफ्तार हो जाती है । गबन करने, होस्टल को व्यभिचार का अड्डा बनाने आदि अभियोग से उसे पाँच वर्ष की सजा दी जाती है । अनेक सबूतों के आधार पर चाहे वह मुक्त हो सकती थी लेकिन विभावती के चरित्र की चीर-फाट न चाहने वाली बेला इस सजा को मुक्ति मार्ग समझकर स्वीकार कर लेती है ।

सजा स्वीकार करते वक्त अब तक छिपे रहस्य को खोलकर वह सभी को स्तब्ध कर देती है । रहस्य यह है कि अन्नपूर्णा, बेला और बाँके बिहारी की बेटी है । इसी कारण से ही अन्नपूर्णा को देखकर बेला के मन में स्मृतियाँ तरंगायित होने लगती हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत के सामाजिक पतन का खुलकर वर्णन बेला के द्वारा रेणु उपस्थित करते हैं । निस्वार्थ रूप से अपनी जिन्दगी को समाज सेवा केलिए समर्पित बेला को स्वार्थ और छीना-झपटी की इस दुनिया में बहुत कुछ सहना पड़ता है और उसे बदनामी ही प्राप्त होती है । इस बदनामी में भी वह अपने से भी अधिक ख्याल विभावती की विभा की रखती है । सभी कष्टों को झेलती हुई दूसरों केलिए मानसिक पीडायें भोगनेवाली बेला रेणु की स्त्री पात्रों में श्रेष्ठ लगती है । "असत्य और स्वार्थ के घने कोहरे में दीपकलि की

तरह आधी रात में खिली बेला असमय में ही समाज के क्षत-विक्षत बाग से तोड ले गई - "बेला फूले आधी रात ।"

यद्यपि इस चरित्र में आदर्श की झलक मिलती है फिर भी उसकी कारनामे में यथार्थ की भूल नहीं है । बेला जैसी नारी केलिए जो असहाय और पीडित है और अनाथ बनाई गयी है और किसी रास्ते की खोज करना असंभव बात लगती है उसकी उच्च आकांक्षाएँ एक ओर स्वार्थ के हवन कुंड में झोंकी जाती है तो दूसरी ओर आश्रयहीनता के भार से बोझिल यौवन के तंग गलियों मे गुजरने केलिए और अंत में श्रीमती आनन्द जैसी औरत की शरण में जेल काटने में उसे बाध्य कर देती है । बेला के चरित्र को देखते ही मन की गहराई मे एक तीखी आवाज़ उभरने लगती है जो भारतीय स्त्री के जीवन की सारहीनता को उजागर कर देती है । रेणु इस पात्र के माध्यम से अपना लक्ष्य प्राप्त करने में सफल हुए है ।[1]

श्रीमती ज्योत्सना आनन्द

मिस बेला गुप्त के चरित्र को और अधिक उज्वल बनाने हेतु रेणु द्वारा सृजित प्रतिनायिका है श्रीमती ज्योत्सना आनन्द । स्त्री के अनेक रूपों में से भद्दे रूप की प्रतिमूर्ति है श्रीमती आनन्द ।

उपन्यास के शुरू में ही ज्योत्सना का सच्चा रूप दृष्टिगत होता है । विमेन्स वेलफेयर बोर्ड की सेक्रेटरी बनी ज्योत्सना समाज में अपने को ऊपर रखने की कोशिश में लगी रहती है । अपने व्यक्तित्व में दूसरों को प्रभावित करनेलायक कोई गुण के अभाव में वह एक ऐसा तरीका ढूंढ निकालती है कि हमेशा दूसरों की आलोचना करते रहना, जिससे दूसरों को छोटा दिखाकर अपने को ऊँचा करना ।

---

1. डॉ. चन्द्रभानु सीताराम सोनवणे - कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु, पृ.115

उसका पहला कदम लोगों की "मौसी" रमला बनर्जी के खिलाफ उठाती है। इसलिए वह मन ही मन सोचती है "....... उंह। श्रीमती आनन्द अभी कुछ दिनों तक और कोई काम नहीं करेगी। बस, रमला बनर्जी के विषैले प्रभाव को दूर करेगी। एक-एक व्यक्ति के दिल-दिमाग से उस चुड़ैल की छाया को पोंछ फेंकना है।" इसी कारण से वह रमला के विरुद्ध झूठे आरोप लगाती है।

चरित्र भ्रष्ट ज्योत्सना का पूर्वेतिहास बहुत लंबा है। एक समय पर वह महापात्र की पत्नी थी। उसे छोड़कर ज्योत्सना महांती के पीछे पड़ गयी। लकड़ी के ठेके पाने केलिए महांती अपनी पत्नी ज्योत्सना को नरबहादुर की सेवा में लगा देता है। लेकिन ठेका मिलता है सोमसुन्दर आनन्द को। आनन्द के साथ "दि फायरवुड सप्लायर्स कम्पनी" की स्थापना करनेवाली ज्योत्सना उसी के साथ रहने लगती है। कानपुर से बांकीपुर आकर ये लोग "उत्तरांचल ट्रांसपोर्ट सर्विस" शुरू कर देते हैं। कुछ समय में ही श्रीमती ज्योत्सना समाज में माननीय स्थान प्राप्त करती है। रमला बानर्जी की मृत्यु के बाद "विमेन्स वेलफेयर बोर्ड" की सेक्रेटरी भी बनायी जाती है। तीन आदमियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करनेवाली ज्योत्सना अपनी उच्छृंखलता की आदत कभी छोड़ती नहीं।

लकड़ी के ठेके केलिए अपने को समर्पित करनेवाली ज्योत्सना लकड़ी के व्यापार में कभी पीछे नहीं हटती। अपनी इच्छानुसार उपयोग करने केलिए होस्टल के नियमों को धूल में मिलाकर वह अंजु और मंजु जैसी लड़कियों की भर्ती करती है। अंजु-मंजु के अतिरिक्त "ग्रामोद्योगी माल" लिटरेट दाइयों की व्यवस्था भी ज्योत्सना कर लेती है। डी० साहब और पी०साहब केलिए मिस बेला को सौंपने की व्यवस्था भी वह कर लेती है। बेला को केनाडा भेजने की लालच भी वह दिखाती है। लेकिन बेला इसकी जाल में फंसती नहीं।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - दीर्घतपा, पृ० 17

अंजु और मंजु से ऊब गये साहबों केलिए नई माल की सप्लाई केलिए कुंती देवी और तारादेवी की सहायता से विभावती और गौरी पर बलात्कार का आयोजन कर लेती है। जिसके परिणाम स्वरूप गौरी आत्महत्या कर लेती है।

लडकियों के व्यापार में लगी श्रीमती ज्योत्स्ना स्वयं व्यापार का साधन बन जाती है। हमेशा असत्य का सहारा लेनेवाली ज्योत्स्ना सरकारी केलेण्डर पर छपे "सत्यमेव जयते" के आर्षवाक्य को देखकर हँसने लगती है

"ज्योत्स्ना अपनी अतृप्त वासना की पूर्ति हेतु क्लर्क सुखराम से लेकर "हेल्थ सेर्विसेज़ डाइरक्टर" बागे तक के पीछे पडती है। सुखराम की अश्लील प्रशंसा[1] सुनकर वह फूले नहीं समा पाती। प्राय: सभी भाषाओं के एकाध अश्लील कहावत और अश्लील शब्द जाननेवाली ज्योत्स्ना अवसर पाकर उसका प्रयोग भी कर लेती है। अंजु-मंजु से मिलने केलिए जाते सुखराम से वह बिना किसी लाज से पूछती है - "रेवाज करने जाते हो या सुख पाने ? सुख पाओगे बुड्ढा गोसा ?"[2] अपनी छातियों को ललचायी हुई निगाहों से देखनेवालों को वह चाहने लगती है। "अपनी देह के जिस अंग से उसे चिढ़ है, जिसके लिए उसे लज्जित होना पड़ता है - उस अवांछनिय अंग की ओर प्रशंसा की दृष्टि से देखनेवालों की आँखों को पकडने में वह कभी गलती नहीं करती। वह मन ही मन ऐसी ललचाई निगाह से देखनेवालों को चाहने लगती है।

महौती, आनन्द, बागे, तुलपुले, देसाई और यह मनोरंजन था।[3] घर में आनन्द की अनुपस्थिति में वह बागे को "सामिष" आहार खिला देती है। एक बार राजगीर के होटल में वह अपनी अतृप्त वासना की पूर्ति बागे द्वारा करती है। उस वक्त वह बागे से कहती है - आई हेट दट ओल्ड डॉग। मुझे उस बुड्ढे के चंगुल से छुडाकर अपना क्यों नहीं बना लेते बागे ?"[4]

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - दीर्घतपा, पृ. 11
2. वही, पृ. 21
3. वही, पृ. 74
4. वही, पृ. 119

मिस बेला गुप्त के जीवन को नारकीय बनाने के पीछे ज्योत्स्ना का हाथ ही कार्य करता है । रामरति से बेला के क्वार्टर में "एफ·एल" के पैकेट रखवा कर निरीह बेला को पुलिस के जाल में फंसा देती है ।

सभी दुर्गुणों से युक्त श्रीमती ज्योत्स्ना आनन्द का चित्रण लेखक ने आधुनिक मुखौटे धारी समाज सेविकाओं की प्रतिनिधि के रूप में किया है । बड़े बड़े राजनीतिज्ञों और अधिकारियों को अपने वश में रखकर ये महिलाएँ अपनी स्वार्थ की पूर्ति कर लेती हैं । इन कुकर्मों का फल भोगना पड़ता है निरीहों को । महिला होस्टल, महिला संघ आदि की आड में लड़कियों की व्यापार करनेवाली ज्योत्स्ना आनन्द जैसी महिलाएँ राजनीतिक लोगीबाज़ नेताओं को "ग्रामोद्योगी माल" सप्लाई करके अपने वश में कर देती है । आज़ाद भारत की उन्नति में अड़चनें डालनेवाली इन समाज सेविकाएँ अपना उल्लू सीधा करने में समर्थ रहती हैं ।

रमला बनर्जी

उपन्यास के मंच पर प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित न होने पर भी पाठक के मन में एक अलग सा स्थान प्राप्त करने में रमला बनर्जी का पात्र सफल होता है । खेलकूद से लेकर समाज सेवा तक के कार्यक्रमों में भाग लेनेवाली रमला को 1934 के भूकम्प पीड़ितों की सेवा केलिए बाबू राजेन्द्र प्रसाद से प्रशंसा मिली थी । बैरिस्टर नगेन्द्र के साथ उसकी शादी के बाद स्वास्थ्य मंत्री के द्वारा नर्सेस सेलक्शन में सदस्या के रूप में उसका चुनाव हो जाता है । इस पद की अस्वीकृति करके वह नर्सेस ट्रेनिंग लेती है और समाज सेवा केलिए अपने को समर्पित कर देती है ।

रमला बनर्जी के अथक परिश्रम से ही "विमेन्स वेलफेयर बोर्ड, महिला शिल्प कला विद्यालय, शिशु-कल्याण केन्द्र, मातृमंगल मन्दिर, वर्किंग विमेन्स होस्टल, महिला भवन आदि की कल्पना साकार हो उठती है। गाँववालों की "मौसी" रमला ही मिस बेला गुप्त को एक नया जीवन प्रदान करती है।

बच्चों को प्रोत्साहित करने में विशेष ध्यान रखनेवाली रमला के बारे में बिहार की सर्वप्रथम महिला पाइलट बनी कुमारी वीणा प्रसाद कहती है "रमला मौसी नहीं होती तो अब तक मैं किसी साहूजी के आधा दर्जन बच्चों की बीमार माँ होती और रमला मौसी के किसी मेटरनिटी सेंटर में दवा केलिए रिरियाती फिरती। 1"

मिस्टर निवेदिता के आदर्श को दिखाकर मिस बेला को दिलासा देनेवाली रमला बनर्जी विशेष आकर्षक लगती है। दूसरों के दुःख दर्द को अपना समझकर सहायता प्रदान करने में हमेशा तैयार रमला बनर्जी वास्तव में नारी उद्धार को मंत्रदीक्षा ली हुई लगती है। समाज में उन्नत स्थान का अधिकारी होकर भी निस्वार्थ सेवा भावना से आगे बढ़नेवाली रमला जैसी स्त्रीयों से ही भारत का उद्धार संभव होगा।

गौण पात्र

उपर्युक्त पात्रों के अतिरिक्त होस्टल में रहनेवाली लड़कियों में अंजु और मंजु श्रीमती आनन्द के हाथों की कठपुतलियाँ हैं। श्रीमती आनन्द के मेहमानों को सुख प्रदान करने का दायित्व इनको निभाना पड़ता है।

---

1 फणीश्वरनाथ रेणु - दीर्घतपा, पृ॰16

इनके लोक गीत और लोक नृत्य पर सभी लोग पागल हो उठते हैं। यहाँ तक कि इस नाच को देखकर बाँकीपुर के सैकड़ों प्राणियों के मन की मीन जल के बिना तड़प उठती थी।[1]"

शराब बातें बोलनेवाली और बुरी आदत रहनेवाली कुंती देवी और रुक्मिणी रात में विभावती और चन्द्र मोहिनी के बिस्तर पर सोने का प्रयत्न करती है। कुंती देवी और तारादेवी मिलकर ही विभावती और गौरी को श्रीमती आनन्द के आदमियों द्वारा बलात्कार करने का अवसर प्रदान करती है। बलात्कार से पहुँचे सदमे से गौरी आत्म हत्या कर लेती है। होस्टल की नौकरानी रामरति, होस्टल में रहनेवाली प्रोफेसर रमा निगम, रेवा वर्मा, रामरति की माँ मुनिया, बेला की पुत्री अन्नपूर्णा आदि भी उपन्यास के तन्दुओं को बुनने में सहायक सिद्ध होती हैं।

पुरुष पात्र

विमेन्स वेलफेयर बोर्ड से संबन्ध रखनेवाला उपन्यास होने के कारण अधिकांशतः स्त्री पात्रों का चित्रण ही हुआ है। जिन पुरुष पात्रों का उल्लेख किया जाता है उसमें प्रमुख है हेल्थ सर्विसेज़ डायरक्टर बागे। सरकारी नौकरों के अनाचार और पथ भ्रष्टता का वह साकार रूप है। अपने को दलाल कहने में संकोच न करनेवाले बागे की राय में - "जहाँ सभी बालू की दीवार बना रहे हैं वहाँ ईंट सिमेंट का घर कोई पागल ही बना देगा।[2]" श्रीमती आनन्द की सहायता से विमेन्स होस्टल के विशुद्ध गृह-उद्योग के माल[3]" से व्यापार

----

1. फणीश्वरनाथ रेणु - दीर्घतपा, पृ.70
2. वही, पृ.46
3. वही, पृ.45

चलानेवाले बागे को श्रीमती आनन्द की अतृप्त वासनाओं की पूर्ति भी करनी पड़ती है । बागे को अपनाने की असीम लालसा रखनेवाली श्रीमती आनन्द के बारे में बागे यों सोचता है क्या है यह औरत ? औरत का यह कौन सा रूप है ? उस बुड्ढे को छोड़कर अब यह मुझे फासना चाहती है ? बागे इतना अहमक नहीं ।[1]" औरतों से अपनी शारीरिक भूख मिटानेवाला बागे ऐसी वैसी स्त्रियों को अपनाना नहीं चाहता । बागे जैसे सरकारी कर्मचारियों के कारण प्रशासनिक क्षेत्र के साथ साथ समाज भी दूषित हो जाता है । श्रीमती आनन्द जैसी धोखेबाज़ समाज सेविकाओं से मिलकर बागे जैसे अधिकारी निरीह औरतों की ज़िन्दगी तबाह कर देते हैं ।

आज़ाद भारत की मंगल कामना से सब कुछ त्याग कर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ी मिस बेला गुप्त के जीवन को बर्बाद करने वाला है कपट क्रांतिकारी बांके बिहारी । सतीत्व, पाप और पुण्य आदि पर आस्था रखनेवाले बांके बिहारी की मत में "सतीत्व क्या है ? कुछ नहीं । पाप क्या है ? पुण्य क्या है ? देश को स्वतंत्र करना ही सबसे बड़ा पुण्य है । भूख लगती है । वैसे ही, देह की भूख है ।[2]" क्रांति के नाम से मोहित कर लड़कियों को अपनी इच्छानुसार प्रयुक्त करनेवाला बांके बिहारी पुरुष के कायर रूप को प्रस्तुत कर देता है ।

उपन्यास में प्रत्यक्ष रूप में न आनेवाला क्रांतिकारी रमाकांत, होस्टल का क्लर्क मुखराम, रमेश की बूढ़ी नानी से कही गई दवाई को "मिश्र फार्मूला" के नाम से प्रचलित करनेवाला डॉ· मिश्र, ज्योत्सना का पति आनंद आदि पुरुष पात्रों का भी चित्रण उपन्यास में हुए हैं ।

1· फणीश्वरनाथ रेणु - दीर्घतपा, पृ·119

2· वही, पृ·41

उपन्यास के अंत में एक पात्र बनकर स्वयं रेणु उपस्थित होते हैं । इससे यह स्पष्ट हो जाता है रेणु का अपना जो अस्तित्व है वैसे ही वे अपने पात्रों को भी अस्तित्व प्रदान करने में सफल हुए हैं ।

विविध आयाम

सामाजिक

आज़ाद भारत के बदलते हुए समाज का चित्रण "दीर्घतपा" में रेणु ने किया है । अपनी स्वार्थ सिद्धी केलिए भद्दे से भद्दे काम करने में आज कोई हिचकता नहीं । सच्चाई केलिए अब समाज में कोई स्थान नहीं रह गया है । धन लोभ केलिए अपनी आत्मा को भी बेचने केलिए आम मनुष्य तैयार हैं ।

सरकारी कर्मचारी से लेकर साधारण नागरिकतक भ्रष्टाचार के पथ को अपनाता हुआ दिखाई देता है । सत्य का लोप हो गया है इसलिए आदर्श वाक्य "सत्यमेव जयते" का कैलेण्डर टांग कर लोग तृप्त हो जाते हैं ।

समाज में नारी का स्थान इतना गिरा है कि नारी पुरुष केलिए "चमड़े का पोर्ट-फोलियो-बेग है - उसे वह जब चाहता है खोलता है बन्द करता है । चमड़े का थैला तर्क नहीं करता । थैला क्यों तर्क करती है ।"[1] यहाँ तक ही नहीं पुरुष के इच्छानुसार उसकी उंगली पर नाचनेवाली कठपुतली बनी स्त्री की दुर्गति और भी बाकी है । पापिनी ! अभी क्या हुआ है ? तेरी दुर्गति अभी बाकी है । सुकुमार घोष तुम्हारे पास सोएगा आनन्द सोएगा डाइरेक्टर सोएगा डाइरेक्टर का किरानी सोएगा सभी सोएंगे । तुम सेवा करोगी । तुम कुछ नहीं

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - दीर्घतपा, पृ.42

बोल सकती[1] ।" लकड़ी के ठेके पाने केलिए हो या डायरक्टर से अनुदान पाने केलिए नारी को अपना सतीत्व बेचना पड़ता है ।

नारी की बढ़ती कामुकता का चित्रण श्रीमती आनन्द, कुन्तीदेवी और रुक्मिणी के द्वारा स्पष्ट होता है । पहले होस्टल की महिलाओं की इज्जत गली के बच्चे तक करते थे लेकिन "अब तो इस गली में, दिन में भी अकेली चलने का साहस नहीं होगा किसी को । बीड़ीवाले छोकरे ने क्या कहा जानती है[2] ?" श्रीमती आनन्द जो "विमेन्स वेलफेयर बोर्ड" की सेक्रेटरी है, वर्किंग विमेन्स होस्टल मे ग्रामोद्योग माल तैयार करती है । मानसिक विषमता को दूर करने केलिए जानकी देवी, कुन्ती देवी और तारा देवी स्प्रिट में पानी मिलाकर पीती है ।

ताले लगाए फाटक पर ग्यारह वर्षीय किशोर से कुछ अश्लील वाक्य लिखाकर रेणु यह दिखाना चाहते हैं कि पीढ़ी दर पीढ़ी मे नैतिक मूल्यों की च्युति होती रहती है ।

जातीयता का कुत्सित प्रभाव उपन्यास के कई प्रसंगों में दिखाई पड़ता है । ज्योत्सना हमेशा अपनी प्रभुता को कायम करने के लक्ष्य से जातीयता का विष फैलाती हुई दिखाई पड़ती है । सब लोगों के आदरणीय पात्र बंगालिन होने के नाते उसे नीचा स्थान दिलाना और बिहारियों के नाम पर अपना स्थान बनाये रखना श्रीमती आनन्द का उद्देश्य लगता है ।

आर्थिक

मुख्य रूप से सामाजिक पहलू पर ज़ोर देने के कारण उपन्यास के अन्य पहलुएं फीके पड़ गये हैं । फिर भी "दीर्घतपा" के चारदीवारों में

1· फणीश्वरनाथ रेणु - दीर्घतपा, पृ·44
2· वही, पृ·81

रहनेवाली महिलाएँ स्वातंत्र्योत्तर काल की नई पीढ़ी की आशा आकांक्षाओं को और आर्थिक दुर्गति को दिखाती हैं । छोटी सी वेतन मे जीवन बितानेवाल और आर्थिक संकट के कारण श्रीमती आनन्द के चंगुल में फँसे रहने को विवश पात्रों का भी इस उपन्यास में वर्णन है ।

राजनीतिक

उच्च वर्ग द्वारा निम्न मध्यवर्ग के शोषण का खुलकर वर्णन "दीप्तिपा में हैं । बागे खुल्लम-खुल्ला कहने लगता है "कोई भी पार्टी पावर में आवे, जातीयता फूलेगी - फलेगी । फेवरटिज्म मिटेगा नहीं । भाई भतीजावाद भी कायम रहेगा । रूलिंग पार्टी का अदना कार्यकर्ता जिला के कलक्टर की कलम पकड़ने का साहस, तब भी करेगा ।"[1]

हॉस्टल में भी उच्च वर्ग के लोगों का नियम ही चलता है । कालेज में पढ़नेवाली अंजु और मंजु वर्किंग विमेन्स हॉस्टल में रह नहीं सकती । लेकिन सेक्रेटरी श्रीमती ज्योत्सना केलिए कोई कानून लागू नहीं है । वही उन्हें वहाँ भर्ती करवाती है । यहाँ कानून बनाना और तोड़ना एक साधारण सी प्रक्रिया है । इस पर कोई सवाल नहीं पूछा जाता ।

उपन्यास में राजनीति का सीधा दाव पेंच नहीं दिखाई देता । लेकिन अप्रस्तुत रूप में राजनीति का बोलबाला अनुभूत होने लगता है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - दीर्घतपा, पृ.78

अपने अन्य उपन्यासों के समान स्थानीय शब्दों के प्रयोग जैसे "ऐत्ती बेर" §इतनी देर§ जोबान §जवान§, बोन §बहिन§ §20§, आदि के साथ दम्यान §8§ जैसे उर्दू के शब्द भी है । इसके अलावा "लाममाम", "बोस्ट", "ट्रेनिंग" §20§ लाइसैंस §21§ हेल्थ-सर्विसेस" §80§ इन्साल्ट§108§ आदि अंग्रेज़ी के शब्द भी है । बोलचाल की भाषा के प्रयोग के कारण संवादों में अनेक स्थानों पर गालियों का प्रयोग भी किया गया है । "गुस्मानी" मानुमपीटना §6§ "अरजंटी बुलाहट" §9§ जैसे नव शब्दों का प्रयोग लोगों के द्वारा करते हुए दिखाई पड़ते हैं ।

मुहावरे और कहावतों के द्वारा भाषा की शोभा बढ़ाने के कार्य भी रेणु ने किया है । उदाहरण केलिए "आँखों के आगे जुगनू उड़ना §2§ जीरा बहुत लम्बी होना §2§ रोटी दोनों हाथों से पकती है § § सीधी उँगली से घी नहीं निकलता § § आदि ।

उपन्यास में वर्णनात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली और नाटकीय शैली का प्रयोग किया गया है ।

उपन्यास के प्रारंभ में ही बिम्ब योजना में उनकी दक्षता का परिचय होता है । ड्राइवर की पुकार, पीटे जाते हुए फाटक की आवाज़, पिल्लों और कुत्तों का शोर और बुढ़िया मुनिया का प्रश्न आदि वातावरण में गूँजते हुए सुनाई पड़ रहे हैं । खो - लो ओ - ओ ।
ढन - ढन - ढन - ढन ! के ऽ के - के - के ! भौं - भौं ! के - है - ए - ए

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - दीर्घतपा, पृ.1

मिस्टर आनन्द के किसी अवैध - व्यापार केलिए काठमंडू जाने के प्रसंग में सरकारी कैलेंडर पर छापे गये आर्ष वाक्य "सत्यमेव जयते" के चित्रण द्वारा रेणु इस ओर संकेत करते हैं कि यह वाक्य आज केवल दीवार पर टांगने का वाक्य बन गया है । क्योंकि "सत्य" एक अर्थहीन वाक्य बन गया है ।

रेणु के अन्य उपन्यासों में लोकगीतों का सुन्दर रूप दिखाई पड़ता है लेकिन "दीर्घतपा" में लोकगीतों का एकदम अभाव ही दृष्टिगत होता है । नाम के वास्ते एक दो जगह लोकगीतों का आभास ही है । जैसे सोने की थाली में जेवना परोसी[1] ।

---

1 फणीश्वरनाथ रेणु - दीर्घतपा, पृ॰10

जुलूस (1965)

"जुलूस" के आरम्भ में फणीश्वरनाथ रेणु अपनी "मानसिक भूमि.... को स्पष्ट करते हुए यों लिखते हैं - "पिछले कुछ वर्षों से एक अद्भुत भ्रम में पड़ा हुआ हूँ । दिन-रात-सोते-बैठते, खाते-पीते - मुझे लगता है कि एक विशाल जुलूस के साथ चल रहा हूँ । अविराम ।[1]" जुलूस का लक्ष्य स्थान, उसमें भाग लेनेवाले लोग आदि से लेखक अनभिज्ञ है । इस भीड़ से अलग होकर सुसज्जित बालकनी" में खड़े होकर जुलूस देखने की लेखक की चेष्टा निष्फल बन जाती है । "इस जुलूस में चलनेवाले नर-नारियों को - अपने आस-पास के लोगों से मेरा परिचय नहीं । लेकिन उनकी माया ममता से छिटककर अलग नहीं हो सकता ।[2]"

व्यष्टि और समष्टि का गहरा सम्बन्ध यहाँ द्रष्टव्य है । समष्टि के बिना व्यष्टि का अस्तित्व ही नहीं रह जाता । उस समष्टि से अलग होकर अपना एक अलग अस्तित्व बनाये रखने की व्यष्टि की चेष्टा सफल नहीं हो पाती । समष्टि के हर एक इकाई से दूसरी इकाई का ममता मोह है । उसे ठुकरा देने में लेखक असमर्थ रह जाते हैं । परन्तु जुलूस के परिप्रेक्ष्य में इस व्यष्टि और समष्टि का एक विशेष अर्थ उभरकर आता है । उपन्यासकार की दृष्टि में वैसे आत्मकथन से व्यक्त है वे स्वयं भीड के अंग बन गये हैं जो बिना किसी लक्ष्य के एक जुलूस के रूप में निकल पड़ी है । वह भीड कहाँ से निकल पड़ी है और कहाँ जा रही है इसका कोई जवाब नहीं । चाहकर भी इस भीड से कट जाने में और अपने अस्तित्व को बनाये रखने में उपन्यासकार असमर्थता का अनुभव करता है । इतनी भूमिका के पश्चात् जुलूस की आत्मसत्ता को व्यक्ति सापेक्ष और व्यक्ति निरपेक्ष दृष्टियों से देखने की संभावनाएँ मुखरित हैं

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस - भूमिका
2. वही

जुलूस का प्रधान पात्र पवित्रा की भी यही नियति बन जाती है कि नबीनगर को छोड़कर जाने का निश्चय करने पर भी, वह उसे छोड नहीं पाती । "मैं जो गई फिर, मैं अकेली नहीं । मैं एक विशाल परिवार की बेटी हूं । अपने गाँव समाज में - लोगों के वीरान हृदय में आनन्द मर्मर स्वर फिर से भरना होगा । आमि आज जीवने प्रथम बार धन्य हंइलाम ।"[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ साथ हुए देश विभाजन और सामाजिक दंगों के फलस्वरूप विस्थापित हुए लोगों को बिहार के पूर्णिया जिले के गोडियर गाँव में बसाया जाता है । इस बस्ती का नाम है नबी नगर । राज्य के पुनर्वास उपमन्त्री मुहम्मद इस्माइल नबी के नाम पर ही इसका नामकरण हुआ है । इसी नबीनगर और गोडियर गाँव के दो धुरों पर ही "जुलूस" की कथावस्तु घूमती है ।

लोक संस्कृति मूलक समाज की स्थापना का संदेश पाठकों तक पहुँचाना लेखक का लक्ष्य लगता है । इस प्रयास में अनेक विभीषिकाएँ उभर कर आने लगती है । गोडियर गाँव और उस गाँव की नव निर्मित शरणार्थी बस्ती नबीनगर की पृष्ठभूमि में इन विभीषिकाओं का चित्रण प्रस्तुत किया गया है ।

पवित्रा के प्रति आकृष्ट अफसर के कारण जुमापुर के शरणार्थियों को सबसे अच्छी जगह प्राप्त होती है । इस जगह में ऐसा कुछ नहीं है जो जुमापुर में नहीं है । पेड-फूल, फसल - जानवर से लेकर यहाँ के लोगों का खान-पान भी एक समान रहता है । फिर भी शरणार्थी लोग इस देश को अपना देश नहीं समझ पाते । लोगों के अनुसार - "आपना" देश फिर "आपना" देश ! पर - भूमि कैसी भी हो, आखिर पर - भूमि ही है ।"[2]

---

1 फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ॰186-187

2॰ वही, पृ॰10

लोगों के मन में हिन्दुस्तान के प्रति मोह बढ़ाकर लोक संस्कृतिमूलक समाज की स्थापना करने केलिए प्रयत्नशील पवित्रा का रूप उपन्यास में उभर कर आता है पवित्रा को सिर्फ यही चिन्ता सताती है कि लोगों के मन में हिन्दुस्तान के प्रति मोह बढ़ाने केलिए क्या किया जाए । वह उन लोगों को समझाने लगती है - "हम लोगों का भाग्य अच्छा है कि इस ज़िले में हमें बसाया गया । यहाँ धान और पाटकी खेती होती है, हम भी अपने देश में धान और पाटकी खेती करते थे । यहाँ के लोग भी मछली भात खाते हैं । गाँव-घर, बाग - बगीचे, पोखरे और नदी - सब कुछ अपने देश - जैसा ।"[1]

लेकिन बस्ती के निन्यानब्बे लोग पवित्रा की इस बात से सहमत नहीं होते । सुखी देहवाला हरलाल साहाने अपना विद्रोह यों प्रकट करता है - "सी हुति पारे ना {ऐसा होना असम्भव है ।} कहाँ अपना देश और अपने देश की मिट्टी और अपने देश का चावल, और कहाँ इस अद्भुत देश का "आजगुबी व्यापार"[2] ।" कालाचाँद इससे भी एक कदम आगे बढ़ने लगता है । उसके अनुसार - "हिन्दुस्तान कैसे आपना देश होगा ?"[3] बस्ती के लोग अपने देश की विशेषता को छोड़कर नयी परिस्थितियों से अपने को जोड नहीं पाते हैं । इसी कारण से लोगों को "हिन्दुस्तानी भाषा" सीखने से चिढ़ है । गोपाल पाइन की स्त्री इसी दृष्टि से कहती है - "सब गेलो । सब गेलो । देश गया, गाँव गया - जाति - धर्म बाकी था सो यहाँ अब समझो गया । सुनती हो, बँगला नहीं, सभी के बच्चों को हिन्दुस्थानी भाषा पढ़ना होगा[4] ।" तालेवर गोढ़ी द्वारा दिये जानेवाले भोजन का शारदा बर्मन इसलिए विरोध करती है कि वह बिहारियों के साथ खिलान-पिलान और मिलान नहीं चाहती । यहाँ तक कि बिहारियों के प्रभाव से कालनी की रक्षा करने केलिए "कोलनी रक्षा दल" का गठन भी किया जाता है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ.10
2. वही
3. वही, पृ.11
4. वही, पृ.122

अपने चहार दीवारों में बंद होकर सिकुड़ने की कॉलनीवालों की आदत केवल उन लोगों के जुमापुर के प्रति मोह के कारण बनी हुई नहीं है । बिहारियों की प्रांतीयता की भावना भी इसका मुख्य कारण बन जाता है । गोडियर गाँववाले नबीनगर को पाकिस्तानी टोला कहते हैं । कॉलनी के पास लगायी तख्ती को चरवाहों के द्वारा फेंक दिया जाता है । कालनीवालों को चिढ़ाने केलिए बिहारी बच्चे भी तरह तरह की पंक्तियाँ गाने लगते हैं । जैसे "दाल पकाया भात पकाया परवल की तरकारी - मीन मारकर भोग लगाते अधम जात बंगाली ।[1]" चौधरी का दुकानदार बेटा यहाँ तक कहता है कि मुसलमानों ने इन्हें जबर्दस्ती गोमांस खिलाकर भ्रष्ट कर दिया है । शरणार्थियों को अपने से निम्न समझकर इन लोगों से रिश्ता स्थापित करना वे नहीं चाहते हैं ।

प्रांतीयता के साथ ही साथ नेतृत्व की महत्वाकांक्षा भी इन दोनों के बीच की खाई को बढ़ाने का कार्य करता है । गोडियार गाँव की पढ़ी-लिखी सरस्वती अनुभव करती है कि उसके रहते हुए एक बंगालिन औरत लीडर बन कर मीटिंग केलिए पूर्णिया जाती है । यह बात बिहारियों केलिए लज्जाजनक है । वास्तविक बात यह है कि पवित्रा कॉलनी कमिटी की बैठक केलिए ही पूर्णिया जाती है और सरस्वती का कॉलनी से संबद्ध नहीं है ।

कॉलनीवालों के मन में नबीनगर के प्रति प्रेम पनपाने में पवित्रा सफल बनती है । स्वजनों और प्रिय जनों से बिछुड़ी पवित्रा को ताले काका के रूप में पिता का प्यार मिलता है । नरेश के रूप में विनोद भी । लेकिन उसकी विचित्र किस्मत जो कि उसे प्यार करनेवाला ज्यादा दिनों तक जीता नहीं, के कारण वह विनोद को अपनाना नहीं चाहती ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ.28

बाढ़ पीड़ितों की सहायता हेतु तालेवर गोढ़ी से एक हज़ार रुपये वसूलने में हार गये लोगों को चकित करके पवित्रा अपना आँचल पसारकर तालेवर गोढ़ी से पाँच हज़ार रुपये वसूलने में समर्थ निकलती है । तालेवर में पिता की झलक पानेवाली पवित्रा अनुभव करती है "मैं जी गयी फिर । मैं अकेली नहीं । मैं निस्संग नहीं । मैं कहीं निर्जन में नहीं । मैं एक विशाल परिवार की बेटी हूँ । पवित्रा अपनी सत्ता को लोक संस्कृति मूलक समाज के गठन केलिए उत्सर्ग कर देती है ।

नबी नगर

'जुलूस' का कथांचल बिहार के पूर्णिया जिले की एक नयी बसी हुई कालनी नबी नगर है । नबी नगर के शरणार्थियों के साथ ही गोडियर गाँव के जन-जीवन को भी रेणु चित्रित करते हैं । इसके समान्तर रूप से चलनेवाली कथा है पवित्रा की । नबी नगर और गोडियर गाँव के सीमित अंचल पर केन्द्रित 'जूलूस' को आंचलिक उपन्यास की श्रेणी में ही रखा जाता है ।

जमालपुर से निकाले गये शरणार्थियों केलिए राज्य के पुनर्वास मंत्री मुहम्मद इस्माइल नबी के नाम पर स्थापित कालनी है नबी नगर । यह गोडियर में सबसे अच्छी जगह है ।

"नबी नगर कालनी के सैकडे - पचहत्तर निवासी एक ही ज़िला और गाँव के रहनेवाले हैं । पवित्रा को छोड़कर सभी पिछड़ी जाति के लोग हैं ? सतगोप, कांदू, नमःशुद्र और कैवर्त ।"[1]

---

1 फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ.69

"गोडियर गाँव !
पन्द्रह घर मैथिल, चार परिवार राजपूतों के - यह है गोडियर गाँव का बाबू टोला । बीस घर ग्वाले, आठ धानुक, तेरह घर गोढ़ी - गोडियर गाँव का असल नाम इसी गोढ़ी टोला से हुआ - जहाँ गोढी [मछली मारनेवाली जाति] लोग रहते हैं - गोढ़िहार । गोढ़िहार से गोडियर ।"[1]
गोडियर गाँव में हर कहीं गन्दगी मिली हुई है । लेकिन गुअर टोली ही सबसे गन्दा है । "हर कूप के पास कीचड से भरा हुआ गड्ढा । गड्ढे में बैठी हुई भैंस ! पोखरा एक था, सो मर गया । मरेगा कैसे नहीं ? पोखरे के किनारे - दस रस्सी जमीन चारों ओर नरक्की धरती । "[2] ।

इन दोनों अंचलों के सीमित दायरे के जीवन को ही रेणु "जुलूस" में प्रस्तुत करते हैं । इस तरह अन्य उपन्यासों की भांति "जुलूस" में भी रेणु ने एक निश्चित और सीमित दायरे में जीने वाले लोगों की जीवन गाथा प्रस्तुत की है । परन्तु यहाँ अन्तर इस बात का है कि नायक के स्थान पर आनेवाला नबीनगर पाकिस्तान से आये हुए शरणार्थियों का अड्डा है । शरणार्थियों के प्रति स्थानीय लोगों की मनोवृत्ति और शरण केलिए दी गयी मिट्टी को अपनी धरती न मान पाने की शरणार्थियों की मनोवृत्ति दोनों एक दूसरे से टक्कर लेती है । दोनों टोलियों के लोग कई बातों में समान तो हैं ही परन्तु देशगत और भाषागत अन्तरों के कारण एक साथ उठने-बैठने में असमर्थता का अनुभव करते हैं ।

<u>प्रमुख पात्र - स्त्री पात्र</u>

<u>पवित्रा</u>

<u>कथांचल नोबीनगर और गोडियर गाँव के बाद "जुलूस" की</u>

1 फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ.20
2. वही, पृ.127

प्रमुख पात्र है पवित्रा । उपन्यास की सारी घटनाएँ पवित्रा के इर्द-गिर्द घूमती है ।

जुमापुर गाँव के एक मात्र हिन्दू ज़मीन्दार काशीनाथ चाटर्जी की बेटी है पवित्रा । अपनी माँ के लाड-दुलार से वह सदा वंचित रहती है । उसका कारण यह है कि पवित्रा से पहले तीन पुश्तों से यह देखा गया कि चटर्जी वंश की कन्या ब्याहने योग्य हो जाती, तो चाटर्जी-परिवार पर एक आफत टा कर चली जाती । इसलिए माँ के अनुसार पवित्रा को पालने में साँपिन को पालने के समान आफत है । बचपन से ही छोटे भाईयों की देख-रेख के साथ घर का सारा काम उसे करना पड़ता है । काम में थोडी-सी भी गलती होने पर उसे माँ से मार भी खानी पडती है । माँ पवित्रा को खुद तो प्यार करती नहीं किन्तु पिता द्वारा पवित्रा का दुलार सह भी नहीं सकती । एक दिन वह अपने पति पर कलंक लगा देती है । अपने पिता से वह अपनी माँ का प्यार भी प्राप्त करती है ।

घर से बाहर निकलने का अवसर युवती बनकर उसे नष्ट हो जाता है । माँ के प्रभाव से भाईयों के प्रेम से वंचित पवित्रा कादिर अब्बा के बेटे कासिम को दादा समझती है । पवित्रा केलिए सगाई किये गये विनोद की हत्या पवित्रा को चाहनेवाले कासिम द्वारा की जाती है । पिता द्वारा रचित कीर्तन की पोथी लेकर पवित्रा भाग जाती है और पहूँचती है जुमापुर के शरणार्थियों के कैम्प में ।

जुमापुर के शरणार्थी दल पवित्रा के मार्ग दर्शन में आगे बढ़ता है । सभी जगह कासिम की दो आँखें उसका पीछा करने लगती है । लेकिन शरणार्थियों को अपनी जी से भी बढ़कर प्यार करनेवाली पवित्रा की सहायता केलिए शरणार्थी लोग मर-मिटने केलिए भी तैयार रहते हैं । पवित्रा को अपमानित

करने केलिए तुले बेतिया कैम्प के इंस्पेक्टर को ये लोग मिलकर सिर मुंड करके, मुँह पर कालिख और चूना पोत करके कैंप से बाहर निकालते हैं । कैम्प के सबसे बड़े अफसर की आँखों में भी पवित्रा कालिमा की छाया पाती है । इसी की आड़ में शरणार्थियों को सबसे अच्छी जगह जहाँ मछली-भात सुलभ है बसाने में पवित्रा सफल बन जाती है ।

नयी बसी हुई कॉलनी को अपना न मान सकने की शरणार्थियों की विवशता से पवित्रा हमेशा दुःख का अनुभव करती है । इन गोडियरवालों के द्वारा नबीनगर को "पाकिस्तानी टोला" कहने की बात हो, अन्दू से बिस्कुट खरीदनेवालों से बंगालियों को गोमांस खानेवाले कहने की बात हो, सभी का समाधान पवित्रा को ही करना पड़ता है । कॉलनी की ओर शरणार्थियों की उपेक्षा वह सह नहीं सकती । पवित्रा चाहती कि हिन्दुस्तान की मिट्टी की ओर शरणार्थियों का मोह बढ़ाए और उनमें देश प्रेम की भावना जागृत करा दें । उनकी दृष्टि में जहाँ जीते हैं वहाँ की मिट्टी से ममता रखने की भावना स्पष्ट होती है । लोगों के मन में हिन्दुस्तान के प्रति मोह बढ़ाने केलिए वह सदा प्रयत्नरत रहती है ।

पवित्रा द्वारा दिखाये अछिमुद्दीनपुर जैसे दृश्य को देखकर गृहातुरत्व से पीड़ित कॉलनी के लोग जब दूसरे दिन काम पर जाने केलिए इनकार कर देते हैं तो एक ममतामयी माँ के समान पवित्रा उन्हें समझाती है - "सात-आठ महीने हो गये हमें यहाँ आये । कभी तो हमारी नज़र में यह "चौर" अछिमुद्दीनपुर हार की झलक लेकर नहीं पड़ा । फिर, कल क्यों ? जानते हो - ठाकुर (भगवान) का आदेश है - यहाँ की मिट्टी को प्यार दो जुमापुर और नबीनगर एक ही है ।"[1]

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ. 76

बाहर के लोगों के साथ कॉलनीवालों का मेल-मिलाप चाहनेवाली पवित्रा अन्तर्जातीय विवाह को भी प्रोत्साहित करनेवाली है । मेल-मिलाप की पहली कदम तालेवर गोढ़ी द्वारा दिये जानेवाले भोज्य से होता है । समाज की विच्छिन्नता को दूर करने की दृष्टि से सन्ध्या और हरिप्रसाद का विवाह भी वह चाहती है । अंगालिन और बिहारी के बीच की शादी के द्वारा गोडियरवालों को कॉलनीवालों से अधिक मिलाना पवित्रा का लक्ष्य रहता है । प्रांतीयता की भावना के स्थान पर देशीयता की भावना पनपाना पवित्रा का ध्येय सा लगता है ।

कॉलनी के विकास केलिए भरसक प्रयत्न करनेवाली पवित्रा के कारण वहाँ मिडिल स्कूल की मंजूरी की जाती है । कॉलनीवालों के साथ ही गोडियर गाँव का विकास भी वह चाहती है । वह जानती है कि शिक्षा ही विकास की कसौटी है । शिक्षा के प्रचार प्रसार हेतु कॉलनी के ही नहीं गोडियर गाँव के लोगों को भी समझा बुझाकर स्कूल में दाखिल कराने में वह सफल निकलती है ।

नबीनगर के लोगों के बीच अपने सौन्दर्य के कारण रानी बनी पवित्रा पर तालेवर गोढ़ी पागल बन जाता है । भैरवी के रूप में उसका भोग करना वह चाहता है । इसी हेतु जयराम को नियुक्त भी कर लेता है । कुटिल बुद्धिवाले जयराम को हरा देना ममतामयी पवित्रा केलिए कोई कठिन कार्य नहीं रह जाता है । पवित्रा को फंसाने केलिए आये जयराम से वह कहती है "देखिए मैं अपनी छोटी बहिन हूँ । आप भाई है ।"[1] बहिनहीन जयराम यह सुनकर पानी पानी हो जाता है ।

1· फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ·66

पत्रकार नरेश में विनोद को पानेवाली पवित्रा उसकी ओर आकृष्ट हो जाती है । उसके पीछे स्कूटर पर बैठकर घूमने में भी वह हिचकती नहीं । कालोनीवाले इसका प्रत्यक्ष रूप से विरोध करने लगते हैं । नरेश उसे अपनाना ज़रूर चाहता है । लेकिन पवित्रा चाहकर भी उसे अपना न पाने केलिए विवश है । आज तक के उसके जीवन के आधार पर वह सोचने लगती है । "मैं जहाँ जाती हूँ अपने साथ प्रलय ले जाती हूँ । मौत । मुझे प्यार करनेवाला ज्यादा दिनों तक जीता नहीं ।[1]" दूसरों के जीवन को नष्ट-भ्रष्ट करके सुख पाने की अभिलाषा उसके मन में रंच मात्र भी नहीं है ।

तालेवर गोढ़ी में पिता की झांकी पानेवाली पवित्रा अपने स्नेह पाश से तालेवर को प्रभावित करने में सफल बनती है । पवित्रा को भैरवी बनानेको चाहनेवाले तालेवर पवित्रा द्वारा "ताले काका ।[2]" की पुकार सुनकर अनुभव करने लगता है कि पवित्रा जनाना नहीं साक्षात् गंगा है ।

लोक संस्कृतिमूलक समाज की स्थापना केलिए अपने जीवनको उत्सर्ग करनेवाली पवित्रा निश्चय करती है कि "आत्मीय स्वजनों के बीच पारस्परिक सहानुभूति और सहयोगिता को फिर से पनपाऊँगी मैं । अपने गाँव समाज में - लोगों के वीरान हृदय में - आनन्द मुखर स्वर फिर से भरना होगा । खोयी हुई चीज़ों का उद्धार करना होगा । अपरिचय, अजनबीपन, उदासीनता, अकेलापन, आत्मकेन्द्रिकता, विच्छिन्नता को दूर करके भूले - भटके लोगों को, अपने लोगों को, पास लौटाकर लाना होगा ।[3]" समाज केलिए अपने को अर्पित करनेवाली पवित्रा एक आदर्शात्मक रूप उतारती है । लोक संस्कृति मूलक समाज के पक्षधर रेणु पवित्रा के द्वारा अपने विचार को प्रकट करने लगते हैं ।

---

1 फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ.183

2. वही, पृ.187

यद्यपि पवित्रा का चरित्र समूचे उपन्यास में छाया हुआ है फिर भी उसे स्वाभाविक पात्र नहीं कहा जा सकता । यह आदर्श का लिबास पहनकर हमारे सामने प्रस्तुत होती है । किसी भी प्रकार की चारित्रिक त्रुटि इसमें दिखाई नहीं पड़ती है । लगता है कि सेवामूलक धर्म को सामने रखकर उसकेलिए जीवन को समर्पित करनेवाली एक नायिका की तलाश उपन्यासकार को थी और उन्हें वह मिल भी गयी । और उसका नाम था पवित्रा ।

सरस्वती

जहाँ एक ओर रेणु सभी सद्गुणों से सम्पन्न पवित्रा की सृष्टि करते हैं तो दूसरी ओर दुर्गुणों से युक्त विचित्र मानसिकतावाली सरस्वती का चित्रण । समाज में महत्वपूर्ण स्थान पाने की लालसा उसके खून में ही लीन है । इस हेतु अपना "सब कुछ" न्योछावर करने में वह सदा तैयार रहती है

विवाह से पूर्व रामगंज पिपरा की कन्यापाठशाला में अध्यापिका का काम करनेवाली सरस्वती को प्रधान अध्यापिका बनाने का लोभ दिखाकर छोटन बाबू उससे कांग्रेस का प्रचार करवाता है और अपनी ही पार्टी के सहयात्री स्कूल इंस्पेक्टर प्रलोभन देते देते उसे गर्भवती बना देता है । इस "मनेशा"[1] के साथ अपाहिज हरखचन्द उससे खरीदता है । जूट-मिल में मशीन मैन रहा हरखचन्द केलिए सरस्वती एक "मशीन" के अलावा और कुछ नहीं रह जाती । पति की मृत्यु तक आठ महीने केलिए सरस्वती को नरक ही भोगना पड़ता है । इस नारकीय जीवन में उसे दिलासा देने का कार्य उसके बचपन का

----

1 फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ.98

दोस्त पारस से किया जाता है । पति के साथ उसके आठ महीने के जीवन के उपहार स्वरूप उसे केवल कमर के दर्द ही प्राप्त होता है ।

यश प्राप्ति केलिए सब कुछ खो देने की उसकी आदत पारस के साथ उसके संवाद से स्पष्ट होने लगती है । घर दामाद बनकर गोडियर बसनेवाला पारस सरस्वती को औरतों के गुप्त रोगों की डाक्टरानी बनाना चाहता है । पारस जब सरस्वती से पूछने लगता है कि "रुपये जब बरसने लगेंगे, तब मुझे क्या दीजिएगा ?"[1] सरस्वती का उत्तर यह रहा - "जो कभी नहीं दिया - वही दूँगी ।"[2] ~~स्त्रियों~~ में यहाँ पर आकर रेणु आधुनिकता के साथ स्त्रियों में आये परिवर्तन को दिखाना चाहते हैं । पुरुषों के साथ नारी भी अपना स्थान बनाये रखने में प्रयत्नरत है । समाज में अनेक ऐसी स्त्रियाँ हैं जिनके पास योग्यता जैसी चीज़ ही नहीं होगी फिर भी वे अपने को दूसरों के सामने अर्पित करके नाम कमाने में लग जाती हैं ।

दमित वासना की शिकार बनी सरस्वती की कमर की दर्द किसी "हट्टे-कट्टे नौजवान" को ~~प्रयत्न~~ एकांत में पाकर चिनचिनाती है । तब अपनी "लाज-लिहाज" भूलकर उससे तेल लगाकर सघुराने लगती है । यह ससारने का काम पहले पारस से करवानेवाली सरस्वती जब यह अनुभव करती है कि पारस की उंगलियों की ज़ोर कम हो गयी है तो भैंसवार कारे मण्डल को यह काम सौंप देती है । रामजय से उसकी आँखें चार होते ही तेल ससारने का काम रामजय का हो जाता है । यहाँ तक कि बुड्ढे पहलवान जेठ को हर शनिवार एक एक कबूतरा खिलाकर उससे अपनी रीढ़ की हड्डी पर

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ.97
2. वही, पृ.98

उंगली दिखाकर सप्ताह भर दर्द से मुक्त होने का कार्य भी करती है।[1] सरस्वती की विचित्र मानसिकता यहाँ स्पष्ट होने लगती है । विवाह के पूर्व ही स्थान प्राप्ति के मोह मे इंस्पेक्टर के सामने अपने को अर्पित करनेवाली सरस्वती जीवन भर यह जारी रखने में कभी हिचकती हुई नहीं दीखती । अपाहिज पति द्वारा सुख के स्थान पर उसे दुःख ही मिलता है और ये दमित वासनाएँ अवसर पाकर जागृत होने लगती हैं । वहाँ जवान या बूढ़े का भेद भी वह नहीं देखती । लीडरी करने की अभिलाषा रखनेवाली सरस्वती पवित्रा की लीडरी पर ईर्ष्या करती हुई दिखायी पड़ती है । वह पूछने लगती है - "मेरे रहते इस गाँव में एक बंगालिन आकर लीडरी करेगी लाज आवे तो किसे ?" सरस्वती हमेशा बंगाली-बिहारी का संकुचित विचार रखनेवाली है । बिहारी तो बंगाली को अपने से निम्न समझते हैं और हर कहीं अपना सिर ऊँचा रखने में प्रयत्नरत रहते हैं ।

इस पात्र की और एक विचित्र आदत है पारसल की शौक । अपने पति केलिए दवा से लेकर दीपा केलिए "किशोर सुधा", फूल के बीज, अष्ट धातु की अंगूठी आदि चीज़ें भी वह पारसल द्वारा मांगने लगती है ।

इन सभी दुर्गुणों के बीच सारे उपन्यास में एक ही जगह उसका सेवा भाव स्पष्ट झलकता है । हैजा से मौत के मुँह में गये पहलवान जेठ को पुनः जीवित करने में वह प्रयत्न करती है । बल्कि स्वयं रेणु केअनुसार "........... पहलवान जेठ ने दीपा की माँ के अनुरोध पर वह काम किया जो नहीं करना चाहिए । फिर उसके लिए दीपा की माँ जो कुछ करे, थोड़ा है[2] ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ.100

2. वही, पृ.124

पवित्रा के पात्र को उज्वल बनाने हेतु रेणु द्वारा सृजित सा लगता है सरस्वती का पात्र । स्त्री सहज सद्गुणों से वंचित इस पात्र सृष्टि से रेणु का उद्देश्य क्या रहा यह स्पष्ट नहीं होता । शायद समाज में स्त्री के पतन का चित्रण ही उनका लक्ष्य रहा होगा । नहीं तो शहरी सभ्यता से प्रभावित स्त्री द्वारा ग्रामीण वातावरण का नाश । जो कुछ भी हो सरस्वती को केवल कामवासना का शिकार दिखाकर वे कुछ भी प्राप्त नहीं कर सके । वे इस पात्र के आड में अनचाहे चित्रणों में लग जाते हैं और यह पाठक के गले मे न उतरनेवाली बात बन कर रह जाती है ।

अप्रमुख स्त्री पात्रों में काला चाँद की माँ आकर्षक लगती है । पवित्रा को जी जान से भी वह प्यार करती हुई दिखाई पड़ती है । पवित्रा अपने प्राणों से भी बढ़कर चाहनेवाली सन्ध्या, पवित्रा का नेतृत्व नापसन्द करनेवाली शारदा बर्मन, तालेवर गोढ़ी की चार भैरवियाँ आदि पात्र भी "जुलूस" को आगे बढ़ाने का कार्य करती हैं ।

पुरुष पात्र

तालेवर गोढ़ी

गाँव का सब से सुखी सम्पन्न व्यक्ति तालेवर गोढ़ी का चित्रण पवित्रा के प्रतिस्पर्धी रूप में किया गया है ।

तालेवर गोढ़ी अपने समय का मशहूर ओझा-गुणी है । लोगों के विश्वास के अनुसार "भूतप्रेत, जिन-पिशाच, देव-दानव किसी की भी हवा लग जाये - तालेवर गोढ़ी के हाथ की एक चुटकी धूल पडते ही आप-आप

करके भूत भागते थे ।[1] पण्डित रामचन्द्र चौधरी के अनुसार तालेवर गोढ़ी के पास "ढ़ोढ़ा-साँप" का मंत्र भी नहीं । लेकिन इसी रामचन्द्र चौधरी का ही अनुभव यह है कि "तालेवर गोढ़ी ने आखिर आखिर में ऐसी हड्डी गाड़ी दरवाज़े पर कि चौधरी की सारी सम्पत्ति के साथ लछमी नाचती हुई तालेवर गोढी के घर में आकर बैठ गयी ।"[2] तन्त्रमन्त्र की दीक्षा वह गुरु औघडदानी से लेता है । भैरवी के रूप में सोलह साल से पचास साल की किसी-भी जाति की औरत को स्वीकारने का उपदेश तालेवर गोढ़ी को इस गुरु से मिलता है । लेकिन वह कभी छोटी जाति का लोभ नहीं रखता वह सदा "सुवर्ण" औरतों को भैरवी बनाता है ।

उपन्यास में तालेवर गोढी का चित्रण स्त्रियों केलिए भूखे नाक की तरह टूट पडनेवाले आदमी के रूप में हुआ है । भैरवियों के बारे में सोचते या कहते वक्त सुमरनी पर हाथ रखनेवाला तालेवर गोढ़ी काशी जाते समय अपने साथ भैरवियों को भी ले जाता है । भैरवियाँ सप्लाई करनेवाले जयराम से पवित्रा के बारे में सुनकर उसका मन पवित्रा केलिए चंचल होता है । पवित्रा को अपनी ओर आकर्षित करने केलिए गोडियर में छिन्नमस्ता भवानी के मन्दिर की नींव डालने केलिए पवित्रा को निमन्त्रित करने का कार्य भी वह करता है । पवित्रा के सद्व्यवहार से तालेवर गोढी को अपने निर्णय से डगमगाना पड़ता है ।

धन का लोभ इस पात्र की और एक विशेषता है । दुयोढे-दूने ब्याज वसूलनेवाला गोढी हमेशा कहा करता है - "मेहनत का पैसा । मेहनत करो और पैसा कमाओ, फिर देखो वह धन जो कभी घटे । मेरे घर में

---

1 फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ•52

2• वही, पृ•53

कोई बाढ़ का पैसा नहीं और न बाढ़ में आयी हुई मछलियों के पैसे हैं[1]।"
बाढ़ पीड़ितों केलिए चंदा लेने केलिए गये लोगों को उसके यहाँ से निराश
लौटना पड़ता है। लेकिन जब पवित्रा अपना आँचल पसारकर उसके आगे
खड़ी होती है तो पाँच हज़ार रुपये देने लगता है। और अपने किये
पापों पर पछताने लगता है।

तालेवर गोढ़ी के चरित्र चित्रण में रेणु ने पूर्ण रूप से सफलता
नहीं प्राप्त की है। व्यक्ति वैचित्र्य से भरपूर है यह चरित्र। इसलिए
उसके चरित्र में आनेवाले तथ्य रोचक और विशिष्ट लगते हैं। परन्तु
पवित्रा को देखते ही तालेवर गोढ़ी में होनेवाला परिवर्तन अस्वाभाविक सा
लगता है। जिस युवती केलिए गोढ़ी लालायित रहता है उस युवती के
"काका" मात्र पुकारने से पितृ सहज वात्सल्य के उदय की संभावना बहुत
ही अस्वाभाविक ही मानी जाएगी। वैसे गोढ़ी के मानसिक परिवर्तन
केलिए पर्याप्त घटनाएँ और विशेष प्रकरण कहीं भी नहीं दिखाई पड़ती।
इन्हीं कारणों से इस सशक्त पात्र का अन्तिम हिस्सा अविश्वसनीयता एवं
अस्वाभाविकता से भर गया है।

जयरामसिंह

तालेवर के बिना पैसे का लठैत जयरामसिंह उपन्यास का
एक विशिष्ट पात्र है। तालेवर को भैरवियों का सप्लाई इसी के द्वारा
किया जाता है। पवित्रा के प्रति तालेवर के मन में मोह जयराम के कारण
ही होता है। तालेवर केलिए पवित्रा को फँसाने केलिए गये जयराम को जब

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ.23

पवित्रा 'भाई' पुकारती है तो बहिनहीन जयराम का दिल बर्फ के समान पिघलने लगता है ।

जयराम का चरित्र तालेवर गोढ़ी के चरित्र के समान अस्वाभाविक सा लगता है । पवित्रा द्वारा "भाई" मात्र के पुकार से उसमें झड़ से परिवर्तन हास्यास्पद लगता है ।

पार्सल मँगवाने की अपनी शौक के कारण पारस प्रसाद गाँववालों में पारसल प्रसाद के नाम से जाना जाता है । गाँववालों केलिए गर्भ विरोधक बटी से लेकर कोक शास्त्र तक मँगवानेवाला पारस प्रसाद सरस्वती से भी साट-साट रखने लगता है ।

अपने घर की सारी सम्पत्ति गिरवी के रूप में तालेवर गोढ़ी को लिखवाकर देने केलिए अभिशप्त है रामचन्द्र चौधरी । नबीनगर को गोडियारवालों के द्वारा "पाकिस्तानी टोला" कहने से चिढ़नेवाला गोपाल पाइन एक आकर्षक पात्र है । अपनी बधिरता पर रस लेते हुए वह कहने लगता है - "मैं छोटी बातें नहीं सुनता, कान में लेता ही नहीं[1] ।" कभी भी नई संस्थापित कॉलनी से आत्मीयता न स्थापित करने केलिए विवश है यह पात्र ।

इन पात्रों के अतिरिक्त बेहुला और सावित्री नृत्यों के कलाकार कारे मंडल और रबिया पासमान, अपनी पाँचों पतोहुओं से सदा झगड़ा करनेवाला ठाकुर रणवीरसिंह, एम.एल.ए. छोटन बाबू, सन्ध्या का प्रेमी हरिप्रसाद यादव, पत्रकार नरेश वर्मा आदि पात्रों का भी उपन्यास में विशिष्ट योगदान है ।

---

1 फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ.16

विविध आयाम

सामाजिक

स्वतन्त्रता प्राप्ति के 14 वर्षों के बाद का समाज ही "जुलूस" में चित्रित है। इन चौदह वर्षों में विकासोन्मुख अनेक योजनाओं के कार्यान्वयन के बाद भी आज़ाद भारतीय समाज की स्थिति अविकसित सी रह जाती है। आदर्शवान नेताओं की मृत्यु से समाज दरिद्र होता रहता है। "एक अज्ञात भय से सारा देश भयभीत है।"[1]

समाज में परिवर्तन तो अवश्य हुआ है। और यह परिवर्तन भलाई केलिए न होकर विनाश केलिए ही सिद्ध हुआ है। इस परिवर्तन का पहला शिकार बना परिवार। परिणाम स्वरूप पारिवारिक संबन्ध टूटने लगते हैं और पारिवारिक संबन्धों की शालीनता नष्ट हो जाती है। उसकी जगह आर्थिक संबन्ध की एकरसता अपना स्थान लेने लगती है। तालेवर गोढ़ी का परिवार उपन्यास में एक ऐसा परिवार का चित्रण उभारता है जहाँ मानवीय संबन्धों से ज्यादा महत्त्व अर्थ को ही दिया जाता है। डाक्टरी केलिए पढ़नेवाले अपने पुत्र को पैसा भेजना या साथ रहनेवाले पुत्र को एक पैसा भी देना वह कभी भी पसन्द नहीं करता।

लाठी के बल पर डगमगाकर चलनेवाले ठाकुर रणवीर सिंह का परिवार भी इसका अपवाद नहीं है। वहाँ की समस्याओं का मूल केन्द्र अर्थ ही है।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ. 102

जुलूस का समाज जातीयता के भेद-भाव से बुरी तरह पीड़ित है । गोड़ियरवाले कॉलनी के बंगाली लोगों से मिलना-जुलना पसन्द नहीं करते हैं । इन्हें चिढ़ाने केलिए इन्हीं पर पाकिस्तान से जबर्दस्त गोमांस खाने का आरोप भी ये लोग करने लगते हैं । कॉलनीवाले भी उनसे कम नहीं सिद्ध होते । वे भी "आपन पाटी" के मानुस से ही मिलाव-जुलाव चाहते हैं । कॉलनी के स्कूल केलिए ब्लोक द्वारा भेजा गया शिक्षक मुसलमान होने के कारण गोपाल पाइन इतना क्रुद्ध होता है कि वह अनशन करने की चेतावनी देकर उसे भगाता है ।

शिक्षा की दृष्टि से गोड़ियर समाज में कुछ विकास दृष्टिगत होता ही नहीं । गाँववाले परिवर्तित स्थितियों में अपने को ढाल नहीं पाते । गाँववालों का दृष्टिकोण इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि - बच्चे पढ़ने जायेंगे तो गाय-भैंस की रखवाली कौन करेगा ? पढ़ने से बाबू हो जायेगा । फिर फुटानी छाँटेगा । खेती - बारी कौन देखेगा ?[1] ग्रामीण जनता मिट्टी को अपनी जान से भी प्रिय माननेवाली है । उनका सुख-दुःख मिट्टी के इर्द-गिर्द घूमता रहता है । खेती-बारी की ओर शिक्षित लोगों की घृणा की भावना से अवगत ग्रामीण लोग अपने बच्चों को शिक्षा की नई ज्योति से आलोकित करना नहीं चाहते ।

आज़ादी के चौदह वर्षों के बीत जाने पर भी ग्रामीण जनता में विकास की स्फूर्ति दृष्टिगत नहीं होती । भारतीय समाज केलिए जो कुछ अमूल्य था वही आज़ादी के बाद परिवर्तित होने लगा ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ.127

नैतिकता का ह्रास भी समाज का अभिशाप बन जाता है । कामवासना और विलासिता में डूबे लोग अपने अनैतिक आचरणों के द्वारा समाज को कलुषित बना रहे हैं ।

हाथ में सदा सुमरनी रखकर "सतनाम सहसरनाम" जपनेवाले तात्तेवर गोढ़ी के भीतर कामुकता का रंग है । अपनी भैरवियों की पाँति में पवित्रा का भी नाम जोडने केलिए तुले अगुला भगत तात्तेवर गोढ़ी अंत में पवित्रा के अलौकिक प्यार के आगे हार जाता है ।

स्त्री पात्रों में सरस्वती का चरित्र ऐसा है जो अपनी आपूरित वासना की पूर्ति केलिए गाँव के नौजवानों से मदद लेती है । पद-पदवी केलिए अपना सब कुछ खो देने केलिए तैयार हुई सरस्वती के मन में पातिव्रत्य केलिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता । यह पात्र सचमुच भारतीय नारी केलिए ही एक कलंक सा प्रतीत होता है । हमारे समाज में नारी का रूप इतना बदल गया है कि वह अपना स्थान पुरुष के बराबर बनाये रखने केलिए नैतिकता पर कोई ध्यान ही नहीं देने लगती है ।

हर कहीं कासीम की दो आँखें पवित्रा का पीछा करती है । जयराम से लेकर कैम्प के बड़े आफिसर तक की "आँखों से कासिम झाँकता"[1] है । बेतिया कैम्प का इन्स्पेक्टर भूखे "नाकार" की तरह पवित्रा पर टूट पड़ता है चाँद को पकडने ।"[2] ट्यूबवेल फिटर की आँखें शुरू से अंत तक पवित्रा के पीछे पडने लगती है । सामूहिक भोज के दिन जयराम "पवित्रा की देह का स्पर्श करीब पन्द्रह बार"[3] करता है और "धन्य"[4] हो जाता है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ.119
2. वही
3. वही, पृ.115
4. वही

संबन्धों के टूटन के साथ ही समाज में नैतिकता का रंग फीका पड़ने लगता है । "जुलूस" के समाज का यह परिवर्तन उसमें चित्रित चरित्रों के द्वारा ठीक ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

आर्थिक आयाम

आज़ादी के चौदह वर्ष बाद के समाज की आर्थिक स्थिति पर दृष्टिपात करते हुए स्पष्ट हो जाता है कि "देश में बड़े-बड़े काम हो रहे है । ब्लौक, कम्यूनिटी हाॅल, बी·डी·ओ·, वी·एल·डब्ल्यू·, सोशल ऑर्गैनाइज़र, एम·ओ·पी·ओ·"[1] आदि । इन सारे "ओ" वाले शब्दों के बावजूद भी समाज का आर्थिक अस्तित्व इने-गिने लोगों पर आश्रित है । आज़ादी के साथ ही ग्रामीण विकास केलिए किये गये विकासोन्मुख प्रणालियों से अज्ञात ग्रामीण लोग आज भी "तालेवर गोढ़ी" जैसे लोगों की कृपा दृष्टि से जी रहे हैं ।

गोडियर गाँव के अभावग्रस्त लोगों का चित्रण रेणु यों प्रस्तुत करते हैं -"बीस घर ग्वाले हैं । किन्तु न किसी के पास एक भैंस है और न गाय । खेती-मज़दूरी के सिवा और क्या कर सकते हैं, बेचारी । किसी के पास एक धुर भी ज़मीन नहीं ।"[2] ब्राह्मण टोले के एक दो परिवार को छोड़कर "बाकी लोग यजमानी, पहलवानी, गाड़ीवानी, घोड़ा लदाई, दुकान, नौकरी, खेती-मज़दूरी और चोरी करके जीवन-यापन करते हैं ।"[3] ऐसी स्थिति में अगर वे तालेवर गोढ़ी से दुगुने या तिगुने सूद पर ऋण लेने को तैयार हो जाते है तो उसमें उन्हें दोषी नहीं कह सकते ।

1· फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ·101

2· वही, पृ·23

3· वही, पृ·21

भूकम्प और अकाल के दिनों की कहानी तो कहना ही नहीं । उन दिनों में "गोडियर गाँव की सारी ज़मीन तालेवर के पेट में चली जायेगी"[1]।

कालिनीवालों की स्थिति भी इससे बेहत्तर नहीं । कुछ एक लोग खेतिहर हैं और बाकी "बिस्कुट, सिन्दूर-आलता, चिनिया-बादाम की फेरी"[2] में लगे हैं ।

स्पष्ट है कि "जुलूस" में चित्रित समाज आर्थिक दृष्टि से टूटा हुआ है और आज़ादी के बाद भी ज़मीन्दारी की वही प्रथा अभी ज़ारी है जिसको समाप्त करने केलिए लाखों कोशिश की गयी थी ।

इस चित्रण से पता चलता है कि आज़ादी के 14 वर्ष बाद भी गाँव की स्थिति में कोई फर्क नहीं आ पाया है । पंचवर्षीय योजना का कोई भी परिणाम ग्रामीण जनता को नहीं मिल पाता । बेरोजगारी और अशिक्षा से सारा गाँव आहत है । उधर गाँव की समूची पूंजी तालेवर गोढ़ी जैसे आदमियों के हाथ में फंसी हुई है जो शोषण कार्य अभी कर रहा है । कोई भी नियम ऐसे लोगों को अपने चंगुल में नहीं फंसा सकता । गाँव की इस दुर्दशा और आर्थिक विपन्नता को रेणु ने भली-भाँति प्रदर्शित किया है ।

राजनीतिक आयाम

गोडियर गाँव की राजनीति जीवन के अन्य पहलुओं के समान भ्रष्टाचार का केन्द्र ही सिद्ध होता है । यह भी बदलते सन्दर्भों के उथल-पुथल से प्रभावित है । आज़ादी के बाद दो चुनाव हो चुके हैं और

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ. 179
2. वही, पृ. 65

गाँव में कई तरह के परिवर्तन भी हो जाता है । लेकिन यह परिवर्तन कभी भी आशानुकूल नहीं हो पाता ।

गाँव की स्थिति ऐसी हो जाती है कि युवा लोग अपने जीवन-यापन के लिए राजनीति को ही चुन लेते हैं । "हर मैट्रिक-फेल नौजवान राजनीति में दाखिल हो गया है और प्रत्येक मिडिल-पास कण्ट्राक्टरी के सपने देखता है - सोते - जगते, उठते - बैठते किसी बाबू का गुणगान करता है आम चुनाव सामने है । प्रत्येक खादीधारी उम्मीदवार है और टिकट की पैरवी केलिए देश के कोने-कोने में पैंतरे बाँधे जा रहे हैं ।"[1]

विकासोन्मुख अनेक योजनाओं के बावजूद भी परिवर्तन न हो पाने का प्रमुख कारण यह है कि हर कहीं शासक पार्टी की मनमानी ही चलती रहती है । तालेवर गोढ़ी की जबान मे रेणु अपना मत यों व्यक्त करते हैं - "अब सरकार बहादुर कहाँ ? अब कँगरेस बहादुर कहो । अपना राज है - मन का मौज है । नेहरूजी को लगता है क्या रुपया खर्च होता है हो । मरेगी पब्लिक ।"[2] यहाँ पब्लिक के हित को देखने केलिए कोई नेता तैयार नहीं होता । सभी स्वार्थवृत्ति की चक्कर में इतने फँसे हुए हैं कि उनकी दृष्टि में संसार उन्हीं तक सीमित है । चाहे सारे की सारी दुनिया नष्ट हो जाय तो भी वे अपनी स्वार्थ साधना में लगे ही रहेंगे ।

समाज में व्याप्त राजनीतिक भ्रष्टाचार के विरुद्ध रेणु ने अपना स्वर यहाँ-तहाँ बुलन्द किया है । वह नागार्जुन का जितना सशक्त नहीं होने पर भी अपने द्वारा सृजित पात्रों के माध्यम से शासक पार्टी काँग्रेज़ के अनाचारों पर प्रकाश डालने में वे एक हद तक सफल निकले हैं ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ.101
2. वही, पृ.26

धार्मिक आयाम

भारतीय ग्रामीण जीवन की धार्मिकता का आधार अर्थहीन आचारों और अन्धविश्वासों पर आधारित रहता है। भारत के औसतन गाँव की सारी विशेषताओं से युक्त है 'जुलूस' में चित्रित गोड़ियर गाँव और वहाँ की बस्ती। अशिक्षा और अज्ञान के कारण उस समाज के लोग सदियों से चलनेवाले अन्धविश्वासों पर आस्था रखने केलिए मजबूर बन जाते हैं।

मंत्र-तंत्र पर विश्वास रखनेवाले इन लोगों को गाँव के तालेवर गोढ़ी जैसे लोग शोषण का शिकार बना देते हैं। तालेवर गोढ़ी उस समय का "बहुत मशहूर ओझा-गुणी"[1] माना जाता है। उन लोगों का विश्वास है कि "....... भूत-प्रेत, जिन-पिशाच, देव-दानव किसी की भी हवा लग जाय - तालेवर गोढ़ी के हाथ की एक चुटकी धूल पड़ते ही बाप-बाप करके भूत भागते थे। ।"[2] इसी तरह मंत्र-तंत्र सिखाने का लोभ दिखाकर अनेक लड़कियों को वह अपनी वासना पूर्ति केलिए प्रयुक्त कर देता है। पवित्रा को अपने वश में करने केलिए आतुर तालेवर गोढ़ी जयराम के हाथों में मंतराई मिट्टी भेजता है। और इससे अनजान पवित्रा जब कॉलनी के स्कूल केलिए गाँव के बच्चों की भर्ती करने केलिए आ जाती है तो लोग विश्वास करने लगते हैं कि मंतराई मिट्टी ही पवित्रा को वहाँ तक ले आयी है।

वैसे ही पहलवान की पाँच पतोहुएँ अपनी अनुर्वरता का कारण सरस्वती को ही समझती है। उनका विश्वास है कि "जिस दिन "ढ़र" जायेगी - "कोख" दे देगी वापस।"[3]

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ.52
2. वही,
3. वही, पृ.88

आज़ादी के बाद हुए परिणामों से भारतीय गाँवों की धार्मिक पहलू अप्रभावित रहती है । इस क्षेत्र में परिवर्तन शोषक लोग चाहते भी नहीं । क्योंकि अशिक्षा के अन्धकार में पड़े ग्रामीण लोगों को वे आसानी से अपना शिकार बना सकता है । विज्ञान की आभा ग्रामीणों के अज्ञान के अन्धकार को दूर करने में अभी तक समर्थ नहीं हुई है । इसका कारण भी शोषक लोग ही है ।

खड़ी बोली में लिखे हुए इस उपन्यास में गोडियर गाँव के पात्रों के साथ बंगला के जुमापुर से आये शरणार्थी पात्र भी हैं । इसलिए उपन्यास की भाषा में स्थानीय, अंग्रेज़ी और उर्दू के शब्दों के अलावा बंगाली शब्द भी मिलते हैं । स्थानीय रूप में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ लेखक ही स्पष्ट करते हैं । कुछ उदाहरण ये हैं - पालवेत §मित्र§ 31, इनुआ §नपुंसक§57, नाकर §भेड़िया§ 57, आदि ।
उर्दू के शब्द - कमसिन §99§, वाजिब §110§, एतराज §113§, आदि ।
बंगाली शब्द - शरणार्थियों की भाषा में कहीं कहीं बंगाली शब्दों के प्रयोग से भाषा में सहजता लाने का कार्य रेणु ने किया है । उदाहरण केलिए - शाद §स्वाद§ 10, टीया §तोता§ 172, सबजांता §सब कुछ मालूम हो जिसे§78, भालोबाशा §158§ आदि । इसके अलावा कुछ शब्दों का प्रयोग अर्थों को स्पष्ट किये बिना ही किया गया है - इन शब्दों के अर्थ ढूँढने का भार शायद वे पाठक पर ही छोड देते हैं । हो सकता है लेखक को बंगाली भाषा का ज्ञान है लेकिन यह कोई ज़रूरी बात नहीं है कि उनके पाठक भी बंगाली का ज्ञानी हो ।

एक ही वाक्य में अनेक मैथिली शब्दों के प्रयोग रेणु यों करते हैं "आप लोगों को "धिरकार" है कि इस गाँव का "चोर-चुहाड" सब मिल कर दिन-दहाडे "खूनाखूनी" करता है और आप लोग चुप है ।[1]"

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ.174

उपन्यास में शुद्ध और विकृत रूप से अँग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग किया गया है । उदाहरण केलिए फिट - 9, फैसन - 26, वालण्टियर 37, साइन बोर्ड - 44, आदि ।

बंगाली लहजे में उच्चारण के कारण अनेक हिन्दी और उर्दू शब्दों का प्रयोग विकृत रूप से किया गया है । उदा - कम्मोचारी, दोष परनाम, आशीष, किसिम आदि ।

वर्णनात्मक शैली में लिखे गये उपन्यास में कहीं कहीं पूर्वदीप्ती और नाटकीय शैली का प्रयोग भी किया गया है । पवित्रा के परिवार सम्बन्धी घटनाएँ पूर्व दीप्ती शैली के द्वारा ही प्रस्तुत किया गया है । पवित्रा और नरेश वर्मा का पहला मिलन, वार्तालाप आदि मिलकर नाटकीय शैली की सृष्टि हो जाती है ।

ध्वनि बिम्ब

मिल चलाने की "तु - तु - तु - तु - तु - तु"[1] की ध्वनि, ठाकुरतले की शंख ध्वनि - तू - उ - उ - उ - उ । धू - उ - उ - उ - उ[2] । मेघ गर्जन के साथ पानी बरसने की ध्वनि - गड - गड - गुड़म - गुड़म । कड़ कड - कड कड - गुड़म - गुड़म । सुई - सि - ई - ई - ई - ई - उ[3] आदि ध्वनियों के चित्रण द्वारा उसका बिम्ब उतारने का सफल प्रयत्न रेणु ने किया है

---

1 फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ॰2।

2॰ वही, पृ॰163

3॰ वही, पृ॰177

संकेत

आनेवाले भूकम्प का संकेत पवित्रा के इस वाक्य मे लेखक प्रकट करते हैं - "कल साँझ को पछिया हवा चल रही थी आसिन महीने के ये लक्षण अच्छे नहीं"[1] ।

गीत

आँचलिक उपन्यासों की विशेषता स्वरूप गीतों का प्रयोग "जुलूस" में भी दृष्टव्य है ।

उपन्यास में चित्रित गीतों की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

1. देशे देशे मोर घर आछे[2] ।
2. जय जय भामिनी असुर भयाउनी[3]
3. चाँदो बनिया माजिलो बारात ओ रे चाँदो[4] ।
4. हो राजा, छोडि दे रे नौकरिया - या या[5] । आदि

नाच पार्टी द्वारा प्रस्तुत दो गीत-नृत्यों का प्रसंग भी उपन्यास में है -

1. कौन बने किशना बँसिया बजावे[6] ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - जुलूस, पृ. 174
2. वही, पृ. 139
3. वही, पृ. 45
4. वही, पृ. 113
5. वही, पृ. 125
6. वही, पृ. 134

एक गीत-नृत्य का वर्णन उपन्यास के अंत में भूकम्प पीड़ितों की सहायता हेतु आयोजित कार्यक्रम के सन्दर्भ में दृष्टव्य है ।

उपन्यास का अंत रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गीत के साथ हो गया है ।

"जुलूस" में मुहावरों और कहावतों का यथा स्थान प्रयोग हुआ है । "गंगा स्नान और सोंठी का व्यापार एक ही साथ (39) चूड़ा की गवाही दही से देना (86) आदि मुहावरों के साथ जब संग में ही जाल तो मछली का अकाल ? (51) जैसे कहावत भी इसका उदाहरण प्रस्तुत करते हैं ।

लोक संस्कृति मूलक समाज की कल्पना करनेवाली रेणु की दृष्टि "जुलूस" में स्पष्ट रूप से झलकती है । समाज में व्याप्त विषमताओं और समस्याओं का हल वे लोक कलाओं के माध्यम से संभव समझते हैं । इसी वजह से लोक संस्कृति के विकास से समूचे गाँव में एक नये जीवन की स्फूर्ति का संचार करने में पवित्रा लगी रहती है । वही उसके जीवन का परम लक्ष्य बन जाता है । आगे के जीवन को वह इसी महान साधना में लगा देती है ।

कितने चौराहे (1966)

"कितने चौराहे" रेणु का पाँचवाँ और अब तक प्रकाशित आँचलिक उपन्यासों में अन्तिम उपन्यास है । इस उपन्यास को रेणु "किशोर शहीद ध्रुव कुंडू" को समर्पित करते हैं जिन्होंने अपने देश का झण्डा सरकारी कचहरी पर फहराते समय गोली खाई थी । स्वतंत्रता प्राप्ति की मंगल कामना से उद्भूत होकर आत्म समर्पण करनेवाले किशोरों की कहानी ही उपन्यास का प्रतिपाद्य है । स्वतंत्रता संग्राम से लेकर अब तक कितने कितने चौराहों को पार कर भारत आगे बढ़ता आया है । इन चौराहों से आगे बढते वक्त देश न दाएँ मुडती है, न बाएँ, आगे ही बढ़ती जाती है ।

"कितने चौराहे" के द्वारा रेणु स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति, परिवार, समाज या राष्ट्र को अपनी गति में अनगिनत चौराहों से गुज़रना पडता है । मार्ग में शीतल छाया के साथ ही साथ कंटीली झाडियाँ भी होती हैं । उपन्यास का एक पात्र महाराज जी से इस प्रकार कहकर रेणु यह सिद्ध कर देते हैं कि "अभी सीधे चलो । राह में छाँव में कहीं बैठना नहीं । कितने चौराहे आयेंगे । न दाएँ मुडना न बाएँ, सीधे चलते जाना" [1] इसका तात्पर्य यह है कि जीवन रूपी यात्रा में अनेक प्रलोभन रूपी चौराहे आयेंगे और भावनाएँ रूपी शीतल छाया भी । इनसे आकर्षित होकर रुकना नहीं चाहिए । उपन्यास का प्रमुख पात्र इस आदर्श को अपनाकर अगल बगल देखे बिना आगे बढ़ता है ।

---

1 फणीश्वरनाथ रेणु - कितने चौराहे, पृ.११

सन् 1942 के भारत छोडो आन्दोलन में गाँधीजी की पुकार से प्रभावित होकर मातृभूमि की स्वतंत्रता संग्राम रूपी कुरुक्षेत्र में कूद पड़नेवाले किशोर - प्रियोदा, कृत्यानंद, अशर्फी, भोला और तपू की कहानी के साथ अररिया कोर्ट के जन-जीवन को भी वाणी देने का सफल प्रयत्न रेणु ने किया है । "प्रांतीयता, साम्प्रदायिकता आदि से निरपेक्ष रहकर दस और देश का काम करने की भावना को किशोरों के मन में दृढमूल करने केलिए यह उपन्यास लिखा गया है[1] ।"

उपन्यास का प्रमुख पात्र मनमोहन अपनी किशोरावस्था में है । यह अवस्था जीवन रूपी यात्रा का सबसे महत्वपूर्ण चौराहा है । इसी अवस्था में ही व्यक्ति के भविष्य की नींव डाली जाती है । कुसंगति से प्रभावित होने की सारी संभावनाएँ इसी समय अधिक होती हैं । कितने होनहार लडके किशोरावस्था रूपी चौराहे पर आकर कुसंगति के चक्कर में पडकर अपने जीवन बरबाद कर देते हैं । देहाती बालक मनमोहन को सौभाग्यवश सद्गुणों से युक्त साथी ही मिलते हैं । वह सिमरबनी से शिक्षा प्राप्त करने केलिए कथांचल अररिया कोर्ट आ जाता है । इस का कारण यह है कि उसके पिता उसे एक "देहाती भुच्च"[2] बनाना नहीं चाहते और उसका काका उसे कोसी के किनारेवाले गाँव के स्कूल भेजकर 'बनैला-सुअर'[3] बनाना नहीं चाहते । इसलिए शहर के मोहरिल मामा के घर उसे भेज दिया जाता है । शहर जाते वक्त अपने पिता द्वारा मनमोहन को समझाया जाता है कि "शहर जाकर 'शहरी लडका' मत बन जाना । बीडी-सिगरेट मत पीना।"[4] स्कूल के सन्यासी आश्रम और स्टूडेंट्स होम के सद्प्रभाव में आकर विपरीत परिस्थितियों को झेलने की मनशक्ति उसे प्राप्त होती है ।

---

1. डॉ० चन्द्रभानु सोनवणे - कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु, पृ०157
2. फणीश्वरनाथ रेणु - कितने चौराहे, पृ०12
3. वही, पृ०8
4. वही, पृ०7

पथ-भ्रष्ट होने की सारी परिस्थितियाँ मोहरिल मामा के घर में मौजूद रहती हैं। पियक्कड मोहरिल मामा हर दिन अपनी पत्नी और बेटे को पिलाने केलिए दारू लेकर आ जाता है। पिता के समान पुत्र मटरू भी बीडी पीने लगता है। वहाँ रहते हुए एक बार भी बीडी पीने या यहाँ तक कि दारू सूँघने का भी प्रयत्न वह नहीं करता। इन्हीं परिस्थितियों में रहकर भी त्रैमासिक परीक्षा में वह प्रथम ही निकलता है। शहर के एक भी चौराहे पर न मुडकर, इधर-उधर न देकर वह आगे ही बढ़ जाता है।

पढाई के साथ ही प्रियोदा की सद्संगति से प्रभावित होकर "दम और देश का काम" करने में वह लग जाता है। युग बोध की भावना से प्रभावित मनमोहन पाँच रुपये की अपनी छात्रवृत्ति की परवाह किये बिना गाँधीजी की गिरफ्तारी के विरोध की जानेवाली हडताल में भाग लेता है। इसी अपराध केलिए माफी न माँगने के कारण उसे बेंतें लगाने की सजा भी मिलती है।

कुसंगति और स्वार्थता को जीतनेवाला मनमोहन भावना की झोंक रूपी चौराहे पर आकर कहीं मुडकर देखे बिना आगे बढ जाता है। नीलिमा की लालिमा या क्रान्तिकारी आन्दोलनों से प्रभावित न होकर वह महाराज जी की बात को आत्मसात् कर लेता है। महाराज की बात यह रही कि कभी "झोंक" में आकर तुम भी पढ़ना लिखना मत छोड बैठना।"[1]

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - कितने चौराहे, पृ.११

शहरी जीवन के एक साल में इस प्रकार अगल बगल देखे बिना अपने लक्ष्य स्थान पहुँचने में वह सफल होता है । लेकिन 1942 में "करो या मरो" आन्दोलन के वक्त नीलिमा के कारण वह देश का झण्डा सम्हालने केलिए समय पर आ नहीं सकता । इस अपराध से मुक्ति का मार्ग वह साधना ही समझता है और "स्वामी सच्चितानन्द" बनकर तेईस वर्षों में पश्चाताप की अग्नि में झुलसता रहता है ।

अररियाकोर्ट अंचल

उपन्यास का कथांचल है "अररिया कोर्ट" नामक अर्ध शहर । सिमरबनी से शिक्षा प्राप्त करने केलिए अररिया कोर्ट आये मनमोहन से ही उस अंचल संबन्धी विशेषताएँ स्पष्ट होने लगती हैं ।

मनमोहन अपने मोहरिल मामा के घर में ही रहता है । निम्न वर्गीय लोगों के रहनेवाला स्थान होने के कारण यह गन्दगी का अड्डा सा लगता है । उस गली का चित्रण रेणु यों प्रस्तुत करते हैं - "सडक के किनारे पतली-सी गली में खपरैल के कई अध-उजडे घर । सामनेवाले घर में एक बीमार-सा घोड़ा मानों लीद की ढेरी पर बंधा था । राख की ढेरी के पास कुत्ते और सूअर आपस में लड रहे थे ।[1]" इस गन्दी गली में स्थित मामा का घर और एक नरक सा लगता है ।

आज़ाद पूर्व और बाद के शहरों के अभिशाप के रूप में पैदा होने वाली गन्दी गलियों का सच्चा रूप रेणु उतारते हैं । ये ही गलियाँ सभी भ्रष्टाचारों के अड्डे भी रहती हैं । नैतिक या अन्य मूल्यों के परवाह न

----

1. फणीश्वरनाथ रेणु - कितने चौराहे, पृ.17

करनेवाले इन लोगों के सामने जीने का प्रश्न ही प्रमुख रहता है । किसी न किसी तरह जीने में व्यस्त इन लोगों के आगे नैतिक या अन्य मूल्य केलिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता ।

उस सीमित अंचल में विभिन्न विभीषिकाओं को झेलकर जीनेवाले लोगों के जीवन सम्बन्धी विविध आयामों पर रेणु प्रकाश डालते हैं ।

प्रमुख पात्र

मनमोहन

उपन्यास का प्रमुख पात्र है मनमोहन । इसी को लेकर उपन्यास की सारी घटनाएँ घटती हैं । माँ-बाप का ज्येष्ठ पुत्र मनमोहन मातृप्रेम से सदा वंचित रह जाता है । इसका कारण यह है कि मनमोहन के जन्म के पहले उसके तीन भाई तीन महीने की अवस्था में सन्निपात के कारण मर गये थे । जब मनमोहन भी तीन महीने की अवस्था में सन्निपात से मरणासन्न हो जाता है । ठीक उसी वक्त बेहोशी में उसकी माँ देखती हैं कि दाढ़ी-मूँछोंवाला एक जटाधारी बच्चे को लेकर भाग जाता है । जटाधारी इसी वादे पर बच्चे को लौट देता है कि वह बेटे की माँ न होकर धाय मात्र रहेगी । होश में आकर देखा तो बच्चा ठीक-ठाक है । इस घटना के बाद मनमोहन को माँ का लाड-दुलार प्रत्यक्ष रूप से नहीं मिलता । उसे माँ की प्यार और दुलार अपने काका से ही प्राप्त होता है ।

मनमोहन का लाडला नाम "मुनी" सार्थक सा लगता है । मननशील और होशियार मनमोहन पाँच रुपये छात्र वृत्ति भी प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है । गाँव के स्कूल में सातवीं कक्षा के बाद की कक्षाएँ न

होने के कारण और सिमरबनी भेज कर एक "बनैला सुअर" न बनने देने के कारण उसे अररिया कोर्ट स्कूल में पढ़ने केलिए भेज दिया जाता है । "शहरी लडका" मत बन जाने के उपदेश से ही उसे मोहरिल मामा के घर में रहने की व्यवस्था की जाती है ।

भ्रष्ट होने की सारी परिस्थितियाँ मोहरिल मामा के घर में होने पर भी वह कभी भी इससे प्रभावित नहीं होता । पियक्कड मामा और शरारती मटरू के साथ साथ झगडालू मोहरिल मामी के कारण वहाँ का जीवन उस केलिए नारकीय बन जाता है । लेकिन इस नारकीय जीवन में आशा की दीप्ति के समान शरबतिया का प्रेम उसे मिलने लगता है ।

मनमोहन के व्यक्तित्व विकास में "मेकन्ट मास्टर" का बेटा प्रियोदा का महत्वपूर्ण स्थान है । इससे प्रभावित होकर "किशोर क्लब" का सदस्य बननेवाला मनमोहन क्लब द्वारा आयोजित प्रभात फेरियों में सक्रिय रूप से भाग लेता है । रविवार के दिन "मुठिया" केलिए "हाँक" लेना भी वह सीख लेता है । प्रियोदा जैसे लडकों के कारण मनमोहन में देशप्रेम की भावना उमडने लगती है । गाँधीजी की गिरफ्तारी पर हडताल में भाग लेकर वह बैंत की मार भी खाने लगता है । मार से लहूलुहान हुए हाथ की मरहम पट्टी करते वक्त डाक्टरबनर्जी का कंपाउडर कह देता है - "ये शोब रोकतो मिछे नेहीं जायेगा - " मतलब यह रक्त बेकार नहीं जाएगा । इस घटना के बाद वह "वीर बच्चा" नाम से जाना जाता है ।

सन्यास आश्रम की ओर से "स्टुडेंट्स होम" खुलने पर वहाँ रहने वाला मनमोहन अपने में एक नई स्फूर्ति का अनुभव करने लगता है । उसका अनुभव यह रहा कि "बहुत दिनों तक इधर-उधर भटकने के बाद वह अपने

---

1 फणीश्वरनाथ रेणु - कितने चौराहे, पृ.67

"घर" लौटा है[1]।" आश्रम में पहली सीख भाई चारे की दी जाती है । भाई चारे के काम में नाम पाने की जो इच्छा उसके मन में अब तक थी धीरे धीरे उससे भी वह मुक्त हो जाता है । बिहार के भूकम्प पीड़ितों की सेवा में आश्रम के बड़े महाराज के साथ मनमोहन भी जाता है । महाराज उससे कहता है - "आदमी की नहीं, भगवान की सेवा करने जा रहा है । याद रखना[2]।" दीन-दुःखियों की सेवा में मग्न रहनेवाला मन मोहन का अररिया कोर्ट लौटते वक्त लगता है कि वह अपने स्वजनों से बिछुड़ रहा है ।

शहीदों की ओर उसके मन में जो आदर का भाव है उसका प्रस्फुटन "शहीद बालिका विद्यालय" के शिलान्यास के सन्दर्भ में दिखाई पड़ता है । मंत्री महोदय के हाथों से "शहीद बालिका विद्यालय" का शिलान्यास समारोह के समय मनमोहन के कहने के अनुसार शिलान्यास का कार्य सायमन बायकाट आंदोलन के शहीद सुंदर की पत्नी श्रीमती शरबती सहाय के हाथों से किया जाता है । इसी कारण से मनमोहन की प्रशंसा भी की जाती है ।

महाविद्यालय शिक्षा पाने हेतु भागलपुर जानेवाले मन मोहन के मन में अररिया कोर्ट की यादें ताज़ी रह जाती हैं । चार वर्ष बाद मनमोहन लौट आता है तो अररिया कोर्ट में "भारत छोड़ो" आन्दोलन की आग भभक उठती है । इस अवसर पर ट्रेज़री पर झंडा फहराने के प्रयत्न में प्रियोदा, अशर्फी, भोला, तपू आदि शहीद हो जाते हैं । अशर्फी के बाद झण्डा सम्भालने का नम्बर मनमोहन का था, लेकिन नीलिमा जब उसे कसकर पकड़ लेती है तो वह जा नहीं सकता । इस घटना के बाद अनुशासन भंग करने की आत्मग्लानि उसे पीड़ा देने लगती है । इसी सिलसिले में पाँच साल की सजा भोगकर बाहर आया मन मोहन गृहस्थ या राजनीतिज्ञ बनना नहीं चाहता ।

1· फणीश्वरनाथ रेणु - कितने चौराहे, पृ·102

2· वही, पृ·117

वह सन्यास का मार्ग अपना कर स्वामी सच्चिदानन्द बन जाता है ।
1965 में अपने भाई जग मनमोहन की विशिष्ट योजना के अनुसार अंगीकृत मृत्यु की खबर मिलने पर वह ग्लानि मुक्त हो जाता है । मन मोहन की यह जीवन यात्रा कितने चौराहों को पारकर अपने लक्ष्य को छू लेती है ।
मोहरिल मामा की बेटी शरबतिया में वह अपनी माँ की झलक ही पाता है । शरबतिया में माँ का अनुभव करनेवाला मनमोहन मन ही मन सोचने लगता है कि वह छोटा होता हुआ पुष्पी बन जाता है । काली बाज़ार में रहनेवाली नीलिमा में भी वह माँ और पुष्पी को ही देखने लगता है । यही नीलिमा ही टूजरी के ऊपर झण्डा फहराने के प्रयत्न से मनमोहन को रोक लेती है । और वह ग्लानि में झुलसने लगता है । "नीलू का क्या दोष ? दोष मनमोहन का ही है । खट्टा भी, मीठा भी ।"[1] सारे उपन्यास में केवल यही संबन्ध ही खट्टा होने के साथ ही साथ मीठा भी दिखाई पड़ता है ।

अपने परिवार के प्रति-मनमोहन के मन में विशेष लगाव है । भूकम्प पीड़ितों की सेवा में लगे रहनेवाला मनमोहन कई बार उन पीड़ितों में अपने परिवारवालों का चेहरा देखने लगता है । सन्यास जीवन बिताते वक्त भी परिवारवालों से उसका लगाव इससे स्पष्ट हो जाता है कि मुनीजी के बलिदान को वह अपना बलिदान समझने लगता है ।

रेणु इस पात्र का विकास सन्यास मार्ग अपनाने के लक्ष्य के अनुसार करते हुए लगता है । बचपन से ही मातृ प्रेम से वंचित रहना, मोहरिल मामा की दूषित परिस्थितियों में रहकर कभी उससे निर्लिप्त रहना, बड़े महाराज द्वारा मनमोहन के काका से कहना कि "यह लड़का आपका नहीं है ।"[2] आदि इसकी विविध सूचनाएँ भी लगती हैं ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - कितने चौराहे, पृ.141
2. वही, पृ.76

अन्य पात्र

प्रियव्रत राय

उपन्यास का और एक आकर्षक पात्र है मनमोहन का साथी प्रियव्रत या प्रियोदा । पढने में तेज़ यह बालक होशियार और साहसी भी है । अररिया कोर्ट में किशोर क्लब की स्थापना प्रियोदा ही करता है । इसी प्रियोदा से प्रभावित होकर ही मनमोहन निर्भीक और राष्ट्र प्रेमी बन जाता है । देशवासियों में युग चेतना की भावना पैदा करने में वह सफल होता है । भारत छोडो आन्दोलन के समय ट्रेजरी पर झण्डा फहराने के प्रयत्न में वह शहीद हो जाता है । इस पात्र पर रेणु एक अस्वाभाविक बात का आरोप करते हुए दृष्टिगत होते हैं । बात यह है कि पड़ोस में बारात केलिए आयी हाथी को वह अपनी तुतली बोली से अपने वश में कर लेता है और उसके ऊपर बैठकर सारा बाज़ार घूमता है ।

काका

मातृप्रेम से वंचित मनमोहन को माँ का सा प्यार देनेवाला है काका । वे नहीं चाहते कि मनमोहन गाँव के स्कूल में पढ़कर एक गंवारू बन जाएँ । अररिया कोर्ट केलिए रवाना हुए मनमोहन को काका समझाता है "कोई कुछ पूछे तो अंग्रेज़ी में ही जवाब देना । नहीं समझे तो उर्दू में माने "काहे कूहे में बतियाना, माने "कचराही-बोली में बोलना । गाँव की बोली में जवाब मत देना । नहीं तो कहेगा कि देहाती भुच्च है ।[1] " अनपढ ग्रामीण होकर भी महाराज से प्रभावित होकर काका स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेकर पाँच साल की सजा भी भोगने लगता है ।

---

1 फणीश्वरनाथ रेणु - कितने चौराहे, पृ.12

हफीज साहब

हफीज़ साहब इतिहास और गेम का अध्यापक है । पागल हो जाने पर "मेरा चरखा के टूटे न तार   चरखा चालू रहे" गाता रहता है । पंचम जार्ज के सिलवर जुबिली के समय वह स्कूल के मैदान में तिरंगा झण्डा फहरा भी देता है । हिन्दु-मुस्लिम दंगे के समय कोई उस पर किरासन डुलकर जला देते हैं ।

पियक्कड मोहरिल मामा, मनमोहन के प्रति अपनी दीदी का प्यार देखकर ईर्ष्यालु बननेवाला मटरू, चौराहों को पार करते समय इधर-उधर न देखकर सीधे जाने का उपदेश देने वाले आश्रम के महाराज आदि उपन्यास के अन्य पात्र हैं ।

स्त्री पात्रों में शरबतिया ही प्रमुख है । साइमन-बायकाट शहीद सुन्दर सहाय की वह विधवा है । मनमोहन के आते तक उदास जीवन जीती शरबतिया मनमोहन के आने से एक प्रकार का सन्तोष अनुभव करती है । मनमोहन को पाकर वह अपने अतृप्त मातृ-भावना को शांत करने लगती है । इस पवित्र संबन्ध को लेकर उसे अपने पिता और माँ से भद्दी गालियाँ सुननी पड़ती है ।

उसके इन अनुभवों से ज़रूर ही पाठक के मन में एक कसक सी उत्पन्न होती है । मनमोहन से उसका सम्बन्ध माँ-बेटे का होने पर भी स्वयं उसकी माँ-बाप भी संदेह करते हैं । समाज की दृष्टि इतनी तंग हो गेई है कि एक स्त्री जात और पुरुषजात वह बच्चा भी क्यों न हो या वह पवित्र होने पर भी केवल शारीरिक सुख-भोग का ही मानने लगते हैं ।

इसके अतिरिक्त अपने बेटे को दुलार न करने केलिए विवश मन-मोहन की माँ, "मुहल्ले की झगडालू" मोहरिल मामी, दीपू की बडी दीदी की बेटी नीलिमा आदि पात्रों का चित्रण भी उपन्यास में हुआ है ।

परिस्थिति के अनुरूप पात्र चित्रण करने में रेणु सिद्ध हस्त है । गली में रहनेवाले मोहरिल मामा के परिवारवालों का चरित्र उसी के अनुरूप ही किया गया है । गलीवालों की सारी विशेषताएँ इन में दृष्टिगत होती हैं । पियक्कड मोहरिल मामा शाम को दारू लाकर अपनी पत्नी और पुत्र को भी पिला देता है । मामी तो झगडालू है और मटरू बचपन में ही कुसंगति के परिणाम स्वरूप बीडी पीने और भद्दे कार्य करने लगता है ।

विविध आयाम

सामाजिक

आज़ादी पूर्व और बाद के अररिया कोर्ट की सामाजिक स्थिति का जीता-जागता चित्रण "कितने चौराहे" में है । सभी दृष्टियों से ह्रास का शिकार बना अररिया कोर्ट का सच्चा चित्रण उभारकर रेणु एक चित्रकार की सी चतुरता दिखाते हैं ।

पारिवारिक विघटन का उत्तम उदाहरण है मोहरिल मामा का परिवार । अशिक्षा और अभावग्रस्तता के बीच बुरी तरह जकडा हुआ यह परिवार उस स्थान विशेष के परिवारों का प्रतिनिधि बन कर आता है । उस मुहल्ले का नामी पियक्कड है मोहरिल मामा और गली की झगडालू औरत है उसकी पत्नी । मामी के मन में स्वार्थ की भावना भी घर कर रह जाती है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - कितने चौराहे, पृ.94

नैतिकता या सामाजिक मूल्यों केलिए कोई महत्व न देनेवाले इस परिवार में पति, पत्नी और पुत्र मिलकर एक साथ दारू पीने केलिए बैठ जाते हैं। मोहरिल मामा और पत्नी ही नहीं "मुहल्ले में लोग दिन रात भद्दी गालियाँ बकते रहते हैं - औरत, मर्द, बच्चे सभी।[1] ऐसे समाज में "अधिक" की आशा नहीं की जा सकती।[2]"

अररिया कोर्ट अर्ध विकसित शहर होकर भी वहाँ के लोग अन्धविश्वास और जादू-टोने के शिकार बने हुए हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों से अछूते ये लोग मूर्ख विश्वास के गुलाम रहते हैं। यह विश्वास तो कुछ विचित्र सा लगता भी है। "जिस लड़की का कपाल चौड़ा हो वह जवानी में ही बेवा हो जाती है।[3]" इसी विश्वास के उदाहरण स्वरूप उनके पास सैनी, दयावती, महावती आदि चौडे कपाल वाली बेवाओं के जीवन हैं। लोग विश्वास करते हैं कि "पोस्ट मार्टम हाउस जिस स्थान पर था, वहाँ पेड़ों पर भूत पिशाच किलबिल करते हैं, मैदान में प्रेतनियाँ नाचती हैं संथालियों के झुंड बनाकर।[4]"

अन्धविश्वासों का सिलसिला यहाँ तक रूढ़मूल है कि स्वयं माँ भी अपने बेटे को बेटा मानने से इनकार कर देती है। मनमोहन की माँ के सामने एक साधु आता है और वह उपदेश देता है कि मनमोहन की धाय मात्र बनकर उसे रहना है। यह अन्धविश्वास का प्रमाण है और मनमोहन की माँ इस उपदेश को निभाती हुई दिखाई पड़ती है।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - कितने चौराहे, पृ.73
2. वही, पृ.106
3. वही, पृ. 28
4. वही, पृ.

जादू-टोने पर विश्वास करनेवाला मनमोहन का काका एक बार उससे कहता है - "साधू सन्यासी लोगों से तनिक दूर ही रहना। उन लोगों का क्या, कोई ऐसा "मन्तर" पढ़कर फूंक दें कि हम लोगों को पहचानेंगी नहीं।"[1]

जातीय भेद भाव तो अररिया कोर्ट के लोगों के मन में ज़रूर है। मोहरिल मामी मनमोहन को "परजात परमिन" का बच्चा मानती है। यहाँ तक कि लोगों का विचार है "स्टूडेंस होम में बिहारी लड़कों का ज्यादा ख्याल नहीं किया जाता है महाराज लोग भी बंगाली बिहारी का भेद-भाव रखते हैं।"[2]

समाज में नारी की स्थिति में कुछ विकास अवश्य दिखाई पड़ता है। स्वतंत्रता संग्राम में नीलिमा अपनी शक्ति के अनुसार भाग लेती है। विधवा के रूप में शैरबतिया का जीवन अत्यन्त मार्मिक है तो भी जब उसकी शादी एक बूढ़े के साथ तय करने की बात मोहरिल मामा कहता है तब उसकी पत्नी यह कहकर इनकार कर देती है कि मैं पसमान में डूब मरूँगी मगर यह कुकर्म अपनी आँखों से नहीं देख सकती .....।"[3] अशिक्षित होकर भी अनमेल विवाह का विरोध मोहरिल मामी से करा कर रेणु नारी का जागृत रूप प्रस्तुत करते हैं।

आर्थिक

अररिया कोर्ट की आर्थिक स्थिति बहुत पिछड़ी हुई रह जाती है। आर्थिक दुर्बलता के कारण लोग झुग्गी-झोंपड़ियों में रहने लगते हैं। अपने परिवार को सम्भालने में असमर्थ लोग दारू और भ्रष्टाचार का शिकार बन जाते हैं। मोहरिल मामा का परिवार ही इसकेलिए उदाहरण है।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - कितने चौराहे, पृ.57
2. वही, पृ.105

आर्थिक अभाव के कारण ही पहले मोहरिल मामी मनमोहन को डाँटती रहती है बाद में जब उसके घर से तरह तरह की चीज़ें आने लगती है तो वह अपना आचरण बदलती है । इन चीज़ों के सहारे ही उस परिवार का दैनिक कार्य चलने लगता है ।

पराधीन देश की स्थिति इससे भिन्न नहीं होती । "....... महँगाई, अकाल, अनावृष्टि के मारे किसानों पर ज़मीन्दारों का ज़ोर ज़ुल्म, अत्याचार होता है ।[1]" ज़िन्दगी का यह रूप इस तरह दिया है जहाँ तंग गलियों में मनुष्य जानवरों के समान जीते हैं । झुग्गी-झोंपड़ियों में रहनेवाले लोग अपनी पथ भ्रष्ट होने के कारण देश केलिए घातक सिद्ध होते हैं ।

राजनीतिक

"कितने चौराहे" का परिवेश पूर्ण रूप से राजनीतिक है । इसमें स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तथा बाद की राजनीतिक घटनाओं का प्रस्तुतीकरण हुआ है । यद्यपि प्रमुख घटनाओं का समय 1935-44 का है तथापि यह 1965 के भारत-पाक युद्ध तक फैला हुआ है । उपन्यास के प्रमुख पात्र किशोर बालक हैं । अँग्रेज़ों की दासता रूपी जंजीरों को तोड़कर स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अपने को कुरबान करने केलिए वे तैयार रहते हैं । गाँधीजी की गिरफ्तारी परहड़ताल करनेवाले बालकों में विद्रोह की ज्वाला भगतसिंह और उनके अनुयायियों की फाँसी दी जाने पर भभक उठती है । प्रियोदा कहता है "जानते हो । इस बार हिमालय को फोड़ कर आग निकलनेवाली है । इस बार कुछ होकर ही रहेगा । इसलिए अपने-अपने क्षेत्र में सभी को तैयार रहना है ।[2]" गाँधीवादी विचारधारा से ऊब कर कई लोग हिंसा मार्ग को अपनाने लगते हैं ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - कितने चौराहे, पृ.122
2. वही. पृ.137

शासक वर्ग अंग्रेज़ों की सहायता से ज़मीन्दार लोग अपनी शोषण नीति कायम रखते हैं । "किसानों पर ज़मींदारों का ज़ोर-ज़ुल्म होता है । अदालत कुर्क में किये गए माल मवेशी की नीलामी होती है । ज़मीनें छीनी जाती हैं । फसल लूटी जाती है । मुँह पर पट्टी बाँधे गुलामों की टोली सिर झुका कर आगे बढ़ रही है क्रूर नौकरशाही चाबुक फटकार कर पीटती है जानवरों को ।"[1]

आज़ाद भारत की राजनीतिक परिस्थितियों का भी उपन्यास में वर्णन है । सत्ताधारी कांग्रेज़ के कार्यक्रमों की रेणु आलोचना करते हुए दिखाई पड़ते हैं । 1965 में भारत पर पाकिस्तान हमला, हिन्दु-मुस्लिम दंगे फलस्वरूप गाडीवान पट्टी में आग लगाना आदि का भी प्रस्तुतीकरण किया गया है ।

इस तरह समूचा उपन्यास राजनैतिक परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में अपना स्वरूप निर्धारित करता दिखाई पड़ता है । एक ओर भारत के आज़ादी पूर्व राजनीति का आयाम मिलता है तो दूसरी ओर स्वतंत्रता कालीन भारतीय परिवेश एवं राजनीतिक प्रभाव परिलक्षित होने लगता है । "कितने चौराहे" में स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की स्थिति ही अधिक मुखरित हुई है । ये छोटे से अर्ध शहर में स्वतंत्रता के प्रति जो असीम अभिलाषा दिखाई पडती है इसी का चित्रण समूचे उपन्यास को नया मोड देता है ।

<u>भाषा</u>

अररिया कोर्ट जो कि मैथिल अंचल के अन्तर्गत आता है इसलिए उपन्यास में मैथिल शब्दों की बहुलता है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - कितने चौराहे, पृ. 122

उदाहरण केलिए "फाटक माने अडगड"[1], "भटपुरइन - ब्राह्मी"[2]
उपन्यास में प्रयुक्त स्थानीय शब्दों के कुछ उदाहरण ये हैं - "कचराही बोली"
काहे कूहे §पृ·12§ सदाबरत §25§ निबोलिया §72§ भगवान की मार §98§
आदि ।
उपन्यास में यत्र-तत्र दिखाई पड़नेवाले उर्दू शब्द हैं - माफिक §13§ जनाब §14§
मुल्तवी §64§ तामिल §134§ आदि ।

उपन्यास के साधारण से साधारण या अशिक्षित पात्र भी कभी-कभी अंग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग करते हुए दिखाई पड़ते हैं । इनकम, टैम §10§ टेलीग्राफ, प्लेटफार्म §11§, पार्ट §37§, गेट §42§ लोकल §61§ सुपरिन्टेन्डेन्ट §82§ ट्रेजरी §87§ प्रोमोशन §103§ लैंडिंग §143§ आदि ।

"कितने चौराहे" में प्रियोदा, डॉक्टर बनर्जी का कांपउडर, बडे महाराज आदि बंगाली पात्र हैं और ये कहीं कहीं बंगला भाषा के वाक्यों का प्रयोग करते हैं ।

"हेड मास्टर - अहिक बालक थीक"[3]
"ये शोब रक्तों मिछे नैंही जायेगा ।"[4]
"की रे मोना, बाबा बुझलो ना तुई बुझली ?[5] ।"

आदि ।

बिलैत §10§ गन्ही-बाबा, सरबमच्छी §27§ इंतिहान §31§ परतीत §34§ आदि इत्यादि उपन्यास में प्रयुक्त शब्द विकार के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं ।

1· फणीश्वरनाथ रेणु - कितने चौराहे, पृ·8
2· वही, पृ·54
3· वही, पृ·14
4· वही, पृ·67
5· वही, पृ·68

भाषा द्वारा आंचलिकता तत्व लाने हेतु रेणु ने कहीं कहीं नये शब्दों का प्रयोग भी किया है । जैसे गोबर गनेसी §11§ मनकाहट §17§ तुम्बाफेरी §49§ बतकटी §62§ लीलाधरिया §72§ बोमा-टोमा §83§ दो धारी बात §129§ आदि ।

मुहावरों और लोकोक्तियों के द्वारा भाषा में सहजता और प्रवाह लाने का कार्य रेणु ने किया है । उदाहरण केलिए - "अरगड में डाल देना §8§ "टका धरमी, टका करमी §9§ फूटे कपाल की कहानी कहना §27§ बाप ने मारी मेढ़की, बेटा तीरंदाज §84§ आदि ।

उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है । ध्येय मार्ग पर कहीं भी न बहकते हुए सीधे चलने को यह सूचित करता है ।

उपन्यास में अनेक देश भक्ति के गीत दिखाई पड़ते हैं जैसे -

1. "आओ वीरों मरद बनो अब जेहल तुम्हें भरना होगा[1] ।"
2. "देशवा के करहुं आज़ाद भारतवासियों भो यो[2] ।"
3. "ख़ुश रहा नौजवानो, मौत का पैगाम है[3] ।"
4. "झंडा ऊँचा रहे हमारा[4] ।"
5. "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा[5] ।"

पंजाबी गीत

"भी रखनी, नी रखनी, सरकार जालिम नी रखनी[6] ।"
"कितने चौराहे" राष्ट्रीय गीत का उपन्यास रूप है । अपनी मातृभूमि केलिए बलिदान करने की उच्च भावना से यह उपन्यास संपन्न है ।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - कितने चौराहे, पृ.77
2. वही, पृ.78
3. वही, पृ.80
4. वही, पृ.126
5. वही, पृ.127

अपनी रचना यात्रा में एक रचनाकार के रूप में फणीश्वरनाथ रेणु ने जो योगदान किया है वह अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने की और संघर्षों को झेलने की शक्ति प्रदान करनेवाला सिद्ध हुआ है । उन्होंने आदर्शों की शरण में न जाकर गाँव की संपूर्णता को उसकी कुरूपताओं के साथ चित्रित किया है । निर्मल वर्मा के अनुसार - "वह समकालीन हिन्दी साहित्य के संत लेखक थे । यहाँ मैं "संत" शब्द का उसके सबसे मौलिक और प्राथमिक अर्थों में इस्तेमाल कर रहा हूँ - एक ऐसा व्यक्ति, जो दुनिया की किसी चीज़ को त्याज्य और घृणास्पद नहीं मानता - जीवित तत्व में पवित्रता और सौन्दर्य और चमत्कार खोज लेता है - इसलिए नहीं कि वह धरती पर उगवाली कुरूपता, अन्याय, अंधेर और आँसुओं को नहीं देखता, बल्कि इन सबको समेटनेवाली अबोध प्राणवत्ता को पहचानता है, दलदल को कमल से अलग नहीं करता, दोनों के बीच रहस्यमय और अनिवार्य रिश्ते को पहचानता है ।[1]" इस का प्रमाण हैं उनके सारे उपन्यास ।

कथ्यात्मक दृष्टि से देखा जाय तो रेणु के उपन्यास कोई व्यवस्थित कथानक को लेकर नहीं चलते । "मैला आँचल" कथा की अपेक्षा स्थितियों का बोध करानेवाला उपन्यास है । कथा की खोज करते हुए उसकी व्यवस्था की पीछे पड़ना "मैला आँचल" में उपन्यासकार का ध्येय नहीं है । लेकिन "परती परिकथा" में इस दृष्टिकोण का थोड़ा सा अंतर दिखाई देता है । मैला आँचल की तुलना में "परती परिकथा" की कथावस्तु अधिक संक्षिप्त और व्यवस्थित है । जुलूस और दीर्घतपा दो ऐसे उपन्यास हैं जिसमें वर्ग विशेष की {"जुलूस" में शरणार्थी और दीर्घतपा में महिला "उद्योगार्थी} परिस्थितियों को बहुत नज़दीकी से देखने का प्रयास किया गया है । "कितने चौराहे" में यह कहने का सफल प्रयत्न है कि किसी व्यक्ति, परिवार, समाज या "राष्ट्र को अपना मार्ग

---

1 निर्मलवर्मा - सारिका अप्रैल, अंक एक - 1979

प्रशस्त करने केलिए "कितने चौराहों" से गुज़रना पड़ता है । इस तरह कथ्यात्मक दृष्टि से फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास विविधात्मकता रखते हुए भी सीमित दायरे के सूक्ष्म चित्रण को अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देते । इसी कारण उनकी आंचलिकता विविध आयामों मे जुड़कर भी अन्ततोगत्वा जिन्दगी की विडम्बनात्मक स्थितियों का बोध कराने में सफल निकलती है ।

रेणु ने यथार्थ के धरातल पर जो कुछ अनुभव किया है उसी को अपनी रचनाओं में वाणी दी है । उन्होंने बिहार के अंचल पूर्णिया की मिट्टी से आत्मीय संबन्ध स्थापित किया था । वहाँ की मिट्टी के कण-कण से वे परिचित थे । इसी कारण से उनके उपन्यास के हर एक चित्रण मे लोगों के आँखों से छिपे रहनेवाले पूर्णिया जिले की मिट्टी का गन्ध पाठक को अनुभूत होता है । अनुभव की प्रामाणिकता के बिना यह कभी भी संभव नहीं होगा

पात्र चित्रण के सन्दर्भ में यह बात ध्यान देने योग्य हैं कि उन्होंने पूर्णिया जिले से चुन चुन कर अपने पात्रों का चित्रण किया है । उन्होंने अपने परिचय में आये एक-एक व्यक्ति को अपनी सहज "एकसरे" दृष्टि से परखा था और उन्हीं का चित्रण किया था । वे ही स्वयं एक पात्र के रूप में "दीर्घतपा" में आते हैं ।

रेणु के उपन्यासों में लोकगीतों का विशेष स्थान है । रेणु स्वयं लोकगीतों के बारे में लिखते हैं "मैं लोकगीतों की गोद में पला हूँ । इसलिए हर मौसम में मेरे मन के कोने में उस ऋतु के लोकगीत गूँजते रहते हैं । मैं कहीं भी हूँ - इन लोकगीतों की स्मृति - ध्वनियाँ मुझे अपने गाँव में - कुछ क्षण केलिए पहुँचता देती है ।"[1]

---

1 सारिका - अप्रैल - अंक एक 1979, (गीता पुष्पा शॉ के लेख से उद्धृत)

रेणु के उपन्यास में दिखाई पड़नेवाले दो अतिरेक हैं - पात्रोचित भाषा का अत्याग्रह और आँचलिक बोली का आग्रह। "परती परिकथा" में पात्रोचित भाषा का अतिरेक है तो "मैला आँचल" में आँचलिक बोली का । इन दोनों उपन्यासों में कई शब्दों के अर्थ ढूँढने हेतु पाठक को शब्द कोशों की सहायता लेनी पड़ती है ।

उनकी भाषा की और एक विशेषता है काव्यात्मकता । यह भाषा पाठक को उपन्यास के दृश्यों, कार्यों और व्यक्तियों की ओर अनजाने ही ले जाती है ।

उनकी शैली की भी अपनी विशेषता है । वह काव्यात्मक है साथ ही साथ फोटोग्राफिक भी । उनके उपन्यासों में यथार्थ का चित्रण फोटोगाफिक शैली के माध्यम से साकार हो जाते हैं ।

x x x x x x x x x

षष्ठ अध्याय

समकालीन रचनाओं में ग्राम चेतना

(शिवप्रसाद सिंह और राही मासूम रज़ा के विशेष सन्दर्भ में)

षष्ठ अध्याय

समकालीन रचनाओं में ग्राम चेतना

{शिवप्रसाद सिंह और राही मासूम राज़ा के विशेष सन्दर्भ में}

शिवप्रसाद सिंह

आंचलिक उपन्यास की धारा को आगे ले जानेवाले रचयिताओं में शिवप्रसाद सिंह का स्थान महत्वपूर्ण है । उन्होंने समसामयिक ग्रामीण जीवन को उसके परिवर्तित चेहरे को "अलग अलग वैतरणी" के द्वारा प्रस्तुत किया है

आजादी के बाद भारतीय गाँव का स्वरूप निरन्तर बदलता रहा है । नवीन आविष्कारों के परिणाम स्वरूप गाँव में कुछ खुशहाली तो ज़रूर आयी लेकिन उसके सामाजिक सम्बन्धों और मूल्यों की खाई बढ़ती गयी । आज़ादी के प्रथम प्रहर में मूल्यों की इस ह्रास के बावजूद भी लोगों के मन में उसके प्रति एक आशा बनी रही जो "मैला आँचल" "परती परिकथा" जैसी रचनाओं में दृष्टिगत होती है । किन्तु यह आशा निराशा में बदलने लगी और गाँव का जीवन असह्य बनने लगा । राजनीतिक, आर्थिक और

सामाजिक परिवर्तनों के कारण आज का गाँव स्वार्थपरताऔर स्पर्धा का केन्द्र बन गया है । स्वार्थ और स्पर्धा के बीच सामान्य लोगों का जीवन नारकीय होने लगा । इसी कारण से पढ़े-लिखे लोग आज गाँव में बसना नहीं चाहते । गाँव में मूल्य-स्थापना हेतु जो शिक्षित और मूल्य-धर्मी लोग प्रयत्नरत रहे वे भी अंत में हार कर गाँव छोडने लगते हैं । शिव प्रसाद सिंह के "अलग अलग वैतरणी" का नींव इसी स्थिति पर आधारित है । इस उपन्यास में एक ऐसी विशेष स्थिति है जो सभ्य और शिष्ट लोगों की जिन्दगी को घुटन से भरपूर कर देती है और उनको गाँव छोडकर भागने केलिए मजबूर बना देती है । वस्तुत: ऐसी परिस्थिति और ऐसा घटनाक्र हिन्दी उपन्यासों में शायद नहीं के बराबर है गाँव के विषाक्त वातावरण में घुटन का अनुभव करनेवाली पीढ़ी के चित्रण के माध्यम से यह दिखाया गया है कि किस तरह भारतीय गाँव अपने आदर्शों से च्युत होकर, गन्दगी से भरपूर होकर और विषैले वातावरण में जीवन बिताने के लिए मजबूर हो गये है । यद्यपि यह गाँव एक नमूना मात्र है फिर भी इसके माध्यम से उभारी गयी परिस्थिति समूचे देश केलिए लागू की जा सकती है ।

अलग अलग वैतरणी (1967)

ग्रामीण जीवन के सिद्धहस्त चितेरे डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह की यह सृष्टि ग्रामीण जीवन की समस्याओं, बिखराव, सामूहिक जीवन का ह्रास आदि का कलात्मक दस्तावेज़ है । इसमें उत्तर प्रदेश के गाँव "करैता" के माध्यम से स्वतंत्रता परवर्ती ग्राम जीवन की विविध वैतरणियों में अन्तर्निहित सूक्ष्म पहलुओं को मानवीय संवेदनाओं के साथ उभारा गया है । वे इतनी यथार्थवादी दृष्टि से रचनारत रहे कि गाँव के एक-एक घर से लेकर एक-एक व्यक्ति भी उनकी नज़र से खिसक नहीं गया है । "क्या आन्तरिक और क्या बाह्य सभी लुकी छिपी सच्चाइयाँ कथानक के छोटे-बडे रेशे हैं जो उसकी बुनावट के उपादान है[1] ।"

करैता गाँव को उसकी समग्रता के साथ चित्रित करने के बावजूद भी लेखक तटचर्चा में यह आग्रह करते हैं कि - "मैं चाहे लाख चाहूँ, पढ़नेवाले इसे यदि आंचलिक उपन्यासों की पंक्ति में डाल दें, तो मैं कर ही क्या सकता हूँ।"[1] किन्तु यह है आंचलिक उपन्यास ही। इसकी सम्वेदना और शिल्प दोनों ही इसे आंचलिक उपन्यास की कतार में खड़ा करते हैं।"[2] अगर लेखक इस रचना को आंचलिक उपन्यास कहना नहीं चाहते तो यह सम्बद्धहीन कथाओं वाला एक प्रभावहीन उपन्यास मात्र रह जाएगा। उपन्यास की मुख्य कथा जो कि सुरजुसिंह और जैपालसिंह की है, के साथ इतनी कथाएँ जुडी हुई हैं कि जिससे गाँव का पूरा चित्रण उभरकर आता है। यदि यह आंचलिक उपन्यास नहीं है तो ये सारी कथाएँ निरर्थक ही मान ली जाएगा। करैता गाँव को उसकी सम्पूर्णता में प्रस्तुत करने हेतु प्रमुख कथा और पात्रों के साथ छोटी छोटी कथाओं और पात्रों को एक हार के विविध फूलों के समान गूँथा गया है। इसी कारण से इसमें पारस्परिक सम्बद्धता भी दृष्टिगत होती है। "आंचलिक" शब्द इस उपन्यास की व्यापकता में कभी बाधा नहीं डालेगा न कि उसे संकीर्ण बना देगा।

गाँव करैता

स्वाधीन भारतीय गाँव मूल्यच्युति के ठेस से जितने सिसकन, वेदना और कराह से जूझता रहा है उसका जीता-जागता रूप है करैता गाँव। स्वाधीनता के पूर्व ही वहाँ अंधेरा मौजूद था, लेकिन स्वतंत्रता के बाद यह इतना गहरा बन गया कि सारे के सारे मूल्यों पर वह अपना प्रभाव छोडता गया। स्वाधीनता प्राप्ति के पूर्व अंधेरे के साथ सुनहरे भविष्य का सपना भी जुडा हुआ था, परन्तु आशा, आस्था और उमंग भरा करैता गाँव आज

---

1 शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी तटचर्चा

2. सं. रामदरश मिश्र - हिन्दी के आंचलिक उपन्यास - पृ.149
डॉ. ज्ञान चन्द गुप्त

जीवन की विकृतियों और विद्रूपताओं का केन्द्र बन गया है । इसके साथ ही "बाढ़, विप्लव, युद्ध, सूखा अकाल" आदि ने इस गाँव को "ना-चिरागी" मौजे में बदल दिया है ।[1]

कालिमा पोते मुख का भार ढोने केलिए अभिशप्त करैता गाँव की "अँधेरी बन्द भुतही गलियों में रोज़ ही सैकड़ों बिना चेहरे के लोग घूमते हैं ।"[2] अभिशप्तता की इस स्थिति को उद्‌घाटित करते हुए विविध पात्र अपनी अपनी राय यों प्रकट करते हैं - "जो भी कहिए मिसिरजी, करैता जैसा बदनाम, दरिद्र, गिरा हुआ, बीमार गाँव शायद ही इस देश में कहीं हो ।"[3] "यह गाँव तो अब रहा ही नहीं, जिधर देखता हूँ अजीब कुहराम है । सभी परेशान हैं, सभी दुखी । पता नहीं इस गाँव पर किस ग्रह की छाया पड गई है । किसी के चेहरे पर खुशी दीखती ही नहीं है ।"[4] यों करैता गाँव का नस-नस टूटता हुआ दिखाई पड़ता है । करैता गाँव का वातावरण पूर्णरूप से ज़हरीला बन गया है । हर कहीं अनैतिक आचरण ही दिखाई देता है ।

करैता के जीवन को लहु-लुहान करने के पीछे वहाँ का हर एक व्यक्ति जाने या अनजाने ही लग जाता है । इस माहौल से बोरियत एहसास करनेवाले शिक्षित लोग अपनी मुक्ति हेतु गाँव से पलायन करते हैं । "अब यहाँ रहते वे हैं जो यहाँ रहना नहीं चाहते, पर कहीं जा नहीं पाते । यहाँ से जाते अब वे हैं जो यहाँ रहना चाहते हैं, पर रह नहीं पाते ।"[5]

---

1 शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी-तटचर्चा

2, वही, पृ.612

3. वही, पृ.611

4. वही, पृ.239

5. वही, पृ.613

कथानक

उपन्यास की भूमिका "तट चर्चा" में लेखक अपनी वक्तव्य में यों लिखते हैं - "कहा जाता है कि सती-वियोग से व्याकुल शिव के आँसुओं की धारा वैतरणी में बदल गयी । इस पुराण-कथा का प्रतीकार्थ जो हो, मुझे इसे पढ़ते हमेशा ही विक्षिप्त, बहिष्कृत, संत्रस्त और भीड़ के संगठित अन्याय के विरुद्ध जूझते शिव की याद आ जाती है । जब शिवत्व तिरस्कृत होता है, व्यक्ति के हक छीने जाते हैं । सत्य और न्याय अवहेलित होते हैं, तब जन-जन के आँसुओं की धारा वैतरणी में बदल जाती है । नरक की नदी बन जाती है[1] करैता गाँव के माध्यम से आज़ाद भारतीय ग्रामीण जीवन की विविध वैतरणियों के दृश्यों को प्रस्तुत करने का प्रामाणिक प्रयत्न है । इस उपन्यास में जितने पात्र हैं उन सबकी अपनी अलग अलग वैतरणियाँ हैं ।

टूटती सामन्तीय सभ्यता का प्रतीक है जैपाल सिंह । करैता छोड़कर मीरपुर जाने का निश्चय वह इसलिए कर लेता है कि "जिस धरती का चप्पा-चप्पा बबुआन के शौक और ऐश्वर्य की साँसों से भींगा है, उसी पर अपनी आखिरी हार की कहानी वे छोड़ना नहीं चाहते । मीरपुर में उन्हें बदली आँखों से देखनेवाला कोई नहीं था । वे सदा के जैपाल थे[2] ।" उन्होंने अपनी जिन्दगी के ज्यादे दिन लोगों के झुके माथे और झुकी आँखों में देखकर बिताये थे । उन्हें नीच जातवालों को तने-सीधे देखने का ताव न था[3] ।" इसलिए करैता गाँव में कभी कदम न रखने की प्रतिज्ञा वह मन-ही-मन लेता है । लेकिन उसे करैता लौटना पड़ता है । ग्रामसभा चुनाव के सरपंच के पद पर चुनाव लड़नेवाले अपने दुश्मन सुरजुसिंह को हराने केलिए उसे स्वयं हारना पड़ता है ।

---

1. शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी - तटचर्चा
2. वही, पृ.78
3. वही, पृ.29

ग्राम सभा को अपने ही पंजों में सुरक्षित रखने हेतु अपने ही एक गुर्गे सुखदेव राम को विजयी बना देने में वह सफल निकलता है । टूटती जमीन्दारी की सिसकन, वेदना और कराह तथा पुत्र बुझारथ सिंह के करतूतों से संत्रस्त पुत्रवधु कनिया की भविष्य की चिन्ता जैपाल सिंह की वैतरणी है ।

इधर विपिन, देवनाथ, शशिकान्त जैसे शिक्षित नवयुवक गाँव आते हैं । वे गाँवों से संबन्धित सुनहले सपने संजोये ही आते हैं । लेकिन विपिन का अनुभव वह यों बताती है "साल भर तक मैं ने इस गाँव में रहकर यह जान लिया है कि यहाँ किसी भले आदमी का रहना मुश्किल है । यह एक जीता-जागता नरक है, जिसमें वही आता है जिसके पुण्य समाप्त हो जाते हैं[1] ।" और भी वहाँ रहकर तन-मन से उस "महाकाय घूरे" का अंश बनना वह नहीं चाहता इसलिए गाज़ीपुर डिग्री कालेज में प्रोफेसर का पद स्वीकार कर वह गाँव से जाता है । विपिन की वास्तविक वैतरणी यह नहीं है ।

विपिन की वैतरणी है उसकी सहेली पुष्पा की शादी । पुराने संस्कारों के मोह पाश तथा अपनी कायरता के कारण बचपन से ही चाहने पर भी वह पुष्पा को अपना नहीं सकता । इस मोहभंग की स्थिति के साथ गाँव की दु:स्थिति, भाई बुझारथ सिंह के अनैतिक आचरणों से उत्पन्न कसक, स्नेहमयी भाभी (कनिया) की करुण स्थिति आदि मिलकर विपिन की वैतरणी निर्मित होती है ।

डॉ॰ देवपाल गाँव में रहने की इच्छा से अपने पिता के विरोध का परवाह किए बिना गाँववालों की सेवा-शुश्रूषा में लग जाता है । मुफ्त में दवा खरीदनेवालों की एक पांति ही उसके यहाँ लग जाती है । अपने व्यवसाय सम्बन्धी प्रतिकूलता को वह यों प्रकट करता है - "कस्बे में दूकान खोलता तो

1· शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ॰591-592

आमदनी ज्यादा होती । अब यहाँ वह संभव नहीं है । गाँव घर की बात है । बेमुरव्वत होकर न तो रोगी से फीस ही माँगी जा सकती है, न दवा का दाम ही ये सब सहकर भी वह अपने निर्णय से पीछे नहीं हटता । लेकिन जब पटनहिया भाभी के साथ उनकी अनैतिक संबन्धों का प्रचार गाँव वाले करने लगते हैं तो वह टूट जाता है । एक दिन कस्बे में दूकान खोल कर वह गाँव छोडता है । यही डॉ॰ देवनाथ की वैतरणी है ।

मास्टर शशिकान्त इस गन्दे गाँव के स्कूल में सुधार लाने केलिए उत्साह के साथ आता है । यहाँ के गन्दे लोगों और अनैतिक आचरणोंवाले स्कूल के हेडमास्टर जवहार चौधरी के विरोधों को सहकर भीअपने आदर्श से विचलित नहीं होता । किन्तु एक दिन जब वह स्कूल के मास्टरों की तनख्वाह लेकर लौटते वक्त हेडमास्टर और सुरजू सिंह के द्वारा रचित षडयंत्र से लूटा जाता है । इस वैतरणी से मुक्त होने हेतु वह गाँव छोडता है ।

गाँव के अधिकांश लोग यौन सम्बन्ध के बीहड, जघन्य और दुस्तर काम की वैतरणी में डूबते-तैरते दिखाई पडते हैं । कल्पू और गोपाल यौन क्षुधा की वैतरणी के शिकार हैं । गाँव के उच्च वर्ग की काम पिपासा बुझानेवाली सुगनी, नंगी औरतों की तस्वीरें रखने की जगेसर की यौन विकृति, अपने शिष्यों के द्वारा पत्नी के अभाव की ऊबाहट दूर करनेवाला हेडमास्टर आदि इस वैतरणी की धारा में तडपते बहनेवाले आत्मा है । यौन विकृति के शिकार "नपुंसक कल्पू" की पत्नी बनकर शिक्षित संस्कार युक्त दीपा जीवन भर सिसकने केलिए अभिशप्त रह जाती है ।

1॰ शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ॰395

सत्य और न्याय की उपेक्षित स्थिति में जलील बाबा की सेक देवी चौधरी छीन लेता है । भारतभूमि को अपनी जान से भी चाहनेवाला बाबा गाँव छोडकर पाकिस्तान जानेकेलिए मजबूर हो जाता है । इसके अतिरिक्त देवपाल राजमती की दुःखद प्रेम कथा, सोनवा चमाइन का करुण क्रन्दन, हरिया सिरिया की गुन्डा गर्दी आदि के साथ उपन्यास के छोटे छोटे पात्रों की अपनी अपनी कथाएँ छोटी छोटी धाराओं के रूप में बहकर करैता ग्रामीण जीवन की वैतरणी में परिवर्तित हो जाती है ।

इस उपन्यास की विशेषता यह है कि उपन्यास के सारे के सारे पात्रों के भीतर दर्द की एक अन्तःसलीला सदैव बहती रहती है ।

वैसे "अलग अलग वैतरणी" विभिन्न परिदृश्यों को प्रस्तुत करनेवाला उपन्यास है, जिसमें व्यक्ति की पीडा एवं असहायावस्था विविध कथा खण्डों में विभक्त होकर हमारे सम्मुख उभरने लगती है । करैता गाँव की बंजर धरती जो सभी प्रकार की मानवीय संवेदनाओं से वंचित हो गयी है, एक ऐसी रेगिस्तान की तस्वीर प्रस्तुत करती है जहाँ हर मानव परिस्थितियों के जबडों मे और दूसरों के कुकृत्यों से आतंकित होकर एक ऐसी महा वैतरणी में बहने को अभिशप्त हो जाती है जो उस बंजर धरती के हृदय को फाटती हुई बह जाती है । इस महा वैतरणी में गाँव के व्यक्तियों की वैतरणियाँ भी मिल जाती है और अन्ततोगत्वा प्रवाह अधिक वेगवती बना देती है ।

पात्र चित्रण

करैता गाँव का समूचा चित्र अंकित करनेवाले बृहत्काय उपन्यास "अलग-अलग वैतरणी" का पात्र चित्रण शिवप्रसाद सिंह ने एक विशेष दृष्टिकोण से किया है । उपन्यासको महा वैतरणी का रूप प्रदान करने हेतु छोटी छोटी झरनों के समान जितनी कथाएँ प्रस्तुत हुई हैं उसी के अनुसार इन कथाओं के पात्रों की भी बडी पाँति नजर आती है । एक महा समुद के समान लहराते हुए

ये पात्र पाठक के सम्मुख उपस्थित होते हैं । इने गिने शिक्षित पात्रों को छोड़कर उपन्यास के सारे के सारे पात्र अंचल विशेष के संस्कार से ओतप्रोत है । विकसित और अविकसित पात्रों के माध्यम से करैता धरती के सामूहिक जीवन को यथार्थ रूप प्रदान करने में शिवप्रसाद सिंह सफल निकले हैं ।

पात्रों की इतनी भीड़ कतार बाँध कर खड़े होने पर भी कुछ एक चेहरे अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण पाठक के मन पर अपना छाप छोड़ देते हैं । ऐसा एक पात्र है जैपाल सिंह का । टूटती ज़मीन्दारी सभ्यता का प्रतीक है जैपाल सिंह । जिन्दगी के अधिक दिन झुके माथे और झुकी आँखों को देखकर आगे बढ़ा जैपाल सिंह का आभिजात्य आज़ादी के बाद बदले सन्दर्भों में निम्न जाति के उठाये माथे को सह नहीं सकता था । गाँव में कभी भी पैर न रखने की प्रतिज्ञा वह ले लेता है ।

लेकिन पंचायत चुनाव के दिनों में अपने जानी दुश्मन सुरजूसिंह को हराने केलिए उसे गाँव लौटना पड़ता है । सुरजूसिंह को हराना अपनी कुल की इज्जत की बात समझकर जैपाल सिंह भी चुनाव की लड़ाई लड़ता है । वह स्वयं हार कर अपने ही गुर्गे सुखदेव को विजयी बना देता है । जिससे स्वाधीनता के बाद उसके हाथों से अपहृत शासन का अधिकार अप्रत्यक्ष रूप में भी क्यों न हो उसे प्राप्त होता है ।

जिन्दगी भर अपना नाक ऊँचा करने में सफल जैपाल सिंह का एक मात्र हार है उसका पुत्र बुझारथ । पति के हरकतों से संत्रस्त पुत्रवधू की चिंता उसे हमेशा सताती रहती है ।

अपने कुल की प्रतिष्ठा पर गर्व, विवेकशीलता और दूरदर्शिता इस पात्र की विशेषताएँ है । सामन्ती सभ्यता का प्रतीक होने पर भी जैपाल सिंह का चरित्र आकर्षक बना हुआ है । उसके चरित्र की यह विशेषता है कि वह एक प्रतीक बन जाता है । ऐसा प्रतीक जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी होने वाले परिवर्तनों को अपने अंदर समेट नहीं पाता और उस स्थिति में हार महसूस कर जीवन के अंतिम दिनों तक विशेष मानसिकता का शिकार बन जाता है । इसलिए जैपाल सिंह का चरित्र आंचलिकता के परिवेश से जुड़कर भी समूचे भारत के ज़मींदारों की मनस्थिति को सूचित करनेवाला प्रतीक बन जाता है ।

जग्गन मिसिर

उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक जगमगानेवाला ज्योति बिन्दु है जग्गन मिसिर का । यह उपन्यास का सबसे सशक्त और विकासशील पात्र है । अपढ़, विवेकशील और सत्यवादी धरती पुत्र का यह चरित्र सिंह जी के पात्र सृष्टि की एक उपलब्धि है ।

सत्य और न्याय केलिए कुरुक्षेत्र में अकेले लडने की हिम्मत जग्गन मिसिर में है । सरकार हो या जमीन्दार किसी की परवाह किये बिना अपनी राय प्रकट करने में वह कभी पीछे नहीं हटता । एक व्यक्ति या जाति के पूरे लोग गोल बनाकर ही आयी हो तो भी उसने अपना व्यक्तित्व कभी नहीं खोया

गुंडा गर्दी के खिलाफ जुलूस निकालनेवाले हरिया जो कि कुछ दिनों के पूर्व रामनवमी के दिन होहल्ला मचाता है, को देखकर मिसिर वहाँ खडे लोगों से खुल्लम-खुल्ला कहता है - "आजकल साले नारे भी खूब निकलते हैं । 55 गुंडा गर्दी के खिलाफ, बदमाश बदमाशी के खिलाफ, चोर चोरी के खिलाफ,

और जुल्मी जुल्म के खिलाफ गला फाड फाड़कर चिल्लाते हैं ।
ऐसी उधम मचती है कि पता ही नहीं चलता कि सफेद क्या है और काला क्या है ।"[1]

अपनी जाति की आलोचना करनेवाले जगेसर की कन पटी पर खींच कर हाथ मारने के मामले के बारे में पूछने वाले थानेदार से जग्गन मिसिर, जगेसर का पोल खोल देने में पीछे नहीं हटता ।

वर्तमान परिस्थितियों मे जग्गन मिसिर भीतर ही भीतर टूटन का अनुभव करता है । वह हर दिन यह दृश्य देख रहा है जिनमें लोग खाले ओढ़कर ड लुटेरे और जालिम बन बैठे हैं ।

करुणा और सम्वेदना के भाव इस पात्र की अन्य विशेषताएँ हैं । "वे एक जुझारू चरित्र के रूप में सामने आते हैं किन्तु उनका जुझारूपन अपने भीतर दूसरों केलिए न जाने कितने दर्द, कितनी संवेदनाएँ और टूटन लिये हुए है[2] ।" सत्य और न्याय केलिए कुछ कर न पाने की स्थिति में वह टूटता रहता है । फिर भी गाँव छोड़कर जाने का वह कभी पक्षपाती नहीं रहा । विवेकशील मिसिर यह भली-भाँति जानता है कि गाँववाले ही इस टूटन के जिम्मेदार हैं । करैता जानेवाले विपिन से वह यों कहता है - "आप जा रहे हैं विपिन बाबू, जाइये । कोई आपको दोष भी नहीं देगा । सभी जाते हैं । हमारे गाँवों से आजकल इकतरफा रास्ता खुला है । सिर्फ नियति । जो भी अच्छा है, काम का है, वह यहाँ से चला जाता है ।"[3]

1· शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ·105

2 सं·डॉ·रामदरश मिश्र तथा ज्ञानचन्द गुप्त - हिन्दी के आँचलिक उपन्यास - पृ·147

3· शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ·613

अपनी जन्म भूमि, परंपरा, शान और शौकत के प्रति इस पात्र के मन में गहरी आस्था है । जग्गन मिसिर में आंचलिकता इतनी फूट फूटकर उभर आती है कि डॉ॰ वंशीधर की राय ठीक लगती है - उपन्यास का अन्य कोई पात्र गाँव की मिट्टी से इतना सम्पृक्त नहीं लगता जितना जग्गन मिसिर का यह पात्र लगता है।[1] मिट्टी से उसके इसी सम्पृक्तता के कारण ही विपिन से वह कहता है "जाते वक्त हमें बेगाना बनाकर मत जाओ । गाली देकर न जाओ । तोहमत लगाकर लोग मेहरारू छोड़ते हैं, महतारी नहीं ।"[2]

इन सद्गुणों से युक्त मिसिर का अपनी भाभी के साथ सम्बन्ध को पाठक एक साधारण बात सी समझता है । लगता है कि नैतिकता और अनैतिकता के सम्बन्ध में मिसिर के अपने विचार है । भाभी के साथ जीवन बितानेवाला मिसिर इस कार्य में किसी प्रकार की अनैतिकता नहीं देख पाता । शायद भाभी के जादू से बच निकलने का न उसके पास कोई उपाय है और न वह ऐसा चाहता ही है । विधवा विवाह के माध्यम से किसी प्रकार के परिवर्तन को न दिखाकर भाभियों के साथ देवरों के रिश्तों को खुल्लम खुल्ला छोड़कर उपन्यासकार ने एक और सच्चाई की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित किया है । इसलिए यह आधुनिक गाँव के जीवन का एक स्वाभाविक पक्ष सा बन गया है ।

विपिन

लगता है कि उपन्यास का सबसे कमज़ोर चरित्र है विपिन का । गाँव का होकर भी शहरी मानसिकतावाला है यह पात्र । मास्टरी करता रह कर भी वह गाँव से अपने को फिट नहीं कर पाता । कर पाता ज़रूर है वह है भावात्मक स्तर पर । लेकिन यह भी उसकी कायरता के कारण नष्ट भ्रष्ट हो जाता है ।

---

1 डॉ॰ वंशीधर - हिन्दी के आंचलिक उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा, पृ॰ 17।

झूठी परम्परा और प्रतिष्ठा के मोह में वह अपनी प्रेमिका को खो बैठता है । वह खुद यही सोचता है - "मैं क्या चाहता हूँ मुझे खुद नहीं मालूम ... मैं निर्णय भीरु हूँ । सुविधा पसन्द हूँ ।"[1] परिवार की प्रतिष्ठा बनाये रखने में दुत्तश्रद्ध विपिन इस हेतु भाई के अपराधों को भी अपने सिर ले लेता है । गाँव और परिवार की अनेक अमानवीय कारनामों से आहत होकर वह गाज़ीपुर में प्रोफेसरी का पद स्वीकार कर मुक्ति का एहसास करता है । इस तरह परिस्थितियों से टक्कर लेने की हिम्मत न रखनेवाला यह पात्र स्वयं टूटता है और पलायन की राह पकड़ता है ।

विपिन के चरित्र चित्रण में बहुत सारा अन्तर्विरोध दिखाई पड़ता है । परंपरा और खानदान की इज्जत को बनाये रखने केलिए एक ओर वह आदर्श भाई का झोला पहनकर अपने बड़े भाई के अपराधों को सर पर ले लेता है तो दूसरी ओर गाँव से पलायन कर गाज़ीपुर में शरण ले लेता है । यहाँ उसका चरित्र किसी विशेष दृष्टि से प्रभावित नहीं लगता । शायद एक अधूरे पात्र की सृष्टि ही उपन्यासकार का लक्ष्य लगता है ।

शशिकान्त

आदर्शवादी मास्टर शशिकान्त अपनी तबादली पर खिल्ली उड़ानेवालों की परवाह किये बिना करैता गाँव के बदनाम स्कूल में सुधार लाने का दृढ संकल्प लेकर आता है । स्कूल हेडमास्टर जवाहर चौधरी के विरोधों और हरकतों को झेलकर भी गाँव के बच्चों में आत्मविश्वास भरने का महत्वपूर्ण कार्य वह करता है । "छिपी चिनगारियों को जगाने की कोशिश"[2] में वह सफल होता है । सिरिया के पक्ष में बुझारथ सिंह के खिलाफ झूठी गवाही देने केलिए तैयार न होने के कारण सुरजूसिंह और हेडमास्टर द्वारा रचित

---

1. शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ.573
2. वही पृ.389

षड्यन्त्र से वह लूटा जाता है । स्कूल के मास्टरों की तनख्वाह ही इस तरह लूटी जाती है । यह वापस देने की राह न देखकर रातों रात गाँव छोड़कर भाग जाता है ।[1]

डॉ॰ देवनाथ

अपने गाँववालों की सेवा करने केलिए बहुत चाहकर भी उसमें असफल बननेवाला पात्र है डॉ॰ देवनाथ का । पिता के विरोध का परवाह किये बिना गाँव में दवाखाना खोलने वाला देवनाथ नाम मात्र केलिए फीस लेकर और कभी कभी मुफ्त में ही दवा देने लगता है । उसकी इस प्रवृत्ति से एक ओर उसके पिता का विरोध बढ़ता जाता है तो दूसरी ओर गाँववालों से यह ठगा जाता है ।[1] इसी टूटी मानसिकता को और भी गहरा करके पटनहिया भाभी के साथ उसकी यौन सम्बन्ध की झूठी कथाएँ फैलने लगती है तो वह गाँव छोड़कर कस्बे में दूकान खोल देता है ।

इसके अतिरिक्त उपन्यास में ऐसे छोटे-मोटे अनेक पात्र हैं जो कथा के तंतुओं को आगे बढ़ाने में सिद्ध होते हैं । देश विभाजन के परिणाम स्वरूप उद्भूत साम्प्रदायिकता का शिकार है खलील मियाँ । भारत भूमि से बेहद प्रेम करनेवाला खलील अपनी पत्नी या पुत्र की इच्छा के अनुसार पाकिस्तान जाना पसन्द नहीं करता । हिन्दू और मुसलमान में कभी फर्क न देखनेवाला खलील होली, दसमी और दीवाली को भी मानने लगता है । अपने सगे भाई के समान समझनेवाले देवी चौधरी के द्वारा अपनी भूमि जब छीनी जाती है तब वह टूटकर पाकिस्तान जाने केलिए विवश होता है ।

---

1 शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ॰395

2॰ वही, पृ॰78

टूटती सामन्ती सभ्यता की कुरूपताओं को लिये हुए प्रस्तुत है बुझारथ का पात्र । पिता जैपाल सिंह उसके बारे में ठीक ही कहता है - "देवी चरण की प्रतिष्ठा और इज्जत की नींव में यह दीमक की तरह लग गया है[1]। ज़मीन्दारी उन्मूलन के बाद धन-दौलत की अनुपस्थिति में अवैध आय की प्राप्ति में वह लग जाता है । घर में बहू-बेटियों के होते हुए भी नैमित्तिक सुख प्राप्ति केलिए भँवर की तरह घूमनेवाले बुझारथ के चरित्र में उपन्यास के अंत में आकर परिवर्तन दिखाई पड़ता है ।

गाँव में गुण्डा गर्दी और अनैतिक आचरणों का स्वरूप है सुरजू सिंह का । गाँव के लम्पट युवक सिरिया, हिरिया और छबिलवा आदि को पालने वाला सुरजू सिंह गाँव की बहू-बेटियों की इज्जत लूटने और लूट-फाट करने के काम में लग जाता है । देवी चक की सुगनी के साथ उसके अनैतिक संबन्ध खुलने से सुगनी को उसके घर में छोड़ने केलिए जुलूस लेकर आये चमारों पर वह गोली चलाता है जिसके परिणाम स्वरूप भगत की मृत्यु हो जाती है । इसी के कारण ही शशिकान्त को गाँव छोड़ना पड़ता है ।

गाँव की पाठशाला में चलने वाले अनैतिक आचरणों का चित्रण हेड मास्टर जवहरलाल से स्पष्ट होता है । स्कूल के लड़कों से "चौका पानी का काम धाम करानेवाला हेडमास्टर यहाँ तक कि अपनी पत्नी का अभाव भी अपने शिष्यों से दूर कर लेता है । इसे न्याय भी स्थापित करने में वह हिचकता नहीं[2] ।"

दयाल महाराज गाँव के सफर मैना और बड़े आकर्षक पात्र है[3] ।" सदा दूसरों की सेवा करने में लग जानेवाले दयाल मन ही मन यही अनुभव करता है कि

---

1. शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ.78
2. वही, पृ.411
3. डॉ.ज्ञानचन्द्र गुप्त - आंचलिक उपन्यास शिल्प और सम्वेदना, पृ.88

"उन्होंने एक मुरझाते पौधे में पानी डाल दिया है, एक उदास चेहरे पर हँसी ला दी है, या किसी सत्य पर चलनेवाले व्यक्ति की सेवा कर दी है तो वे खुशी से विह्वल हो जाते ।"[1] एक-दूसरे को संदेश पहुँचानेवाला दयाल महाराज कभी भी एक का भेद एक दूसरे से नहीं कहता । गाँव की मूल्यच्युति के परिवेश में "एडजस्ट" न कर पाने की स्थिति में वह विपिन के साथ गाँव छोड़ता है ।

पुलिस की रोब दिखाने केलिए झगडा मोल लेनेवाला है जगेसर । बायस्कोप की फेरी करनेवाले से उसकी एक दिन की कमाई छीन लेनेवाले उसकी प्रवृत्ति के माध्यम से गरीब पुलिस द्वारा गरीब लोगों के शोषण की पर्तें उखाडी जाती है ।

पथभ्रष्ट युवापीढ़ी का प्रतिनिधित्व करनेवाले हैं छबिलवा, हरिया, सिरिया, शशिधर आदि। कल्पू और गोपाल कुसंगति के प्रभाव स्वरूप अपने जीवन को त्रासदी पूर्ण बना देते हैं । युवा पीढ़ी के स्वर को महत्वपूर्ण स्थान देनेवाला है चमार टोली का सरूप भगत जिसकी मृत्यु सुरुजू सिंह की गोली से हो जाती है । अपने को गाँधीजी का सिपाही कहनेवाला गोसाई महाराज झूठी गवाही देने केलिए तैयार होता है । कल्पू का पिता बंशी सिंह, डॉ. देवनाथ का पिता झब्बन, शोषण के खिलाफ आवाज़ उठानेवाला झिनकू, वक्त-बे-वक्त महावीर स्वामी की कसम खानेवाला हरखू सरदार, पुष्पी का पिता धरमू सिंह आदि पात्र करैता गाँव के यथार्थ चित्रण को पूर्णता प्रदान करने में अपना योगदान देते हैं ।

----

1 शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ.374

स्त्री पात्र

"अलग अलग वैतरणी" में चित्रित सभी स्त्री पात्र एक न एक रूप से सताये हुए से प्रतीत होते हैं। पटनहिया भाभी दीपा, बुझारथ की पत्नी कनिया, सरूप भगत की पुत्री दुलारी, विपिन की प्रेमिका पुष्पी आदि पात्र ऐसी विभीषिकाओं से संत्रस्त है।

पारिवारिक गौरव को बनाये रखने केलिए मोम की तरह पिघलनेवाली पतिव्रता नारी है कनिया। लम्पट और बदमाश पति बुझारथ के साथ जीने केलिए अभिशप्त कनिया स्वयं तोड़कर परिवार की एकता बनाये रखने की प्रवृत्ति वैशिष्ट्य के कारण अत्यन्त आकर्षक लगती है।

कनिया कभी भी अपने पति के अनैतिक आचरणों से समझौता नहीं करती है। दोनों के आचरणों में इतनी भिन्नता है कि पति और पत्नी एक दूसरे से महीनों तक बोलते तक नहीं। कनिया का व्यक्तित्व इतना उज्वल है कि उसके आगे बुझारथ का व्यक्तित्व बुझ जाता है। "बुझारथ की आँखों में इतना ताव नहीं कि वह उसकी ओर देख सके। कनिया जलती दीपशिखा की तरह थीं, जिनकी ज्योति के आगे वह घुग्घू की तरह आँखें मुलमुला लेता। सारी दुनिया में वह कितना भी निर्लज्ज और बेहया बनकर घूमे, आँख की लाज-शरम को भले ही पानी की तरह बहाये, कनिया के सामने आते ही उसके भीतर का कालुष्य उसे पूरी तरह जकड़ लेता। मुँह पर एक स्याह पर्दा आपो आप चढ़ जाता और वह आँख बचाकर निकल जाता।"[1] सुगनी के साथ अपने पति के अनैतिक संबन्ध, पुष्पी के खिलाफ षड्यन्त्र, मालगाड़ी की डकैती आदि मामलों से वह भीतर ही भीतर टूटती है। फिर भी सास और ससुर को

---

1. शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ. 157

दिये हुए वचन का पालन वह अंत तक करती हुई दिखाई पड़ती है । "कनिया का यह पात्र हमें प्रभावित तो करता ही है, भीतर से करुण विगलित भी करता है[1]

पटनहिया भाभी दीपा

नामर्द कल्पू के साथ ब्याही शिक्षित दीपा सताई हुई स्त्री है । माता-पिता की मृत्यु से दु:खी दीपा के जीवन की खाई कल्पू के साथ ब्याह के पश्चात् और भी गहरी बन जाती है । शिक्षित संस्कार संपन्न दीपा व्यवहार कुशल और वाक्पटु होने पर भी उसका मानसिक धरातल पूर्ण रूप से भारतीय है ।

सुखद दाम्पत्य जीवन की आशा लिये आयी दीपा पहले दिन ही जान लेती है कि अपना पति उसे कुछ दे सकने में असमर्थ है । अतृप्त वासना जन्य पीडा के कारण उसके भीतर यौन सम्बन्धों के प्रति एक विशेष ललक पैदा होती है फिर भी नैतिकता की सीमा को वह कभी भी नहीं तोड़ती । वह अपने मन को समझा देती है - "चलो अपने करम में यह था ही नहीं । सब है, एक नहीं ही है तो क्या हुआ । सब चीज खाया, एक चीज़ नहीं ही खाया तो उससे क्या ।"[2] अपने मन की शांति स्वयं ढूंढ निकालने पर भी "बच्चों की चीरहरण लीला" से वह एक विशेष प्रकार की तुष्टी पाती है । पति की मृत्यु के पूर्व ही डा॰ देवनाथ के साथ उसका बदनाम, तत्पश्चात् कल्पू की मृत्यु आदि से वह अनुभव करती है कि "यह गाँव अब मुझे सब तरफ से काटने दौड़ता है"[3], और वह अपने भाई के साथ गाँव लौटती है ।

---

1 डा॰ ज्ञानेश्वर - हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, सिद्धान्त और समीक्षा, पृ॰171

2॰ शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ॰582

3॰ वही, पृ॰584

कल्पू की पत्नी का चित्रण शिवप्रसाद सिंह ने नारी मनोविज्ञान के आधार पर ही किया है । दाम्पत्य जीवन के सुनहले सपनों को ली हुई नारी अपने पति को नामर्द जानकर टूटती है । अतृप्त वासनाओं की पूर्ति करना वह ज़रूर चाहती है लेकिन परंपरागत संस्कारों पर अधिष्ठित भारतीय नारी यह कर नहीं पाती । अगर वह चाहती तो विपिन, देवनाथ और शशिकान्त से यौन सम्बन्ध स्थापित कर सकती थी । लेकिन वह वासना पर संस्कार को जीत लेती है ।

दुलारी

चमार जाति की स्त्रियों को बदलते परिवेश से अवगत कराने केलिए कोशिश करनेवाली है सरूप भगत की बेटी दुलारी । अपने को अछूत समझकर सीमित दुनिया में जानवर सा जीवन बितानेवालों से सफाई की ज़रूरत पर ज़ोर देकर वह कहती है - "चमार आदमी नाहीं है का भौजी ? दुनियाँ तो हमें दुतकारती ही है अछूत कहकर, बाकी हम लोग भी कम नहीं है । एक बहाना मिल गया कि हम चमार हैं, हमको सफाई से रहने का क्या काम भला ?"[1]

हड्डी तोड मेहनत करनेवाली दुलारी से छेडखानी करने केलिए कोई हिम्मत नहीं करेगा । "दुलारी कहती थी कि यदि औरत खुद न ढरक जाये तो मरद की क्या हिम्मत है कि वह कुछ कर सके ।"[2] दुलारी के कारण ही सुगनी के साथ सुरजूसिंह का अवैध संबन्ध खुल जाता हो ।

उपन्यास में कुछ समय केलिए ही दुलारी का चित्रण होता है फिर भी पाठक पर अपना प्रभाव छोडने में यह पात्र सफल निकलता है । युग-युग के अन्धविश्वास और सामाजिक शोषण के परिणाम स्वरूप अविकसित चमार जाति को जागृत करने हेतु दुलारी का चित्रण हुआ है । किसी के आगे सिर न झुकाने

---

1. शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ.223

-वाली दुलारी जागृत नारी का प्रतीक है ।

गौण पात्र

अपने बचपन के प्रेमी विपिन से एकाकार होने की आशा सफल नहीं कर पानेवाली है पुष्पी । बुझारथ, सुरजूसिंह जैसे व्यक्तियों से यौन संबन्ध रखनेवाली सुगनी गाँव की दूसरी लड़कियों को बहकाकर गलत रास्ते पर धकेलने का प्रयत्न करनेवाली है । बैजू की पत्नी पति की मृत्यु के बाद देवर जगन के साथ सम्बन्ध स्थापित करनेवाली है । देश विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान गये अपने पुत्र से मिलने की आतुरता से जीनेवाली खलील की पत्नी अपनी इच्छापूर्ण कर लेनेवाली है ।

करैता गाँव का समूचा चित्रण उसके सच्चे अर्थ में उभारने हेतु लेखक ने जीवन के विभिन्न धरातलों से पात्रों को चुना है । इन पात्रों की भीतरी और बाहरी मानसिकता को उसकी पूर्णता और अपूर्णता के साथ लेखक ने चित्रित किया है । पात्र पूर्ण हो या अपूर्ण जिस कार्य हेतु इनका चित्रण हुआ है अपनी अपनी भूमिका अदा करने में वे सफल निकले हैं । "हर चरित्र अपने पैरों पर खड़ा होता है, चलता है, लड़खड़ाता भी है पर लेखकीय बैसाखी नहीं लगाता जिस चरित्र में जितना अधूरापन है उसे लेखक ने स्वीकार कर लिया है और एक आदर्श चरित्र रखने के फेर में उसमें भराई नहीं की है सभी अधूरे हैं । जैपालसिंह का अधूरापन अपने को आगे विवश हो जाने का है, कनिया का अधूरापन पति को वश में न रख पाने का है, बुझारथ का अधूरापन पत्नी के आगे चुप हो जाने का है, पटनहिया भाभी का अधूरापन नपुंसक पति को छोड़कर खुलकर न खेलने का है ।[1]" शिवप्रसाद सिंह की पात्र सृष्टि को देखकर पाठक के मन में यह शंका उत्पन्न होती है कि क्या करैता गाँव की हर आत्मा पलायन की नियति से अभिशप्त है ? पुष्पी द्वारा बार बार आग्रह करने पर भी विपिन उसे अपना पाने केलिए कोई प्रयास नहीं करता ।

---

1 दिनमान 21 मई 1969, पृ.39

अपने में सिकुडा यह रोमांटिक हीरो स्वयं अपने जीवन से भागता हुआ पलायनवादी सिद्ध होता है । डॉ॰ देवनाथ के गाँव छोडने के पीछे पटनहिया भाभी की कथा जोडना कुछ अखरता है । गाँव में उसका आर्थिक संघर्ष मात्र ही पलायन केलिए पर्याप्त है । जो भी हो जीवन की विविध वैतरणियों को लिये हुए ये पात्र उपन्यास में अपनी अपनी पहचान उभारने में सफल निकले हैं ।

सामाजिक आयाम

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारतीय गाँव में जो परिवर्तन आया है उसका एक तटस्थ सर्वेक्षण सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं में प्रतिबिंबित होता है गाँव का जीवन किस तरह से परिवर्तन का शिकार बना है उसका ब्योरात्मक वर्णन विविध पात्रों के और परिस्थितियों के माध्यम से उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है । करैता गाँव के सामाजिक स्थिति का बोध करानेवाला कई ऐसे पक्ष हैं जिन पर उपन्यासकार गहरी दृष्टि से विचार करना नहीं भूलते ।

करैता गाँव एक ऐसा स्थान है जहाँ टूटती हुई जमीन्दारी से लेकर उखाड कर फेंक दिये जानेवाले लोगों की व्यथाएँ तक की घटनाएँ बिखरी पड़ी हैं । इसमें आनेवाले पुरुष पात्र उस सामाजिक आयाम के अंग बन गये हैं जो स के थपेडों के साथ अधिक डगमगाया गया है और मानवीय संवेदनाओं से वंचित होकर कहीं अंधकार की गहराईयों में डूबने लगा है । स्त्री-पात्र इस बात का समर्थन करती है कि आज भी उन्हें वह आज़ादी नहीं मिली है जिसकी उन्हें प्रतीक्षा थी । घर की चहारदीवारी में हो या तंग गलियों के इर्द-गिर्द हो स्त्री अब भी वही यातना का भोग कर रही है जिसको वह युगों से भोगती आयी है । बेजुबान औरतों की कहानी के साथ असहाय बूढ़ों की वेदना तक उभारकर रखते समय नंगे कंकालों की और रोगग्रस्त युवाओं की और ज़मीन का हडप जाने के कारण विस्थापित होने जानेवाले अल्पसंख्यों की सारी कहानी इस सामाजिक आयाम के अंदर बाँधी गयी है ।

पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षा के परिणाम स्वरूप जीवन में सम्बन्धों के तनाव इतनी ज़ोरों पर है कि इसके प्रभाव क्षेत्र से हर परिवार, व्यक्ति और समाज मुक्त नहीं हो पाता । स्वाधीन भारतीय ग्रामीण समाज अनैतिक आचरणों और अन्य स्थितियों के कारण सम्बन्धों का नया प्रतिमान स्थापित हो गया है । "अलग-अलग वैतरणी" में पति-पत्नी के तनावपूर्ण सम्बन्ध का उदाहरण बुझारथ सिंह और कनिया के जीवन से स्पष्ट होता है ।

पति-पत्नी के सम्बन्धों में दरारें पडने का यह फल निकलता है कि समाज का हर व्यक्ति टूटने लगता है । संयुक्त परिवार में जी कर भी अकेलेपन की स्थिति से स्वातंत्र्योत्तर व्यक्ति पीडित है । व्यक्ति-व्यक्ति की विभीषिकाएँ पृथक् होकर भी यह सत्य ही रह जाता है कि हर व्यक्ति टूटन का शिकार है । ज़मीन्दारी उन्मूलन से उत्पन्न परिस्थितियों से जैपाल सिंह टूटता है तो सुरजूसिंह सरपंची चुनाव के हार के कारण । जग्गन मिसिर अपनी भाभी और गाँव के बदलते परिवेश के कारण ह्रास का अनुभव करता है । जगेसर के पिता द्वारा भूमि हडपने से खलील मियाँ दुःख का अनुभव करता है तो शशिकान्त गाँव की गुण्डा गर्दी से । डॉ. देवनाथ अपने पिता और गाँववालों की प्रवृत्तियों से मानसिक द्वन्द्व का अनुभव करता है तो विपिन गाँव के बदले रंग और टूटती मान्यताओं को झेल न पाने से । कनिया और पटनहिया भाभी दोनों अपने अपने पति के कारण दुःख का भार ढोने केलिए अभिशप्त है । इस तरह टूटते बिगडते एक एक व्यक्ति गाँव छोडकर शान्ति पाने लगते हैं ।

यद्यपि करैता गाँव का सही रूप आशाजनक परिणामों केलिए कोई रास्ता नहीं बना पाता फिर भी इस गाँव के जीवन की प्रवृत्तियों को देखते हुए एक चौंकानेवाली बात हमारे सामने उभरने लगती है । बात यह है कि आधुनिक भारतीय गाँव एक तरह की पलायनवादिता से जकडे हुए रहते हैं । रोगग्रस्त गाँव को सुधारने की कोशिश कोई नहीं करता । इससे भागकर अपनी जान बचाने की कोशिश हर कहीं दिखाई पडता है । लगता है कि

करैता गाँव सभी प्रकार की बुराईयों से भरपूर मानवीयता को लगे हुए प्लेग रोग का अड्डा है जहाँ से जान बचाकर भाग जाने केलिए हर आदमी उतारू है । जो यहाँ से भाग जाता है फिर कभी सपने में तक वह लौटकर आने की बात नहीं सोचता । नगर की ओर मुड जाने का और गाँव को कभी न खतम होनेवाले सामाजिक रोग का अड्डा मानकर तिरस्कृत करने का यह दृष्टिकोण है । आम भारतीय गाँव में दृष्टिगत होनेवाला एक विशेष रोग जिससे मुक्ति पाना शायद असंभव बात लगती है ।

स्वाधीनता के बाद जहाँ ग्रामीण उद्धार के नारे जितने बुलन्द हुए हैं उतना ही अधिक गाँव गन्दगी, रोग, बेईमानी, अनैतिकता और राजनैतिक धाँधली कीचड में फंसता गया । जहाँ प्रेमचन्द जैसे उपन्यासकारों ने गाँव के पुनर्जागरण की कल्पना की थी वहाँ नई पीढ़ी के लेखक इस बात को प्रतिष्ठित करते हुए दिखाई पडते हैं कि करैता जैसा गाँव बदबू और गन्दगी वह अड्डा बन गया है जिसकी सिर्फ मुक्ति उस गाँव की सामयिक मृत्यु से ही संभव है । इसके साथ एक ऐसा विचार जन्म लेता है कि किसी अंग में लग जानेवाला महारोग चिकित्सा से नहीं उस अंग को काटकर फेंकने से संभव हो सकता है । पलायनवादिता के पीछे शिवप्रसाद सिंह का यह विचार शायद ध्वनित होता लगता है ।

सम्बन्धों के तनाव और मूल्यों के विघटन हेतु समाज की नैतिक मान्यताएँ भी नया मोड पकडने लगती है । परिस्थिति जन्य विडम्बनाओं के कारण मानसिक द्वन्द्व का शिकार बना हुआ व्यक्ति समाज द्वारा स्वीकृत मूल्यों से आस्थाहीन बन जाता है । गाँव की नैतिक मूल्यच्युति जगन मिसिर के वक्तव्य से स्पष्ट होता है - ...., लोफर की तरह मुँह बनाये, बीडी सुडकते मजनू बने गली-गली घूम रहे हैं । दुअन्नी-चवन्नी लेकर "इश्क" कर रहे हैं । ऐ साले दुकडटे क्या ऐयाशी करेंगे । किसी के बदन में एक तोला खून नहीं, हाड पर छटाँक भर गोश्त नहीं । ये तो कुत्ते हैं, ससुरे बिना कुछ सोचे समझे इधर-उधर- "कुकर लैंढ" लगा देते हैं । ये तो कुछ समझते नहीं । न अपने को न दूसरे को । मेले के मैदान से लेकर गाँव के स्कूल तक अनैतिक आचरणों का अडडा बन जाता है ।

करैता गाँव के गरीब और अमीर, सवर्ण और अवर्ण यौन सम्बन्धों के शिकार बने हुए हैं। धनेसरी के वक्तव्य से सवर्णों में व्याप्त यौन सम्बन्धों का भेद खुल जाता है "आये बडे बडके बननेवाले हुह। हमसे लगने के केहू कोसिस मत करो। हमसे किसी का कुछ छिपा नहीं है। जाने कितनी बेवकूफ होती हैं ये छोरियाँ भी। ज़रा सी किसी ने चापलूसी कर दी, दो चार मीठी बातें सुना दी बस पिघल गई कैसी पान फूल की तरह सुकुवार थी गंगाली। छोरी क्या थी, साक्षात् परी थी। चार पाँच महीने का तो था ही। लगे उपाध्यायजी पैर पकडने।"[1] चमारिन सुगनी के साथ बुझारथ और सुरजुसिंह के साथ अनैतिक यौन सम्बन्ध रखते हैं। सुजनी का फैशन देखकर चमारिनों के द्वारा अनैतिक सम्बन्धों से प्राप्त आय को स्पष्ट शब्दों में सरूप भगत व्यक्त करता है। "अब चमारिनें भी चौडी किनारी का लुग्गा पहनने लगी हैं कि नहीं। फिर ई आवे कहाँ से ? न ज़मीन है न पैदावार। पेट चलाने को तो मजदूरी मिलती नहीं। अब ई "फिस्सन" बदे कहाँ से आवे। तो दुनिया भर के पाप। कोई औलाद का बूँदा देखाय के, कोई लाल पंजी दिखाय के, कोई चार पैसे की मिठाई, चाहे दो पैसे की बीडी थमा के लडकी-पतोहुओं को फुसलाय रहा है। हम चमार गोडे में गर्दन डार के सब देखते हुए भी आन्हर की नाई बैठे हैं।[2]

गाँव की पटनहिया भाभी दीपा, दीपा के पति कल्पू, हेडमास्टर जवहरलाल, गोपाल, उसका दोस्त शिवराम आदि यौन सम्बन्धों के शिकार हैं। पटनहिया भाभी दीपा अपने पति कल्पू की नपुंसकता के कारण अपनी वासनाओं को दमित रखने केलिए अभिशप्त है। वह दमित वासनाओं की पूर्ति छोटे छोटे लडकों को नंगा कर देखने से करती है। "हेडमास्टर जवाहरलाल अपनी पत्नी का अभाव स्कूल के छोटे छोटे लडकों को अपने बिस्तार पर लिटाकर करता है।

---

1 शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ.231

2. वही, पृ.222

मिठाइयों और साबुन की खुशबू की आशा दिलाकर शिवराम अपने दोस्त गोपाल के शरीर का उपयोग करता है ।

समाज में जाति-पाँति की भावना मौजूद है । जाति के नाम पर ही जग्गन मिसिर और जगेसर के बीच झगडा होता है ।

करैता गाँव का सामाजिक जीवन उसकी सारी दुर्बलताओं के साथ उभारने में उपन्यासकार तटस्थ दृष्टि से कार्य करते हैं । आज़ाद भारत की बदलती परिस्थितियों में समाज में व्याप्त निराशा, कुंठा और संत्रास के साथ टूटते जीवन मूल्यों का चित्रण भी प्रस्तुत करने में वे सफल निकले हैं ।

आर्थिक आयाम

स्वाधीन भारत का एक क्रांतिकारी परिवर्तन रहा ज़मीन्दारी उन्मूलन कानून । जिसके साथ ही जमीन्दारों को छूट दी गयी थी । आर्थिक दृष्टि से करैता गाँव का प्रमुख दृश्य यह दिखाता है कि कानूनी ज़मीन्दारी टूट गयी है और पीछे के रास्ते से कानून के आड में सार्वजनिक महीन की खरीद-फरोख्त ज़ारी है तो काले धंधे का शुभारंभ नियम की आँखों के सामने घटता हुआ दिखाई देता है । एक ओर करैता गाँव में ज़मींदारी उखाड रही है तो दूसरी ओर राजनीतिक धाँधली और भ्रष्टाचार की जड़े गहरी बैठती जा रही है ।

वैसे करैता गाँव का आर्थिक आयाम उतना मजबूत नहीं दिखायी पडता । क्योंकि यह एक ऐसा गाँव है जहाँ सिर्फ वही आदमी रह सकता है जिसके जीवन में पुण्य का पूरा ह्रास हो गया है । मतलब यह है कि करैता गाँव उन पापियों का अड्डा है जो हर दृष्टि से नरक में बसने के काबिल हैं ।

"चारों ओर कीचड, बदबूदार नाबदान, गू-मूत,बीमारियाँ, कुलबुलाते कीडे, मच्छर, जहरीली मक्खियाँ-इसके बीच भुखमरी, डरावनी हड्डियों के ढाँचे, किचरीली आँखों और बीमारी मे फूले पेटवाले छोकरे, घरों में गन्दगी में आपाद मस्तक डूबी औरतें, जो एक दूसरी को खुले आम चौराहे पर नंगियाने में ही मानिरा सुख और खुशी पाती हैं, धुँधुवाते मन के अपाहिज जैसे नवयुवक, जो अँधेरी बन्द गालियों में बदफेली करने का मौका ढूँढते फिरते हैं, हारे-थके प्रौढ जो न गृहस्थी के जुये के उतार पाते हैं, न उसमें उत्साह से जुत पाते हैं। मौत का इन्तजार करते बुड्ढे अपने ही बेटे-बेटियों से उपेक्षित बिल बिलाते रहते हैं[1]।"

गाँव का जीवन सिर्फ कृषि पर ही आश्रित होता है और औसत आदमी की आमदनी खेती से ही जुडी हुई है। इस कारण बढ़ती महँगाई का सामना हर किसी को करना पड़ता है।

करैता गाँव की आर्थिक व्यवस्था प्रमुख रूप से तीन श्रेणियों में बँटी हुई लगती है। एक ओर महाजन है तो दूसरी ओर खेतियों का मालिक है और इन्हीं के बीच पिसा जानेवाला मज़दूर है। मज़दूर को मालिक चूसता है और मालिक को महाजन।

महाजनी सभ्यता के चंगुल में फँसे ग्रामीण लोग चैत की फसल काटे एक महीने के अंदर ही पेट भरने केलिए जो चने के सत्तु पर आश्रित हो जाते हैं। गाँव के दो चार जनों को छोडकर बाकी लोगों की दशा यही रह जाती है कि "बहुत सा अनाज तो खलिहान से ही पिछले कर्ज की पटाई में और महाजन की उधारी चुकाने में खतम हो जाता है[2]।

---

1 शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ॰591-592

2॰ वही, पृ॰118

एक ओर महाजन है तो दूसरी ओर खून-पसीना एक करके काम करने पर भी मज़दूरी न देनेवाला मालिक । ज़मीन्दार जगजीत झिनकुवा से हड्डी तोड मेहनत करवाकर भी भर पेट अन्न नहीं देता । अन्न के बदले उसे मारपीट खानी पडती है । अत्याचार और अभाव का शिकार झिनकुवा सोचता है.- "अब लगता है करैता का दाना-पानी उठ गया ।....जाने कहाँ-कहाँ की ठोकर खानी लिखी है ।...क्या करें । कहाँ जायें ।"[1]

गाँव की इन्हीं स्थितियों से बेजोड होकर गाँव के लोग नगरोन्मुख बन जाते हैं तो इसमें गलती नहीं देख सकते । जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति गाँवों की अपेक्षा एक सीमा तक शहरों में की जा सकती है । इसे शिक्षित लोगों के साथ ही अशिक्षित लोग भी गाँव छोडकर शहर जाने के आदी बन जाते हैं । जगन मिसिर ग्रामीण जीवन की वास्तविकता पर प्रकाश डालते हुए कहता है - "हमारे गाँव में आज इकतरफा रास्ता खुला है । निर्यात सिर्फ निर्यात । जो भी अच्छा है, काम का है, वह यहाँ से चला जाता है । अच्छा अनाज, दूध, घी, सब्जी, जाती है । अच्छे मोटे-ताज़े जानवर, गाय-बैल, भेड़-बकरे जाते हैं । हटठे-कट्टे मज़बूत आदमी जिनके बदन में ताकत है, देह में बल है, खींच लिये जाते हैं पल्टन में, पुलिस में, मिलटरी में । मिल में । फिर वैसे लोग, जिनके पास अकल है, पढ़े-लिखे हैं, यहाँ कैसे रह जायेंगे ?"[2] अर्थात् गाँव में जो कुछ अच्छा है वह शहर के उपयोग हेतु निर्यात किया जा रहा है । लेकिन इन खाली जगहों में किसी का आयात नहीं हो रहा है ।

करैता गाँव की स्थिति वैसे कोई नवीनता लेकर हमारे सामने नहीं आती । गाँव के हर अच्छी वस्तु का निर्यात किया जाना एक साधारण बात है जो भारत के किसी भी गाँव में देखा जा सकता है । परन्तु करैता गाँव का

---

1 शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ.220

2. वही, पृ.612

यह दुर्भाग्य है कि भारत के अन्य गाँव जहाँ कुछ परिवर्तित हो रहा है वहाँ करैता गाँव इन सभी परिवर्तनों से वंचित रह जाता है ।

राजनीतिक आयाम

स्वाधीन भारत में ज़मीन्दारी उन्मूलन के साथ ही एक नये इतिहास का प्रारंभ होता है । सत्ताधारी जमीन्दारों की ज़ुल्म तो समाप्त हो जाती है । लेकिन राजनीतिक क्षेत्र में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है कि अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक सत्ता इन के हाथों में सुरक्षित रह जाती है ।

पंचायत का चुनाव पारिवारिक दुश्मनी का बदला लेने का कुरुक्षेत्र बन जाता है । अपने जानी दुश्मन सुरजूसिंह के खिलाफ चुनाव लडनेवाले जैपाल सिंह स्वयं हारकर अपने परिवारवालों का सारा वोट अपने गुर्गे सुखराम को दिला देता है । जिससे सुखदेव नाम मात्र का सरपंच बन जाता है । असली सत्ता जैपाल सिंह के हाथ की बात बन जाती है । अर्थात् "जैपाल सिंह के वैभव का वृक्ष ठूँठा हो गया; पर वह जड से नहीं उखड सका । वह हरियाली नहीं रही, वह शान-शौकत न रही । न वे फल, न वे फूल । पंछियों का वह कलरव भी नहीं रहा । घोंसलों में परों की वह गरमाहट भी न रही । पर पेड़ खड़ा था ।"[1]

अंग्रेज़ों के हाथों से मुक्ति केलिए संघर्षरत सिपाही सुखराम स्वाधीनता के बाद शोषण का हथियार अपने हाथों में ले लेता है । अपने किये हुए भ्रष्टाचार में वह यों न्याय ढूँढ लेता है - किसका किसका काम नहीं सल्टाया । किसकी गवाही नहीं की । जब भी कचहरी-

---

1. शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ.78

फौजदारी हुई, पब्लिकके साथ खड़ा रहा । पर उसका कुछ नहीं । खरच-वरच केलिए जो बीस-पचीस लिया । उसकी खोज सभी साले करते हैं ।"

कूडे-करकटों से भरे राजनीतिक क्षेत्र में आयात किये हुए राजनीतिक विचारधाराओं का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है । प्रगतिशील चेतना से प्रभावित नवयुवकों में नयी स्फूर्तिका उद्भव होता है । गाँव के किसान मज़दूर भी इसके प्रभाव क्षेत्र से बच नहीं सकते । जिससे अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाने की हिम्मत अनजाने ही पैदा होने लगती है । फिर भी अन्य सभी क्षेत्रों के समान करेता गाँव का राजनीतिक क्षेत्र भी बचाव के परे हैं ।

धार्मिक और सांस्कृतिक आयाम

मानव जीवन में धर्म का जो महत्व पूर्ण स्थान रहा था वह अब केवल ईश्वर विश्वास तक सीमित रह जाता है । वह भी आस्थाहीन कर्म या बाह्याडम्बर की वस्तु बन जाती है । बदलती हुई परिस्थितियों में आर्थिक, राजनीतिक आदि कारणों से भी धार्मिक आचार विचारों में परिवर्तन आने लगता है ।

करेता गाँव की धार्मिक स्थिति बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार प्रभावित है ।

यहाँ के लोग भी मनौतियों की पूर्ति हेतु अपने अभीष्ट की प्रार्थना करते हैं । सच कहें तो यह स्वार्थपरता शहरी भौतिकवाद के परिणाम स्वरूप ही गाँवों में भी व्याप्त दिखाई पडती है । मनौतियाँ और मनोकामना सिद्ध होने पर उनकी पूर्ति को काफी तल्लीनता से किया जाता है । यहाँ

अपनी आर्थिक दृष्टि पर कोई ध्यान ही नहीं देते । इन अवसरों पर दूसरों से कर्ज लेकर या अपना कुछ बेचकर भी वे मनौतियों की पूर्ति कर लेते हैं । "अपना गाँव भी मिसिर जी एक ही रसीला है । महावीर सामी कसम इसे ही घर-फूँक मस्ती कहते हैं । खाने को ठिकाना नहीं और पुजैया में बैंड बाजा ।" बरबर यह पुजैया देवनाथ की है" झब्बू बो भौजी ने मनौती मानी थी । जब लड़का डाक्टरी पास करके आ गया तो बैंड बाजा बज रहा है ।[1]" पुत्र के डाक्टर बनने की अभिलाषा पूर्ण होते ही माँ-बाप द्वारा आयोजित ऐसी पूजाएँ ग्रामीण परिवेश में असाधारण बात नहीं रह जाती है ।

आंचलिक उपन्यासों में चित्रित धार्मिक आचरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि युगीन परिस्थितियों के साथ इसमें भी काफी परिवर्तन आ गया है। अब कर्मवाद ने भाग्यवाद का स्थान ले लिया है । लोगों की दृष्टि अधिक से अधिक सांसारिक हो गयी है । परिणाम स्वरूप धर्म, अधर्म से भी अधिक वे आर्थिक लाभ की ओर आकृष्ट होने लगे हैं । अब धार्मिक अनुष्ठानों और कट्टरता में शैथिल्य दिखाई पड़ता है । इस तरह गाँवों में धार्मिकता का एक नया स्वर गूँजने लगता है ।

देश विभाजन के साथ उत्पन्न विसंगतिपूर्ण जीवन में धार्मिक सौहार्द और तीज त्यौहारों की ओर आकर्षण ही नहीं के बराबर हो जाता है । करैता गाँव का खलील ईद और मोहर्रम के साथ ही दीपावली, होली और दसमी भी मनाया करता था । लेकिन आज़ादी के बाद यह सब मात्र स्मृति में रह जाता है । ज़मीन्दारी उन्मूलन के परिणाम स्वरूप मकर-संक्रान्ति के दिन का हर्ष उल्लास भी रुक जाता है । इस दिन पर ज़मीन्दार द्वारा गंगाजी पर चिवड़, मिठाई आदि का प्रबन्ध करने की रिवाज़ बुझारथ यह कह कर बंद करता है कि "मारो गोली" क्या रखा है इस दिखावे में ?

---

1. शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ.143

सारा रस्म रिवाज़ हमी निभाते चलें ? जब गाँव के लोगों ने सलामी नज़राना बन्द कर दिया तो हम यह सब काहे करते फिरें[1]।"

मेले जिनके ग्रामीण जीवन मे अटूट सम्बन्ध है का रूप अब विकृत बन जाता है । ग्रामीण जनता में "हल-मेल" के जगह अब गुण्डाई ही होती है । "औरतों से छेड़खानी हर मेले में होती है । पर करैता की किसी शोख लड़की से छेड़खानी करने के कारण मारपीट और खून-खराबा इस मेले का सालाना रिवाज़ था[2]।"

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के बदलाव के साथ ही साथ सांस्कृतिक क्षेत्र में भी परिवर्तन आता है । अब सब कुछ दिखावा मात्र रह जाता है ।

भाषा

"अलग-अलग वैतरणी" की भाषिक संरचना पर विचार करते वक्त यह स्पष्ट होता है कि उपन्यास में जीवन-यथार्थ और लोकरंग लाने हेतु लोकगीत भाषा आदि लोक उपादानों का आश्रय लिया गया है । उपन्यास में चित्रित गाँव से उपन्यासकार का जितना गहरा सम्बन्ध है उनकी रचना में स्थानीय भाषा उतनी ही अनुगामिनी हुआ करती है । आँचलिक उपन्यास में भाषा ही वह शक्ति है जिसके ज़रिये उस अंचल के कण कण से फूटनेवाले स्वर भंगिमाओं को मूर्ति रूप प्रदान किया जाता है । इस दृष्टि से "अलग अलग वैतरणी" का कथाकार सफल रहा है । करैता के विविध वर्ग के लोगों जैसे किसान, चमार, पुलिस आदि की भाषा को आत्मसात् करते हुए खड़ी बोली के साथ भोजपुरिया-पुर वाली भाषा के प्रयोग द्वारा भाषा को अत्यन्त स्वाभाविक रूप प्रदान

---

1. शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ.414
2. वही, पृ.3

किया गया है । इसके साथ ही अँग्रेज़ी शब्दों का सही प्रयोग और स्थानीय प्रयोग भी दृष्टिगत होता है उदाहरण स्वरूप मरडर §75§ इन्टरवल §131§ स्पेशल §387§ किलिप §89§ रपट §307§ डिगरी §319§ सीमियरी §558§ आदि । ये प्रयोग बिल्कुल सहज बन पड़े हैं । इसके साथ ही भाषा की सजावट लाने हेतु वहाँ प्रयुक्त लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग भी किया गया है । जीवन यथार्थ के उद्घाटन में कथाकार ने स्थानीय भाषा के प्रयोग को सजीव ढंग से किया है ।

लोकगीतों की धुन द्वारा उपन्यास में लोकरंग बिखेरने का सफल प्रयास प्रभावात्मक लगता है । इसके साथ ही रामायण की चौपाइयों का प्रयोग भी किया गया है । उदाहरण - बैगन बाग में करेली तूरे ना जाब सखी, बैगन बाग मे

ओहो बैगन बाग सलहोरिया छोरवा ।
बैगन देखाय मान मारे सखी, बैगन बाग में ।
बैगन बाग में करेली तूरे न जाब सखी, बैगन बाग में ।[1]"

उनके अँखिया से लोरवा गिरत होइहैं ना ।
उनके गजमोती अँचरा भिजत होइहैं ना ।
फूल परिजतवा झरत होइहैं ना ।
लरिकइयाँ के नेहिया टूटत होइहै ना ।[2]"

रामायण की चौपाइयाँ

खलन हृदय अति ताप बिसेखी ।
जरहिं सदा पर संपति देखी ।।[3] आदि

---

1 शिवप्रसाद सिंह - अलग अलग वैतरणी, पृ॰208-209

2॰ वही, पृ॰400

3॰ वही, पृ॰297

उपन्यास की शैली सपाट एवं यथार्थवादी है । उपन्यास में कहीं कहीं आत्मकथात्मक, चेतना प्रवाह और पूर्वदीप्ति शैली को अपनाया गया है ।

बिम्ब और संकेतों के द्वारा करैता जीवन के राग-रंग और सुख-दुःख की छवियों को उतारने में शिवप्रसाद सिंह सफल हुए हैं । "शिवप्रसाद सिंह की भाषा के विषय में इतना स्पष्ट है उन्होंने बड़ी ताजी भाषा का सर्जनात्मक उपयोग किया है जिसमें अभिजातता दृष्टिगत नहीं होती । विविध शब्द-प्रयोगों के आधार पर यह कहना कतई दुरुस्त है कि इन्होंने उपन्यास में लोक भाषा को खड़ी बोली में बखूबी मिला-जुलाकर प्रयुक्त किया है ।"[1] उपन्यास में आंचलिकता लाने हेतु सिंह जी कहीं कहीं भटकते हुए दिखाई पड़ते हैं । निरर्थक दृश्य-व्यापार, दो-तीन पन्नों में भरे पड़े वार्तालाप स्थानीय रंगत लाने के मोह का परिणाम है । कहीं कहीं लेखक अपने काव्यत्व का मुग्ध प्रदर्शन इस सीमा तक करते हैं कि पाठक पन्ने उलटकर उससे उत्पन्न "बोरियत" से मुक्त हो जाते हैं ।

आज़ाद भारत के करैता गाँव में जो बदलाव आ गया है उसका परिणाम यह हुआ है कि व्यक्ति स्व-केन्द्रित बन गया है, जिसके आगे सम्बन्ध और अन्य मूल्य निरर्थक बन जाते हैं । आज का भारतीय गाँव करैता के समान टूट रहा है । और देहात का जीवन सूनापन और निराशा से ग्रस्त रह जाता है इससे मुक्ति केवल नगरोन्मुखता ही इन लोगों के सामने दृष्टिगत होती है । इस एक तरफा विकास को रोकने के लिए कोई प्रयत्न नहीं दिखाई पड़ता ।

---

1. डॉ. ज्ञानचन्द गुप्त - आंचलिक उपन्यास सम्वेदना और शिल्प, पृ.89

राही मासूम रज़ा

शीआ मुसलमानों के जीवन पर आधारित उपन्यास लिखकर राही मासूम रज़ा ने साहित्य जगत् केलिए अपना विशेष योगदान दिया है। स्वतंत्रता पूर्व और बाद की परिस्थितियों को नज़र में रखकर शीआ मुसलमानों के जीवन की बाहरी और भीतरी पर्तों को उन्होंने खोला है। जब ज़मीन्दारी प्रथा कायम थी तब मुहर्रम मानने की जो शान और शौकत थी वह ज़मीन्दारी प्रथा के उन्मूलन के बाद नहीं रही। यहाँ तक कि अजीविका के लिए उन्हें अपनी मान-मर्यादा की परवाह किए बिना कोई न कोई रास्ता ढूँढना पड़ता है।

पाकिस्तान बनने के बाद भी जो मुसलमान इस धरती को अपना मान कर रहे थे उन्होंने भी जान लिया कि अब इस धरती पर उनका पुराना जैसा स्वतंत्र अधिकार नहीं रहा है। ज़मीन्दारी उन्मूलन से मुसलमान ज़मीन्दारों की स्थिति दूसरे ज़मीन्दारों की अपेक्षा अधिक खराब हुई। घर की जवान लडकियों की शादी केलिए पैसे जुटाने में भी वे असमर्थ रहे। समाज में उनका जो गौरव का स्थान था वह अब नष्ट-भ्रष्ट हो गया। आज राजनीतिज्ञों का स्थान सबसे ऊँचा माने जाने लगा। एक ज़माना ऐसा था कि नीची जाति के लोग इन शीआ मुसलमानों के आगे बैठने का साहस भी नहीं करते थे। लेकिन अब चमार परसराम एम.एल.ए. बनकर उनके सामने बैठने का साहस करता है।

समय की गति के अनुसार यहाँ जीनेवाले लोगों की स्थितियों में भी परिवर्तन लक्षित होता है। इस समय की गति ही "आधा गाँव" की केन्द्र बिन्दु है।

आधा गाँव (1966)

प्रयोग धर्मिकता की दृष्टि से राही मासूम रजा का "आधा गाँव" आंचलिक उपन्यास के क्षेत्र में एक नया मिसाल प्रस्तुत करता है । कथा की पृष्ठभूमि के रूप में लेखक ने गाज़ीपुर के गंगौली नामक गाँव को चुना है जहाँ हिन्दू और मुसलमानों की अनेक जातियाँ है । लेखक ने "आधा गाँव" में गाँव के परिवर्तित परिवर्द्धित जिन्दगी को वाणी देते वक्त इस पर अधिक ज़ोर दिया है कि जिससे मुसलमानों की जीवन गाथा अधिक मुखर हो । यद्यपि जहाँ तहाँ अन्य जातियों और संप्रदायों का संकेत है तथापि यह विशेष रूप से शिया मुसलमानों की ही व्यथा कथा है । यों यह कथा उस क्षेत्र विशेष के आधे टुकडे की होने के कारण लेखक ने उपन्यास का नाम रखा "आधा गाँव" ।

"ऊँघता शहर" नामक प्रथम अध्याय में उपन्यास की रचना पर प्रकाश डाली गया है । लेखक लिखते हैं "मैं गाजीपुर की तलाश में निकला हूँ, लेकिन पहले मैं अपनी गंगौली में ठहरूँगा । अगर गंगौली की हकीकत पकड में आ गयी तो मैं गाज़ीपुर का "एपिक" लिखने का साहस करूँगा[1] ।" आगे वे लिखते हैं "यह कहानी न कुछ लोगों की है और न कुछ परिवारों की । यह उस गाँव की कहानी भी नहीं है जिसमें इस कहानी के भले-बुरे पात्र अपने-आपको पूर्ण बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं । यह गंगौली में गुज़रनेवाले समय की कहानी है । कई बूढे मर गये, कई जवान बूढे हो गये, कई बच्चे जवान हो गये और कई बच्चे पैदा हो गये । यह उम्रों के इस हेर-फेर में फँसे हुए सपनों और हौसलों की कहानी है । यह कहानी है उन खँडहरों की, जहाँ कभी मकान थे और यह कहानी है उन मकानों की जो खँडहरों पर बनाये गये हैं[2] ।"

---

1. राही मासूम रज़ा - आधा गाँव, पृ.11
2. वही, पृ.11-12

उपन्यास में कोई बंधी-बंधाई कहानी दिखाई नहीं पड़ती है। 1937 से 1952 तक 15 वर्षों के अंतराल में हुई घटनाएँ और इन घटनाओं का गंगौली के शिया मुसलमानों पर पड़े प्रभावों को ही सशक्त रूप से रूपायित किया गया है । स्वतंत्रता पूर्व भारत में घटित अनेक घटनाओं का संकेत उपन्यास में है । अलीगढ़ से आये कुछ विद्यार्थी गंगौली के शिया मुसलमानों को पाकिस्तान के प्रस्ताव से अवगत कराते हैं । लेकिन जिस इमाम हुसैन ने स्वयं हिन्दुस्तान जाने की इच्छा प्रकट की थी उनके अनुयायी होने के कारण शीआ मुसलमान इस प्रस्ताव का विरोध करते हैं । इस विरोध के बावजूद भी स्वतंत्रता के साथ ही देश का बंटवारा भी किया जाता है । गंगौली के कुछ शीआ मुसलमान भी पाकिस्तान जाते है और परिणाम स्वरूप अनेक परिवार टूटते हुए नज़र आते हैं ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गंगौली के शीआ मुसलमानों के बिखरे हुए जीवन पर एक अग्निपात का प्रभाव रहा ज़मीन्दारी उन्मूलन कानून का । अपने बन्धु और बांधवों से बिछुड़े लोगों के घर को बेघर करने का रहा यह कानून । "सदियों से रहने-बसने और जीने-मरनेवाले मियां लोगों ने देखा कि जिस गाँव को वे अपना कहते और समझते आये थे उस गाँव से उनका कोई रिश्ता ही नहीं रह गया था । इन लोगों केलिए पाकिस्तान का बनना या न बनना बेमानी था, लेकिन ज़मीन्दारी के खात्मे ने इनकी शख्सियत की बुनियादे हिला दीं । वे घरों से निकले और जब घर ही छूट गया तो गाज़ीपुर और करांची में क्या फर्क है । करांची में कम-से-कम इस्लामी हुकूमत तो है ।[1]" यों आजादी के बाद मानसिक रूप से हताश गंगौली के शीआ मुसलमानों का सच्चा चित्रण उपन्यास में है ।

---

1. राही मासूम रज़ा - आधा गाँव, पृ.309

उपन्यास के अधिकांश पृष्ठों में मुहर्रम, उसकेलिए की जानेवाली तैयारियाँ, उसकी बैठकें, उनमें पढे जानेवाले नोहों आदि के चित्रण हैं । परम्परावादी जीवन-पद्धति के प्रतीक के रूप में ही मुहर्रम का चित्रण हुआ है । वर्षों के बीतने पर मुहर्रम का रंग फीका पड जाता है । और यह फीकापन मुस्लिम जीवन के जो कि जो एक ज़माने में शान शौकेन से भरपूर था, फीकापन है

उपन्यास में ऐतिहासिक घटनाओं के ज़िक्र करनेवाले लेखक की दृष्टि किसी बाह्य परिवर्तन पर न पडकर गंगा की धारा के समान प्रवाहमान वहाँ के जीवन पर पडती है । अथवा शाश्वत काल के निरंतर प्रवाहमान रूप पर ही रज़ा की दृष्टि रही है । इस दृष्टि का परिचय उपन्यास के अंत में स्पष्ट झलकता है "बाहर सुबह बहुत ख़ूबसूरत थी । सहन में एक मुर्गा एक मुर्गी का पीछा कर रहा था और एक कौवा खपरैल की कलस पर बैठा न मालूम किसे आवाज़ दे रहा था । गौरैया का एक गोल फुस्सु मियाँ के कंधे के ऊपर से उडता हुआ गुज़र गया ।[1]"

पात्र चित्रण

गंगौली के दक्खिन और उत्तर पट्टी की कथा "आधा गाँव" में लगभग सौ पात्रों का चित्रण हुआ है । पात्रों की इस भीड में मोहर्रम की बैठक में कोई मातम करता हुआ दिखाई पडता है तो कोई नाम मात्र से ही जाने लगता है । कुछ पात्र प्रमुख भूमिका निभाते हैं तो कुछ विशेष उद्देश्य की पूर्ति हेतु सृजित किये जाते हैं । इस भीड में से पाठक के ध्यान अपनी ओर खींचने लायक पात्र बहुत कम ही है । "आधा गाँव" के पात्र चित्रण के बारे में नरेन्द्र मोहन का वक्तव्य है "इस उपन्यास की घटनाओं व पात्रों में एक अजीब तरह का घपला, "ग्रैंड कनफ्यूज़न" है और इसका कारण है लेखक में औपन्यासिक

1· राही मासूम रज़ा - आधा गाँव, पृ·363

दृष्टि और "विज़न" का अभाव"[1] । लेकिन सच तो यह है कि गंगौली के संपूर्ण जीवन को उतारते वक्त इन छोटे पात्रों का भी जो जितना भी महत्वहीन क्यों न हो, अपना स्थान है ।

उपन्यास में चित्रित जिन्दगी उनकी अपनी देखी परखी और अनुभूत है इतना ही नहीं, स्वयं लेखक अपने परिवार के सदस्यों के साथ उपन्यास में प्रस्तुत है इसलिए वास्तविक और काल्पनिक पात्रों को अलगाना बहुत कठिन हो गया है । रज़ा के ही शब्दों में "ये पात्र ऐसे हैं कि इस वातावरण में अजनबी नहीं मालूम होंगे, और शायद आप भी अनुभव करें कि फुन्नन मियाँ, अब्बू मियाँ, झंगटिया-बो, मौलवी बेदार, कोमिला, बबरमुआ, बलराम चमार, हकीम अली कबीर, गया अहीर और अनवारूल हसन राकी और दूसरे तमाम लोग भी गंगौली के रहनेवाले हैं, लेकिन मैंने इन काल्पनिक पात्रों में कुछ असल पात्रों को भी फेंट दिया है । ये असली पात्र मेरे घरवाले हैं जिनमें मैंने यथार्थ की पृष्ठभूमि बनायी है और जिनके कारण इस कहानी के काल्पनिक पात्र भी मुझसे बेतकल्लुफ हो गये हैं[2] ।"

फुन्नन मियाँ

अपनी बहादुरी और हिम्मत के कारण उपन्यास के पात्रों की भीड में अपने एक अलग स्थान के योग्य है फुन्नन मियाँ । आदि से अंत तक फुन्नन मियाँ का पात्र अपनी विशेष प्रवृत्तियों के कारण पाठकों का ध्यान अपनी ओर खींच लेता है ।

---

1. सचेतना - वसंतांक - 1968, पृ.55
2. राही मासूम रज़ा - आधा गाँव, पृ.15

केवल अपने गाँव की बोली जाननेवाला फुन्नन मियाँ माँ-बहन की गालियों के बिना कुछ बोलता ही नहीं। वह वह नमाज़ पढ़ना भी नहीं जानता लेकिन शीआ होने के कारण उसे मर्सिये याद है। एक सच्चे शीआ होने पर भी वह साम्प्रदायिकता के भाव से काफी दूर है। शादी नहीं करने पर भी अपने पड़ोसी करामत अली खाँ की पत्नी कुलसूम को उसके घर से निकल लाता है। गाँव में हो-हल्ला मचता है फिर भी फुन्नन मियाँ के खिलाफ कुछ कहने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ती। कुछ ही दिनों में यहाँ तक होता है कि करामत अली फुन्नन मियाँ के यहाँ हुक्का भी पीने लगता है। फुन्नन मियाँ के वश में दो सौ लाठी चलानेवाले हैं इसलिए गाँव के बडे बडे ज़मीन्दार उससे दोस्ती करते हैं। फुन्नन मियाँ एक मामूली ज़मीन्दार है। "वह इतने मामूली ज़मींदार थे कि पाजामा नहीं पहनते थे, लुंगी बाँधते थे - वह भी सिली हुई लुंगी नहीं, बल्कि कसाइयों की तरह की फेंटेदार लुंगी।"[1]

स्वतंत्रता संग्राम या किसी राजनीतिक दल से संबन्ध न रखने पर भी थानेदारों और दारोगाओं से उसकी नहीं पटती। थानेदार शरीफउद्दीन द्वारा फुन्नन मियाँ को गाली देने का परिणाम यह निकला कि फुन्नन मियाँ के चेले ने थानेदार के मूँछों का एक-एक बाल उखाड लिया। उसके तबादला हो जाता है और उसके स्थान पर आये दूसरे थानेदार का भी अपमान किया जाता है इसके बाद आये ठाकुर हरनारायण सिंह भी फुन्नन मियाँ को अपने कब्जे में करने का असफल प्रयत्न करता है। पुलिस थाने में आग लगा देने से हरनारायण सिंह और अनेक कांस्टेबलों की मृत्यु हो जाती है। फुन्नन मियाँ को गिरफ्तार किया जाता है। उसे आजीवन कैद की सजा मिलती है। अगर वह माफी माँगता तो ज़रूर उसकी सजा हल्की हो जाती। लेकिन वह कभी भी अंग्रेज़ों से माफी माँगने केलिए तैयार नहीं होता। उसके द्वारा थाने में आग लगाने का स्वतंत्रता संग्राम से कोई संबन्ध ही नहीं फिर भी वह अंग्रेज़ों के आगे सिर झुकाना नहीं चाहता। उसका कहना है "ऐ भैया, हम बहुत गुनहगार हैं।

---

1. राही मासूम रज़ा - आधा गाँव, पृ. 179

माफी माँगे का होइहै तो अल्लाह मियाँ से माँगेंगे । पर हइ मुसरन से न माँगैंगे, हाँ" यद्यपि लोग उसे काग्रेस का कार्यकर्ता मानते हैं और मुसलमान उसे "नेशनलिस्ट मुस्लिम" कहते हैं तथापि उसका संबन्ध इन दोनों से नहीं है ।

फुन्नन मियाँ की किस्मत फूटी है । उसका एक बेटा द्वितीय महायुद्ध में मारा गया और बेटी रज़िया की मृत्यु इलाज की अभाव में हुई । और एक बेटा था उसकी मृत्यु 1942 के आंदोलन के वक्त भी हो जाती है । वह अपने बेटों की बहादुरी की गाथा बहुत घमंड से सुनाता है । जब शहीदों की समाधि पर राष्ट्रनेता द्वारा उसके बेटे मुमताज़ का शुमार नहीं किया जाता तो वह दिल से टूट जाता है । "मगर फुन्नन मियाँ केलिए इस तकरीर को झेलना नामुमकिन हो गया । वह बीच तकरीर में खडे हो गए । शेरवानी पहले हुए फुन्नन मियाँ अजीब मसखरे लग रहे थे । शेरवानी उनके पिता की थी और नफीस जामेवर की बनी हुई थी ।"[1] वह कहता है "ए साहब ! हिआँ एक ठो हमरहू बेटा मारा गया रहा । अइसा जना रहा की कोई आपको ओका ना बताइस । ओका नाम मुन्ताज़ रहा ।" अपनी बात खत्म करके फुन्नन मियाँ ने भीड की ओर देखा । उनकी गरदन सबसे ज्यादा तनी हुई थी ।"[2] यों बाहर से बहादुरी और हिम्मत से किसी का मुकाबला करनेवाले फुन्नन मियाँ के अंदर अपने सन्तानों के प्रति जो स्नेह का प्रवाह है इस अवसर पर फूट पड़ता है ।

रात की अंधेरी में अपने दुश्मनों के द्वारा फुन्नन मियाँ की मृत्यु हो जाती है । डॉ॰ इन्द्रप्रकाश पाण्डेय के अनुसार "फुन्नन मियाँ की बहादुरी और हिम्मत दिशाहीन, विवेकहीन कार्यों में व्यतीत हो जाती है और वह अपने समस्त गुण-अवगुण के साथ मृत्यु की गोद में निरर्थक सो जाते हैं । विलक्षण शक्ति की इस व्यर्थता का आघात पाठक पर पड़ता है[3] ।"

1· राही मासूम रज़ा - आधा गाँव, पृ·179

2· वही, पृ·301

3· डॉ· इन्द्रप्रकाश पाण्डेय - हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन सत्य,

राही मासूम रज़ा ने अपने दृष्टिकोण को पात्रों के ऊपर थोपने का कभी भी प्रयत्न नहीं किया है । इसका उत्तम मिसाल प्रस्तुत करता है फुन्नन मियाँ का पात्र । नहीं तो फुन्नन मियाँ को एक देश भक्त का रूप दे सकते थे । लेकिन वे कभी भी अपने पात्र को एक "टाइप" के साँचे में बंद रखना नहीं चाहते । पात्र को उसकी स्वाभाविकता, उसके गुण और अवगुण के साथ प्रस्तुत करके उसे उपन्यासकार ने जीवंतता प्रदान की है ।

तन्नू

बुद्धिमान और विवेकशील तन्नू को अपनी इच्छा के विरुद्ध कार्य करके अपने जीवन को निराशा की गर्त में डुबोकर समाप्त करनेवाले पात्र के रूप में चित्रित किया गया है ।

भाव प्रवण और समझदार तन्नू संकोची और शर्मीला है । "सारे गाँव में मशहूर था कि शब्बू मियाँ और बशीर मियाँ के लड़के तो ख्वाह-मख्वाह जवान हो रहे हैं, बिलकुल बुड़बक है । लड़कियों को देखकर उन्हें मुस्कराना भी नहीं आता ।"[1] गाँव के अन्य लड़के-लड़कियों को आपस में छेड़खानी और इश्कबाजी करते हुए देखकर वह अपने में सिकुड़ने लगता है। सैफुनिया को एकांत में पाकर भी वह उसका फायदा नहीं उठाता[2] ।" जब यह बात जानकर सद्दन जैसे युवक उसकी खिल्ली उड़ाते हैं तो अपनी असमर्थता और असफलता को छिपाकर अपनी बहादुरी का परिचय देने हेतु वह फौज में शामिल हो जाता है । अपनी चचेरी बहिन सईदा को मन ही मन चाहनेवाला तन्नू अपनी दिल की बात अवसर मिलकर भी प्रकट नहीं कर पाता । सईदा भी तन्नू केलिए अपने प्यार को व्यक्त करने में असमर्थ रहती है ।

---

1. राही मासूम रज़ा - आधा गाँव, पृ.135
2. वही,

न चाहकर भी फुस्सु मियाँ की लड़की सलमा से तन्नू की शादी होती है । कहा जाता है कि तन्नू के पिता ने मरते वक्त ऐसा कहा था कि तन्नू की शादी सलमा से हो । इस संदिग्ध वसीयत के अनुसार कार्य करने में तन्नू पहले अपना विरोध प्रकट करता है फिर भी अपने गाँववालों से झगड़ा करने केलिए हिम्मत न रहनेवाला तन्नू बेमन सलमा से ब्याह कर लेता है और निराश जीवन बिताने लगता है ।

गंगौली की मिट्टी से बेहद प्यार करनेवाला तन्नू हमेशा पाकिस्तान बनाने के विरोध में अपनी राय प्रकट करता रहा । द्वितीय महायुद्ध की विडंबना का साक्षी तन्नू कभी यह नहीं चाहता कि भारत में ही ऐसी स्थिति उत्पन्न हो । वह जानता है कि मुसलमानों के मन में हिन्दुओं के प्रति जो घृणा और द्वेष का भाव है उसी का परिणाम है पाकिस्तान की माँग । वह खुल्लम-खुल्ला बता देता है कि "नफरत और खौफ की बुनियाद पर बननेवाली कोई चीज़ मुबारक नहीं हो सकती ।"[1] अपने गाँव गंगौली से आत्मीय संबन्ध स्थापित करनेवाला तन्नू अपने को गंगौली से पृथक् करना नहीं चाहता । पाकिस्तान के प्रस्ताव को लेकर आनेवाले अलीगढ़ के युवकों से तन्नू अपने देश प्रेम को यों प्रकट करता है - "मैं मुसलमान हूँ । लेकिन मुझे इस गाँव से मुहब्बत है, क्योंकि मैं खुद यह गाँव हूँ । मैं नील के इस तालाब और इन कच्चे रास्तों से प्यार करता हूँ क्योंकि ये मेरे ही मुख्तलिफ रूप है । मैदाने-जंग में जब मौत बहुत करीब आ जाती थी तो मुझे गंगौली याद आती थी । और मैं यह सोचकर झल्ला जाता था और रोने लगा करता था कि अब शायद मैं नील के गोदाम पर बैठ कर गन्ना नहीं खा सकूँगा ।"[2] इतनी तर्कसंगत बातें करनेवाले तन्नू की मानसिक स्थिति ऐसी हो जाती है कि अपनी परिस्थितियों से रक्षा हेतु गंगौली छोड़कर पाकिस्तान पहुँचता है ।

---

1. राही मासूम रज़ा - आधा गाँव, पृ.263
2. वही पृ २६२

तन्नू का पात्र लेखकीय इरादों के दबाव से मुक्त है । लेखक चाहते तो तन्नू को अपनी इच्छा के अनुसार गंगौली में ही एक सुखी जीवन बितानेवाले के रूप में चित्रित कर सकते थे । लेकिन वे कभी भी तन्नू को अपनी उंगलियों की इशारे पर नचाते नहीं । पाकिस्तान का विरोध करके अंत में उसी पाकिस्तान में जाने के लिए मज़बूर बननेवाला तन्नू का पात्र विशेष रूप से पाठक का ध्यान अपनी ओर खींचता है । पाकिस्तान के बनने के बाद वहाँ पहुँचनेवाले भारतीय मुसलमानों की संख्या में इस प्रकार के "तन्नू" काफी संख्या में मिलेंगे । यही पाकिस्तान में बसनेवाले भारतीय मुसलमानों को विडम्बनात्मक स्थिति है ।

हकीम अली कबीर

बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार अपने को परिवर्तित करने में असफल व्यक्ति के रूप में हकीम अली कबीर का चित्रण हुआ है और इसी वजह से उसे जीवन भर में मानसिक रूप से दुःख झेलना पड़ता है ।

ज़मीन्दार अली कबीर अपने प्रभाव बढ़ाने केलिए हकीमी भी करता युनानी की दवा देनेवाला अली कबीर होमियोपैथी का विरोधी है । "बात यह है कि होमियोपैथीवाले गाँव-गाँव एक बकसा लेकर बैठ गये थे । न नब्ज देखना जानें, न करूरा । मगर धड़ाधड़ इलाज किये जा रहे थे । लोगों को उससे फायदा भी हो रहा था ।[1]" गाँव में कम्मो द्वारा होमियोपैथी चिकित्सा शुरू होने से हकीम का पहला दुश्मन बन जाता है कम्मो । एक ओर कम्मो के यहाँ मरीजों की भीड बढ़ती जाती है तो हकीम के यहाँ मरीजों के साथ उनकी बेटी अपने बच्चों को होमियोपैथी गोलियाँ खिलाती है ।

---

1. राही मासूम रज़ा - आधा गाँव, पृ.274

कुछ कर न पाने की स्थिति में वह कहता है - "ठीक है । अब इहे देखे को रह गया रहा कि हमारी नतिनी का इलाज ऊ हरम्ज़ादा कमुआ कर रहा ।"[1]

किस्मत का खेल ही कहें कि हकीम अली कबीर जब बेहोश पडे तो इलाज केलिए कम्मो को ही बुलाया जाता है । होश में आये हकीम कम्मो को देखता है उससे पूछता है "ते हमरा इलाज करबे ? हकीम साहब ने बड़ी बेयकीनी कहा, "हम तोरी शक्कर की गोली ओली न खायेंगे ।" वह जिल्लत के इस समुंदर में डूब गये, "देख लियो, कम्मो, तूं हम्मे का हालत पर पहुँचा दियो । सरकार हमरी ज़मींदारी ले लिहिस तू हमरे मरीज़ ले लियो न हम आखिर जी काहे को रहें ?"[2] । कम्मो के जाने के बाद हकीम अपने बेटे से कहता है "हम ई सोच रहें कि इहो दिन देखे कि रह गया रहा कि कम्मो हमरा इलाज करें । जिंदगी-भर नमाज़-रोज़ा किया तो ओका बदला ई मिला कि डाक्टर कमालुद्दीन आके नाबुज देख गये । हे बेटा, अल्लाह मियाँ की हाँ का इंसाफ-उंसाफ उठ गया है[3] ।" कम्मो की दवाई को न स्वीकार करके ही वह मृत्यु की गोद में सदा केलिए सो जाता है ।

परंपरागत मूल्यों पर अधिष्ठित समाज में जिये हकीम अली कबीर समाज के परिवर्तनों को स्वीकार नहीं कर पाता ।

मौलवी बेदार

पचास वर्ष तक किसी औरत के संपर्क में नहीं आए मियाँ मौलवी बेदार झुगटिया चमारिन से उत्पन्न सुलेमान की जवान बेटी बछनिया पर

---

1. राही मासूम रज़ा - आधा गाँव, पृ.274
2. वही, पृ.361
3 वही

आकृष्ट हो जाता है । गाँव के लोग उसे समझाने की कोशिश करते हैं । लेकिन वह अपने निर्णय पर अटल रहता है । दक्खिन पट्टीवाले इस बात पर सन्तोष का अनुभव करते हैं कि जब कि कोई साधारण शीआ भी बछनिया से शादी करने केलिए तैयार नहीं होता तो मौलवी बेदार जैसे शुद्ध शीआ बछनिया से शादी करने केलिए तैयार हो जाएँ तो वह भाग्य की बात है इतना सब होकर भी जब बछनिया सरिफवा के साथ भाग जाती है तो मौलवी खिन्न रह जाता है । उसे बछनिया नहीं मिली और गाँव भर उस की बदनामी भी हुई

कम्मो

कम्मो के जीवन का बहुत बड़ा दुःख है उसका फुस्सू मियाँ की कलमी औलाद होना । इसी कारण से असली शीआ लड़की सईदा से अपने मोहब्बत को भी वह प्रकट नहीं कर पाता । पाकिस्तान के प्रस्ताव पर उसकी एक मात्र चिन्ता यह रही कि अलीगढ, जहाँ सईदा पढाती है, हिन्दुस्तान में रहेगा या पाकिस्तान केलिए जाएगा । जब वह जान लेता है कि अलीगढ हिन्दुस्तान में ही रहेगा तो वह सन्तोष का अनुभव करता है ।

उपर्युक्त पात्रों के अतिरिक्त अब्बास, हम्माद मियाँ, मिगदाद, गुलाम हुसैन, परसुराम आदि अनेक छोटे-छोटे पात्रों आधा गाँव के निवासी बनकर आते हैं जो उपन्यास में चित्रित घटनाओं को सजीवता प्रदान करते हैं ।

"आधा गाँव" में किसी प्रमुख स्त्री पात्र का उल्लेख नहीं किया गया है । फिर भी सईदा का पात्र विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है । पढ़ाई केलिए अलीगढ जानेवाली सईदा बी·टी· की डिग्री प्राप्त करती है और वहाँ के स्कूल में ट्रेंड टीचर" के रूप में काम करती है । रूढीग्रस्त गंगौली के समाज में यह बात हो-हल्ला मचा देती है । जिस समाज में स्त्रियाँ बुर्का पहनकर बाहर निकलती उस समाज की स्त्री पैसा कमाने केलिए नौकरी करें यह सोचने के परे की बात है । सभी लोग सईदा के घरवालों पर थू-थू करने लगे ।

घूमकर अपने खानदान की इज्जत मिट्टी में मिला देगी । लेकिन होता यह है कि ज़मीन्दारी प्रथा खत्म होने के साथ ही लोगों के समक्ष आर्थिक कठिनाई अपनी विकसित रूप दिखाने लगी । सईदा के पैसे से उसके घर का पालन पोषण होने लगा । जिस पर लोग सईदा को मानने केलिए विवश हो जाते हैं ।

सईदा के अतिरिक्त कुलसुम, नज्जन, दिलआरा, सितारा, सकीना बछनिया, सैफुनिया, सलमा, मेहरुनिसा आदि अनेक स्त्री पात्रों का चित्रण है जो रूढ़िग्रस्त समाज के चाहर दीवारों में अपने जीवन जीने केलिए अभिशप्त बनी हुई हैं ।

सामाजिक आयाम

स्वतंत्रता पूर्व और बाद के गंगौली जीवन को उतारते वक्त राही मासूम रज़ा उस समाज को अपनी पूर्णता के साथ उभारने में सफल निकले हैं ।

गंगौली के अधिकांश लोगों का जीवन उस गाँव की सीमा के अंदर परिमित है । उन्हें बाहरी जिन्दगी का कोई ज्ञान ही नहीं रहता । यहाँ तक कि "गंगौली के बहुत से लोगों ने रेल नहीं देखी थी, क्योंकि स्टेशन गंगौली से कोई दस मील पर है और गाज़ीपुर बारह मील पर । इसलिए लोग ज्यादातर इक्कों में सफर किया करते थे । और चूंकि मियाँ लोगों की ख्याल में दुनियाँ गाजीपुर की कचहरी के बाद खत्म हो जाती थी, इसलिए भी उन्हें नहीं मालूम था कि दुनिया में क्या हो रहा है और क्या नहीं हो रहा है ।[1]" गंगौली में रेल गाडी पर सबसे पहले सफर करने का यश सय्यद कबीर जै को है । हकीम के फाटक पर एक मोटर गाड़ी देखकर लोग कहने लगते हैं -

----

1 राही मासूम रज़ा - आधा गाँव, पृ.7।

"हकीम साहब के फाटक पर तो अंग्रेज़ी लोहे का हाथी झूम रहा है, जो गन्ने नहीं खाता बल्कि तेज़ महकवाला अंग्रेज़ी मिट्टी का तेल पीता है, जिसका भोला सा नाम है [1] ।"

बाहरी परिवर्तनों से अनभिज्ञ होकर जीनेवाले यहाँ के लोग नैतिक मूल्यों पर कोई ध्यान ही नहीं देते हुए दिखाई पड़ते हैं । "दूसरी ब्याह कर लेना या किसी ऐरी-गैरी औरत को घर में डाल लेना बुरा नहीं समझा जाता था, शायद ही मियाँ लोगों का कोई ऐसा खानदान हो, जिसमें कलमी लड़के और लड़कियाँ न हों । जिनके घर में खाने को भी नहीं होता, वे भी किसी-न-किसी तरह कलमी आमों और कलमी परिवार का शौक पूरा कर ही लेते हैं [2] ।" वहाँ मर्द तो अपनी इच्छानुसार व्यवहार कर सकते हैं । "मर्द हैं तो ताक-झाँक भी करेंगे, रखनियाँ भी रखेंगे । आखिर गोरे मियाँ ने याकूत को रखा और ज़हीर मियाँ ने पुखराज को । फुन्नन, करामत अली की बीवी को निकाल लाये [3] ।"

ऐसे समाज में नारी की स्थिति वैसी होगी यह हम महसूस कर सकते हैं । "बेनाम होना तो बहुओं की तकदीर है । फर्क बस इतना हो जाता है कि वह अच्छे घरानों में "बो" की जिल्लत से बच जाती है, वह या तो बहू कही जाती है या दुल्हन या दुल्हिन [4] । बेनाम रहना शायद जमींदारों और उनके हवालियों-मवालियों की बेटियों की तकदीर है, इसलिए वे बेनाम लड़कियाँ कंदूरी के फर्श पर बैठने और बिरादरी के दूसरे मामलों में शरीक होने या न होने की होकर रह जाती है । बस, यही एक ऐसी इज़्ज़त है जो किसी रखैनी को नहीं मिलती, और शायद इसलिए ये शरीफ

1· राही मासूम रज़ा - आधा गाँव, पृ·72

2· वही, पृ·17

3· वही, पृ·114

4· वही, पृ·24

लड़कियाँ अपनी बेनामी को झेल जाती है।[1]" बेवाओं की स्थिति अत्यन्त दुःखद रही। शादी ब्याह के वक्त ये अछूत हो जाती है। कंदूरी के फर्श पर बैठना या दुल्हन के कपड़ों को छूना उसकेलिए मना है।

नारी शिक्षा बिल्कुल नहीं के बराबर है। जब सईदा अलीगढ में पढ़ने केलिए जाती है तो गाँववालों से उसके परिवार को बहुत कुछ सहना पड़ता है। उसके बाद जब नौकरी करने लगती है तो कहने की बात ही क्या है

शिया और सुन्नी का भेद माननेवाले ये लोग नीच जाति की रखेलियाँ रखकर अपना दम्भ जालते हैं। शादी ब्याह के वक्त हड्डी का महत्वपूर्ण स्थान है। दागी हड्डीवाला कम्मो असली शीआ लड़की सईदा से ब्याह नहीं कर सकता।

छुआ-छूत की भावना गंगौली समाज में दिखाई पड़ती है। निम्न जाति के एक मरीज़ की नब्ज देखने के बाद हकीम अली कबीर "हौज के किनारे बैठकर उस हाथ को साफ करने लगे जिस हाथ से उन्होंने एक काफिर - और वह भी नीची जात के एक काफिर - का हाथ छुआ था।[1]" हिन्दू के छुए चीज़ को मुसलमान नहीं खाते और मुसलमान की छुई किसी चीज़ को हिन्दू हाथ नहीं लगाते।

संबन्धों के तनाव से गंगौली का समाज भी पीड़ित है। आधुनिक विचारधारा से प्रभावित नई पीढ़ी और सामन्ती विचारधारावली पुरानी पीढ़ी में टक्कर दिखाई पड़ता है। वाजिद मियाँ गालियों और मार-पीट से अपने घर को नरक तुल्य बना देते हैं। एक दिन उसका पुत्र कम्मो अब तक का बदला लेते हुए पिता से चिपट जाता है।

---

1. राही मासूम रज़ा - आधा गाँव, पृ. 101

हम्माद मियाँ का लड़का मिगदाद माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध एक नाईन के साथ शादी कर लेता है । इस शादी के बाद पिता और पुत्र के बीच की खाई बढ जाती है । अपने पिता को नाम से पुकारनेवाले मिगदाद को जब बेदार मियाँ टाँडता है तो वह कहता है । "बाप-ओम हम ना जन्हे ऊ ज़मीन्दार हैं और हम काश्तकार ।"[1]

सकीनाऔर रब्बनबी के बीच अधिकार को लेकर तनाव है । सास ही घर की मालकिन है । अधिकार लिप्सा से पीड़ित बहू सोचती है "बुढ़िया मरने का नाम ही नहीं ले रही थी । कुंजियाँ संभाले बैठी हुई थी । और सकीना को एक-एक पैसे का मुँह देखना पड़ता था । रब्बनबी ने जो पहना दिया पहनना पड़ा जो खिला दिया खाना पड़ा ।"[2] सारी जायदाद रब्बनबी के नाम पर होने के कारण धन-लिप्सा से पीड़ित सकीना उसे छोड़ना भी नहीं चाहती ।

यों गंगौली के मुस्लिम जन-जीवन का सामाजिक आयाम "आधा गाँव" में उभर कर सामने आता है ।

आर्थिक आयाम

"आधा गाँव" में उपन्यासकार टूटते और गहराते हुए सामन्ती सभ्यता को पकड़ने की कोशिश करते हैं । जब तक ज़मीन्दारी रही, तब तक शान और शौकत वाली जीवन-प्रणाली भी रहती है । उसके खत्म होते ही यह शान और शौकत क्रमशः टूटती गई ।

ज़मीन्दार और किसानों के वर्ग संघर्ष के स्थान पर राही का लक्ष्य रहा ज़मीन्दारी के खत्म होने से गंगौली के जीवन की जड़ता और विवशता को स्वरबद्ध करना ।

भारत को आज़ादी मिली और ज़मीन्दारों के शान और शौकत के दिन खत्म हो गये । ज़मीन्दारी-समाप्ति के साथ ही गंगौली की आर्थिक स्थिति टूटने लगी । जब ज़मींदारी के खत्म होने की बात सुनी तो ये लोग "उस किस्म की बातें करनेवाले का मज़ाक उडाते रहे कि ज़मीन्दारी कैसे खत्म हो सकती है । यह बात समझ में आनेवाली भी नहीं थी । गाँव के बूढे किसानों को भी यकीन नहीं था कि ज़मीन्दारी खत्म हो सकती है।[1]" लेकिन जब यह बात सच निकली तो हम्माद मियाँ को छोड़कर किसी के पास एक धुर जमीन भी नहीं रह गयी । गंगौली के मुस्लिम ज़मीन्दार अपने हितों पर कुठाराघात करनेवाले इस कदम को काँग्रेस का कार्य कहकर गालियाँ देने लगे "अरे, ई काँग्रेस माटीमिली को कोढ़ हो जावे । इह की मिट्टी खराब हो[2]

जिस उत्साह से ज़मीन्दारी उन्मूलन कानून पास किया था, उसका एक हिस्सा भी उससे उत्पन्न समस्याओं के समाधान केलिए प्रयुक्त नहीं किया । किसान तो ज़रूर धरती के मालिक बन गये लेकिन भूमिहीन किसान तो ज़रूर धरतीके मालिक बन गये लेकिन भूमिहीन किसान की स्थिति जैसे के तैसे रह गयी ।

ज़मीन्दारी खत्म होते ही गंगौली के ज़मीन्दारों के विशेष अधिकार, सामाजिक इज्जत, आर्थिक सुविधा आदि बहुत कुछ निकल गये । लेकिन इसका लाभ किसानों को नहीं मिला ।

अब रोजी रोटी कमाने हेतु गंगौली के मुसलमानों को रास्ता खोजना पडा । सईदा का पढ़ना और नौकरी करना अब अब्बू मियाँ को अखरता नहीं है । जमीन्दार सैय्यद फुस्सू जूते की दूकान खोलता है ।

1· राही मासूम रज़ा - आधा गाँव, पृ·308

2· वही, पृ·309

शुरू में उन्हें इस व्यवसाय में शर्म आती थी और निम्न जाति के जुलाहे, राकी और चमार से झल्ला भी जाते थे क्योंकि जिनकी पुश्तें उन्हें और उनके बुज़ुर्गों को सलाम करने में गुज़री थी वे ही अब उनके ग्राहक बनकर आते हैं। लेकिन अब माल बेचने में वह बहुत सिद्धहस्त बन जाता है। दागी हड्डीवाले कम्मो के साथ अब दो सय्यद जादे काम करने लगते हैं। राही की दृष्टि गंगौली के जुलाहों पर भी पड़ी है "दो तरफा मकानों से करघों की आवाजें आ रही थीं - खट! खट! जुलाहे कमर-कमर ज़मीन में दफ्न गाढ़े के थान, गमछे और लुंगियाँ बुनने में जुटे हुए थे। जुलाहिनें बच्चों को दूध पिला रही थीं और आपस में बातें कर रही थीं और आपस में झगड़ा रही थीं। गढ़ई के किनारे दो लड़के उकड़ूँ बैठे बीड़ी पी रहे थे और मछली के काँटा खाने की राह देख रहे थे।"[1]

गंगौली के कई लोग हिन्दुस्तान छोड़कर पाकिस्तान चले गये। लेकिन गंगौली के शीआ लोग हिन्दुस्तान छोड़कर कहीं नहीं जानेवाले हैं। उनका दुःख मोहर्रम की मर्सियों में यथार्थ होकर अविराम रूप से आँसुओं में बह उठता है।

राजनीतिक आयाम

"आधा गाँव" में आज़ादी के पूर्व और बाद की विविध राजनीतिक स्थितियों का चित्रण है जिसमें से पाकिस्तान के निर्माण का प्रश्न गंगौली के जन जीवन में हलचल मचा देता है।

---

1. राही मासूम रज़ा - आधा गाँव, पृ.269-270

जिन्ना और उन्हीं के समान अधिकार लिप्सा रखनेवाले मुसल्मानों भ्रामक राजनीति का प्रचार किया और उससे वे लाभान्वित भी हो गये। पर ज़ोर देकर कहते हैं कि "हम ऐसे मुल्क में रहते हैं जिसमें हमारी है सियत दाल में नमक से ज्यादा नहीं है। एक बार अंग्रेज़ों का साया हटा तो ये हिन्दू हमें खा जायेंगे। इसलिए हिन्दुस्तानी मुसल्मानों को एक ऐसी जगह की ज़रूरत है जहाँ वह इज्जत से जी सकें।"[1] लेकिन फुन्नन मियाँ इसका विरोध यों प्रकट करता है - "तू त ऐसा हिन्दू कहि रहियो जैसे हिंदुवा -- सब भुकाऊ हैं कि काट लीहयन। अरे, ठाकुर कुंवरपाल सिंह त हिंदुए रहे। झिंगुरियो हिन्दु है। ए भाई, ओ परसरमुवा हिंदुए न है कि जब शहर में सुन्नी लोग हरमज़दगी कीहन कि हम हजरत अली का ताबूत न उठे देंगे, काहे को कि उ में शीआ लोग तबर्रा पढ़त हऐं, त परसरमुवा ऊधम मचा दीहन कि ई ताबूत उट्ठी और ऊ ताबूत उट्ठा। तोरे जिन्ना साहब हमरा ताबूत उठवाये न आए।"[1] यों अनेक पात्रों के माध्यम से लेखक अपने पाकिस्तान बनने के विरोध को प्रकट करते

इस्लामी हुकुमत बन जाने की बात से जब फुन्नन मियाँ को समझाने की कोशिश ज़ारी रहती है तो वे स्पष्ट कर देते हैं कि "ऐ भाई बाप-दादा की कब्र हियाँ है, चौक इमाम बाड़ा हियाँ है, खेत-बाडी हियाँ है। हम कोनो बुरबक हैं कि तोरे पाकिस्तान जिंदाबाद में फंस जाएँ।"[2] भारत के अधिकांश मुसलमान इस्लामी हुकुमत केलिए पाकिस्तान के वश में हो जाते हैं। उन लोगों की आकांक्षा को अलीगढ से आये लड़के के मुँह से लेखक यों व्यक्त करते हैं - और सबसे बडी बात तो यह है कि दुनिया के नक्शे पर एक और इस्लामी हुकुमत का रंग चढ़ जायगा। और यह भी नामुमकिन नहीं कि दिल्ली के लाल किले पर एक बार फिर सब्ज इसलामी परचम लहराता नज़ार आये। अगर पाकिस्तान न बना [3]। पाकिस्तान के प्रति संवेदना की सृष्टि की जाती है। यों लोगों को भड़का कर पाकिस्तान का निर्माण किया जाता है।

---

1 राही मासूम रज़ा - आधा गाँव, पृ.163

2. वही, पृ.162

3. वही, पृ.260

उपन्यास में चित्रित दूसरी राजनीतिक घटना है ज़मीन्दारी उन्मूलन । गंगौली के मुसलमान इस उन्मूलन को जातीयता से जोड़ते हैं, हकीम तो काग्रेस को ही सभी बुराईयों की मूल मानते हैं । वह कहता है "ई कांग्रेसवाले त आसामियन को दिमाग एक दम्मे खराब कर दिहीन हैं भाई, खुदा समझे ई गांधी से । " हकीम साहब ने देर तक गांधी और नेहरू वगैरह को बद्दुआएँ दीं[1] । " मानसिक रूप से टूटे, कुण्ठा से पीड़ित लोगों का विचार गालियों के रूप धारण कर लेता हैं ।

आज़ादी के बाद के प्रथम चुनाव और उसमें चमार जाति के परसुराम का एम॰एल॰ए॰ बनना आदि बातें भी चित्रित है ।

समसामयिक राजनीतिक हलचलों को उसकी पूर्णता के साथ प्रस्तुत करने में लेखक सफल निकले हैं ।

धार्मिक और सांस्कृतिक आयाम

"आधा गाँव" में 'राही' शीआओं की विशिष्ट धार्मिक मान्यताओं क विस्तृत वर्णन करते हैं । उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक मोहर्रम की तैयारियों का विवरण है । इससे गंगौली के धार्मिक व सांस्कृतिक जीवन बोल उठता है । मोहर्रम के अवसर पर ताजिये निकलते हैं, मजलिसें जमती हैं, मर्सिये के आवाज़ से सारा वातावरण गूंज उठता है । मुहर्रम से गंगौली का अटूटा सम्बन्ध है । "कलकत्ता, कानपुर सब समाये हुए हैं "आधा गाँव" की गंगौली के मोहर्रम में । "मोहर्रम" गंगौली के जीवन की धुरी है और वह खंडित जीवन को जोड़ता है[2] । "

1· राही मासूम रजा - आधा गाँव, पृ·101

2· सुरेन्द्र नाथ तिवारी - संचेतना, 1968, पृ·57

शीआ अपने धार्मिक नेता की याद में ढाई महीने तक मातम करते हैं है और रोते हैं क्योंकि कर्बला में 13 सौ वर्ष पूर्व उनके पूर्वज का कत्ल कर दिया गया था। इस ढाई महीने के समय हँसना भी वे पाप मानते हैं। ये ही धर्मभीरु शीआ मोहर्रम के बाद जीने केलिए झूठ बोलते हैं, अपनी बहादुरी और शान केलिए लडाई लडते हैं और रास रचते हैं।

मोहर्रम की ताजियों में हिन्दू तथा मुसलमान शरीक होते हैं। गाँव की एक ब्राह्मणी हम्माद मियाँ से अपने दरवाजे पर उल्तियाँ न गिराने की शिकायत करती है और उल्ती गिराने की प्रार्थना करती है। यहाँ और एक बात ध्यान देने योग्य है कि दक्खिन पट्टी वाले अपनी ताजिये की शोहरत बनाए रखने केलिए ही यह नाटक रचते हैं।

स्वार्थलाभ केलिए मन्नते माँगने की आदत प्रथा हिन्दू धर्म के लोगों में ही नहीं मुसलमानों में भी दिखाई पडती है। नईमा - बी मिगदाद की शादी जल्दी हो जाने केलिए यों प्रार्थना करती है कि "हे मौला! जो मिगदाद की शादी साथ-खैरियत के हो गयी, और साल भर में लड़का भवा तो मैं आठ का मिंबर भरिहों और हाज़री करिहों।"[1]

आज़ादी के बाद "मोहर्रम" का रंग फीके पडने लगता है। इसका प्रमुख कारण रहा ज़मीन्दारी उन्मूलन। और एक कारण है पाकिस्तान का गठन। परिणाम स्वरूप "अब के मुहर्रम की तनहाई कुछ अजब-सी थी। गाज़ीपुर के लोग आए हुए थे, मजलिसें हो रही थीं, लेकिन मोहर्रम पर रंग नहीं आ रहा था। मरदाने में बशीर मियाँ, वज़ीर मियाँ, शब्बर मियाँ और अग्गू मियाँ की कमी थी और इनके अलावा फुन्नन मियाँ, हम्माद मियाँ और

---

1. राही मासूम रज़ा - आधा गाँव, पृ.195

अली अकबर के बाबू भी गाजीपुर चले गये थे[1]।" छोटे बड़े ताज़ियों को लेकर दोनों पट्टियों में मारपीट होती है । लोगों के बीच जो एकता की भावना थी, टूटने लगी ।

"आधा गाँव" में लोकगीतों के माध्यम से आँचलिकता लाने का सफल प्रयत्न राही ने किया है । बारात के आने पर गाये जानेवाला गीत है

"बडी धूम-गजर से आया री बना,
कुम्हार की गली हो आया री बना[2]।"

और एक-दो उदाहरण ये हैं -

देखो तो समधिन आयी है बडे मज़ेदार-सी
आगे गडहिया पीछे गामा का पुल[3]।"

समधिन तोरा डोला चने के खेत में
समधिन को पकड़ा बागन के बीच में[4]।"

यों पर्व त्योहारों और विविध गीतों के माध्यम से लोकतत्व का निर्माण किया गया है ।

भाषा, शिल्प और शैली की दृष्टि से आधा गाँव का महत्वपूर्ण स्थान है । इसमें चित्रित पात्रों को उनकी अपनी सहजता और व्यक्तितत्व के साथ उभारने हेतु उर्दू और भोजपुरी का प्रयोग किया गया है। उपन्यास में अनेक ऐसे शब्द हैं जिन्हें साधारण हिन्दी पाठक नहीं समझ सकते ।

---

1. राही मासूम रजा - आधा गाँव, पृ.58
2. वही, पृ.169
3. वही, पृ.285
4. वही, पृ.

रिपोतार्ज शैली में लिखे जाने के कारण "आधा गाँव" अस्पष्टता से बच नहीं पाता । राही की भाषा, बोली के स्रोत से मिली जुली है इसलिए मुहावरे, सूक्तियाँ और गालियों का खुलकर प्रयोग है । उपन्यास में ऐसे कई शब्द है जिनका प्रयोग सभ्य और सुसंस्कृत समाज में कभी नहीं किया जाता इन शब्दों का प्रयोग लेखक ने शायद इसलिए किया होगा कि उनका लक्ष्य केवल समाज के सुसंस्कृतिक पक्ष को प्रस्तुत करना मात्र न होकर उस समाज की समग्रता में उसकी सारी कुरूपता को भी सम्मिलित करना होगा । राही की भाषा के संबन्ध में परमानन्द श्रीवास्तव का वक्तव्य सार्थक लगता है कि "कहीं तो राही की भाषा शुद्ध बिम्बधर्मी या चित्रमय है और कहीं बेहद अनगढ और फूहड । यह भी शायद गंगौली के आंचलिक परिवेश का विरोधाभास ही है जो आर्थिक सामाजिक राजनीतिक दबाव से ग्रस्त जीवन पर हावी है । इस भाषा और परिवेश में एक प्रकार का आत्मीय संगीत है, जो उपन्यास को एक आंचलिक व्यक्तित्व की एकता भी दे देता है।[1]"

वैसे "अलग अलग वैतरणी" और "आधा गाँव" दो ऐसी रचनाएँ हैं जो स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारत के गाँवों में होनेवाले परिवर्तनों की झलक प्रस्तुत करती है "अलग अलग वैतरणी" में आंचलिकता के सहारे "करैता गाँव" की विषैली स्थितियाँ उभारकर रखी गयी है जहाँ मनुष्य अपने सभी मानवीय मूल्यों से च्युत होता हुआ चित्रित किया गया है । अतिरंजना का सहारा लेनेवाले उपन्यासकारों के विचारों से पूर्णतया असहमत होना कठिन है क्योंकि गाँव की जिन्दगी स्वाधीनता के उपरांत नकारात्मक स्थितियों से इतनी अधिक जुड गयी है कि घुटन और पीडा का वातावरण गाँव में पूर्णतया विद्यमान होने लगा है । इस दृष्टि से शिवप्रसाद सिंह की आंचलिकता गाँव सापेक्ष होते हुए भी व्यापक जनहित और परिवर्तित मूल्य संक्रमण की स्थितियों से जुडकर यथार्थवादी और मानवतावादी बन जाती है ।

---

1. परमानन्द श्रीवास्तव - धर्मयुग - 10 सितंबर 1967, पृ.22

जहाँ तक "आधा गाँव" का संबन्ध है हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि इस उपन्यास में राही मासूम रज़ा ने एक सीमित दायरे में जीवन बितानेवाले मुसलमानों की स्वाधीनोत्तर जीवन की स्थितियों का प्रभावात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। उपन्यास इसलिए आँचलिक है कि उसमें आनेवाली घटनाएँ और स्थितियाँ एक चुनी हुई जाति की आशाओं और आकांक्षाओं से जुड़ी हुई है। शिया मुसलमानों की ज़िन्दगी को गंगौली गाँव की स्थितियों के परिवेश में और पाकिस्तान के बनने की पृष्ठभूमि में और ज़मीन्दारी के टूट जाने की स्थिति में प्रस्तुत करके इस आंचलिकता के संक्षिप्त और व्यापक दोनों अंशों पर उपन्यासकार ने सठीक आलोचना प्रस्तुत की है। इसमें इस बात का नयापन है कि मुसलमानों की ज़िन्दगी के आधार पर इसके पहले कोई भी उपन्यास नहीं लिखा गया। इस कारण इसमें प्रयोग का नयापन और मुसलमानों की एक वर्ग की मानसिकता का विशेष स्वरूप आदि उभरकर आने लगता है।

उपर्युक्त कारणों से "अलग अलग वैतरणी" और "आधा गाँव" अपने में विशिष्ट स्थान रखनेवाले दो महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।

सप्तम अध्याय

तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक विवेचन

सप्तम अध्याय

तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक विवेचन

"ग्राम चेतना के विविध आयाम - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में" शीर्षक प्रस्तुत शोधात्मक अध्ययन के अंत में जो निष्कर्ष उभर आते हैं वह अत्यन्त महत्वपूर्ण लगते हैं । ग्राम चेतना के विविध आयाम और उसके स्वरूप को आंचलिकता के बदलते परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का परिणाम इसलिए महत्वपूर्ण है कि उपन्यासकारों ने चुने हुए खण्डों में विभक्त जीवन की स्थितियों का चित्र खींचने के साथ साथ उसकी गद्यात्मकता पर भी सूक्ष्म अवलोकन प्रस्तुत किया है । आंचलिक उपन्यासों में अभिव्यक्त स्थितियां गतियों के साथ जुड़कर एक नई दृष्टि की सृष्टि करती है, जो कहीं नकारात्मक, कहीं सुधारात्मक और कहीं अवलोकनात्मक बन जाती हैं । आंचलिक उपन्यासों को ग्रामचेतना से इसलिए जोड़ा गया है कि आंचलिकता का अधिकांश आधार ग्राम जीवन की विडम्बनात्मक स्थितियों से जुड़ा हुआ है । अधिकांश आंचलिक उपन्यास इसके साक्षी है ।

नागार्जुन से लेकर राही मासूम रज़ा तक के उपन्यासकारों की दृष्टि यह सिद्ध करती है कि आंचलिकता में प्रकट होनेवाली ग्रामचेतना का स्तर बदलता रहा है और उसका स्वरूप ही समय सापेक्ष बनता रहा है । इतना ही नहीं जन जीवन के विविध पक्षों से जुड़नेवाली चेतनात्मक स्थितियों का संबन्ध भूखण्डों की विशिष्टताओं के साथ ही नहीं अपितु जातिगत, वर्गगत मान्यताओं की सीमाओं से भी आबद्ध होता है । दूसरे शब्दों में ग्रामचेतना के सम्यक् स्वरूप का अध्ययन इतना व्यापक बन जाता है कि इसके रंगों को उतारने केलिए केवल एक गाँव, एक कस्बा, एक भूखण्ड, एक जाति या एक वर्ग या शहर कोई टीला काफी नहीं है, ये सब ऐसी कड़ियाँ है जो एक दूसरे से जुड़कर अपनी इकाई को बनाये रखने के साथ साथ दूसरी इकाई के पूरक बनने के प्रयास में सहयोग देते हैं । अत: भारतीय गाँव की चेतना को एक अंचल या एक गाँव अपने अंदर समाहित नहीं कर सकता । यानी आज की स्थितियों में भारत का कोई भी गाँव या अंचल समूचे देश की समस्याओं का और परिवर्तनोन्मुखी चेतना का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता, भले ही बहुत सारी समानताएँ अंचलों में और कस्बों में और गाँवों में मिल जाती हो । इस कारण ग्राम चेतना के स्वरूप को पहचानने केलिए स्थानीयता की समस्याओं का अध्ययन और जाति या वर्ग विशेष की मान्यताओं का और उस भूखण्ड की भौगोलिक स्थिति का अध्ययन अनिवार्य बन जाता है । भाषा और बोली संबन्धी प्रयोग भी इन रंगों को और भी गहरा बना देती है । इस कारण ग्रामचेतना पर आधारित आंचलिक उपन्यास पाठक केलिए चिरम नवा बने रहते हैं । यह हिन्दी क्षेत्र के विशाल भूखण्ड की जीवन गाथा की विविधात्मकता का परिणाम है । उपन्यासों के आधार पर ग्रामचेतना के स्वरूप को आंकना इस विविधात्मकता के कारण कष्टदायक सिद्ध होता है । फिर भी इन उपन्यासों की सर्जनात्मक अंतर्धारा में प्रवाहमान सांस्कृतिक परिवेश, जीवन की निरीहता से भरपूर ग्रामीणता और मूल्यच्युति की विरोधात्मक स्थितियाँ, टूटकर बिखरनेवाली विश्वासों की कड़ियाँ, अन्धविश्वासों की गहराई में

दबी पड़ी चेतना की सिसकियाँ शोषण एवं अत्याचार के शिकंजे में फंसी मानवीयता के हाहाकर की ध्वनियाँ, सुनहरे सपनों के टूट जाने से आहत मानवीय मन की मोह भंग की स्थितियाँ आदि समानान्तर रूप में प्रवाहित होकर इन समूचे उपन्यासों को एक कड़ी में बांध देती हैं । यही एक ऐसा सम्यक् बोध है जो ग्राम चेतना के अन्वेषक के मानस मण्डल पर आच्छादित होकर उसकी आलोचनात्मक दृष्टि को प्रभावित करता रहता है ।

ग्राम चेतना पर आधारित उपन्यासकारों की रचना और प्रयोग एवं लक्ष्यबोध पर विचार करते समय उनकी चेतनात्मक दृष्टि निम्नलिखित कई तथ्यों से जुड़कर प्रवाहमान होती हुई दिखाई पडती है । विभिन्न लेखकों की दृष्टि और उनकी रचना शैली इस तरह भिन्न है कि आंतरिक एकता के बावजूद भी प्रतिपादन की शैलियाँ, पात्र एवं समस्याओं की प्रस्तुतीकरण की प्रणाली, यथार्थ और अन्तर्विरोधों की चित्रण की विविधताएँ इतनी व्यापक हो जाती हैं कि उन पर निष्कर्षात्मक निम्नांकित टिप्पणियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं ।

ग्राम चेतना का बदलता स्वरूप और जन जीवन के विविध पक्ष

उपर्युक्त अध्ययन से पता चलता है कि नागार्जुन से राही मासूम रज़ा तक के रचनाकारों की रचनाओं में ग्रामचेतना का स्वरूप बदलता आया है । नागार्जुन का गाँव सभी दृष्टियों से रेणु के गाँव से भिन्न है और शिवप्रसाद सिंह तक आते आते गाँव परिवर्तन का इतना शिकार बन जाता है कि शहरी और ग्रामीण जीवन के बीच एक सीमा रेखा खींचना भी कठिन सा बन जाता है नागार्जुन का दरभंगा जिला और फणीश्वरनाथ रेणु का पूर्णिया जिला बिहार राज्य के अंदर पास-पडोस के दो जगह होने पर भी दोनों की रचनाओं में चित्रित अंचलों में काफी भिन्नताएँ दिखाई पड़ती हैं । यह भिन्नता समय और परिस्थितियों में आये परिवर्तनों का परिणाम है ।

समय के साथ राजनीतिक उथल-पुथल और सामाजिक चेतना में आये परिवर्तन के प्रभाव से अंचल अछूते नहीं रह सकते । लेखक की दृष्टि एवं ये अंचल समय की थपेड़ों से एवं परिस्थितियों के परिवर्तनों से प्रभावित हैं । इसी कारण से नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह और राही मासूम रज़ा के अंचल और उसकी आंचलिकता में भिन्नता दिखाई पड़ती है ।

मिथिलांचल की पृष्ठ भूमि में रचनारत नागार्जुन उस प्रदेश विशेष के विविध गाँवों को अपने उपन्यासों का नायकत्व प्रदान करते हैं जैसे "रतिनाथ की चाची" का तरकुलवा, "नई पौध" का नौगछिया, "बाबा बटेसरनाथ" का "रूपउली", "दुःखमोचन" का टमका कोइली आदि । लेकिन उनकी दृष्टि मात्र ग्रामीण जीवन पर न रहकर समाज के अन्य क्षेत्रों पर भी पड़ती है । "वरुण के बेटे" में मछुओं में उद्भूत नई चेतना का चित्रण वे मछुओं के 'गरोखर' बस्ती की पृष्ठभूमि पर ही करते हैं । "कुम्भीपाक" में पटना शहर के एक हिस्से को चुनने वाले नागार्जुन "उग्रतारा" में बंदीगृह को और "इमरतिया" में जमनिया के मठ को पार्श्वभूमि बनाते हैं । फणीश्वरनाथ रेणु बिहार राज्य के पूर्णिया जिले के गाँव मेरीगंज को "मैला आँचल" का नायक बनाते हैं, "परती परिकथा" में परानपुर और "कितने चौराहे" में अररिया को आधार बनानेवाले रेणु "दीर्घतपा" में बाँकीपुर के एक वर्किंग विमेन्स होस्टल को अपना कथा केन्द्र चुनते हैं और "जुलूस" में तो गोडियर के पास नवनिर्मित शरणार्थियों की बस्ती प्रतिपादन का विषय है ।

शिवप्रसाद सिंह उत्तरप्रदेश के गाँव "करैता" की पृष्ठभूमि पर "अलग अलग वैतरणी" की सृष्टि करते हैं तो राही मासूम रज़ा गाजीपुर के गंगौली गाँव के जीवन को "आधा गाँव" में स्वरबद्ध करते हैं ।

यों यह स्पष्ट हो जाता है कि इन उपन्यासकारों की दृष्टि भारत के अनजाने गाँवों में ही सीमित न रहकर गाँव से शहर की ओर, होस्टलों की ओर और जाति विशेष और वर्ग विशेष की ओर भी जाती है । जिस तरह एक ही रचनाकार के विविध उपन्यासों का अंचल बदलता जाता है, उसी तरह प्रत्येक रचनाकार की आँचलिकता एक दूसरे से भिन्न होती है । नागार्जुन बिहार के विविध गाँवों को उसके बदलते परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हैं । "रतिनाथ की चाची" का गाँव सभी दृष्टियों से पिछड़े हुए गाँव का प्रतीक है, जिसमें अशिक्षित, संस्कारहीन लोगों का जीवन है । इस अंचल से भी एक कदम आगे है "बलचनमा" का गाँव जहाँ शहरी जीवन का असर लोगों पर ज़रूर दिखाई पड़ता है । फूल बाबू जैसे लोगों के साथ शहरी जीवन जीनेवाला बलचनमा राजनीतिक हलचलों से परिचित हो जाता है और उसमें एक नई स्फूर्ति का उदय होता है । "नई पौध" में नारी शोषण के खिलाफ मोर्चा लेनेवाली नई पीढ़ी से युक्त समाज है । "बाबा बटेसरनाथ" में वटवृक्ष के माध्यम से जागृति की एक लहर का संचार करके संघर्ष की स्थिति को उपन्यासकार जन्म देते हैं । "वरुण के बेटे" मछुआ समाज है जहाँ के लोग मोहन माँझी जैसे साम्यवादी नेताओं से नई चेतना से परिचित हो जाते हैं । "कुम्भीपाक" में शहर की अन्धी गलियों में चलनेवाले नारी व्यापार और उसी के बीच दबोच दी जानेवाली नारियों का जीवन है । ग्रामीण समाज से अब नागार्जुन शहरी समाज को कथा केन्द्र बनाते हैं । "हीरक जयन्ती" राजनीतिक भ्रष्टाचार से युक्त समाज की कथा है । "उग्रतारा" का समाज आधुनिक विचारधारा से युक्त है । "इमरतिया" में हिन्दू धर्म के सारे भ्रष्टाचारों से युक्त जमनिया का मठ है । इस तरह उनके प्रतिपादन का विषय बदलता रहा है ।

फणीश्वरनाथ रेणु का अंचल नागार्जुन से बिलकुल भिन्न है । "मैला-आँचल" में पिछड़े गाँव मेरीगंज का समाज है और "परती परिकथा" में स्वार्थ लाभ केलिए राजनीतिज्ञों से भड़के हुए लोगों से युक्त समाज । "दीर्घतपा" में बाँकीपुर का वर्किंग विमेन्स होस्टल और वहाँ का अनैतिक जीवन है । जुलूस में शरणार्थी लोगों का जीवन है और कितने चौराहे की परिस्थितियाँ स्वतन्त्रता पूर्व गाँव की हैं

शिवप्रसाद सिंह का अंचल शहरी जीवन के बुरे प्रभावों से युक्त है जहाँ हर दृष्टि से जीर्ण-शीर्ण गाँव रहने केलिए ही अयोग्य बन जाता है ।

राही मासूम रज़ा अपने "आधा गाँव" गंगौली में बसनेवाले शिआ मुसलमानों के जीवन को ही प्रस्तुत करते हैं ।

यों नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, शिव प्रसाद सिंह और राही-मासूम रज़ा का अंचल एक दूसरे से भिन्न है ।

इस तरह आलोच्य उपन्यासों में दर्शाया हुआ ग्रामजीवन ग्रामचेतना के ऐसे पक्षों को उभारकर रखता है जो भौगोलिक स्थितियों के साथ बदलते तो हैं लेकिन समय और मूल्य च्युति के थपेडों से अत्यन्त आहत दिखाई पड़ते हैं । साथ-साथ इन्हीं उपन्यासों में प्रकट होनेवाली दृष्टिगत विविधता उपन्यासकारों की सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक एवं दार्शनिक व्यक्तित्व से प्रभावित भी है इस कारण गाँव और उसकी चेतना अंचल और उसका जीवन ऐसी गद्यात्मक स्थितियों का और अवरोधात्मक परिस्थितियों का बोध कराते हैं कि अंततोगत्वा हर एक उपन्यासकार और उसका कथ्य एक दूसरे का पूरक बनने लगता है ।

समस्याओं का उद्घाटन और उनका समाधान

आज़ादी के बाद सृजित आँचलिक उपन्यासों में आज तक अनदेखे पडे हुए भारतीय अंचलों की जीवन गाथा प्रस्तुत करते वक्त रचनाकार वहाँ की सारी समस्याओं का उद्घाटन करते हैं । इन समस्याओं के चित्रण और उनके समाधान के प्रस्तुतीकरण में हर एक लेखक की दृष्टि छायी रहती है ।

नागार्जुन अपने उपन्यासों में मुख्यत: पिछड़े हुए गाँवों में बसनेवाले निर्धन, निरीह किसानों, मज़दूरों, दयनीय विधवाओं एवं सामान्य स्त्रीयों की समस्याओं को उस समाज की सारी कुरूपताओं के साथ प्रस्तुत करते हैं। वे मात्र समस्याओं को प्रस्तुत करके चैन की साँस नहीं लेते। उनके पास इन समस्याओं का समाधान भी है। उनकी दृष्टि साम्यवादी विचारधारा से जुड़ी हुई है इसी कारण संघर्ष के माध्यम से वे एक परिवर्तित नवीन युग की परिकल्पना करते हैं। उनके अनुसार शांति और अहिंसा मार्ग से यह परिवर्तन संभव नहीं है। उन्होंने अपने प्रथम उपन्यास में गौरी नामक विधवा का कारुणिक चित्र उतारा है। समाज की सारी कुरीतियों का शिकार गौरी बदलती हुई परिस्थितियों में गाँव के नवजागरण से परिचित हो जाती है और अपनी शक्ति के अनुसार गाँव में स्थापित किसान कुटी केलिए सहायता पहुँचाती है। वह जान लेती है कि अपनी जैसी विधवाओं के आँसुओं से भीगे जीवन में परिवर्तन मार्क्सवाद की स्थापना से ही संभव है। नारी जीवन में सुधार लाने की अपनी विचारधारा को लिये हुए है उनके "नई पौध, "कुम्भीपक" और "उग्रतारा"। "नई पौध" में अनमेल विवाह के विरुद्ध वार करनेवाली युवा पीढ़ी का चित्रण करके समाज में मौजूद अनाचारों के खिलाफ उपन्यासकार ने अपना स्वर गूँजा किया है। "कुम्भीपाक" को चाहे तो हम उनके सुधारवादी दृष्टि का परिणाम कह सकते हैं। समाज में नारी जीवन के उद्धार का एक मात्र रास्ता वे आर्थिक स्वाधीनता को ही मानते हैं। उग्रतारा में आधुनिक भावबोध से युक्त युवा पीढ़ी के माध्यम से नारी समस्याओं का समाधान वे ढूँढते हैं। "दु:खमोचन" में आकर नागार्जुन की दृष्टि एकदम बदलकर गाँधीवाद से प्रभावित दिखाई पड़ती है। "बलचनमा" "वरुण के बेटे और "बाबा बटेसरनाथ" साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित उनकी दृष्टि का सशक्त मिसाल प्रस्तुत करते हैं। ज़मीन्दारों के शोषण से पीड़ित सभी दृष्टियों से कुचले हुए गाँवों में साम्यवादी विचारधारा के प्रचार और परिणाम स्वरूप नवीन जागृति उत्पन्न होती है। "इमरतिया" में मठ और महन्तों के आड़ में समाज में प्रचलित

भ्रष्टाचार है । और इन भ्रष्टाचारों का पोल खोलकर दिखानेवाले नागार्जुन समाज में प्रगति के मार्ग में रोडे लगानेवाले इन मठ और महंतों का उन्मूलन चाहते हैं

यों समाज में प्रचलित हर समस्या का चित्रण करनेवाले लेखक उसका समाधान भी पाठक के सम्मुख रखते हैं । इन समाधानों में उनकी साम्यवादी दृष्टि स्पष्ट झलकती है । कहीं कहीं यह भी लगता है कि लेखक अपनी वादोन्मुखता के प्रचलन केलिए उपयुक्त कथा और पात्रों की सृष्टि करते हैं ।

नागार्जुन से भिन्न होकर फणीश्वरनाथ रेणु एक तटस्थ कलाकार है । बिहार के पूर्णिया जिले के विविध गाँवों को उनकी सुन्दरता से भी अधिक उसकी कुरूपता के साथ वे प्रस्तुत करते हैं । उनकी दृष्टि आशावादी है और वे सर्वथा किसी वाद के घेरे तक अपने को सीमित नहीं रखते । उनकी दृष्टि मानवतावादी दृष्टि है । गरीबी गन्दगी और जहालत से भरे "मैला आँचल" के मेरीगंज गाँव का सुधार वे डॉ॰ प्रशान्त के द्वारा संभव दिखाते हैं । उनका विश्वास है कि भारत माता के मैले आँचलों की सफाई समाज के शिक्षित सः लोगों से संभव है । "परती परिकथा" में जित्तन के द्वारा गाँव के टूटेहुए दिलों वाले लोगों को पुन:सजीव और सचेत करके करते हैं एक नवीन समाज का निर्माण करते हैं । "दीर्घतपा" के वर्किंग विमेन्स होस्टल के माध्यम से सरकार द्वारा संचालित सामाजिक संस्थाओं में प्रचलित भ्रष्टाचारों का वर्णन है । इन समस्याओं का समाधान ढूँढने का भार वे पाठक पर सौंप देते हैं । "जुलूस" में पवित्रा के माध्यम से अपनी मिट्टी से प्यार करने का आदर्श वे स्थापित करते हैं । "कितने चौराहे" तो स्वाधीनता संग्राम में देश केलिए अपने को बलि देनेवाले बालक की कथा है । उनके दो प्रमुख उपन्यास "मैला आँचल" और "परती परिकथा" के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि उनमें निर्माण का उत्साह है । लोक चेतना को आधुनिकता से जोडने वाले लेखक एक लोक सांस्कृति मूलक समाज की परिकल्पना करने लगते हैं ।

नागार्जुन जब आर्थिक शोषण के साथ समाज के अन्य कुरीतियों का चित्रण करते हैं और उनका प्रत्येक समाधान भी प्रस्तुत करते हैं तो रेणु अपने उपन्यासों में मूल्य संक्रमण और मूल्य च्युति पर ज़ोर देते हैं । वे इसमें सुधार की आशा रखनेवाले हैं ।

मूल्य च्युति की चरम सीमा शिवप्रसाद सिंह के अलग अलग वैतरणी में स्पष्ट हो जाती है । यहाँ तक आते आते भारतीय गाँव सुधार के परे हो जाते हैं । आर्थिक रूप से जीर्ण-शीर्ण ये गाँव अन्य स्तरों पर भी गिरे से दिखाई पडते हैं । वहाँ रिश्ते-नातों का और यहाँ तक कि मानुषिक मूल्यों का भी कोई स्थान नहीं रह जाता । आपसी फूट और वैर से कलुषित गाँव से अपने प्राणों को बचाने हेतु लोग शहरों की शरण लेते हैं ।

"आधा गाँव" में आज़ाद भारत में मोहभंग, अनास्था, कुंठा और संत्रास के जहर के प्रभाव से नारकीय जीवन बिताने केलिए अभिशप्त एक वर्ग की कथा है ।

वैसे आंचलिक उपन्यासों का प्रमुख उद्देश्य केवल समस्याओं का उद्घाटन और उनका समाधान मात्र नहीं है । परन्तु आनुषंगिक रूप में इन समस्याओं का उद्घाटन और परोक्ष रूप में उसके समाधान की सूचनाएँ मिलने लगती है । ग्राम चेतना का चितेरा उपन्यासकार गाँव के जीवन की सम्पूर्णता को अपनी दृष्टि से प्रस्तुत करता रहता है । इस प्रस्तुतिकरण की वेलामें जीवन की विडम्बनाओं की नकारात्मक स्थितियों का और मूल्यच्युतियों का वर्णन अवश्यंभावी हो जाता है । नागार्जुन जब इन समस्याओं को ही प्रमुख माना तो आगामी पीढी के उपन्यासकार ने तटस्थ आलोचक की भाँति अपनी चेतना को जनजीवन की संवेदना के साथ जोड़ा और उसकी विरोधात्मक स्थितियों को स्वर प्रदान किया । रेणु ने मैला आँचल और परती परिकथा में

यही किया था और परोक्ष रूप में आंचलों को सुधारने का दायित्व जनता के समक्ष प्रस्तुत करदिया । शिवप्रसाद सिंह ने "अलग अलग वैतरणी में" स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के गाँव की विषैली परिस्थितियों का चित्रण करके यह दिखाया है कि न शहर ही अब मानव केलिए योग्य है न गाँव ही, बरोसा बनाने का काबिल रहा है । दम घोटनेवाली और मनुष्य को अपनी मनुष्यत्व से वंचित करनेवाली स्थितियों का वर्णन इस दृष्टि से भी प्रभावित है कि उपन्यासकार अधिक निराशावादी बन गये हैं । इधर राही मासूम रज़ा ने "आधा गाँव" में एक यथार्थवादी स्थिति का उद्घाटन किया है जो उत्तर भारत के मुसलमानों के बीच में पाकिस्तान के बनने के बाद और बनने के अवसर पर पैदा हुई थी । अपने वतन के प्रति वफादारी बरतने की इच्छा के साथ परिस्थितियों में आनेवाले परिवर्तनों से टूटकर बिखरनेवाले शिआ मुसलमानों की कहानी अपने में बहुत ही दर्दनाक है और विरोधात्मक भी ।

यथार्थता और अतिरंजना

आज़ाद भारत के पिछडे हुए ग्रामीण अंचल को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत करते वक्त उपन्यासकार यथार्थ के साथ साथ अतिरंजनात्मक वर्णनों का सहारा भी लेते हैं । आंचलिक उपन्यास अधिकांशत: लेखकों के अनुभूत सत्य पर आधारित है । इसलिए इन उपन्यासों में यथार्थ का पुट ही अधिक है । लेकिन कहीं कहीं घटनाओं एवं परिस्थितियों में अतिरंजना का सहारा लेते हुए भी दिखाई पड़ते हैं ।

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में आंचलिकता लाने का प्रयास कभी नहीं किया है । स्थानीय रंग जो कि आंचलिकता का प्रमुख अंग है कम मात्रा में दिखाई पड़ता है । दूसरे शब्दों में आंचलिकता के प्रति कोई विशेष मोह उनके उपन्यासों में नहीं दिखाई पड़ता है।इसलिए उनकी शैली अतिरंजना से मुक्त है । वह सपाठ है । लेकिन घटनाएँ और परिस्थितियाँ इसमे

विमुक्त नहीं है । "रतिनाथ की चाची" गौरी से संबन्धित घटनाएँ, बाबा बटेसरनाथ में वटवृक्ष के माध्यम से युवापीढ़ी को जागृत करना आदि अतिरंजना के मिसाल के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

फणीश्वरनाथ रेणु ने ही हिन्दी साहित्य जगत में सबसे पहले "आँचलिकता" शब्द का प्रयोग किया था । उनके मन में अपने उपन्यासों में आँचलिकता लाने का मोह था । इसलिए उनके कथ्य यथार्थ से जुड़े हुए होने पर भी शैली में अतिरंजनात्मकता है । मैला आँचल में दिखाई पडनेवाले अधिकांश चित्रण इसके उदाहरण है । इस तरह की अतिरंजना, आँचलिकता की सविशेषता के रूप में एक ओर पाठक को सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तुओं का ब्योरा प्रस्तुत करने में सहायक होती है तो दूसरी ओर यथार्थ को बढ़ा चढ़ाकर रखने का भी प्रयास करती है । इस कारण यथार्थ के सही स्वरूप को समझने में कभी कभी पाठक को कठिनाई का अनुभव होनेवाला है ।

शिव प्रसाद सिंह के उपन्यास "अलग अलग वैतरणी" का कथ्य ही अतिरंजना का शिकार है क्योंकि शायद ही ऐसा कोई गाँव हो सकता है जहाँ से लोग अपनी जान बचाकर भाग जाना चाहते हैं । जिस दृष्टि से उन्होंने इस गाँव को प्रस्तुत किया है वह दृष्टि तुलनात्मक रूप में अधिक नकारात्मक है । गाँव की परिस्थितियाँ व्यक्ति को गाँव छोड़कर भाग जाने केलिए प्रेरित करनेवाली हो सकती है । लेकिन जिस चित्रण का सहारा लेकर शिव प्रसाद सिंह ने इस कथ्य का उद्घाटन किया है वह नितांत अतिरंजना से भरपूर है ।

रज़ा का उपन्यास "आधा गाँव" पढ़ने से ऐसा लगता है कि मुसलमानों की उस बस्ती में मुहर्रम और उससे जुड़ी हुई बातों को छोड़कर कुछ और बाकी नहीं रह गया है । आठों पहर वहाँ जिन्दगी का पहिया

इसी धुरी पर घूमता हुआ दिखाना अतिरंजना का ही एक और मिसाल है । फिर भी इस वर्णन की गहराई में यथार्थ का पुट अवश्य है ।

आंचलिक उपन्यास में यथार्थ और अतिरंजना कहीं कहीं एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं । क्योंकि जहाँ यथार्थ से काम नहीं चलता वहाँ अतिरंजना का सहारा लेकर समूची स्थितियों के प्रति मानवीय अवबोध को जागरूक कराने में उपन्यासकार सफल निकलता है । इसलिए आंचलिकता की अतिरंजना आंचलिक उपन्यास की एक उपलब्धि के रूप में स्वीकार की जा सकती है ।

उपन्यासकारों की उपलब्धियाँ

आंचलिक उपन्यास ने हिन्दी साहित्य जगत केलिए एक नवीन चेतना को प्रदान किया । प्रगतिशील-जीवन-दृष्टि और सामाजिक यथार्थ से युक्त ये रचनाएँ राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण हैं । आज़ाद भारत में नव-निर्माण और नव-जागृति का प्रश्न उठते ही भारत के प्रबुद्ध लेखकों का ध्यान उपेक्षित पड़े भूखण्डों, अज्ञान के अन्धकार में पड़े वर्गों और जातियों की ओर गया । इन उपेक्षित अंचलों और जातियों में जागरण की चेतना भरने का कार्य एक युगान्तकारी का रहा । यद्यपि यथार्थवादी उपन्यासकारों ने इन उपेक्षित स्थानों और जातियों को वाणी देने का कार्य किया है तथापि उनका दृष्टि कोण किसी न किसी "वाद" से प्रभावित था । यथार्थवादी लेखकों की दृष्टि और आंचलिक लेखकों की दृष्टि में काफी अन्तर है । आंचलिक उपन्यासों में वर्णित यथार्थ कलात्मक दृष्टि से सजधज है । आंचलिक लेखकों की दृष्टि बौद्धिक समस्याओं के साथ ही साथ वहाँ के जन-मानस के आन्तरिक संवेदना एवं धरती के रंग से भी सिंचित है ।

आंचलिक उपन्यासकार के रूप में हिन्दी साहित्य केलिए नागार्जुन का योगदान महत्वपूर्ण है । अब तक अनजाने पड़े दरभंगा जिले के कई गाँव, जो कि आधुनिक कृत्रिमता से दूर स्वच्छन्द वातावरण को लिये हुए हैं, को अपने उपन्यासों का केन्द्र बनाकर नागार्जुन ने हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में आंचलिक विधा का उद्घाटन किया । लेकिन उनकी दृष्टि आंचलिकता के प्रारंभिक स्वरूप को ही प्रस्तुत करती है । आज़ादी के बाद भी समाज में जीवित अनाचारों और भ्रष्टाचारों के विरुद्ध जन-मानस को जागृत करने का प्रमुख स्थान नागार्जुन का रहा । "रतिनाथ की चाची" जो कि हिन्दी का प्रथम आंचलिक उपन्यास माना जाता है, में विधवा नारी का, "नई पौध" में अनमेल विवाह का, कुम्भीपाक में नारी व्यापार का तथा उग्रतारा में असहाय नारी की समस्याओं का चित्रण करके समाज में नारी के स्वतंत्र अस्तित्व की आवश्यकता पर ज़ोर दिया है । उत्तर भारत के गाँवों में आज भी ज़मीन्दारी शोषण के भार को ढोने केलिए अभिशप्त किसान मज़दूरों की गाथा "बलचनमा", "गोदान" के बाद भारतीय किसान का महाभारत सा लगता है । "वरुण के बेटे" में मछुआरों के जीवन के माध्यम से अज्ञात पड़े हुए वर्गों के जीवन पर प्रकाश डाला गया है । यों आज तक अछूते कथा क्षेत्रों को उपन्यास का विषय बनाना नागार्जुन की विशिष्ट उपलब्धि है । इस दृष्टि से प्रेमचन्द के बाद ग्राम चेतना को सीमित परिवेशों में जीनेवाले लोगों की जिन्दगी से जोड़कर एक नई दिशा का निर्देशन करने का श्रेय नागार्जुन को दिया जा सकता है ।

मार्क्सवाद की ओर विशेष झुकाव के कारण उनके अपने उपन्यासों एक हद तक उस विचारधारा के प्रचार केलिए प्रयुक्त दिखाई पड़ते हैं । फिर भी नागार्जुन के उपन्यास लोगों में एक नवीन राजनीतिक जागरण उत्पन्न कराने में सफल निकले हैं । उनके अपने अनुभूत सत्यों के आधार पर सृजित ये उपन्यास, दैनिक जीवन के सुख-दुःखों, समस्याओं और समाधानों से भरपूर है जो भारत के

जन साधारण से अटूटा सम्बन्ध रखनेवाले हैं । इसलिए इन उपन्यासों के प्रभाव स्वरूप लोगों में एक नई स्फूर्ति उत्पन्न हो जाती है ।

उनकी शैली सपाठ है इसलिए उसमें क्लिष्टता का अभाव है । बिना किसी पूर्वाग्रह से लिखने के कारण उनके उपन्यासों में भाषा के माध्यम से आंचलिकता लाने का प्रयास नहीं किया गया है । याने कि आंचलिकता केलिए आंचलिकता का प्रयत्न उन्होंने कभी नहीं किया । हर समस्या के प्रतिपादन में आंचलिकता अपने आप में सजीव बन कर पाठक के समक्ष उपस्थित हो जाती है ।

"मैला आंचल" की भूमिका में अपने उपन्यास को "आंचलिकता" नाम से पुकार कर हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक नवीन धारा को जन्म देने का श्रेय फणीश्वरनाथ रेणु को है । यद्यपि प्रथम आंचलिक उपन्यासकार का स्थान नागार्जुन को दिया जाता है, तथापि आंचलिक उपन्यासों की सारी विशेषताएँ फणीश्वरनाथ रेणु की रचनाओं में मूर्त रूप धारण कर लेती है । भौगोलिक रूप से सीमित रहने पर भी प्रभाव की दृष्टि से उनके उपन्यास सभी सीमाओं को तोड़कर एक सार्वभौमिक भावना का उद्घाटन करनेवाले हैं । "मैला आंचल" और "परती परिकथा" में शिक्षित लोगों के माध्यम से भारतीय गांवोंमेंसुधार लाने की उनकी आशा प्रस्फुटित होती है । पाठक को भारतीय गांवों की सुधार की आवश्यकता की ओर जागरूक कराने में वे सफल निकले हैं । "जुलूस" में उनकी दृष्टि विश्वबन्धुत्व की भावना और राष्ट्र प्रेम की विचारधारा से भरपूर है । "दीर्घतपा" में नारी चेतना के उभरते हुए रूप को दिखानेवाले "रेणु" का लक्ष्य यह रहा कि नारी अब घर की चाहरदीवारी में बन्द रहकर केवल बच्चे पैदा करनेवाली मशीन रहना नहीं चाहती, परन्तु हर क्षेत्र में अपना व्यक्तित्व प्रदर्शित करना चाहती है । "कितने चौराहे" में देश की समस्याओं का मुकाबला प्रगतिशील युवकों के द्वारा कराकर लोगों के

मन में अपने देश के विकास केलिए कार्यरत रहने का संदेश दिया गया है ।

आज़ाद भारत के आगे कराल रूप में खडी रही सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और अन्य समस्याओं की ओर भारतवासियों को जागृत करके उसका समाधान अपने आप में पाठक के मानस मण्डल पर उदित कराने में रेणु सफल निकले हैं । भारत का विकास तभी संभव होगा जब उसके मैले आँचलों को साफ किया जाएं ।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में "आँचलिकता" नाम की नवीन शैली का परिचय कराने का श्रेय रेणु को है । कहीं कहीं आँचलिकता लाने हेतु पात्रों के मुँह से शब्दों को तोड मरोडकर प्रयुक्त करके दिखाया गया है । तथापि यह विशेष ध्यान देने योग्य है कि उनकी दृष्टि इस पर अधिक रही कि भाषा पात्रानुकूल हो । वरना अशिक्षित ग्रामीण के मुँह से साहित्यिक भाषा का प्रयोग करके हास्यास्पद स्थितियों का जन्म हुआ होता । इसलिए कहीं कहीं समझने में कठिनाई महसूस होने पर भी यह बात स्मरण देने योग्य हैं कि बडे बडे शहरों में जीनेवाले लोग ग्रामीण अंचलवासियों की भाषा समझ नहीं सकते । यों ग्रामीण अंचलों में प्रयुक्त जन-साधारण की भाषा को उपन्यास में स्थान देने का उनका कार्य महत्वपूर्ण रहा ।

कुल मिलाकर फणीश्वरनाथ "रेणु" ने हिन्दी उपन्यास को एक नई दिशा और वाणी को एक नया स्वर और अन्तश्चेतना को एक नई गहराई प्रदान करने की महान कोशिश की थी ।

शिव प्रसाद सिंह "अलग अलग वैतरणी" के माध्यम से मूल्य च्युति की चरम सीमा का वर्णन करके पाठक को यह सोचने केलिए बाध्य कर देते हैं कि आज़ाद भारत में मूल्यों को खोकर क्या भारतीय अपना कल्याण कर सकते हैं ।

लेखक ने यह भी सिद्ध किया है कि मूल्य च्युति एक राष्ट्रीय समस्या है जिसकी जड़े महानगरीय सभ्यता से गुजरती हुई, राजनीतिक प्रदूषण में पनपती हुई, सांस्कृतिक जीवन को ध्वस्त करती हुई गांव की कच्ची मिट्टी तक पहुँच गयी है ।

रज़ा की उपलब्धि यह है कि उन्होंने हिन्दी उपन्यास में एक ऐसे विषय को प्रस्तुत किया है जो आज तक अछूता रहा । मुसलमानों की ज़िन्दगी पर आधारित कम उपन्यास ही निकले हुए हैं । उसमें भी शीआ मुसलमानों की जिन्दगी को एक गांव के आधे टुकड़े से जोड़कर उनकी आशाओं और आकांक्षाओं और विवशताओं का चित्रण करके एक वर्ग की जिन्दगी को आंचलिकता का विषय बनाने का लक्ष्य प्रस्तुत करके उपन्यासकार ने अपनी व्यक्तित्व की छाप दिखाई है ।

इस तरह उपर्युक्त विवेचन से विदित होता है कि आंचलिक उपन्यासकारों की उपलब्धियां अनदेखी नहीं की जा सकती । अन्य उपन्यासकारों से भी अधिक प्रतिबद्धात्मक और विवेचनात्मक उनकी दृष्टि रही है । कथ्य, प्रयोग एवं शैलीगत विशिष्टताओं के साथ साथ भाषा की नई सीमाओं को खोजने का भी प्रयत्न आंचलिक उपन्यासकारों ने किया है । वास्तव में आंचलिक उपन्यासकार जीवन के स्पन्दनों को खण्डित यथार्थ में भौगोलिक सीमाओं के साथ जोड़कर मूल्य संक्रमण की स्थितियों का विवेचन करते हुए, सांस्कृतिक उद्धास की परोक्ष परिकल्पना में लगे हुए दिखाई पड़ते हैं । ये सांस्कृतिक पुनरुद्धान, सामाजिक, आर्थिक एवं मूल्याधिष्ठित जीवन के आधार पर ही संभव हो सकता है । यह उनमें अन्तर्निहित दृष्टिकोण का सार है ।

शैल्पिक विशेषताएँ

आंचलिक उपन्यासकारों के रचना धर्म का सम्बन्ध उस अंचल विशेष में जीवित जन साधारण की आन्तरिक संवेदनाओं से है । उपन्यास को रूप और रंग प्रदान करने केलिए प्रयुक्त बिम्ब और प्रतीकों का प्रयोग उसकी बाहरी शोभा को बढाने के साथ ही साथ वहाँ के लोगों की मानसिकता को भी प्रस्तुत करता है । बिम्ब और प्रतीकों के द्वारा मानसिक भावों का प्रकटीकरण अत्यन्त प्रभावात्मक होता है । बिम्ब और प्रतीकों का घनिष्ठ सम्बन्ध भावात्मक शैली से है तथापि यथार्थवादी शैली के आंचलिक उपन्यासों में इनकी उपेक्षा नहीं की गयी है । आंचलिक उपन्यासकार अपने अनुभूत सत्य पर आधारित अंचल विशेष के जीवन को उसकी गहराई में पैठकर भावना के धरातल पर उभारते हैं । इसी कारण से उपन्यास के शैल्पिक तत्व, बिम्ब और प्रतीक आंचलिकता के रंग में रंगकर उसके अंग बन जाते हैं ।

नागार्जुन के उपन्यासों का कथ्य अधिकांशतः गंभीर है और विचारात्मक भी । उन्होंने यथार्थवादी शैली के माध्यम से ही अपने उपन्यासों की रचना की है । तथापि बिम्ब और प्रतीकों के द्वारा उपन्यास की बाहरी आभा बढ़ाने के साथ ही साथ उसके आन्तरिक उद्वेलन का प्रकटीकरण भी संभव हुआ है । उपन्यास के बीचों बीच नागार्जुन का कवि हृदय बोल उठता है । नागार्जुन अधिकतर सपाठ शैली का सहारा लेते हैं और इस कारण शैलीगत प्रयोग एवं शिल्प की विशिष्टताओं से युक्त सन्दर्भ तुलनात्मक रूप से कम ही दिखाई पड़ते हैं । फिर भी कहीं कहीं उनकी भाषा बहुत काव्यात्मक बन जाती है । बिम्बों की अपेक्षा प्रतीकों के प्रति उनका ध्यान अधिक गया है और उपन्यासों के शीर्षकों तक इसका प्रयोग वे करते हैं ।

फणीश्वरनाथ रेणु भी बिम्ब और प्रतीकों के माध्यम से अपने उपन्यासों के कथ्य में शक्ति एवं लालित्य लाने का प्रयास करते हुए दिखाई

दिखाई पड़ते हैं। उनके उपन्यासों में कई ऐसे सन्दर्भ हैं जहाँ उनकी काव्यमयी भाषा सज-धज कर प्रत्यक्ष होती है। "मैला आँचल" का डॉ॰ प्रशान्त अपने बेटे के जन्म पर सोचने लगता है - "वेदान्त, भौतिकवाद, सापेक्षवाद, मानवतावादी। हिंसा से जर्जर प्रकृति रो रही है। व्याध के तीर से जख्मी हिरण-शावक-सी मानवता को पनाह कहाँ मिले? हा हा हा! अट्टहास व्याधों के अट्टहास से आकाश हिल रहा है। छोटा सा, नन्हा-सा हिरण हाँफ रहा है। छोटे फेफड़े की तेज़ धुक-धुकी। नीलोत्पल। नहीं। यह अँधेरा नहीं रहेगा। मानवता के पुजारियों की सम्मिलित वाणी गूँजती है - पवित्र वाणी। उन्हें प्रकाश मिल गया है। तेजोमय। क्षत-विक्षत पृथ्वी के घाव पर शीतल चन्दन लेप रहा है।"[1] इसमें मानवता का रूप उसकी संपूर्णता के साथ प्रस्तुत हो जाता है।

ध्वनि बिम्बों की भरमार उनकी रचना शैली की और एक विशेषता है। ग्रामीण परिवेश के पूर्ण अंकन हेतु वे बैलगाड़ी की कट-कर्रर-कट से लेकर ढोलक की ढाक-ढिन्ना, टेपरिकार्डर की ट्रिप-टि-रि आदि को भी प्रस्तुत करते हैं। उनकी वस्तुन्मुखी दृष्टि इतनी पैनी है कि हर एक पंक्ति में एक-एक चित्र साकार हो उठता है।

तुलनात्मक रूप से देखा जाय तो भाषा की और बिम्बों की प्रयोग क्षमता में रेणु का ध्यान अधिक जाता हुआ देखा जाता है। जहाँ कहीं भी वर्णनात्मक स्थिति का बोध कराना वे चाहते हैं वहाँ उनकी भाषा अधिक गुंफित और बिम्ब युक्त बनने लगती है। शैल्पिक प्रयोग की दृष्टि से अन्य उपन्यासकारों की अपेक्षा रेणु काफी आगे खड़े होते हैं। बिम्बों की मौलिकता भी रेणु की विशेषता है।

---

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, पृ॰ 332-333

"अलग अलग वैतरणी" में प्रतीकों का सहारा लेना शिवप्रसाद सिंह को अधिक स्वीकार्य लगता है । क्योंकि उनका गाँव और उसके वासी दोनों अपने आप में प्रतीक हैं । एक उजडा हुआ स्थान जो सभी प्रकार के मूल्य शोषणों का प्रतीक है और एक ऐसा जन समूह जो सभी प्रकार की मूल्य-च्युतियों से संपूर्ण होकर अभिशप्त है, दो ऐसे प्रतीक हैं जो आनेवाले कल के मूल्य रहित समाज की होफनाक स्थिति का बोध कराते हैं ।

"आधा गाँव" में "राही मासूम रज़ा" ने अधिकतर प्रतीकों का सहारा लिया है । शैल्पिक प्रयोग की दृष्टि से देखा जाय तो उनका उपन्यास मध्यम दर्जे का सिद्ध होता है जिसमें आवश्यकता के अनुसार भाषा को सजाने के साथ साथ प्रयोगों को गहरा बनाने का प्रयास दिखाई पडता है ।

कुल मिलाकर विभिन्न उपन्यासकारों की रचना प्रक्रिया शिल्पगत प्रयोगात्मक विविधता से भरपूर है । ये शिल्पगत प्रयोग उपन्यासकारों के व्यक्तित्व और विषय की सीमा एवं संभावनाओं से जुडकर आती है । इस कारण शैल्पिक प्रयोग एवं भाषागत विशेषताएँ तुलना के विषय नहीं बनते । हर एक उपन्यासकार की शैली उसकी भाषा और उसके शिल्प, विषय के अनुकूल सिद्ध होते हैं और अंतिम रूप में सर्जनात्मक प्रक्रिया को संपूर्णता प्रदान करने में सफल सिद्ध निकलते हैं ।

लक्ष्य बोध की परिकल्पना

आज़ाद भारत के जन-जीवन का यथार्थ इतना जटिल है कि उसकी अभिव्यक्ति केलिए उपन्यास ही एक सशक्त माध्यम बन सकता है । राजनीतिक उथल-पुथल, सामाजिक मूल्यों और मान्यताओं का विघटन, सम्बन्धों की घनिष्ठता में ढीलापन, जीवन में बौद्धिकता का अतिप्रसार आदि के फलस्वरूप जीवन का जो नया स्वरूप उभरकर आया है, उसे, सामाजिक दायित्व से ओतप्रोत उपन्यासकार अनदेखा नहीं कर सके । औद्योगीकरण

प्रभाव भी ग्रामीण जीवन पर छोड़ा है । आज़ादी के पूर्व भारत के जन मानस में देश भक्ति की जो लहर स्वाधीनता प्राप्ति केलिए उमड़ी थी, उसने अब एक दूसरा मोड लिया । आज़ादी से पूर्व पराधीनता से मुक्त होने केलिए राष्ट्रीय जन शक्ति को जगाना और क्रियाशील रखना रचनाकारों का मुख्य लक्ष्य था । लेकिन आज़ाद भारत तक पहूँचते पहूँचते लेखकीय प्रतिबद्धता जन जीवन की समसामयिक स्थितियों को उभारती हुई सुधार की परिकल्पना से जुडने लगी । प्रबुद्ध लेखकों की दृष्टि अब पिछडे हुए जन-जीवन की ओर गयी । युगों से शोषित, प्रताडित और उपेक्षित ग्रामीण जीवन जर्जरित विश्वासों का केन्द्र बन गया था । यों शोषण के आर्थिक आयाम से भी अधिक इस उपेक्षित अंचलों के समूचे व्यक्तित्व को प्रस्तुत करना अत्यन्त आवश्यक रहा । इसके परिणाम स्वरूप "बलचनमा" "वरुण के बेटे" "मैला आंचल", "परती परिकथा" "अलग अलग वैतरणी", "आधा गाँव" आदि आंचलिक उपन्यासों की सृष्टि संभव हुई । आंचलिक उपन्यासकारों ने उपेक्षित अंचल को उसकी संपूर्णता में प्रस्तुत करने की कोशिश की है । इन चित्रणों के माध्यम से पाठकों को चकित करानेवाले सत्यों का उद्घाटन करके आंचलिक उपन्यासकारों ने समाज की ओर अपने दायित्व को निभाने का प्रयास किया है ।

शिक्षा के प्रचार प्रसार के बावजूद भी आज़ाद भारत के ग्रामवासियों पर पुरानी मान्यताओं की पकड आज भी मजबूत है, इसका परिणाम यह निकला है कि ग्रामीण आदमी बुद्धिमान और चतुर तो ज़रूर बना है । किन्तु उसका भाव-जगत बुरी तरह आहत है । आज भी ग्रामवासियों का जीवन अनेक अनीतियों और संकीर्णताओं को ढोने केलिए विवश है । कुल-सम्पत्ति तथा धर्म के आधार पर विभाजित समाज तथा उसमे उत्पन्न हानि की ओर पाठक के मन को आकर्षित कराने का लक्ष्य आंचलिक उपन्यासकारों का रहा । नागार्जुन प्राय: अपने सभी उपन्यासों में अछूतों को पशुवत माननेवाले समाज के चित्र अंकित करते हैं । फणीश्वरनाथ रेणु "मैला आंचल" में कायस्थ,

रजपूत तथा ब्राह्मणों में विभक्त मेरीगंज गाँव की कथा कहते हैं । शिवप्रसाद सिंह "अलग अलग वैतरणी" में छुआ-छूत की भावना से युक्त घटनाओं का चित्रण करते हैं । राही मासूम रज़ा के "आधा गाँव" में कुलीन और सम्पन्न पुरुषों के द्वारा छोटी जाति की युवतियों को अपनी इच्छा पूर्ति का साधन बनाते हुए दिखाया गया है । इस तरह के चित्रणों के द्वारा भारतीय समाज को दीमकों के समान चाटनेवाले जातिगत भेद-भावों को नष्ट करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है ।

आज़ाद पूर्व भारतीय में साम्प्रदायिकता से सम्बन्धित कोई समस्या नहीं थी । लेकिन शहरी प्रभाव से यह जहर गाँवों में भी फैल गया है । "आधा गाँव" और "अलग अलग वैतरणी" में हिन्दू मुस्लिम एकता के मिटने के दर्द को राही मासूम रज़ा तथा शिवप्रसाद सिंह चित्रित करते हैं । "आधा गाँव" में लेखक का साम्प्रदायिता विरोधी स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ता है । अपनी स्वार्थ सिद्धि केलिए भाई-भाई के रूप में जीवित हिन्दू और मुसलमानों के बीच विष का बीज बोने वाले अवसरवादियों का पोल खोलने की अपनी लक्ष्य की प्राप्ति रज़ाने की है ।

आँचलिक उपन्यासकारों ने यह देखा है कि शहरी सभ्यता के प्रभाव स्वरूप गाँवों में जाति-पाँति टूट रही है और उसके स्थान पर अमीर और गरीब के दो वर्ग पनप रहे हैं । आँचलिक उपन्यासों में सवर्ण और अछूतों के बीच के विवाह संबन्धों के वर्णनों के द्वारा यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि सवर्णों के द्वारा किये जानेवाले अत्याचारों के विरुद्ध संगठित होने की शक्ति निम्न वर्ग में है । "मैला आँचल" में अज्ञात कुलशील डॉ॰ प्रशान्त और तहसीलदार की बेटी कमला, "परती परिकथा" में सवर्ण सुवंश और अछूत कन्या मलारी, "आधा गाँव" में सिगदाद तथा नाइन सैफुनिया आदि के विवाह लेखकों के सपनों में जीवित समाज का परिचय दिलानेवाली घटनाएँ हैं ।

आंचलिक उपन्यासकारों ने समाज के विविध स्तरों में व्याप्त शोषण के चित्रण तथा उसके विरुद्ध मोर्चा लेनेवाली जनशक्ति के द्वारा अपने मन के आक्रोश को पाठक तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है । ज़मीन्दारों द्वारा किये जानेवाले शोषणों के विरुद्ध खड़े बलचनमा, तथा "वरुण के बेटे" और "बाबा बटेसरनाथ" में उठ खड़ी जनशक्ति के चित्रणों के द्वारा नागार्जुन निम्न वर्गों में जागृत नई चेतना का समर्थन करते हुए दिखाई पड़ते हैं । "मैला आंचल" में डॉ॰ प्रशान्त ग्रामीणों की दयनीय दशा पर दुःखी होकर सोचता है कि दरार पड़ी दीवार के समान खड़ी वर्तमान स्थिति का टूट जाना अत्यन्त आवश्यक है । यह रेणु का अपना विचार सा लगता है । "आधा गाँव" में सफ़िरिया के माध्यम से जाग उठनेवाली नई चेतना का स्वरूप उभारा गया है । "अलग अलग वैतरणी" में दुलरिया अन्याय और शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाती है । अब निम्न जाति के लोग उच्च जातिवालों के शोषण को सहने केलिए तैयार नहीं है । इसी उपन्यास में ठाकुर सुरजूपाल सिंह की गृहिणी बनने केलिए सुगनी को लेकर आनेवाले चमारों का चित्रण भी इसका प्रमाण प्रस्तुत करता है ।

बदलती परिस्थितियों के अनुरूप नारी जीवन में कोई सुधार नहीं दिखाई देने की ओर आंचलिक उपन्यासकारों ने चिन्ता व्यक्त करते हुए इस स्थिति में सुधार लाने की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित किया है । नागार्जुन, फणीश्वरनाथ 'रेणु', ~~नागार्जुन~~, राही मासूम रज़ा तथा शिवप्रसाद सिंह ने अपनी रचनाओं में नारी शोषण के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द की है । नारी के जीवन में सुधार लाने हेतु सरकार द्वारा किये जानेवाले प्रयत्नों का फल गाँव तक पहुँच नहीं पाया है ।

मूल्य संक्रमण के परिणाम स्वरूप पारिवारिक सम्बन्धों के बीच पड़े दरारों की ओर भी लेखक सचेत है । यह विपदा अब शहरी सभ्यता का ही नहीं ग्रामीण सभ्यता का भी अंक बन गयी है । पुरानी और नयी पीढ़ी के

बीच के संघर्ष का यह परिणाम है । पति-पत्नी, पिता-पुत्र के सम्बन्धों की जो ऊष्मा थी, वह अब नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी है । इसके फलस्वरूप ग्रामीण जीवन में सम्बन्धों का विघटन दिखाई पड़ने लगती है । यह बात अनदेखी नहीं की जा सकती । आज की ग्रामीण जनता एक ओर परम्परा को छोडना नहीं चाहती तो दूसरी ओर शहरी मूल्यों को अपनाना भी चाहती है । इस द्विविधात्मक मानसिकता को आंचलिक उपन्यासकारों ने उभारा है । इस बदलते मूल्यों का चित्रण नागार्जुन ने "रतिनाथ की चाची" के जयनाथ, फणीश्वर-नाथ रेणु ने "दीर्घतपा" की श्रीमती आनन्द, शिवप्रसाद सिंह ने "अलग अलग वैतरणी" के जग्गन मिसिर और उनकी भाभी आदि के द्वारा प्रस्तुत किया है ।

आंचलिक उपन्यासकार ग्रामीण जीवन में राजनीति के प्रवेश को अशिव और अशुभ मानते हैं । स्वाधीनता हेतु अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करने का इतिहास है भारतवासियों का । अब भारतीय समाज में कीटाणु के समान व्याप्त राजनीति के विरुद्ध खडे होने की ओर आंचलिक उपन्यासकार जागृत है । नागार्जुन "बलचनमा" "बाबा बटेसरनाथ" आदि उपन्यासों में राजनीतिज्ञों का पर्दाफाश करते हैं । फणीश्वरनाथ रेणु "मैला आंचल" और "परती परिकथा" में क्रमश: मीर समसुद्दीन और सागरमल के द्वारा अवसरवादियों का चित्रण प्रस्तुत करते हैं । ग्रामीण समाज को राजनीतिज्ञों के हाथ से मुक्त कराने का लक्ष्य रहा आंचलिक उपन्यासकारों का । इसलिए केवल राजनीतिक लंगीबाज़ी का चित्रण मात्र से आश्वस्त न होकर उसके खिलाफ खड़ी होनेवाली जनता की मानसिकता का भी वर्णन आंचलिक उपन्यासकार प्रस्तुत करते हैं ।

शहरी सभ्यता के प्रभाव स्वरूप गांव में धार्मिक आचरणों का रंग फीका पडने लगा है । गांव में अब धर्म का मतलब पाखण्ड और अन्धविश्वास से हो गया है । आज धर्म स्वार्थ सिद्धी का माध्यम बन गया है ।

नागार्जुन "इमरतिया" में मठ और महंथों की आड़ में चलनेवाले अनैतिक संबन्ध, चोर बाज़ारी, गांजे का व्यापार आदि का वर्णन करते हैं। रेणु ने "मैला आंचल" में मठ को दुराचारों का अड्डा दिखाया है। राही मासूम रज़ा "आधा गाँव" में मुसलमानों की बदलती धार्मिकता को मुहर्रम को मनाने के माध्यम से चित्रित करते हैं। बदलती हुई परिस्थितियों में पुरानी शान और शौकत के साथ मुहर्रम को न मना सकने केलिए ये लोग विवश हैं। धर्म से सम्बन्ध रखनेवाले तीज त्योहार, लोकगीत-नृत्य आदि गाँव से गायब हो रहे हैं उनको पुनर्जीवित करना भारतीय संस्कृति की महत्ता को बनाये रखने केलिए अत्यन्त आवश्यक है। अब गाँव की स्थिति यह हो गयी है कि पुराने संस्कार तो ग्रामीण लोगों के हाथों से फिसल गये हैं और नये को पूर्ण रूप से वे स्वीकार भी नहीं कर पाये हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु, राही मासूम रज़ा और शिवप्रसाद सिंह ने यह दिखाया है कि अब गाँव रहने केलिए योग्य नहीं रहा है। "मैला आंचल" में डॉ॰ प्रशांत यह समझ लेता है कि गरीबी और जहालत ग्रामीण समाज के सबसे खतरनाक रोग है। वह मुर्झाए हुए जीवन में आशा की स्फूर्ति भरने की कोशिश करते हैं। "अलग अलग वैतरणी" में शिव प्रसाद सिंह यह चित्रित करते हैं कि गाँव से अपने प्राणों को बचाने हेतु लोग शहर की शरण लेते हैं।

आज़ाद भारत में आये सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा अन्य परिवर्तनों के प्रभाव स्वरूप भारतीय गाँव की अपनी असलीयत मिट चुकी है। मूल्यों की च्युति और अन्य विसंगतियों में बुरी तरह आहत भारतीय गाँव नव निर्माण केलिए भारतीय मानस को जगाने का कर्तव्य आंचलिक उपन्यासकारों ने अपनी कंधों पर लिया है। यह उनकी प्रतिबद्धता और लक्ष्य बोध का परिचायक तत्व है। अपने अपने लेखकीय धर्म के प्रति जागरूक उपन्यासकार अधिकतर अपने लक्ष्यों को परोक्ष ही रखने का प्रयास करता हुआ दिखाई पड़ता है।

कथाकार की सच्ची मानसिकता इस परीक्षा में गुंफित होती है । यही ग्राम चेतना के इन चित्रकारों की सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जाती है ।

आंचलिक उपन्यासकार तथा उनकी रचनाओं का दृष्टिकोण एक जैसा नहीं है । हर लेखक गांव और उसकी ग्रामीणता को विभिन्न कोणों से देखने का, परखने का तथा प्रस्तुत करने का प्रयास करता है जो एक दूसरे का पूरक है । इसलिए सारे आंचलिक उपन्यासों के पठन-पाठन के परिणाम स्वरूप पाठक के मन में यही चिन्ता उभरकर आती है कि आज़ाद भारत और उसके गांव का जीवन इतना अधिक द्विविधापूर्ण बन गया है कि जिसकी कल्पना पहले कभी भी नहीं की गयी थी ।

ग्राम चेतना से संबन्धित उपर्युक्त अध्ययन के अंत में लेखकों के लक्ष्य बोध की परिकल्पना पर प्रस्तुत किये गये उक्त विचार यह सिद्ध करते हैं कि भारत की आज़ादी सिर्फ एक राजनैतिक हेरा-फेरी मात्र है जिसकी गहराई में जन जीवन से संबन्धित ऐसी पहेलियां छिपी पड़ी हैं जिनका समाधान ढूंढे बिना आज़ादी का कोई अर्थ ही नहीं निकल सकेगा । स्वाधीनता का अर्थ तभी सब केलिए स्वीकार्य बन सकेगा जब आर्थिक समानता के आधार पर समाज का पुनर्निर्माण हो सकेगा । इस लक्ष्य के प्रति जिन राजनीतिज्ञों को अग्रसर होना था वे अपने लक्ष्य से मुकर गये और अपने हीन कर्मों से समूचे गांवों के जीवन को नारकीय बना गया । मूल्यच्युति के परिणाम स्वरूप आहत ग्रामचेतना इस तरह विक्षेली बन गयी है कि गांव, गांव न रहे और गांव के मनुष्य अपनी इन्सानियत से वंचित होकर सिर्फ जानवरों के समान जीवन बिताने केलिए विवश हो गये । संस्कारों से वंचित, लक्ष्य बोध से च्युत, आर्थिक विपन्नता से प्रताडित, धार्मिक अविश्वासों से अभिशप्त ग्रामचेतना का स्वरूप सच्चाई का वह प्रतिबिंब है जिसको इन उपन्यासकारों ने बड़ी निडरता के साथ प्रस्तुत कर एक नई स्वाधीनता का संदेश दिया है । यह स्वाधीनता तभी संभव होगी जब

व्यक्ति और गाँव अपनी कमज़ोरियों को महसूस करेगा और जागरण के संदेश को पहचानने में, मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध होकर जाति-पाँत, साम्प्रदायिकता और अन्धविश्वास के दायरों को तोड़ने में सफल निकलेगा और सामाजिक चेतना को अपनाता हुआ आगे बढ़ेगा ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

काव्य

1 धूमिल — संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1972

उपन्यास

नागार्जुन

2. इमरतिया — राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 1968

3. उग्रतारा — 1963

4. कुम्भीपाक — वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985

5. दुखमोचन — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1966

6. नई पौध — किताब महल, इलाहाबाद, 1967

7. बलचनमा — वही 1967

8. बाबा बटेसरनाथ — राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 1985

9. रतिनाथ की चाची — किताब महल, इलाहाबाद, 1967

10. वरुण के बेटे — राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 1985

11. हीरक जयन्ती — आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1962

प्रेमचन्द

12. कर्मभूमि — हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962

13. कायाकल्प — सरस्वती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1964

14. गोदान — 1975

15. निर्मला

16. प्रेमाश्रम — सरस्वती प्रेस, बनारस, 1962

17. रंगभूमि — संक्षिप्त संस्करण, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1

फणीश्वरनाथ "रेणु"

18. कितने चौराहे — अनुपम प्रकाशन, पटना, 1966
19. जुलूस — भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1983
20. दीर्घतपा — बिहार ग्रन्थ कुटीर, पटना, 1963
21. परती परिकथा — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1961
22. मैला आँचल — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1963

राही मासूम रज़ा

23. आधा गाँव — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1980

शिव प्रसाद सिंह

24. अलग अलग वैतरणी — लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1977

समीक्षात्मक ग्रन्थ

25. डॉ. आदर्श सक्सेना — हिन्दी के आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प-विधि सूर्य प्रकाशन मन्दिर, बीकानेर, 1971
26. डॉ. इन्दिरा जोशी — हिन्दी आँचलिक उपन्यास उद्भव और विकास देवनागर प्रकाशन, जयपुर, 1984
27. डॉ. इन्दुप्रकाश पाण्डेय — हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में जीवन-सत्य नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1979
28. डॉ. इन्द्रनाथ मदान — आज का हिन्दी उपन्यास राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1966
29. डॉ. इन्द्रनाथ मदान — हिन्दी उपन्यास पहचान और परख लिपि प्रकाशन, दिल्ली 1973

30· डॉ· उषा डोगरा — हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों का लोकतात्त्विक विमर्श
अनुभव प्रकाशन, कानपुर

31· डॉ· उषा सक्सेना — हिन्दी उपन्यासों का शिल्पगत विकास
शोध साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972

32· डॉ· एम·एन·गणेशन — हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1967

33· कन्हैयालाल मणिकलाल मुन्शी (सं·) – गांधी व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव
संयुक्त प्रकाशन, नई दिल्ली, 1966

34· डॉ· कान्ति वर्मा — स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास
रामचन्द्र एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 1966

35· कुसुम मोफट — फणीश्वरनाथ "रेणु" की उपन्यास कला
सम्मति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968

36· डॉ· कुंवरपाल सिंह — हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना
पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1976

37· घनश्याम "मधुप" — हिन्दी लघु उपन्यास
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1971

38· डॉ· चन्द्रभानु सोनवणे — कथाकार फणीश्वरनाथ "रेणु"
पंचशील प्रकाशन, जयपुर 1979

39· चंडी प्रसाद जोशी — हिन्दी उपन्यास समाज शास्त्रीय अध्ययन
अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, 1962

40· डॉ· ज्ञान आस्थाना — हिन्दी उपन्यासों में ग्राम-समस्याएँ

41· डॉ· ज्ञान आस्थाना — हिन्दी कथा साहित्य समकालीन संदर्भ
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1981

42· डॉ· ज्ञानचन्द गुप्त — आंचलिक उपन्यास सम्वेदना और शिल्प
अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, 1975

43· डॉ· ज्ञानचन्द गुप्त — स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम
अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, 1974

44· डॉ· लक्ष्मीलदार दुबे — स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - साहित्य
शिल्प विधि का विकास
नटराज पब्लिशिंग हाउस, करनाल, 1983

45· तेजमल दक — भारतीय ग्रामीण समाज-शास्त्र
किताब महल प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 1

46· डॉ· त्रिभुवन सिंह — हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1961

47· डॉ· नगीना जैन — आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास
अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1976

48· डॉ· नरेन्द्र मोहन — आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ
आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1973

49· डॉ· पारुकान्त देसाई — साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास
सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, 1984

50· पूर्णदेव — "रेणु" का आंचलिक कथा-साहित्य
आशा प्रकाशन गृह, नई दिल्ली, 1973

51 डॉ· पुरुषोत्तम दुबे — व्यक्ति चेतना और स्वातन्त्र्योत्तर हिन्द
उपन्यास

52· प्रकाश वाजपेयी — हिन्दी के आंचलिक उपन्यास
नन्द किशोर एण्ड सन्स, वाराणसी, 1964

53· प्रताप नारायण टण्डन — हिन्दी उपन्यास में कथा-शिल्प का विकास
हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, 1964

54· डॉ· प्रेम कुमार — समकालीन हिन्दी उपन्यास कथ्य-विश्लेषण
इन्दु प्रकाशन, अलीगढ़ 1983

55· बाबु राम गुप्त — उपन्यासकार नागार्जुन
श्याम प्रकाशन, जयपुर, 1985

56· डॉ· बेचन — आधुनिक हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1972

57· डॉ· बेचन — स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य
राष्ट्रभाषा प्रकाशन, दिल्ली, 1967

58· डॉ· बंसीधर — हिन्दी के आंचलिक उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा
भाषा प्रकाशन, दिल्ली, 1983

59· डॉ· भगवती प्रसाद शुक्ल — आंचलिकता से आधुनिकता बोध
ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर, 1972

60· डॉ· मक्खनलाल शर्मा — हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और प्रयोग
प्रभात प्रकाशन, मथुरा, 1965

61· डॉ· मनमोहन सहगल (सं·) — हिन्दी उपन्यास के पद-चिह्न
सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, 1973

62· महादेवी वर्मा — भारतीय संस्कृति के स्वर
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1984

63· महेन्द्र चतुर्वेदी — हिन्दी उपन्यास - एक सर्वेक्षण
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1962

64· राजेन्द्र यादव — अठारह उपन्यास
अक्षर प्रकाशन प्र·लि· नई दिल्ली

65· रणवीर रांग्रा — साहित्य साक्षात्कार
पूर्णोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978

67· रणवीर रांग्रा — हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास
भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1961

67· डॉ· राधाकृष्णन
(अनु·श्रीरामनाथ "सुमन") — भारतीय संस्कृति कुछ विचार
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।

68· राधेश्याम कौशिक "अहीर" — हिन्दी के आंचलिक उपन्यास
मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1962

69· डॉ· रामगोपाल सिंह चौहान — स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास (1947-62)
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1962

70· डॉ· रामदरश मिश्र — हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1969

71· डॉ· रामदरश मिश्र
डॉ· ज्ञान चन्द गुप्त (सं·) — हिन्दी के आंचलिक उपन्यास
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1984

72· राम प्रसाद किचलू — आधुनिक निबन्ध
ब्रजकिशोर प्रकाशन, इलाहाबाद, 1955

73. लक्ष्मीकान्त सिन्हा — हिन्दी उपन्यास साहित्य का उद्भव और विकास
ग्रन्थ भारती, कानपुर, 1966

74. विवेकीराय — स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम-जीवन
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1974

75. शान्ति स्वरूप गुप्त — उपन्यास स्वरूप
संरचना तथा शिल्प
अलंकार प्रकाशन, दिल्ली ।

76. डा॰ शशिभूषण सिंहल — हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा 1960

77. डा॰ सत्यपाल चुघ — प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968

78. डा॰ सुभद्रा — प्रेमचन्द साहित्य में ग्राम्य-जीवन
अलंकार प्रकाशन, दिल्ली, 1972

79. सुभाषिनी शर्मा — स्वातन्त्र्योत्तर आंचलिक उपन्यास
संजीव प्रकाशन, नई दिल्ली, 1976

80. डा॰ सुमित्रा त्यागी — स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य मे जीवन-दर्शन
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1978

81. डा॰ सुरेन्द्र त्यागी (सं॰) — नागार्जुन
आशिश प्रकाशन, सहारनपुर ।

82· सुरेश सिन्हा — हिन्दी उपन्यास
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972

83· सुषमा धवन — हिन्दी उपन्यास
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1961

84· सुषमा प्रिय दर्शिनी (सं) — हिन्दी उपन्यास
राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1972

85· डा· ह·के· कडवे — हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृत्ति
अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, 1978

86· डा· हेमेन्द्र कुमार पनेरी — स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास
मूल्य संक्रमण
संघी प्रकाशन, जयपुर, 1974

अंग्रेजी ग्रन्थ

87. Aiyar, S.P. — Modernism of Traditional Society and other Essays
Macmillan Company of India Ltd.

88. DEwett, K.K.
Varma, J.D.
Kerala Varma
Joseph, K.J. — An Introduction to Indian Economics
S. Chand & Co. New Delhi, 1978

89. Desai, A.R. — Rural Sociology in India
Popular Publishers, Bombay, 1978

90. Desai, A.R. — Rural Society in India
Popular Publishers, Bombay, 1969

91. Dhires Bhattacharya — India's Five Year Plans - An Economic Analysis
Progressive Publishers, Calcutta, 197

92.	Jhingan, M.L.	The Economics of Development and Planning (with special reference to India). Vikas Publishing House Pvt. Ltd.,1982
93.	Mohan, S. Patodiya	Rural Economics Bankers Book Publishers, Jaipur,1983.
94.	Narendra Babu, G.	Indian Economic Problems Vinod Publications, Quilon, 1981
95.	Nihalchand	Rural Economics U.D.H., Publishers, Delhi
96.	Punit, A.	Social system in Rural India Sterling Publishers, Pvt.Ltd., New Delh
97.	Sachdeva, R.	An Introduction to Sociology Kitab Mahal, Allahabad, 1974
98.	Sreenivasan, S.N.	Caste in Modern India Asia Publishing House, Delhi, 1962
99.	Constitution of India	

पत्र - पत्रिकाएँ

1. आजकल
2. आलोचना
3. कल्पना
4. ज्योत्स्ना
5. दिनमान
6. नई धारा
7. प्रकर
8. भाषा
9. योजना
10. संचेतना
11. समीक्षा
12. सारिका।